प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)



राधेश्याम बंका

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा
(द्वितीय भाग)

राधेश्याम बंका

प्रकाशक
योगेन्द्रनाथ बंका
हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति,
पो. गीतावाटिका,
गोरखपुर - २७३००६

वितरक
अनुराग कुमार बंका
गोरखपुर मशीनरी स्टोर,
जलकल भवन, गोलधर,
गोरखपुर - २७३००१

प्रकाशन तिथि
सं. २०६३ वि. पौष शुक्ल ९,
२८ दिसम्बर, २००६

मूल्य
१०० रुपये

द्वितीय संस्करण
१००० (एक हजार)

मुद्रक
न्यू जैक प्रिंटिंग प्रेस प्रा. लि.,
३८, सोनावाला रोड,
गोरेगांव (पूर्व), मुंबई - ४०० ०६३.

जीवन सोपान

* * * * *

।।श्रीहरिः।।

नमाम्यहं प्रीति-रसावतारम्

यस्याः पाद-नखेन्दु-रश्मि-सुधया चित्तस्समुद्भासितः
कारुण्याम्बुधि-वाह-वेग-रभसा पापाः समुन्मूलिताः।
माञ्जिष्ठे वसने निलीन-मधुरप्रेमैक-पीतच्छविः
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।१।।

जिनके चरणोंके नख-चन्द्रकी रश्मि-सुधासे मेरा चित्त भास्वर हो उठा, जिन करुणा-सागरके प्रवाहके आवेग युक्त थपेड़ेसे ही सभी पाप समूल विनष्ट हो गये, गैरिक वस्त्रोंमें छिपी हुई जिनकी मधुरा प्रीतिकी अद्वितीय पीतवर्णा छवि है, मैं उन राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त रसिक-भ्रमर निरन्तर बना रहूँ।

कृष्णस्त्वं ननु राधिकाऽपि मधुरा नीलाक्त-पीतोत्सवः
नित्यत्वं युगलोऽपि कोऽपि ललितो ह्यद्वैत लीलातनुः।।
कान्ता-कान्त-समाश्रितातिरसिका या प्रोज्ज्वला पावनी।
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।२।।

तुम कृष्ण हो। तुम्हीं मधुर राधिका भी हो। तुम नील आभासे आच्छादित पीत-वर्णका आनन्द-विलास हो। तुम अद्वितीय नित्य-युगल हो। तुम्हारा तनु अद्वैत लीलाकी अभिव्यक्ति है। तुममें प्रियतम और प्रियतमाका नित्य निवास है। तुम जो रसमयी उज्ज्वल-रसकी पावन मूर्ति राधा हो, मैं उनके चरण-कमलोंमें आसक्ति-युक्त रसिक भ्रमर निरन्तर बना रहूँ।

अग्रे श्यामवपुस्तथैवमधरे पृष्ठेऽपि राराजते
वामे वाप्यपिसव्यकेऽपि पुरतो बाह्ये यथाभ्यन्तरे
दृश्ये द्रष्टरि दर्शनेन सकले प्रीणाति याम्माधवः
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।३।।

साँवर तनु ही आगे है, वही साँवर नीचे है, वही तो पीछे सुशोभित है। साँवर ही बाँये है और वही दाहिने एवं सामने है। वही बाहर है वही

भीतर है। इस प्रकार दृष्टामें दृश्यमें सभीमें अपने दर्शनोंसे जिसको माधव रिझाते हैं, उस राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त रसिक भ्रमर नित्य बना रहूँ।

कूजत्कोकिल-सारिका-खगकुले नृत्यन्मयूरावृते
ज्योत्स्ना-विच्छुरिते निकुंज-रमणे ह्यानन्द-वृन्दावने।
मंजुश्याम-सुरूपयाऽनुचरिता लीला ययोन्मादिनी
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।४।।

कोकिल, सारिका और पक्षी-समूहसे गुंजित, नाचते हुये मयूरोंसे आवृत, चन्द्रिकासे आलोकित निकुंज-रमणीय आनन्द-वृन्दावनमें जिसने मंजुश्यामाके सुरूपसे उन्मादिनी लीला प्रकाशित की, मैं उस राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त भ्रमर निरन्तर बना रहूँ।

त्वद्वात्सल्यमभीक्षमाण-मुदितः द्वारि स्थितो भिक्षुकः
याचेऽहं प्रणिपत्य कातरमनाः बद्धप्रणामांजलिः।
आह्लादैकमयी त्वयि प्रकटिता यान्तःस्थिता मोहिनी
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।५।।

तुम्हारी वत्सलता देखकर द्वारपर खड़ा हुआ प्रसन्न भिक्षुक मैं तुम्हें प्रणाम कर और हाथ जोड़कर कातर-मनसे यह याचना करता हूँ कि तुममें प्रकाशित और तुम्हारे भीतर अवस्थित जो आह्लाद-स्वरूपा मोहिनी राधा है, उसके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त रसिक भ्रमर निरंतर बना रहूँ।

मांगल्यो परमाश्रयस्त्वमसि मे श्रेयस्करी सम्पदः
चैका त्वं मम जीवने मधुरिमा चान्ते च भाग्योदयः
सोऽहन्ते पद-दास-दास-शरणो याचे दयाशेवधिं
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।६।।

तुम ही मेरे मंगलमय परम आश्रय हो, तुम ही श्रेयस्कर सम्पत्ति हो। तुम ही मेरे जीवनमें एकमात्र मधुरिमा हो और जीवनके अन्तमें तुम ही मेरे भाग्योदय होगे। हे दयानिधि, तेरे चरणोंके दासानुदासका

शरणागत मैं तुमसे माँगता हूँ कि उस राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त भ्रमर मैं निरन्तर बना रहूँ।

वार्धक्ये गलितो तनुश्च पलितो मुण्डोऽभवच्छ्रीहतः
विश्रब्धो वचनामृतैश्च भवतस्सुप्तो सुखी निर्वृतः।
साक्षान्मे शिखि-पिच्छ-मौलि-ललितं वंशी-ध्वनन्तं प्रियं
पार्श्वे मोहन-मोहिनी-सुरसिकामालोकयिष्ये खलु।।७।।

इस बुढ़ापेमें मेरा शरीर गल गया है। मुख श्री-हीन हो गया है। बाल पक गये हैं। फिर भी आपके वचन-सुधासे आश्वस्त होकर सुख और शांतिसे सो रहा हूँ। निश्चय ही मैं मयूर-पिच्छके मुकुटसे विलसित वंशी बजाते हुए प्रियको तथा उनके पार्श्वमें रसमयी मोहन-मोहिनीके दर्शन करूँगा।

नित्यं महाभाव-निमग्नशीलं प्रेष्ठं रसाद्वैत-सुदीप्तलीलम्
भक्तार्तिहं भागवताग्रगण्यं नमाम्यहं प्रीतिरसावतारम्।।८।।

महाभावमें सतत निमग्न रहना जिनका नित्य स्वरूप है, जो प्रियतम हैं, जिनमें रसाद्वैत-लीलाकी सुदीप्त अभिव्यक्ति है, जो भक्तोंकी व्यथाको दूर करनेवाले भक्त-शिरोमणि हैं उन प्रीति-रसावतार बाबाके श्रीचरणोंमें अजस्र प्रणामाञ्जलियाँ।

प्राण नाथ शर्मा
(विश्वम्भरशरण पाठक)

* * * * *

।। श्रीहरिः ।।

प्रकाशक की ओर से

परम पूज्य बाबूजी एवं बाबा तथा गीतावाटिकाकी गरिमाको यत्किञ्चित् उद्घाटित करनेके लिये क्रमशः ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं–

१– परम भागवत श्रीपोद्दारजी
२– संत हृदय श्रीपोद्दारजी
३– महाभावोदधि श्रीपोद्दारजी
४– वाटिका वेणु
५– वाटिका वातायन
६– वाटिका वैभव
७– वाटिका वीथी
८– वाटिकाके पत्र पुष्प (चार भागोंमें)

इन पुस्तकोंमें प्रकाशित प्रसंगोंके बारेमें यही समझना चाहिये कि जब जो तथ्य सामने आया, उसीको शब्द-बद्ध कर दिया गया। इन लिखित तथ्योंको पुस्तकाकार रूप प्रदान करते समय वर्षानुवर्षके क्रमको ध्यानमें नहीं रखा गया। निज जनोंकी ओरसे बार-बार यह अनुरोध किया जा रहा था कि पूज्य बाबाकी जीवन-धाराको आदिसे अन्ततक वर्षानुवर्ष-क्रमके अनुसार प्रस्तुत किया जाना चाहिये। इस अनुरोधको स्वीकार किया भाई श्रीभीमसेनजी चोपड़ाने। इस पावन चरितमें जो प्रसंग वर्णित हैं, वे सभी पूर्व-कथित ग्यारह पुस्तकोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। पूर्व-प्रकाशित उन सभी प्रसंगोंमेंसे कुछ मुख्य-मुख्य प्रसंग वर्षानुवर्ष-क्रमको ध्यानमें रखते हुए इस पुस्तकमें संग्रथित किये गये हैं। विस्तृत जानकारीके लिये वे सभी ग्रन्थ अवलोकनीय हैं। परम पूज्य बाबाका यह पावन चरित भक्त-जनोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए परम प्रसन्नताकी अनुभूति हो रही है।

इस संकलनके सम्बन्धमें एक स्पष्टीकरण करना आवश्यक लग रहा है। पुस्तकमें 'बाबूजी' शब्दका प्रयोग परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एवं 'बाबा' शब्दका प्रयोग परम पूज्य श्रीराधा बाबाके लिये किया गया है।

सावधानीके बाद भी भूल हो जाना स्वाभाविक है। इस संकलनमें जो भूल या प्रमाद हो गया हो, उसके लिये विनम्र क्षमा-याचना है। निज जनों द्वारा बतलाये जानेपर भविष्यमें भूलको सुधारनेका अवसर मिलेगा।

विनीत
योगेन्द्रनाथ बंका

॥ श्रीहरिः ॥

प्रकाशक की ओर से

(द्वितीय संस्करणके सम्बन्धमें निवेदन)

यह प्रसन्नताकी बात है कि समाजने इस पुस्तकका समादर किया। समय समयपर पाठकोंके पत्र आते रहे, जिसमें पुस्तककी सराहना की अभिव्यक्ति थी। एक वर्षके अन्दर ही प्रथम संस्करण समाप्तिकी सीमापर आ गया, अतः दूसरा संस्करण छपवाना पड़ा।

अनेक स्वजनोंका स्नेहपूर्ण आग्रह था कि पूज्य बाबासे सम्बन्धित अनेक प्रसंग इस पुस्तकमें नहीं आये हैं। उस आग्रहको सम्मान देनेके लिये कई प्रसंग सम्मिलित कर लिये गये हैं। परिशिष्टके रूपमें पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीका भी जीवन वृत्त इस पुस्तकके अन्तमें प्रकाशित है।

पहले संस्करणमें शीघ्रताके कारण अनेक भूलें रह गयी थी। उन भूलोंको दूर करनेके लिये भरपूर प्रयास रहा है। इसके बाद भी कोई भूल रह गयी हो तो उसके लिये क्षमा याचना है। जो भी भूल ध्यानमें आये, वह अवश्य बतलायी चाहिये, जिससे भविष्यमें सुधार हो सके। यह ग्रन्थ सभी पाठकोंको जीवन निमाणकी प्रेरणा प्रदान करे, यही मेरी मंगल कामना है।

विनीत
योगेन्द्रनाथ बंका



लीला-सिन्धु में संतरण



संतसमागम : पूज्य श्रीपण्डितजी, श्रीभाईजी एवं श्रीराधाबाबा

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)

सन् १९५६ की श्रीराधाष्टमी

बाबाने अन्तिम रात्रि-जागरण और अन्तिम उद्दाम नाम-संकीर्तन सन् १९५६ की श्रीराधाष्टमीको किया था। सन् १९५६ की शरद पूर्णिमाको बाबाने काष्ठ-मौन-व्रत लिया। शरद पूर्णिमाके पहले जो श्रीराधाष्टमी पड़ी, उसी श्रीराधाष्टमीकी बात है। इस साल भाद्र मासमें घनघोर वर्षा हुई। इतनी अधिक वर्षा हुई कि कुएँके मुँहतक पानी भर आया। रस्सीकी आवश्यकता नहीं, हाथ डालकर लोटेमें पानी भर लो, ऐसी घनी वर्षा हुई। स्नानके बाद भीगे कपड़ोंको सुखाना बड़ा कठिन हो गया था, परंतु जितनी घनी वर्षा, उतना ही घना आनन्द। जैसे आकाशमें बादल घुमड़ रहे थे, वैसे ही, बल्कि उससे भी अधिक उत्सवमें आनन्द उमड़ रहा था। श्रीराधा-जन्मके बाद 'राधा' नामका उद्दाम संकीर्तन हुआ। बाबा घंटा बजा रहे थे। वे लगातार दो-अढ़ाई घंटेतक बजाते रहे। सबलोग बाबाके स्वरसे स्वर मिलाकर बोल रहे थे और तालसे ताल मिलाकर वाद्य बजा रहे थे। कहीं भी तनिक-सी विस्वरता नहीं, धक्का-मुक्की नहीं और उद्दामताके नामपर उच्छृंखलता नहीं। उस संकीर्तनमें बड़ा सुख मिला।

बाबाने रात्रि-जागरण भी किया। रात्रि-जागरणमें ठाकुर श्रीघनश्यामजी तथा अन्य पाँच-छः व्यक्ति ही रहे होंगे। रातके बारह बजेतक तो उत्सव चलता रहा। बारह बजेके बाद रात्रि-जागरणके निमित्तसे कुछ लोग बाबाके पास बैठ गये। बाबाने पदकी एक पंक्ति गायी। वह स्वरचित पंक्ति थी –

कालिन्दी ! धीरे बहो, मेरे प्रियतम उतरेंगे पार।

कृष्णप्रिया श्रीराधारानीका कालिन्दी-तटकी ओर अग्रसर होना, तटकी सारी भूमिका दूर्वादलसे आच्छादित रहना, दूर्वादलपर पद-कमल रखते हुए प्रीति-भरिता श्रीराधाजीका अभिगमन करना, पद-कमलके स्पर्शकी प्राप्तिसे

दूर्वादलका अत्यधिक आह्लादित होना, कालिन्दीकी निर्मल धाराका बहना, श्यामल धारासे श्रीराधाजीका अनुरोध करना, इन सबके वर्णनमें समयका ज्ञान रहा ही नहीं। आधे लेटे-लेटे हुए बाबा यह सब सुना रहे थे और सबलोग विभोर चित्तसे सुन रहे थे। वर्णनके कहने-सुननेमें कब चार घंटे बीत गये और कब प्रातः कालके चार बज गये, कुछ पता ही नहीं चला।

* * * * *

काष्ठ मौन व्रत

जिन दिनों बाबाने बाबूजीके संकेतपर प्रवचन देना बन्द करके साधारण मौन व्रत लिया था, उन दिनों बाबा श्रीमञ्जुलीला मञ्जरी-भावसे भावित हुए श्रीराधा-माधवकी रसमयी लीलाओंके चिन्तनमें लीन रहा करते थे। श्रीमञ्जुलीला- भावमें विरहकी प्रधानता है। मौनव्रतने और अधिक अनुकूल परिस्थितिका निर्माण कर दिया। लीला-चिन्तनकी तल्लीनतामें प्रगाढ़ता आने लगी। बाबा श्रीमञ्जुलीला-भावमें लगभग चार वर्ष रहे और तदुपरान्त उनकी प्रतिष्ठा श्रीमञ्जुश्यामा-भावमें हो गयी। उत्तरोत्तर रसावगाहन गहन होने लग गया। इसी अवधिमें व्रजेन्द्रनन्दन भगवान श्रीकृष्णने भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजीकी उपासना करनेका निर्देश दिया। भगवान श्रीकृष्णने उपासनाकी विधि नहीं बतलायी थी, परंतु उनकी प्रेरणासे उपासना-विधि बाबाके मनमें स्फुरित हुई। उपासनामें लवलीन बाबाको पूर्ण सफलता मिली और सन् १९५१ की अक्षयतीजके दिन भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजीने दर्शन देकर निज मन्त्रका दान दिया।

यह शक्ति-अर्चना भावी महाभावमय जीवनकी आधार-स्वरूपा पृष्ठभूमि थी। बाबाको भला क्या पता था कि मेरी भावी स्थिति क्या होनेवाली है, परंतु उस दिव्य स्थितिकी ओर सर्व-संचालक एवं समर्थ सूत्रधार भगवान श्रीकृष्ण क्रमशः उन्हें अग्रसर कर रहे थे। बाबा भाव-सिन्धुमें गहरे-से-गहरे उतरते चले जा रहे थे। बाबाके जीवनमें भाव-सिन्धु अधिकाधिक उच्छलित होने लगा। लोकालय सुहाता नहीं था। जगतकी स्मृति भी चुभती थी। जगतकी स्मृतिकी बात तो अलग रही, शरीरकी स्मृति भी विक्षेपवत् लगती थी। रस-सिन्धुमें सतत निमज्जन करना बाबाके लिये एक स्वाभाविक स्थिति थी। सतत निमज्जनमें बाधक स्वरूप लगनेवाली मम-परकी स्मृतिका अस्तित्व ही क्यों रहे, अतः

अबाध-अगाध रसावगाहनके लिये बाबाने काष्ठ मौनका निर्णय ले लिया। काष्ठ मौन व्रतका निर्णय लेनेके पीछे भी वही ईश्वरीय योजना परोक्ष रूपसे सक्रिय थी, जिसने बहुत पहले प्रवचन देनेकी प्रवृत्तिसे निवृत्ति दिलाकर वाणीका मौन व्रत ग्रहण करनेके लिये उपयुक्त परिस्थितिका निर्माण कर दिया था। काष्ठ मौन व्रतका ग्रहण करना बाबाके लिये साधनावस्थाका कोई सोपान नहीं था। यह यदि लक्ष्यतक पहुँचाने वाले कतिपय सोपानोंमेंसे एक सोपान होता तो शरद पूर्णिमाके दिन काष्ठ मौन व्रत लेते ही बाबा तत्काल शरीरातीत कैसे हो जाते? सतत रसावगाहन तो बाबाके लिये सहज सिद्ध स्थिति थी। उस सातत्यमें कभी-कभी विक्षेपवत् उभरने वाली मम-परकी स्मृतिका बाध करनेके लिये यह काष्ठ मौन व्रत था। काष्ठ मौन व्रत लेते ही बाबाकी जो शरीरातीत स्थिति हो गयी तथा काष्ठ मौन व्रतकी अवधिमें बाबाकी जैसी गम्भीर स्थिति रही, उसे देखकर स्पष्ट लगता है कि काष्ठ मौन व्रतको ग्रहण करनेके पीछे भगवान श्रीकृष्णकी प्रेरणाका ही विलास है।

बाबाने काष्ठ मौन व्रतके निर्णयकी सूचना बाबूजीको सन् १९५५ के आरम्भमें दे दी थी। निर्णयकी जानकारी होते ही बाबूजीने इसका प्रसन्न चित्तसे अनुमोदन किया। काष्ठ मौन व्रत लेनेके सम्बन्धमें बाबाने बाबूजीसे कोई परामर्श अथवा विचार-विनिमय नहीं किया, यह तथ्य भी स्वयंमें एक प्रमाण है कि इस कठोर और महान व्रतका प्रेरक तत्त्व अवश्य ही भगवदीय संकेत है। यदि इसके पीछे भगवदीय संकेत नहीं होता तो ऐसा महत्त्वपूर्ण निर्णय लेनेके पूर्व पूर्णानुगत बाबा बाबूजीसे परामर्श करते। बाबाने यह भी बतला दिया कि इस व्रतके लेनेके लिये १९ अक्टूबर १९५६ की शारदीय पूर्णिमाका दिवस निश्चित हुआ है।

काष्ठ मौनका स्पष्टीकरण करते हुए बाबाने बताया था कि इसका अर्थ केवल वाणीका मौन नहीं होता, अपितु जगतकी और शरीरकी सारी क्रियाओंसे सर्वथा अपनेको हटा लेना, सबसे मौन हो जाना। बाबा द्वारा किये गये इस स्पष्टीकरणमें काष्ठ मौनके केवल बाह्य लक्षणोंकी ओर संकेत किया गया है। बाबाके काष्ठ मौनके वास्तविक स्वरूपका विवेचन करते हुए बाबूजीने सन् १९६७ के अप्रैल मासमें प्रवचन देते हुए कहा था – रस-सिद्ध पुरुषके जीवनमें एक प्रकारके ऐसे रसका आविर्भाव होता है, जो आगे जाकर समुद्र बन जाता है। रसके उस महासमुद्रमें अनन्त तरंगें उठती हैं और वह उन तरंगोंमें लहराता रहता है। कभी वह उस समुद्रके तटपर आता है तो बाहर दिखलायी देता है, अन्यथा वह उन्हीं तरंगोंमें रहता है। उत्तरोत्तर वर्धनशील रसावगाहनका

परमोत्कृष्ट स्वरूप ही यह काष्ठ मौन है।

यह भी ईश्वर-प्रेरित एक संयोग था कि सन् १९५६ के आरम्भमें तीर्थ-यात्रा ट्रेन चलनेसे तीन धामकी यात्रा भी काष्ठमौन व्रत स्वीकार करनेसे पूर्व सम्पन्न हो गयी। तीर्थ-यात्रासे लौटकर आनेके बाद बाबूजी बहुत अस्वस्थ हो गये। सुदीर्घ यात्राके श्रमका यह स्वाभाविक परिणाम था, परंतु उस अस्वस्थावस्थामें खूब एकान्त मिला और खूब अवसर मिला प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी लीलामें निमज्जनका। क्रमशः बाबाके काष्ठमौनकी तिथि समीप आने लगी और गीतावाटिकामें स्वजनोंकी भीड़ बढ़ने लग गयी। देशके कोने-कोनेसे तथा दूर-दूरसे प्रतिदिन कोई-न-कोई आता ही रहता था। जिसका बाबासे थोड़ा-सा भी लगाव था, वह सुनते ही गीतावाटिकाके लिये चल पड़ता था। पता नहीं बाबा फिर बोलेंगे या नहीं, अतः दर्शन करनेके लिये तथा साधना सम्बन्धी निर्देश प्राप्त करनेके लिये लोग गीतावाटिका चले आ रहे थे।

जो भी मिलनेके लिये आया, बाबाने उन सभीसे बात की। प्रत्येक व्यक्तिको कम-से-कम पन्द्रह-बीस मिनटका समय तो बातचीत करनेके लिये मिलता ही था। सभीको बाबा साधनात्मक जीवन अंगीकार करनेके लिये प्रेरणा दिया करते थे। बाबासे जो और जैसी बातचीत होती थी, उसकी झलक प्राप्त करनेके लिये एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। बाबाको काष्ठ मौन लेना था १९ अक्टूबरको और १७ अक्टूबरको बाबाने डा.श्रीघनश्यामजी तोलानीको बातचीतके लिये समय दिया। डा.तोलानी नासिकसे आये थे। आपने तीर्थ-यात्रा ट्रेनमें सेवा-भावसे चिकित्सा-कार्य किया था। डा.तोलानीकी निष्काम सेवा तथा भक्ति-भावनासे बाबूजी बहुत अधिक प्रभावित और प्रसन्न थे। डा.तोलानीको बुलाकर बाबाने कहा – मेरी एक बात आप याद रखियेगा। श्रीपोद्दार महाराजका आपपर बहुत प्रगाढ़ स्नेह है। श्रीभाईजीका यह स्नेह आपके जीवनकी एक बहुत बड़ी निधि है।

डा. तोलानीने कहा – बाबा! श्रीभाईजी जैसे महान संतका मुझ दीन-हीनपर स्नेह होना बहुत बड़े सौभाग्यकी बात है। श्रीभाईजी नाम जपपर बहुत बल देते हैं, पर नाममें मेरा मन नहीं लगता।

बाबाने कहा – नाम और नामीमें भेद नहीं है। भगवन्नाम भगवत्स्वरूप है और भगवन्नामकी कृपासे नाममें मन लगेगा। साधना करते समय साधकके जीवनमें चढ़ाव-उतार आता ही है। प्रतिकूलतामें न घबराना चाहिये और न निराश होना चाहिये। अन्तमें आपको भगवान अवश्य मिलेंगे, यह विश्वास

रखिये। मैं आपको ठग नहीं रहा हूँ, एक यथार्थ सत्य कह रहा हूँ।

इस आश्वासनसे विभोर डा. तोलानीने कहा – बस, आपकी कृपा बनी रहे।

तुरंत बाबाने कहा – मेरी कृपा! मेरी कृपा कितनी है और कैसी है, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। अन्त तक आप मुझसे जुड़े रहेंगे।

हृदयमें अमित उर्मिलता एवं नेत्रोंमें विकल सजलता लिये-लिये डा. तोलानीने बाबाको प्रणाम किया और चले आये।

डाक्टर ए. सी. साहासे मिलनेका प्रसंग तो और भी अद्‍भुत है। डाक्टर साहा पड़रौना नगरमें होमियोपैथिक चिकित्साका कार्य करते थे। वे तथा उनके मित्र श्रीहरिद्वारमलजी टीबड़ेवाल बाबासे मिलनेके लिये पड़रौनासे गीतावाटिका आये। बाबाने चतुर्दशी वाले दिन प्रातःकाल बात करनेके लिये उनको एक घंटेका समय दिया। इससे इन दोनों सज्जनोंको अतीव प्रसन्नता हुई। एक-दो दिनकी प्रतीक्षाके बाद चतुर्दशीका प्रातःकाल आ गया। ये दोनों लोग बहुत ही उत्सुक थे कि अब बात होगी। प्रातःकालसे अपराह्न काल हो गया, पर अनचाहा संयोग ऐसा बना कि इन लोगोंको बात करनेके लिये समय नहीं मिल पाया। इन लोगोंके मनमें बड़ी बेकली थी कि काष्ठ मौन व्रत लेनेसे पूर्व क्या बाबासे बात नहीं हो पायेगी ?

बाबाने कोठीके अन्दर पूजाघरके सामनेवाले बरामदेमें भिक्षा की। भिक्षा करके बाबा कोठीसे बाहर निकले। निकलते ही उन दोनोंने बाबासे कहा – सबेरेसे हमलोग प्रतीक्षामें बैठे हैं कि आप अब बात करेंगे, आप अब बात करेंगे, परंतु प्रतीक्षा करते-करते सुबहसे तीसरा पहर हो गया।

बाबाने कहा – मैंने आपको समय दिया है। मैं तो आपसे बात कर चुका।

उन दोनोंको बड़ा विस्मय हुआ कि बाबा क्या कह रहे हैं। उन लोगोंने निवेदन किया – स्वामीजी! हमलोगोंको समय नहीं मिला है। हमलोग तो सबेरेसे राह देख रहे हैं कि कब अवसर मिलेगा।

बाबाने पुनः कहा – पर मैं तो आपलोगोंको समय दे चुका।

उन लोगोंने यह समझा कि शायद बाबाको भ्रम हो गया है, अतः स्पष्टीकरणके लिये कहा – आपने हम लोगोंको एक घंटाका समय दिया था, पर अभी तक सचमुच हमदोनोंसे आपने बात नहीं की है।

बाबाने पुनः कहा – मैं भी सचमुच सत्य कह रहा हूँ कि मैंने आपको एक घंटा नहीं, दो घंटेका समय दिया है, इतना अधिक समय दिया है कि आप अनुमान नहीं कर सकते।

अब वे दोनों लोग क्या बोलें? चुपचाप निराश-विजड़ित बाबाके सामने खड़े थे। डा. साहा तथा श्रीहरिद्वारमलजीकी आँखोंमें खिन्नता एवं व्यथा नाच रही थी। अब वस्तुस्थितिको स्पष्ट करते हुए बाबाने कहा – मैंने प्रातःकाल आप दोनोंको स्मरण किया। भगवान श्रीकृष्णसे जुड़े हुए मनसे मैंने आप दोनोंको स्मरण किया। भगवान श्रीकृष्णके यहाँका एक क्षण क्या इस संसारके एक क्षणके बराबर होता है? भगवदीय एक क्षणकी अवधिकी तुलनामें जगतका कालमान आ ही नहीं सकता। भगवानसे जुड़े हुए मनसे जब मैंने आप दोनोंको स्मरण किया, उस समय जो वस्तु आपको मिली होगी, उसकी कल्पना भी आप नहीं कर सकते।

इतना सुनते ही वे दोनों लोग बहुत अधिक द्रवित हो उठे। सजल नयन और विभोर वाणीमें उन्होंने इतना ही कहा – हम सीमित दृष्टिवाले साधारण प्राणी इन गूढ़ बातोंको भला क्या समझ सकते हैं? हम व्यर्थ ही अन्यथा चिन्तन कर रहे थे। हम आये थे साधना-सम्बन्धी कतिपय छोटे-छोटे प्रश्नोंका समाधान प्राप्त करनेके लिये, परंतु आपने तो साध्य-राज्यकी वह वस्तु प्रदान कर दी, जो उन समाधानोंसे भी नितान्त परेकी है। हमें ऐसा महान आश्वासन और विश्वास प्राप्त हुआ है, जो कठोर साधना द्वारा भी अप्राप्य है। स्नेह परवश होकर आपने जो किया, उसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते थे। आपके प्यारसे रोम-रोम पुलकित है।

इतना कहकर डा. साहाने तथा श्रीहरिद्वारमलजीने बाबाको प्रणाम किया। काष्ठमौनके अवसर पर जितने लोग भी बाहरसे गीतावाटिका आये थे और जो लोग गोरखपुर नगरके थे, सबका ही बाबाने इस या उस विधिसे भरपूर समाधान किया।

काष्ठ मौन व्रत लेनेके पूर्व बाबाने अपनी अनेक अर्चनाएँ विसर्जित भी कर दी। उन सबका पूर्ण विवरण तो प्राप्त नहीं है। संकेतके रूपमें एक-दो बातें बतलायी जा सकती हैं। बाबा प्रतिदिन 'व्रजरजवटी' का सेवन किया करते थे, इसका निर्वाह सम्भव नहीं था, अतः बाबाने भगवानके श्रीचरणोंमें इस नियमको समर्पित कर दिया। इसी प्रकार अपने पूजा-पाठकी अनेक वस्तुएँ यथायोग्य व्यक्तियोंके मध्य वितरित कर दी, जैसे श्रीललिता

सहस्रनाम स्तोत्रकी पुस्तिका बाबाने श्रीकृष्णजीको प्रदान कर दी। गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीको भी कोई अर्चना प्रदान की थी।

क्रमशः काष्ठ मौन व्रत ग्रहण करनेकी वेला समीप आती चली जा रही थी। बाबासे अब भविष्यमें संभाषण-सम्मिलन नहीं हो पायेगा, इसकी कल्पना मात्रसे सभीकी भावनाएँ अति संत्रस्त हो रही थीं। साधन-भजनमें ज्यों ही थोड़ी शिथिलता आती थी तो लोग दौड़कर बाबाके पास चले आते थे और बाबासे थोड़ी देर बातचीत करनेका परिणाम यह होता था कि अवसादकी सारी बदली छँट जाती थी, तन-मनमें पूर्ण उत्साह भर जाया करता था और साधन-पथके सारे कंटक फूलमें बदल जाया करते थे। अब मनमें प्रश्न था कि वह उत्साह और वह प्रेरणा कहाँसे प्राप्त हो पायेगी, इस अभावकी अनुभूतिसे भावनाओंकी विकलता और भी अधिक बढ़ती चली जा रही थी। वे जन परम सौभाग्यशाली थे, जिन्हें बाबाके समीप बैठनेका उन्मुक्त अवसर मिला करता था और जिन्हें बाबाकी संनिधिमें समयका परिज्ञान भी नहीं हो पाता था, आज उन सबका हृदय भीतर-ही-भीतर चीत्कार कर रहा था अपने महान सौभाग्यका अन्त देखकर। बाबाके वे मुस्कुराते हुए अधर, वे प्यार-भरी आँखें, वे प्रेरणा भरी बातें अब देखने-सुननेको नहीं मिलेंगी, इसके अनुमान मात्रसे सभी आश्रित-जनोंके अन्तरमें हाहाकार मचा हुआ था, पर यह व्यथा किससे कहें और क्या कहें? सभी तो इस दारुण व्यथासे ग्रस्त थे। यह तो सर्वथा सत्य है कि बाबा एक ऐसा असि-धारा-व्रत स्वीकार करने जा रहे हैं, जिससे भक्ति-भावना भी महिमान्वित हो उठे और ऐसे महान बाबा हमारे अपने-से-अपने हैं, इसकी स्मृति और स्फूर्ति मात्रसे हृदय परमानन्दपूर्ण गौरव-भावसे भावित हो उठता था, परंतु इस समय उस गौरव-भावको आच्छादित किये हुए थी एक अदम्य टीस, एक ऐसी कसक, जिसका कोई निराकरण अथवा निवारण नहीं था। नहीं चाहते हुए भी परम प्राण-धन अपने परम श्रद्धास्पद बाबाको 'विदाई' देनेके लिये सभी लोग पंडालमें इकट्ठे होने लग गये। अब मध्य रात्रिकी वेलामें एक-दो घंटे और शेष रह गये थे।

जहाँ पहले पंडालमें श्रीराधाष्टमी-महोत्सव मनाया जाता था, वहींपर बाबाने मध्य रात्रिके समय मौन व्रत लिया था। रात्रिको दस बजे ही सभी भक्तगण पंडालमें आकर बैठने लग गये। गीताप्रेसके लोग तथा शहरके कई

लोग भी उस समय आ गये। पंडालमें आनेसे पहले बाबा एवं बाबूजीकी कुछ बात एकान्तमें थोड़ी देर हुई। इसके बाद बाबूजी बाबाको साथ लेकर लगभग ग्यारह बजे पंडालमें आये। चौकी लगाकर मंच बनाया गया था, उसपर बाबा और बाबूजी विराजित हो गये। सभी उपस्थित लोगोंका हृदय अपार व्यथासे भरा हुआ था। 'विदा' होनेवाले बाबापर सबकी दृष्टि टिकी हुई थी। टिकी नहीं, सबकी दृष्टि गड़ी हुई थी। सभी संन्यासी वेषमें विराजित बाबाको एकटक निहार रहे थे। लोग रह-रह करके देख लेते थे बाबूजीकी ओर भी उनके मुखमण्डलपर उभरती-मिटती हुई भाव-रेखाओंका अर्थ लगानेके लिये, किन्तु इस समय सभीके आकर्षणके केन्द्र-बिन्दु बने हुए थे बाबूजीके पार्श्वमें सुशोभित बाबा। संन्यासी वेषके मध्य बाबाकी सुदीप्त गौर कान्तिको लोग आँखोंसे पी जाना चाहते थे।

उस विदाईके अवसरपर सभी लोगोंके समक्ष बाबाने जो निवेदन किया, उसकी मुख्य-मुख्य बातें सार रूपमें इस प्रकार हैं। सब लोगोंसे बाबाने कहा —

जीवनमें कोई विरला अभागा प्राणी ही मरते समय झूठ बोलता है। मेरा अनुभव है, वे किसी विवशता या दबावसे ऐसा करते हैं। मैं मरने जा रहा हूँ।

'जो कुछ लिखि राखी नँदनंदन मेटि सकै ना कोय।'

वनमें घूमता भौंरा चम्पापर नहीं बैठता है। क्या उसमें सौन्दर्य नहीं और क्या इसमें रसकी वासना नहीं? चम्पा खूब सुन्दर है और भौंरा रसका लोभी है, पर ईश्वरेच्छा बलवान है। मैं स्नेहकी वन्दना करने आया हूँ।

काष्ठमौन बड़ी चीज नहीं है, यह संन्यासियोंका आचार है और अवश्य करना चाहिये। संन्यासकी मुझमें कोई वस्तु नहीं है। मनमें लगा कि शेष समयका ऐसा ही उपयोग हो। यह यतियोंका आचार है। काष्ठमौन गंगातटपर ही धारण करनेका नियम है। उत्तम वस्तु तो यह है कि शरीरपातके लिये चल पड़े गंगाके मूल स्रोतकी ओर, गंगाके प्रवाहमें जल पीये, भूखमें कोई पूछे तो हाथ फैला दे। खाने लायक हो तो खा ले, नहीं तो गिरा दे। वस्त्र गिर गया हो तो अपने आप न बाँधे, दूसरा कोई बाँध दे तो बाँध दे।

मेरा काष्ठमौन 'अधूरा' है, क्यों कि मेरी सुख-सुविधाकी सारी व्यवस्था भाईजी कर रहे हैं, भिक्षा यहाँ ले रहा हूँ। भाईजीका मेरे प्रति स्नेह

है। उसका मैं गहराईके साथ निरन्तर अनुभव करता हूँ। मैं भाईजीसे मिलने गया, जाते ही भाईजीकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। भाईजीके सम्बन्धमें अधिक नहीं कहूँगा। वे इसी स्थानपर हम सभीके सामने विराजित हैं।

श्रीपोद्दार महाराज यदि गुलाबके पौधे हैं तो उस पौधेकी एक शाखापर खिलनेवाला मैं एक छोटा-सा गुलाबका फूल हूँ और सदा हँसता रहता हूँ। उस गुलाबमें तो काँटा भी होता है, पर गुलाबका यह पौधा तो कण्टक-रहित है। मुझसे भी अधिक सुन्दरतर और अधिक श्रेष्ठतर पुष्प, एक नहीं, अनेकानेक पाटल पुष्प खिला देनेकी क्षमता इस पौधेमें है।

काष्ठमौनमें न किसीकी ओर नजर उठाकर देखना है, न बोलना है, न पढ़ना है, न संकेत करना या लिखना है। पर काष्ठमौनका अर्थ यह भी है – राधेश्याम (भगतजी) मेरी सेवा करता है, वह कुएँपर पानी भर रहा हो, पैर फिसल गया हो और वह कुएँमें गिर पड़ा हो तो उस समय मैं मौन नहीं रहूँगा, जोरसे चिल्लाऊँगा कि राधेश्याम कुएँमें गिर पड़ा और साथ-ही-साथ उसको बचानेके लिये कुएँमें कूद पड़ूँगा। यदि उसके प्राण बच गये तो ठीक है, नहीं तो मेरा और उसका, दोनोंका जीवन भगवानके चरणोंमें समर्पित हो जायेगा।

आगे चलकर मेरी मानसिक अवस्था क्या होगी, मैं नहीं जानता। बोलनेका प्रश्न भाईजीके साथ हो सकता है। अट्ठारह महीनेके पहले ही यह निर्णय हो गया था कि इस तिथिको, आश्विन पूर्णिमाको मौन हो जाऊँगा। भाईजी इतने बड़े संत –इनको संत ही मानता हूँ –अन्तकाल तक मेरी सँभाल करेंगे। जिस समय भाईजीको किसी प्रश्नको लेकर परेशानीका अनुभव हो, उस समय बोलकर प्रकाश डाल देना चाहिये, मेरी इतनी-सी चेष्टा हो सकती है। सावित्रीकी माँने पुत्रकी तरह मुझे भिक्षा करायी है। जब भिक्षाके लिये जाऊँ तो उनकी ओर देखूँगा। देखनेका प्रश्न केवल भाईजी और माँजीके लिये है।

जो मंगलमयता चिताकी ज्वालामें है, वही प्रसूतिगृहके मंगलप्रदीपमें है। मृत्यु और जीवन भगवानके राज्यके दो परदे हैं। यदि भाईजीका शरीरान्त हो रहा हो या उनका शरीर शान्त हो गया हो तो सूचना पाते ही आऊँगा। भक्तका हृदय करुणासे भरा होता है। जब मैं अभी मिलने गया तो श्रीभाईजी जोर-जोरसे रोने लगे।

विश्वातीत भगवानकी उपासना कीजिये। मेरी राधा विलक्षण है। वास्तवमें जिसके मनमें तनिक-सा भी काम विकार है, वे हमारी राधाकी उपासनाके अधिकारी नहीं हैं, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री हों।

अब आप लोग जो हमें प्यार दे रहे हैं, वह राधाकिशोरी ही इतने रूपोंमें झाँक रही है। अपनी जानमें भगवानको एक क्षण भी भूलिये मत। भगवान थे, हैं और रहेंगे। देखनेके लिये शुद्ध आँख चाहिये।

हे राधाकिशोरी! हे कृष्ण! आशीर्वाद चाहता हूँ—

देहु दया करि दान न भूलौं केलि को।
भगवत वलित तमाल बिलोकों बेलि को॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग आस नहिं त्रास है।
जहँ राखौं तहँ रहौं मानि सुख रास है॥
दुख सुख भुगते देह, नहीं कछु संक है।
निंदा अस्तुति करौ राव क्या रंक है॥
परमारथ व्यवहार, बनौ कै ना बनौ।
अंजन ह्वै मम नयन 'रसिक भगवत' सनौं॥

बस, राधाकृष्णको ही निरन्तर देखता रहूँ। अंजनके समान वे दोनों नयनमें विराजित रहें।

बाबाके बोल चुकनेके बाद बाबूजीने बोलना आरम्भ किया। बाबूजीने कहा— स्वामीजीका काष्ठमौन होने जा रहा है। इनके साथ जिनका बाह्य सम्बन्ध था, वह लोकमें टूट रहा है। इसका मुझको भी दुःख हुआ है, पर परमार्थका सम्बन्ध तो अटूट है।

असली सम्पर्क तो श्रीराधारानीको लेकर है, वह सम्पर्क कभी नहीं टूट सकता, सदा बना रहेगा। डरनेकी बात नहीं है। मेरा इनका क्या सम्बन्ध है, सो तो भगवान ही जानते हैं, मैं नहीं जानता, ये भी शायद नहीं जानते हैं।

मैं इनका यतिरूप इतना ऊँचा देखना चाहता हूँ कि वह औरोंके लिये इस समयके जगतमें आदर्श हो। इन्हें आदर्श यतिधर्मके निर्वाहकके रूपमें देखनेकी मेरी उत्सुकता है। मैंने मौनकी बात जाननेपर बाह्य रूपसे सम्मति नहीं दी, पर मानसिक रूपसे समर्थन किया।

इनका जीवन राधारानीमय हो। इनके जीवनकी धारा संसारको

विशुद्ध प्रेम-सुधा-रससे प्लावित कर दे। भविष्यकी बातका पता नहीं है, पर यदि इनमें दिव्य उन्माद-विक्षिप्तता आये, जो चैतन्य महाप्रभुके अन्तिम जीवनमें देखी गयी थी उनकी गम्भीरा लीलामें, तो मैं उसका हृदयसे स्वागत करता हूँ। रसकी धारा..........।

बाबूजी बोल ही रहे थे कि घड़ीने बारह बजाया और बाबाने तत्काल कहा — मैं यहीं मौन लेता हूँ।

इतना कहकर बाबा मंचपर ही खड़े हो गये। खड़े होकर बाबाने दो या तीन बार 'राधा' 'राधा' 'राधा' कहा और फिर तुरन्त ही नितान्त अन्तर्मुख हो गये। बाबूजीने ही सबको सूचना दी कि बाबा मौन हो गये हैं। ज्यों ही बाबूजीने सूचना दी, उसी समय कई व्यक्ति वस्तुतः बिलख-बिलख करके रोने लग गये। कई व्यक्तियोंने अपने रोदनके स्वरको अधरोंके कपाटके पीछे जकड़ रखा था। कुछको यह रंच मात्र भी अभीष्ट नहीं था कि मनका मर्म नेत्र व्यक्त कर दें, परंतु यह उनके बसकी बात थी नहीं और वे बार-बार अपनी धोती या साड़ीसे अपनी आँखोंको रह-रह करके पोंछ रहे थे। किसीको मीराबाईकी पंक्ति याद आ रही थी —

जो मैं ऐसो जानती प्रीति करै दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती प्रीत करो जनि कोय।।

एक बहिन तो व्यथासे इतनी अधिक प्रपीड़ित हुई कि तीन दिनतक लगातार उसकी विक्षिप्ततावस्था बनी रही। सारे पंडालमें एक अति गम्भीर सन्नाटा छा गया, अपितु यह कहना चाहिये कि उस सन्नाटेने सारी गीतावाटिकाको आवेष्टित करके व्यक्ति-व्यक्तिके उल्लासको कुण्ठित कर दिया था। विजड़ित अधर, विरमित मति और विचलित हृदयसे सभीने अपने विगलित नेत्रों द्वारा देखा कि बाबूजीने बाबाको बड़े धीरेसे मंचपरसे नीचे उतारा और बाबूजी बाबाके गलेमें बाँह डालकर चलने लगे। चलते समय बाबाके शरीरसे उनकी गैरिक चादर भूमिपर गिर पड़ी। बाबा अपने शरीरसे उसी समय इतने अतीत हो गये थे कि चादर कब सरकी और कब गिरी, इसका भान ही नहीं रहा। जिस भक्तने वह चादर उठा ली, उसने उस चादरको अपने पूजा गृहमें पधरा दी। यह चादर तो उसके जीवनकी एक निधि हो गयी।

बाबूजीने बाबाको कुटियातक पहुँचाया तथा निजी परिकर

श्रीराधेश्याम भगत एवं श्रीरामसनेहीको कुछ आवश्यक निर्देश देकर अपने कमरेमें चले आये। सभी भक्तगण भी अपने-अपने विश्राम-स्थानपर चले आये, परंतु थे सभी नितान्त अवसन्न एवं अत्यधिक व्यथित।

* * * * *

अन्तर्मुखी जीवनकी झलक

बाबाने सं. २०१३ वि. की शरद पूर्णिमा, तदनुसार १९-१०-५६ को काष्ठ मौन लिया था। बाबाके मौन लेते ही गीतावाटिकाके वातावरणने मानो गम्भीर रूपसे मौन ले लिया हो। काष्ठ मौनके अवसरपर बाहरसे आये हुए सभी आत्मीयजन हृदयमें भावगाम्भीर्यको लिये-लिये अपने-अपने स्थानको वापस चले गये। पूज्य बाबूजीने २७-१०-५६ को अपने पत्रमें एक स्वजनको लिखा था – यहाँसे प्रायः सभी लोग चले गये हैं। ..... बगीचेमें सन्नाटा-सा छाया है।

इन दिनों बाबूजीका शरीर भी अस्वस्थ चल रहा था। वे तीन धामकी तीर्थयात्रासे अप्रैल ५६ में लौटकर आये थे, तभीसे अस्वस्थताने उनका पीछा नहीं छोड़ा। उनके बाँये हाथमें दर्द तथा शरीरमें हलका-हलका ज्वर सदा बना रहता था। शिथिलता और शक्तिहीनता भी कम नहीं थी। चिकित्सासे कुछ लाभ होता था, पर वह लाभ पुनः छिप जाया करता था। सदा ज्वरका बना रहना तो अच्छी बात नहीं। अब तो डाक्टरों-वैद्योंने भी परामर्श दिया कि उन्हें पूर्ण विश्राम करना चाहिये। इस परामर्शके अनुसार बाबूजीने स्वयंको एक कमरेके एकान्तमें सीमित कर लिया। यह एकान्त तो बाबूजीके लिये अत्यधिक अनुकूल ही सिद्ध हुआ, जिससे श्रीप्रिया-प्रियतमकी अन्तरंग लीलाओंका दर्शन करने और उन लीलाओंमें सम्मिलित होनेका सुअवसर मिला। परिवारके लोग कहने लगे कि बाबूजी चाहे कितना ही एकान्तमें रहें, किन्तु 'कल्याण' पत्रिकाके कामके अतिरिक्त अन्य कार्य सामने आते ही रहते हैं और इसीसे विश्राम नहीं मिल पाता, अतः हम लोगोंको रतनगढ़ चलना चाहिये, जिससे पर्याप्त विश्राम मिल सके। यह विचार जोर पकड़ने लगा और बाबाके काष्ठ मौन लेनेके एक मास बाद सभी लोग

गोरखपुरसे रतनगढ़ चले गये।

गोरखपुरमें और रतनगढ़में बाबाकी जैसी स्थिति रही, उसका वर्णन बाबूजीने समय-समयपर उन पत्रोंमें कुछ-कुछ किया है, जो उन्होंने अपने आत्मीयजनोंको लिखा है। उन अनेक पत्रोंमें लिखी गयी कतिपय पंक्तियोंका सारांश इस प्रकार है – बाबाका काष्ठ मौन व्रत ठीक चल रहा है। किसीसे बोलना, इशारा करना तथा देखना भी बन्द है। वे किसीकी ओर देखते ही नहीं। बाबा जहाँ रहते हैं, वहाँ कोई भी नहीं जाता है। शामके समय भिक्षा करते हैं। भिक्षाके समय भी चुपचाप रहते हैं। वे कभी कुछ संकेत करते ही नहीं, अतः उनकी सुविधा अथवा असुविधाका कुछ भी पता नहीं चलता। किसी दिन भिक्षामें बहुत कम खाते हैं, तब अनुमान होता है कि आज बाबाका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा। वैसे वे बहुत प्रसन्न एवं शान्त हैं। श्रीमद्भगवद्गीताका यह वाक्य 'निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्' बाबाके जीवनमें चरितार्थ है। किसीसे मानो कोई मोह नहीं, कोई सम्बन्ध नहीं, कोई आवश्यकता नहीं, किसी बातकी कोई चिन्ता नहीं।

ऊपर जो लिखा गया, वह तो सन् १९५६ में लिखे गये पत्रांशोंका सारांश है। सन् १९५७ में बाबूजीने जो पत्र लिखे, उनमें तो बाबाकी और भी गम्भीर स्थितिका चित्रण है। उन पत्रोंकी कुछ पंक्तियोंका सारांश है – बाबा आजकल बाह्य जगतसे और भी उपराम होते चले जा रहे हैं। कई बार भिक्षा या स्नान समयपर नहीं हो पाता। ध्यानस्थ बैठे रह जाते हैं। जाकर जगाया जाता है, तब उठते हैं। उनकी उपराम वृत्ति दिनों-दिन बढ़ रही है। बाह्य ज्ञान कम हो रहा है। घंटों बिना नहाये-खाये बैठे रहते हैं। उठानेपर उठते हैं।

इन्हीं तथ्योंकी आवृत्ति भिन्न-भिन्न प्रकारसे बाबूजीके द्वारा लिखित पत्रोंमें होती रही है। वस्तुतः इन दिनों बाबाकी अन्तर्मुखता दिन-प्रति-दिन गहरी होती चली जा रही थी।

* * *

जन्मदात्री माँ की दिव्य परिणति

अब थोड़ी देरके लिये बिहार प्रदेशके फखरपुर ग्राम चला जाय बाबाकी जन्मदात्री माँके पास। माँके मनमें तीव्र लालसा थी अपने संन्यासी पुत्रको एक बार देख लेनेकी। लालसाकी पूर्तिके लिये एक गुप्त योजना बनायी गयी थी, पर वह सफल नहीं हो सकी। सचमुच, उस योजनाकी असफलतामें ही माँ का वास्तविक हित निहित था। माँके आत्यन्तिक और पारलौकिक हितकी दृष्टिसे बाबाका चिन्तन अपने ही ढंगका था। पाञ्चभौतिक धरातलपर यहाँ कुछ क्षणके लिये मिलन एक सामयिक तात्कालिक क्षणिक लाभ था, पर बाबा सोच रहे थे माँके लिये वह परम पारमार्थिक लाभ, जो जीवनके उस पार चिरन्तन होगा, स्थायी होगा और निरवधि होगा। इतना ही नहीं, एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी होगी कि जीवनके अन्तिम क्षणोंमें माँको मेरे सामीप्यकी अनुभूति भी होगी।

बाबाका चिन्तन पूर्ण रूपसे साकार हुआ। अब जन्मदात्री माँके जीवनके अन्तिम दिन आ गये थे। शरीर अस्वस्थ चल रहा था। मृत्युसे दो दिन पहलेकी बात है। एकादशीको माँकी स्थिति गम्भीर हो गयी। घरके लोगोंको ऐसा लगा कि शरीरसे हंस अब उड़ जानेवाला है। माँको खाटसे नीचे उतार लिया गया। ऐसे अवसरपर एकने माँसे पूछा – तुम्हें संन्यासी बाबू याद आते हैं क्या?

माँने बड़े प्रसन्न चित्तसे कहा – देखो, वह रहा। वह मेरे सामने ही तो है। देखो वह रहा।

जब-जब बाबाके बारेमें पूछा गया, तब-तब माँने बाबाकी उपस्थिति बतलायी, कभी पास, कभी दूर, कभी दाहिने, कभी बायें। माँको सतत यही अनुभव हो रहा था कि मेरा संन्यासी बेटा मेरे पास है और यह बात सही भी थी कि उसको बाबा दिखलायी दे रहे थे। वह प्रसन्न-वदना माँ समीप खड़े हुए अपने संन्यासी बेटेसे पूछने लगी – क्यों रे! तू मजे में है न? तुमको भोजन ठीकसे मिल जाता है न?

इस प्रकार वह माँ अपने संन्यासी बेटेसे थोड़ी देरतक बात करती रही, फिर वह अपने आप चुप हो गयी। प्रतिक्षण मृत्यु समीप

आ रही थी। सं.२०१३ वि.पौष शुक्ल द्वादशी (१३-१-५७) को माँने अपने परिवारवालोंसे कहा – मुझे काशी ले चलो।

बाबाके बड़े भाई बड़े मातृभक्त थे, उनकी हर आज्ञाको माननेमें वे तत्पर रहा करते थे। उनकी बड़ी चाह थी कि माँकी अन्तिम अभिलाषाको कैसे पूरा किया जाये। वे बड़े व्यथित थे कि न तो पासमें रेलवे-स्टेशन है और न ग्राममें किसीके पास मोटरकार है। माँकी मृत्युको सन्निकट देखकर वे सोच नहीं पा रहे थे कि क्या किया जाये? निराशाकी स्थितिमें भगवानका स्मरण ही एक मात्र सहारा होता है। वे भगवानका स्मरण मन-ही-मन करने लगे। अगले दिन उन्होंने देखा कि घरके पाससे होकर एक खाली मोटरकार चली जा रही है। पं.श्रीतारा- दत्तजीने दौड़कर ड्राइवरसे पूछा – यह मोटरकार कहाँ जा रही है?

ड्राइवरने बताया – काशी।

उन्होंने कहा – भइया! तुम जितना भी रुपया लोगे, हम देंगे। मेरी माँ मरणासन्न है। उसकी इच्छा काशी जानेकी है। तुम हमलोगोंको काशी पहुँचा दो।

वह ड्राइवर सहमत हो गया। तुरंत मोटर कारमें पीछे गद्दा बिछाया गया। माँके साथ बाबाकी बड़ी बहिन बैठी, जो बाबासे लगभग बीस वर्ष बड़ी थी। पं.श्रीदेवदत्तजी आवश्यक धन लेकर आगे ड्राइवरके बगलमें बैठ गये। इनके अतिरिक्त दो व्यक्ति और भी बैठे। कारमें परिवारके कुल पाँच व्यक्ति माँके साथ काशी गये। किसीको पता नहीं कि वह मोटरकार किसकी थी, वह कहाँसे आ रही थी और कैसे आयी, पर वह आ पहुँची ईश्वरीय विधानसे माँकी अन्तिम चाहको पूर्ण करनेके लिये। ज्यों ही मोटरकारने भगवान विश्वनाथके पावन क्षेत्रमें, पुण्यतोया गंगाजीके पुलको पार करके काशीकी सीमामें प्रवेश किया और चौकपर रुकी, त्यों ही माँने अपने पार्थिव शरीरका परित्याग कर दिया। बाबाकी पूज्या माँका देहान्त सं. २०१३ वि. की मकर संक्रान्तिके शुभ कालमें, तदनुसार पौष शुक्ल १३ सोमवार, १४ जनवरी १९५७ ई. के दिन हुआ। ऐसा लगता है कि वह भगवान सूर्यनारायणके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा कर रही थी। मकर संक्रान्तिके दिन भगवान सूर्यनारायण दक्षिणायणसे उत्तरायणकी ओर हुए और

संक्रान्तिके पावन दिन तीन लोकसे न्यारी काशीके पावन क्षेत्रमें उसने अपने शरीरका परित्याग किया।

अब धर्मशालाके अन्दर जाकर ठहरना था ही नहीं। तुरंत विमान बनाया गया और मणिकर्णिका घाटपर ले जाकर शवको चिताके ऊपर रख दिया गया। ऋषि-मुनियोंकी सन्तान हिन्दूका एक-एक कार्य, उसका जन्म-मरण, उसका जीवन ही यज्ञमय होता है। हिन्दूकी अन्त्येष्टि प्रक्रिया भी एक प्रकारका यज्ञ ही है। वे जन परम भाग्यशाली हैं, जिनका शरीर किसी परम पुनीत तीर्थक्षेत्रमें एवं किसी परम पवित्र पुण्यकालमें परम पावनी भगवती गंगाके किनारे प्रज्वलित चितारूपी यज्ञाग्निमें आहुति बनता है। यह यज्ञ माता-पिता स्वयं नहीं करते, अपितु पुत्रके द्वारा होता है। माता-पिताका आत्म-विस्तार ही तो पुत्र है। पुत्रके रूपमें माता-पिता ही इस यज्ञको सम्पन्न करते हैं। चिताग्निमें शरीरकी अन्तिम आहुतिद्वारा जीवन-यज्ञकी पूर्णाहुति होती है। इस अन्तिम आहुतिको देकर श्रीतारादत्तजी एक किनारे बैठ गये और वे बैठ-बैठे देख रहे थे कि चिताग्निकी ऊँची-ऊँची लपटें शवको आत्मसात करती चली जा रही हैं। अपनी परम पूजनीया माँको भस्मीभूत होते देख करके उनके हृदयमें मातृ-वियोगका भाव उमड़ पड़ा और वे फूट-फूट करके रोने लगे। अपने भाई पं. श्रीदेवदत्तजीसे लिपट करके कहने लगे – क्या भइया! अब मैं टुअर (मातृ-पितृ-विहीन) हो गया? क्या मैं अनाथ हो गया?

उसी समय श्रीदेवदत्तजीने उनसे कहा – अरे तुम रोते हो? ऐसी माँका पुत्र होना कितना बड़ा सौभाग्य है? जिसने मकर संक्रान्तिके पुण्य अवसरपर भगवान विश्वनाथके परम पवित्र काशी क्षेत्रमें अपने शरीरका परित्याग किया, सारे जीवन जो संत-सेवा और पुरजन-सेवा उल्लास एवं उत्साह पूर्वक करती रही, जिसकी पति-सेवाका भाव सदा ही सराहा गया और सबसे बड़ी बात यह कि जिसने चक्रधर जैसे परम सुयोग्य संन्यासी पुत्रको जन्म दिया, वह माँ धन्य, उसका वंश धन्य, उसके दोनों कुल धन्य और उसके समस्त स्वजन धन्य। भगवान करे, ऐसी माँ सबको मिले।

पं. श्रीदेवदत्तजीके इन शब्दोंसे श्रीतारादत्तजीको बड़ी सान्त्वना मिली। चिता आधी ही जल पायी थी कि एक विशेष बात घटित हुई।

आकाशमें बादल तो थे ही, अब वर्षा आरम्भ हो गयी। यद्यपि वर्षा हल्की थी, फिर भी उसे देखकर दोनों भाइयोंको चिन्ता होने लग गयी। आश्चर्यकी बात यह हुई कि वर्षाका चितापर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह पूर्ववत् ही प्रज्वलित रही।

माँके निधनकी सूचना देनेके लिये भाईने बाबाके पास रतनगढ़ तार दिया। बाबाने काष्ठ-मौन १९ अक्टूबर १९५६ को लिया था। इसके सवा माह बाद पूज्य बाबूजी स्वास्थ्य-लाभके लिये गोरखपुरसे रतनगढ़ चले आये। साथमें बाबा भी आये। तार तो बाबाके पास बहुत विलम्बसे पहुँचा, पर तारके पहुँचनेके पहले रतनगढ़में कुछ और ही घटित हो गया। बाबा अपने कमरेमें थे। रातके नौ-दस बजेके आस-पास बाबाकी माँ बाबाके सामने आकर खड़ी हो गयी। बाबाने अपनी माँको पहचान लिया और बाबाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह यहाँ कैसे आ गयी। बाबाने उससे पूछा – तू यहाँ कैसे?

खड़े-खड़े माँ मुस्कुराने लगी। उसके पैर भूमिपर टिके हुए नहीं थे। वह आकाशमें भूमिसे कुछ ऊपर खड़ी थी। यह देखकर बाबाको तुरंत ज्ञात हो गया कि यह तो अपने स्थूल शरीरका परित्याग करके इस समय मेरे सामने सूक्ष्म शरीरसे खड़ी है।

शरीरका परित्याग करनेके बाद बाबाकी माँकी कुछ दिव्य परिणतियाँ हुईं और निधनके तीन दिनके भीतर ही उसे जहाँ पहुँचना था, वह वहाँ पहुँच गयी। बाबाकी माँकी सर्व प्रथम परिणति भगवती पार्वतीके रूपमें हुई। माँने अपने शरीरका परित्याग भगवान विश्वनाथकी दिव्य पुरी काशीकी सीमाके भीतर किया था, सम्भवतः इसी कारण प्रथम परिणति भगवती पार्वतीके रूपमें हुई। इसके बाद दूसरी परिणति महर्षि भागुरिकी धर्मपत्नीके रूपमें हुई। महर्षि शाण्डिल्य तो श्रीनन्दकुलके पुरोहित हैं और महर्षि भागुरि वृषभानुकुलके पुरोहित हैं। बाबाके पिताजीकी परिणति महर्षि भागुरिके रूपमें हुई, अतः उनकी धर्मपत्नीके रूपमें माँकी परिणतिका होना स्वाभाविक है। बाबाकी माँकी अगली परिणति माँ कीर्तिदाके रूपमें हुई। सबसे अन्तिम परिणति हुई सौदामिनीके रूपमें, जो वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके शीशपर विराजित एक विशिष्ट प्रकारकी चन्द्रिका है।

जन्मदात्री माँने निधन होते ही सूक्ष्म शरीरसे रतनगढ़ पधार

करके बाबाको दर्शन दिया। इस दर्शनके तीन दिन बादका प्रसंग है। रतनगढ़में बाबा अपने कमरेमें बैठे हुए थे। कमरेके दोनों द्वार बन्द थे। तभी एक स्त्री बाबाके कमरेमें आयी। उसके शरीरकी कान्ति बड़ी उज्ज्वल थी, उसके अङ्गोंमें दिव्य आभूषण शोभा पा रहे थे। उसके परिधान देखनेमें असाधारण लग रहे थे। कमरेके एकान्तमें एक स्त्रीको अपने सामने अचानक देखकर बाबाको बड़ा अटपटा लगा। बाबा अपने कमरेमें पाटेपर उत्तराभिमुख बैठे हुए थे और यह दिव्य स्त्री पूर्वाभिमुख खड़ी थी। बाबा उसे पहचान नहीं पाये। फिर उस स्त्रीकी ओर बाबा एकटक देखने लग गये। गड़ी दृष्टिसे निहारकर देखनेके बाद बाबा जान पाये कि यह तो मेरी जन्मदात्री माँ है। बाबा तुरंत अपने पाटेपरसे नीचे उतरे तथा भूमिपर मस्तक रखकर माँको प्रणाम किया। बाबाको इस बातसे अतीव प्रसन्नता हो रही थी कि मेरी माँको अपने अन्तिम स्वरूपकी प्राप्ति इतने शीघ्र हो गयी। ज्यों ही बाबाने भूमिपर माथा टिकाकर प्रणाम किया, त्यों ही उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर वरद मुद्रामें आशीर्वाद दिया, उसने हाथ हिलाकर तीन बार आशीर्वाद दिया। बाबाने मन-ही-मन कहा – जा माँ, तू सुखसे रह।

इसके बाद वह अदृश्य हो गयी। वह फिर कभी बाबाको दिखलायी नहीं दी।

* * * * *

महाभाव की दीक्षा

रस-सिन्धुमें संतरणकी दृष्टिसे बाबाके जीवनकी चार घटनाएँ अति महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम है श्रीमञ्जुलीला भावकी दीक्षा, जो गुरुस्वरूपा श्रीरूपमञ्जरीजीने सन् १९३९ में प्रदान की। द्वितीय है श्रीमञ्जुश्यामा भावकी दीक्षा, जो प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णने सन् १९४३ में प्रदान की। तृतीय है गुप्त दैवी मन्त्रकी दीक्षा, जो भगवती श्रीमन्महात्रि- पुरसुन्दरीने सन् १९५१ में प्रदान की और चतुर्थ है श्रीराधाभावकी दीक्षा, जो स्वयं प्रियतम श्रीकृष्णने सन् १९५७ में प्रदान की। सन् १९५६ की शरदपूर्णिमाको बाबाने काष्ठ मौन लिया और वे गम्भीर रूपसे अन्तर्मुख हो

गये, जिसकी एक अति झीनी-सी छवि ऊपर प्रस्तुत की जा चुकी है।

रतनगढ़में सन् १९५७ के चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी बात है। अष्टमी तिथि जानेवाली है और नवमी तिथि आनेवाली है, इन दोनों तिथियोंकी उस सन्धि-वेलामें 'श्रीराधास्वरूप' की महाभावमयी दीक्षा सम्पन्न हुई। बाबा उस 'दिव्य लीला राज्य'में अपने किसी लोकोत्तर दिव्य स्वरूपमें स्थित थे, तभी इस महान सौभाग्यका अवतरण हुआ। बाबाने अपने 'जय जय प्रियतम' काव्यमें स्वयं इस तथ्यको स्वीकार किया है। 'जय जय प्रियतम' काव्यके प्रथम शतकके आरम्भमें प्रथम आठ-नौ छन्दोंमें बाबाने अपने 'भाव-स्वरूप' का परिचय देते हुए लिखा है –

हूँ वही, जिसे कहकर 'मेरे प्राणोंकी रानी' हे प्रियतम।
थे पकड़ लिये वे हाथ, लगी मिंहदी जिनमें थी, हे प्रियतम।।
पर भग्न हुआ-सा था गृह वह जिसमें रहती बाला प्रियतम।
थी तमसे परिपूरित रजनी, जब तुम आये थे हे प्रियतम।।
उस कच्चे घरमें रहकर भी निर्मल थी वह बाला प्रियतम।
था सका नहीं छू उसे एक कण बाहर से आया प्रियतम।।
थी छिपी शक्ति उसमें सहस्र पावक पुञ्जोंकी हे प्रियतम।
सामर्थ्य नहीं थी कहीं किसीमें, जो दूषित कर दे प्रियतम।।

इन पंक्तियोंमें बाबाने अपने दिव्य स्वरूप, अपने दिव्य शृंगार, अपनी दिव्य निर्मलता, अपनी दिव्य शक्तिकी ओर संकेत करते हुए स्पष्ट रूपसे उस परम पवित्र सम्बन्ध और परम प्रिय सम्बोधनका उल्लेख किया है, जब वह महान सौभाग्य चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी-नवमी-तिथिकी संधि-वेलामें अवतरित हुआ था।

एक बार माँके मनमें यह जिज्ञासा जाग्रत हुई कि बाबासे ही उसके वास्तविक स्वरूपके बारेमें प्रश्न किया जाय। एक दिन भिक्षा कराते समय माँने बाबासे पूछा – बताओ! तुम कौन हो?

काष्ठ मौनका व्रत होनेके कारण बाबा कुछ बता नहीं पाये। बाबाने तो माँसे केवल दृष्टि मिलानेकी छूट ले रखी थी। काष्ठ मौनका कठोर व्रत छः वर्षतक चला और इस अवधिमें तीन वर्षतक बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) से भी दृष्टि नहीं मिलायी। ज्यों ही माँने प्रश्न किया, भले बाबाने तत्काल बतलाया नहीं, पर उत्तर तो मनमें उभर ही आया। बाबाने उस

उत्तरको छन्द-बद्ध भी किया। भविष्यमें एक दिन बाबाने उस छन्दको सुनाकर उसका अर्थ बतलाते हुए कहा था — श्रीकृष्णका जो नील कलेवर है, वह मैं हूँ और मेरा जो गौर कलेवर है, वह वे श्रीकृष्ण हैं।

इसी छन्दमें एक पंक्ति आती है, उसका भाव यह है कि मैं श्रीकृष्णके हृदयका एक मधुर स्वप्न हूँ। इसका स्पष्टीकरण करते हुए बाबाने बतलाया था कि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके हृदयका मधुर स्वप्न श्रीराधा है, वह श्रीराधा मैं हूँ। इस पंक्तिका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि श्रीकृष्णका हृदय श्रीराधा है, उस श्रीराधाका मैं एक मधुर स्वप्न हूँ।

* * *

बाबाको जिस महाभावमयी स्थितिकी और जिन विभिन्न अनुभूतियोंकी उपलब्धि हुई, उसको दृष्टिमें रखते हुए उन्होंने अपनी अनोखी पाठशालाका और अनोखी पाठ-प्रक्रियाका वर्णन 'राधा-संदेश' में स्वयं किया है। बाबाका 'राधा-संदेश' शीर्षक हृदयस्पर्शी वर्णन 'चलौ री आज व्रजराज मुख निरखिये' पुस्तकमें प्रकाशित हो चुका है और यह गद्यात्मक वर्णन 'जय जय प्रियतम' काव्यके एकादश शतकका विस्तृत भावानुवाद है। क्रन्दन ही जिनका जीवन है और उस अनादि क्रन्दनका अन्त जिनके जीवनमें कभी आता ही नहीं, वे कृष्णवल्लभा श्रीराधा अपने प्रियतमके प्रिय दूत श्रीउद्धवजीसे कहती हैं —

सुनो! सीखोगे उस कलाको? देखो, मेरे उर-स्थलमें एक पाठशाला है। कब निर्माण हुआ इस पाठशालाका, जानती नहीं। पर मैं उसीमें न जाने कबसे पढ़ रही थी और आज भी उसमें ही पढ़ती हूँ। उस पाठशालाका नाम है — 'प्रेम-पाठशाला'। तो मैं उसीमें पढ़ रही थी, पढ़ रही हूँ उसका प्रथम पाठ है — वर्णमालाका उच्चारण करके उन वर्णोंको लिखना। देखो! पर तुम्हें मैं वर्णमालाका एक ही नाम बताऊँगी। सुनो, 'कृष्ण' — इस वर्णका उच्चारण करते-करते शेष सम्पूर्ण वर्णमालाका तुम्हें भान हो जायगा और फिर तुम उस वर्णमालाकी आकृतियोंको, उनके रंगोंको अपने हृत्तलपर अंकित करते जाना। मैं यही करती हूँ, यही करती थी।

देखो! उस कृष्णवर्णके अन्तरालमें अरुणाभवर्ण बीस नखमणियाँ

दीखेंगी। उनपर वृत्ति केन्द्रित होते ही फिर एक अभिनव नारंगवर्णकी छटा व्यक्त होगी – कहाँ, कैसे, तुम स्वयं समझ लोगे। इसके पश्चात् एक पीतवर्णके दर्शन होंगे। फिर इसके अनन्तर एक हरिद्वर्ण समुद्भासित होगा। लिखते-लिखते श्रान्त कभी मत होना। फिर व्योमवर्ण, नीलवर्ण और वृन्ताकवर्ण – ये सब-के-सब उदित होंगे। अविराम भावसे 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करते रहना और इन वर्णोंकी आकृतिका निर्माण करते रहना। किन्तु सावधान! खड़िया मिट्टीसे नहीं, इसके लिये तुम्हारे अन्तस्तलसे अश्रु की बूँदें निःसृत होंगी। काँचकी भाँति गोल-गोल बूँदें व्यक्त होती रहेंगी और तुम लिखते रहोगे उन वर्णोंको। अक्षरका ज्ञान इतनेमें ही तुम्हें हो जायगा। फिर समझ पाओगे, दिनकरकी रश्मियोंमें इन्हीं वर्णोंकी छायाकी छाया प्रतिभात हो रही है। जब तुम्हें अक्षरका बोध हो जायगा, तब जानते हो, दृश्य-प्रपञ्चकी सत्ता सर्वथा तुम्हारी आँखोंसे विलुप्त हो जायेगी। एक सत्य, एक ज्ञान, एक आनन्द – एकरस सम्पूर्ण सत्य, एकरस सम्पूर्ण ज्ञान, एकरस सम्पूर्ण आनन्दकी बात तुमने कभी सुनी होगी न? उसे तो तुम घलुएमें प्राप्त कर लोगे।

अब आगे सुनो – जिसे अक्षरका बोध हो जाता है, जो वर्णमाला सीख जाती है, वह फिर शब्दोंको लिखती है। जानते हो, एक तो षड्जका शब्द आयेगा, एक ऋषभका, एक गान्धारका, एक मध्यमका, एक पञ्चमका, एक धैवतका और एक निषादका, पर यह शब्द-नामावली उस शब्दकी छायाकी छाया है, भला! उन शब्दोंके लिये भी कोई नाम ही नहीं रे दूत! क्या बताऊँ? पर जैसे, जिस भाँति मैं समझी थी, पाठ पढ़ पायी थी, वैसे ही उसी भाँति तुम समझ सको, इसीलिये ही इतना-सा कह दे रही हूँ। कालके प्रवाहमें कब, कैसे कितना इस प्रक्रियाका आश्रय मैंने स्वयं लिया, जानती नहीं, दूत!

अब इसके अनन्तर संयुक्त वर्णोंका भान होगा तुम्हें। ये संयुक्त वर्ण बहुत ही सरस होते हैं, दूत! फिर आगे चलकर विधेय-उद्देश्यमयी उस भाव-पंक्तिका पाठ आरम्भ होगा, किन्तु उस पाठका अर्थ इतना गूढ़ रहता है, जिसे तुम जान ही नहीं सकोगे। अज्ञात रहेगा उस पाठका गूढ़ार्थ। इसके अनन्तर कुछ दिन प्रतीक्षा करते रहना।

इसके पश्चात् क्या होगा, तुम्हें बताऊँ? एक होती है महाभाव

विद्या, जो अबतक तुमने पढ़ी नहीं है दूत! वह विद्या कैसी होती है, तुम्हें बता दूँ? अच्छा, सुनो! उस विद्याके आविर्भावमें किसीको अबतक हेतुका अनुसन्धान प्राप्त नहीं हुआ है। बड़ा ही सूक्ष्म है वह। मलकी गन्धकी गन्ध नहीं है वहाँ – इतनी अमल है वह महाभावकी विद्या; और वह है प्रतिक्षण वर्धनशील। उसमें खण्डित होनेका कहीं भान नहीं होता। वह सर्वथा अखण्ड है। सीमाविहीन है वह। आजतक कोई भी उसका पार न पा सकी, न पा सका। और देखो! वाणी छू भी नहीं सकती उसे। सर्वथा सर्वांशमें वह स्वसंवेद्य है। बड़ी गम्भीर है वह, भला! उस महाविद्याका 'अथ', सो भी कहनेके लिये, इस विशुद्ध सत्त्वमयी धाराके बिन्दुपर ही अवलम्बित है। उसी 'अथ' को स्पर्श कर अब तुम अग्रसर होओगे।

इसके पश्चात् क्या है, इसे तो कोई भी नहीं कह सकती। और सत्य तो यह है कि जो आगे जाकर उसमें निमग्न हो गयी, वह कभी लौटती ही नहीं।

* * *

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'राधा-संदेश' से उद्धृत की गयी हैं। इन पंक्तियोंमें उस प्रेम-पाठशालाका, उसके पाठोंका, उसकी प्रक्रियाका और उसकी परमोच्चोपलब्धिका यह वर्णन अत्यधिक सांकेतिक और रहस्यपूर्ण है। इस वर्णनमें सात रंगोंके और सात स्वरोंके नामोंका उल्लेख है। कई बार पढ़नेके बाद जब तनिक-सा भी अर्थ-बोध नहीं हुआ तो एक बार बाबासे ही पूछा गया – बाबा! इन सात रंगोंके वर्णनके माध्यमसे क्या बात कही गयी है?

बाबाने बतलाया – उन वर्णोंके मिससे मैंने अपनी अनुभूतियोंका सांकेतिक वर्णन किया है। मेरे जीवनमें जो-जो जैसे-जैसे घटित हुआ है, उसीको वहाँ बतलाया गया है, पर वह कहा गया है बहुत ढककर। मेरे जीवनमें वही हुआ है, जिसका वर्णन वैष्णव शास्त्रोंमें आया है, पर उन शास्त्रोंमें जिन क्रमिक स्तरोंका वर्णन हुआ है और रस-मर्मज्ञों द्वारा उन्नयनके जो सोपान बतलाये गये हैं, वैसा मेरे जीवनमें नहीं है। भगवत्कृपाके फलस्वरूप प्रारम्भमें ही सर्वोच्च स्थितिपर मेरी प्रतिष्ठा कर दी गयी। उस अति महान स्तरपर प्रतिष्ठित हो जानेमें, सत्य-सत्य एक मात्र भगवत्कृपा ही मुख्य हेतु है, पर उस वर्ण-वर्णनमें वही है, जो मेरे अनुभवकी वस्तु है। यह बात अब अलग है कि मेरे जीवनमें उन

भिन्न-भिन्न सोपानोंका, उन भिन्न-भिन्न स्तरोंका प्रकाश बादमें भिन्न-भिन्न कालमें होता रहा। श्रीकृष्ण-प्रेमके विकासमें स्नेह-मान-प्रणय-राग-अनुराग-भाव-महाभावका वर्णन शास्त्रोंमें आया है। इसीको यहाँ विभिन्न रंगोंके माध्यमसे व्यक्त किया गया है। सूर्यकी शुभ्र किरणमें सात रंग होते हैं, जिनको इन्द्रधनुषमें अथवा पानीके बुलबुलेमें अथवा सप्तकोणीय कँाच (PRISM) में देखा जा सकता है। ये सातों रंग एक दिनकर-रश्मिमें पर्यवसित होकर शुभ्र वर्ण धारण कर लेते हैं और परम उज्ज्वल प्रकाशका विस्तार करते हैं, जिससे सम्पूर्ण जगत आलोकित हो उठता है। सूर्य-तनया-कूल-विहारिणी एवं सूर्योपासिका श्रीराधा भी महा दिव्य भावराज्यकी एक महान रश्मि है, जो अपनी अद्वितीय अलौकिक महिमासे नित्य परिमण्डित रहती है, जो सातों भावोंकी पुञ्जिका-प्रतिष्ठा-प्रतिष्ठापिका-पोषिका है, जो सप्त-भाव-समूहमें अन्तिम सर्वश्रेष्ठ स्तर महाभावकी साकार प्रतिमा है और जिसका सम्पूर्ण अस्तित्व मलिनतासे सर्वथा शून्य सम्पूर्ण उज्ज्वलताका मूर्तिमान स्वरूप है। एक बात और, उन सात रंगोंसे इन सात भावोंकी तुलना तो की गयी है, पर यह तुलना भी अयुक्त है। हमारे प्राकृत जगतके सूर्यकी रश्मिमें जो सात रंग हैं, वे इतने अलग-अलग हैं कि एक रंगमें दूसरा रंग होता ही नहीं, पर उस दिव्य भावराज्यमें जो सातों भाव हैं, वे सारे भाव सदा एक दूसरेमें समाये रहते हैं। जो श्रीकृष्णके नामको अपने अश्रुजलसे भिगो-भिगोकर जप करता है, वही उस भावराज्यकी ओर अग्रसर हो पाता है। जप करनेसे उस त्रिकालातीत-त्रिगुणातीत-अविनाशी-अक्षर परमसत्यका बोध हो जाता है और श्रीप्रिया-प्रियतमकी बीस नख-मणियोंके शुभ दर्शनका सौभाग्य मिलता है। ब्रह्मज्ञानीको कठिन साधनाके उपरान्त जिस घनानन्द परमानन्दकी प्राप्ति होती है, वह परमानन्द तो उसे अनायास अनुभूत होने लगता है। फिर वह अनुक्षण सप्त स्वरोंपर गायन करता रहता है सप्त-भावोंसे प्रसूता एवं पोषिता रसमयी लीलाओंको और सर्वान्तमें होता है महाभाव सागरमें निमज्जन। यही इस प्रेम-पाठशालाकी सर्वोच्च महाविद्या है। जो महाभावसागरमें डूब गया, वह फिर लौटकर जगतमें नहीं आता। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्ध (११-१६-३७) में श्रीउद्धवजीसे भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जहाँ न सतोगुण है, न रजोगुण है और न तमोगुण है, वह निर्गुण अर्थात् महासत्त्व मैं हूँ। इस महासत्त्वकी स्थिति मानव

शरीरमें सर्वथा दुर्लभ है। अब इस अनोखी प्रीतिकी बलिहारी है कि जिसमें बहकर भगवान श्रीकृष्णने अपने नियममें परिवर्तन कर दिया और महासत्त्वकी स्थितिमें मुझे प्रतिष्ठित कर दिया। उनकी उस अचिन्त्य-अमाप्य प्रीतिको देखकर मेरे मुँहसे एक दोहा प्रस्फुटित हो पड़ा –

नियम हुतौ गुन देह में महाभाव नहि होन।
मेरे सुख हित साँवरो सोऊ कीनौ गौन।।

महाभावकी स्थितिका वर्णन मात्र वैष्णव ग्रन्थोंमें मिलता है। निर्गुण-निराकारवादी तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। इसीको श्रीपोद्दार महाराजने 'ज्ञानोत्तरभावराज्य' कहा है। वर्ण-वर्णनका तात्पर्य यही है कि भावपूर्ण श्रीकृष्णनामका जप करने तथा सच्ची श्रीकृष्णरति उत्पन्न होनेके बाद ही भाव-साधनाकी यात्राका शुभारम्भ होता है और इस 'भाव-यात्रा' का अन्तिम बिन्दु है महाभाव-निमज्जन।

बाबाने उस प्रेम-पाठशालाकी पाठ-प्रक्रियाका जो स्पष्टीकरण बतलाया, उसीका सारांश उपर्युक्त पंक्तियोंमें वर्णित है।

* * *

बाबाके रसावगाहनका शुभारम्भ स्वाधीनभर्तृका-भावसे हुआ। प्रियतम कान्त जिस नायिकाके अधीन होकर सर्वदा निकट वास करते हैं, उसे स्वाधीनभर्तृका नायिका कहते हैं। श्रीविशाखाजी स्वाधीनभर्तृका भावकी मूर्तिमान स्वरूप हैं और श्रीविशाखा-भावसे ही बाबाका रस-राज्यमें प्रवेश हुआ। श्रीराधाजी ही श्रीविशाखा हैं। श्रीराधाजीको अपने 'राधा-स्वरूप' की सर्वथा विस्मृति हो जाती है और वे स्वयंको पूर्ण रूपसे श्रीविशाखा मानने लगती हैं। भावकी प्रबलताके कारण वे ऐसा सोचने-समझने लगती हैं कि मैं वृषभानुनन्दिनी राधा नहीं, अपितु विशाखा हूँ। वस्तुतः वे हृदयसे ऐसा ही अनुभव करने लगती हैं। विशाखा-भाव जब और गहरा होता है तो वे स्वयंको मधुमती मानने लगती हैं। भावकी और अधिक गहराई होनेसे वे स्वयंको चन्दन मञ्जरी मानने लगती हैं। ज्यों-ज्यों भाव सघन होता चला जाता है, त्यों-त्यों वे चन्दन मञ्जरीसे स्वयंको शशिरेखा मञ्जरी, फिर शशिरेखासे स्वयंको हारहीरा मञ्जरी मानने लगती हैं। भावके आवर्त ज्यों-ज्यों सघन होते चले जाते हैं, त्यों-त्यों ऐसी परिणति उत्तरोत्तर होती चली जाती है।

उत्तरोत्तर उत्कर्षको प्राप्त होते हुए स्वाधीनभर्तृका-भावकी ये छः उर्मियाँ इसी प्रकारसे बाबाके अनुभवमें आयीं। लीलाराज्यमें बाबाकी यह भी अनुभूति है कि कृष्णवल्लभा श्रीराधाकी घन-घन केशराशिकी स्निग्धता ही श्रीविशाखा सखीके रूपमें मूर्तिमान होकर युगलकी निकुञ्ज सेवामें संलग्न रहती है। श्रीविशाखाजी स्वयं श्रीराधा हैं और श्रीराधाजीकी केश-स्निग्धताका मूर्तिमान स्वरूप भी हैं। ये अंशी भी हैं और अंश भी हैं। उस दिव्य लीलाराज्यमें अंशी-अंशका भेद नहीं रहता। अंश भी अंशीके समान पूर्ण है। इसी प्रकार रसिक युगलकी रसमयी सेवामें सतत संलग्न सभी सखियाँ-मञ्जरियाँ विभिन्न रूपोंमें निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा ही हैं और उन्हीं श्रीराधाजीके किसी अंग अथवा आभूषण आदिका मूर्तिमान स्वरूप हैं। नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा महाभाव स्वरूपा हैं और यह महाभाव सिन्धु निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णको सुख प्रदान करनेके लिये नित्य लहराता रहता है। इस नित्योच्छलित महाभाव सिन्धुमें ऊँची-नीची छोटी-बड़ी विविध भाव-तरंगें सदा उठती रहती हैं, किन्तु आठ दिशाओंसे उठनेवाली अष्ट-भाव-तरंगें प्रधान हैं और इन अष्ट तरंगोंमेंसे एक है स्वाधीनभर्तृका-भाववाली तरंग, जिसका उच्छलन-विलास ईशान दिशामें होता है। स्वाधीनभर्तृका-भावकी उत्तरोत्तर उत्कर्षोन्मुखी उर्मियाँ (इनका स्वरूप, इनकी संज्ञा, इनके प्रतीक) तथा विशाखा कुञ्जकी स्थिति, इस कुञ्जकी वनस्पति, इस कुञ्जकी केलि आदिका स्वरूप, ये सब बाबाके निजी लीलाराज्यके अन्तरंग तथ्य हैं।

इसी प्रकार उस महाभाव सिन्धुकी उत्तर दिशामें जब खण्डिता-भावकी उर्मि लहराने लगती है, तब श्रीराधा ही श्रीललिताके रूपमें मूर्तिमान हो उठती हैं। बाबाकी दिव्यानुभूतिके अनुसार श्रीराधाके अरुणाधरोंकी लालिमा ही श्रीललिता सखीके रूपमें मूर्तिमान होकर युगल-सेवामें सतत संलग्न रहती है। खण्डिता-भावकी भी उत्तरोत्तर अधिक सुख-विधायक षट उर्मियाँ महाभाव सिन्धुमें लहराती हैं और उनकी संज्ञाएँ हैं ललिता, मञ्जुश्यामा, रूपमञ्जरी, लवंगमञ्जरी, मोदिनी मञ्जरी, और माधवी मञ्जरी।

स्वाधीनभर्तृका-भाव और खण्डिता-भावके समान दिवाभिसारिका-भाव, प्रोषितभर्तृका-भाव, वासकसज्जा-भाव, उत्कण्ठिता-भाव, विप्रलब्धा-भाव और कलहान्तरिता-भावकी दिव्य तरंगें उस महाभाव सिन्धुमें क्रमशः पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम और वायव्य दिशाओंकी ओर लहराती हैं और इन

भाव-तरंगोंकी क्रमशः मूर्तिमान स्वरूप हैं श्रीचित्राजी, श्रीइन्दुलेखाजी, श्रीचम्पकलताजी, श्रीरंगदेवीजी, श्रीतुंगविद्याजी और श्रीसुदेवीजी। इन सभी भावोंकी उत्तरोत्तर सघन षट ऊर्मियाँ अपनी-अपनी दिशाओंमें लहराती हैं और प्रत्येक भावकी षट ऊर्मियोंकी अलग-अलग संज्ञाएँ हैं। इन ८ भावोंकी ६-६ ऊर्मियाँ, इस प्रकार कुल ४८ ऊर्मियाँ और एक सामान्य ऊर्मि, कुल ४९ ऊर्मियोंका विवेचन स्वयंमें एक विशद विषय है। यहाँ तो उन सबकी एक झलक मात्र प्रस्तुत की गयी है, परंतु इतना सत्य है कि लीलाराज्यके ये तथ्य बाबाकी निजी उपलब्धि हैं और काष्ठ मौनकी अवधिकी महान देन हैं।

* * *

इस भावानुभूतिमें एक स्थानपर बाबाका पूर्वाचार्योंसे किंचित् मतभेद है। रस-ग्रन्थोंमें ऐसा बतलाया गया है कि उत्कण्ठिता नायिका वह कहलाती है, जो निरपराधी प्रियतमके नहीं आनेपर प्रियतमसे मिलनेके लिये अत्यधिक उत्कण्ठित हो जाती है और विप्रलब्धा नायिका वह कहलाती है, जो संकेत प्रदान करनेवाले प्रियतमके दैवात् नहीं आनेपर आन्तरिक व्यथासे संतप्त हो उठती है। उत्कण्ठिता नायिका और विप्रलब्धा नायिका, दोनों ही प्रियतमकी प्रतीक्षा करती हैं और प्रतीक्षारत होनेके कारण ये दोनों नायिकाएँ अश्रुमोचन करती हैं, चिन्ता करती हैं, नाना प्रकारके तर्क-वितर्क करती हैं, परंतु उत्कण्ठिता नायिकाकी प्रतीक्षामें मिलनकी आशा पूर्णरूपेण है और विप्रलब्धा नायिकाकी प्रतीक्षामें मिलनकी आशा अस्तोन्मुखी है। विप्रलब्धा नायिकामें प्रियतमसे मिलनेकी आशा समाप्तिके बिन्दुपर होती है, अतः उसका हृदय निर्वेद, खेद आदिसे परिपूर्ण रहता है और खिन्नताकी अधिकतामें मूर्च्छा भी आ जाती है। रस-ग्रन्थोंमें श्रीरंगदेवीजीको उत्कण्ठिता-भावका मूर्तिमान स्वरूप माना गया है, परंतु काष्ठ मौनकी अवधिमें बाबाकी लीलानुभूति इससे भिन्न है। उत्कण्ठिता नायिका और विप्रलब्धा नायिकाकी भावदशाका जो सम्मिलन-बिन्दु हो सकता है, उस भाव-बिन्दुका मूर्तिमान स्वरूप श्रीरंगदेवीजी हैं। जिस प्रतीक्षामें पूर्ण आशा और पूर्ण निराशाके युगल बिन्दु एक दूसरेका स्पर्श कर रहे हों, ऐसी अद्‌भुत भाव-दशाका मूर्तिमान स्वरूप श्रीरंगदेवीजी हैं। यही कारण है कि श्रीरंगदेवीजीके कुञ्जकी लताओं-पौधों (मालती-जूही) आदिके पत्ते अत्यधिक चञ्चल हैं। अपने निजी लीलाराज्यके इस अद्‌भुत सत्यके सम्बन्धमें

बाबा सदा कहते रहते थे कि यह एक बड़ी विचित्र भावदशा है और वैसी विचित्रताके कारण उस भावदशाका मैं कोई नवीन नामकरण नहीं कर पाया। बाबाको कोई ऐसा उपयुक्त शब्द नहीं मिल पाया, जिसका प्रयोग उस भाव-दशाकी संज्ञाके रूपमें कर सकें। बाबाने यह भी बतलाया कि ऐसी विचित्र भावदशाके कारण कई आचार्योंने श्रीरंगदेवीजीको प्रधान सखीके रूपमें स्वीकार किया है। महावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवजीने श्रीरंगदेवीजीको ही सर्वप्रथम स्मरण-वन्दन किया है।

* * * * *

त्रि-मासीय रविवार

बाबाके लिये भाद्रमास एक अनोखा भावोद्वेलन लिये हुए प्रत्येक वर्ष ही आता रहा है। वर्षका प्रत्येक मास किसी-न-किसी भगवल्लीलासे सम्बन्धित होनेके कारण उद्दीपनका कार्य करता है, पर भाद्रमास तो बाबाकी भावनाओंको विशेष प्रकारसे उद्दीप्त कर देता था। बाबाका भावराज्य और भावराज्यकी मधुर लीलाएँ वस्तुतः अद्‌भुत हैं। कृष्ण पक्षमें श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव तथा शुक्ल पक्षमें श्रीराधा-जन्मोत्सवके कारण भाद्रमासका विशेष महत्त्व है। कृष्ण पक्षमें श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव नंदगाँवमें मनाया जाता है, पर श्रीनंदरायजी नहीं मनाते। बरसानेसे श्रीवृषभानुजी अपने समस्त स्वजनोंके साथ पक्षके आरम्भमें ही नंदगाँव पधारते हैं तथा अकल्पनीय उत्साहके साथ सम्पूर्ण पक्ष श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवका आयोजन और संचालन करते हैं। इसी प्रकार शुक्ल पक्षके आरम्भमें श्रीनंदरायजी सकल परिवार-परिजन-परिकर-सहित बरसाने पधारते हैं और श्रीराधा-जन्मोत्सव सम्पूर्ण पक्ष अचिन्त्य उमंगके साथ मनाते हैं। प्रीतिकी रीति विचित्र है, तभी तो नंदगाँवमें और बरसानेमें, श्रीनंदरायजीमें और श्रीवृषभानुजीमें, परस्परमें एक-दूसरेको सुख-दानकी भावना और क्रियामें होड़-सी लगी रहती है।

सं. २०१४ वि. (अर्थात् सन् १९५७) की बात है। बाबूजी और बाबा रतनगढ़ नगरमें थे और रतनगढ़में ही श्रीराधाष्टमी-महोत्सव मनाया गया था। सं. २०१४ वि. की यह श्रीराधाष्टमी १ सितम्बर १९५७ रविवारको पड़ी थी। हम साधारण जीवोंका रविवार तो रविवारीय सूर्योदयसे

आरम्भ होकर अगले सूर्योदयके साथ-साथ समाप्त हो गया, पर बाबाके लिये तो यह 'रविवार' तीन मासतक बना रहा। हम लोगोंका रविवारीय सूर्योदय सोमवारीय सूर्योदयमें परिणत हो गया, पर बाबाके उस 'रविवारीय सूर्योदय' का तीन मासतक सूर्यास्त आया ही नहीं। लौकिक दृष्टिसे बाबा इस लोकमें ही रहे और उनके शरीरके कार्य यन्त्रवत् होते रहे, पर वे इस शरीरमें थे ही नहीं। वे तो वस्तुतः तीन मासतक श्रीराधा-जन्मोत्सवकी दिव्य लीलामें लहराते रहे। श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने लिखा है कि भगवान श्रीरामचन्द्रजीके प्राकट्यके समय 'मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ', पर यहाँ तो तीन मासका एक दिवस हो गया।

बाबा तीन मासतक उस श्रीराधाजन्मोत्सवको देखते रहे, जो दिव्य लीला राज्यमें मात्र एक दिन रविवारको मनाया गया। भाद्र शुक्ल अष्टमीका आगमन होते ही प्रियतम श्रीकृष्णने बाबासे कहा – "प्रियतमे राधे! देखो तो सही! आज वृषभानुपुरमें तुम्हारा वार्षिक शुभ जन्मोत्सव हो रहा है। अहा, क्या ही रम्य मनोहर दृश्य है।"

और प्रियतम श्रीकृष्णके साथ बाबा जन्मोत्सव देख रहे हैं। यह भी कैसी विचित्र बात है कि स्वयंका उत्सव और स्वयंके द्वारा दर्शन, एक वपुसे दृश्य और एक वपुसे द्रष्टा। जब रविवारको रतनगढ़की हवेलीमें उत्सव मनाया जा रहा था, तब बाबूजी बाबाको उत्सवमें लिवा लाये थे और बाबा उत्सवमें बैठे हुए थे, पर क्या वे यहाँ थे? भले वे शरीरसे उत्सवके मध्य विराजित थे, पर वे वस्तुतः थे अपने प्रियतमके साथ उस दिव्य लीला राज्यमें एक दर्शकके रूपमें। दिन-पर-दिन बीतते चले जा रहे थे, पर पता नहीं कि कब सूरज और चन्दा आये और गये। तीन मासतक बाबाको बाह्य सुधि बहुत कम रही। शौच-स्नान-भिक्षा आदिके कार्य यन्त्रवत् सम्पन्न होते रहते। बाबाने जो जन्मोत्सव देखा, वह 'किशोरीका स्वप्न विलास'में वर्णित है और यह वर्णन 'चलौ री आज ब्रजराज मुख निरखिये'* में प्रकाशित हो चुका है।

* * * * *

---

*'चलौ री आज ब्रजराज मुख निरखिये' पुस्तक 'श्रीराधामाधव सेवा संस्थान' पो. गीतावाटिका, जि. गोरखपुर पिन २७३००६ से प्रकाशित है।

रसोपासना-मन्त्रों की दिव्योपलब्धि

यह पहले बतलाया जा चुका है कि सन् १९५७ की श्रीराधाष्टमी रविवारको थी। भाद्र शुक्ल अष्टमीका यह रविवार बाबाके भाव-राज्यमें तीन मासकी अवधिवाला हो गया। इस त्रि-मासीय रविवारकी अवधिकी एक लीला सर्वथा अनोखी है। इस लीलाके माध्यमसे बाबाको रसोपासनाके दिव्य मन्त्रोंकी उपलब्धि हुई।

इस दिव्योपलब्धिका सांकेतिक विवरण बाबाने श्रीमहाराजजीको सुनाया था। यह पारस्परिक रसमयी चर्चा १० अक्टूबर १९७६ को हुई थी और यह रस-चर्चा एक-डेढ़ घण्टेतक चलती रही। इस रसमयी चर्चाका एक संक्षिप्त अंश ज्यों-का-त्यों आगे दिया जा रहा है –

रससे संसिक्त हो जानेके मार्गमें जो अवरोध आता है, उसकी ओर संकेत करते हुए बाबाने श्रीमहाराजजीसे कहा – उस रसराज श्रीकृष्णमें एक बड़ा ऐब है। उसे कृत्रिमता पसन्द नहीं तथा उसे दूजा पसन्द नहीं। श्रीकृष्ण तो व्याकुल हैं किसीको भी रसमें डुबा देनेके लिये, पर डुबायेंगे उसे, जिसमें कृत्रिमता नहीं। जिनमें कृत्रिमता है अथवा कृत्रिमताकी कणिकाके प्रति किञ्चित् भी आकर्षण है अथवा जिनके जीवनमें श्रीप्रिया-प्रियतमसे अलग किसी अन्य वस्तु या व्यक्तिके लिये कुछ या अधिक स्थान है, वे इसमें डूब नहीं पाते, अन्यथा यह भाव-सागर तो परम सुलभ है, सर्व-गम्य है।

कुछ रुककर फिर बाबाने कहा – किसी प्रकार तुम सागरके तटपर तो आ जावो। एक-न-एक दिन उस सागरकी लहरें तुमको बहा ले जायेंगी। तीर्थ-यात्रामें हमलोग वेदारण्यम् नामक स्थानपर गये थे। समुद्र-तटपर यह एक नगर है। वहाँके लोगोंने बताया कि तीन-चार मास पहले तीन भीषण लहरें आयीं। पहले तो दिनभर पानी बरसता रहा। फिर एक ऐसी लहर आयी जो रेलवे-स्टेशनकी छतसे भी ऊपर थी। नगरके तथा आस-पासके क्षेत्रोंके लोगोंको और पशुओंको बहा ले गयी। दूसरी लहर आयी, जो पहलेसे भी ऊँची थी, उसने और भी विध्वंस किया। तीसरी लहर दूसरी लहरसे भी ऊँची थी, बड़ी विशाल थी, उसने बड़े-बड़े पेड़ोंको भी उखाड़ दिया, छोटे-मोटे पेड़ोंकी तो बात ही क्या? चारों ओर था विध्वंस-ही-विध्वंस, हर ओर था विनाशके ताण्डवका नृत्य। बहुत दिनोंतक

जल बना रहा। यातायात बन्द रहा। इसको सुनकर मेरे मनमें आया कि प्रकृतिके राज्यमें जब ऐसी लहर आ सकती है, जो सब कुछ बहा ले जाय, तब एक दिन महाभाव-सागरकी कोई ऐसी विशाल लहर भी आयेगी, जो तटपर स्थित व्यक्तिको बहा ले जायेगी और उसे सागरमें डुबा देगी, परन्तु इतनी अपेक्षा तो है ही कि सागरके तटपर आ जावो, सागरके तटपर खड़े रहो।

अपना उदाहरण देते हुए बाबा कहने लगे – मैं तो पहले 'शिवोऽहम्', 'शिवोऽहम्' कहता था। इसका कट्टर अनुयायी था, पर परिवर्तन हुआ तो एक क्षणमें सारा बदल गया।

इसपर बड़ा रसमय और बड़ा भावमय विनोद करते हुए श्रीमहाराजजीने कहा – अब तो है 'साहम्', 'साहम्'।

इस विनोदपर बाबा रीझ गये, बह गये तथा वे कहने लगे – इसकी एक लीला है। अभी-अभी आपने जो कहा, उसी भाव-धारासे सम्बन्धित है। इस लीलामें श्रीराधा एवं श्रीकृष्णकी भावाभिव्यक्ति है। श्रीराधाजी कहती हैं 'श्रीकृष्णोऽहम्', 'सोऽहम्' तथा श्रीकृष्ण कहते हैं 'राधाहम्', 'साहम्'। प्रियतम श्रीकृष्ण प्राणेश्वरी श्रीराधाका रसमन्त्रोपचारोंसे सरस पूजन करनेके पूर्व उनके चिन्मय स्वरूपका स्मरण करते हुए कहते हैं –

अलक-दृगञ्चल-ललितं, रंग-तरंग-सलिलितम्।
संविद्-गगन-समुदितं, भज मुख-विधुमकलुषितम्।।

इसी प्रकार प्रियतमा श्रीराधा प्राणवल्लभ श्रीकृष्णका रस-मन्त्रोपचारसे सरस पूजन करनेके पूर्व उनके चिन्मय स्वरूपका स्मरण करके कहती हैं –

नील-सरोरुह-वरणं, नियुत-रमामति-हरणम्।
स्मर-विरहोदधि-तरणं, मुखमर्बुद-रति-शरणम्।।

पारस्परिक रस पूजनका परिणाम यह होता है कि पारस्परिक स्वरूपका परिवर्तन हो जाता है और श्रीराधाजी कहती है 'श्रीकृष्णोऽहम्' 'श्रीकृष्णोऽहम्' तथा श्रीकृष्ण कहते है 'राधाऽहम्' 'राधाऽहम्'। इस रस-पूजनके रस-मन्त्रोंकी उपलब्धि मुझे किसी अचिन्त्य एवं अलौकिक विधिसे हुई है, जिसे अव्यक्त रहने देनेमें ही मंगल है।

श्रीमहाराजजीने तो 'साहम्' कहकर मात्र भावपूर्ण विनोद किया था, परन्तु इस विनोदके निमित्तसे एक महान तथ्य प्रकाशित हो उठा। इस वर्णनको सुनकर महाराजजीका अन्तर आह्लादसे आप्लावित हो उठा।

प्रियतम से प्रेम-कलह

एक बार बाबाका प्रियतमसे प्रेम-कलह भी हुआ। यह प्रेम-कलह हुआ पूतना और कैकेयीको लेकर। पूतना और कैकेयी, दोनों सगी माँ नहीं थीं, एक ने मातृत्वका स्वांग रचा था और एक परिस्थितिसे सौतेली माँ थी, पर दोनों हैं मातृ-स्थानीया। आँचलको और आँचलके दूधको, चाहे वह आँचल किसीका भी हो और चाहे वह दूध कैसा भी हो, उसको सदा-सदा प्रणाम करनेवाले बाबाने प्रियतम श्रीकृष्णको उपालम्भ दिया – यह तुमने कौन-सा उत्तम कार्य किया कि जो माँ बनकर आयी थी, उस पूतनाके प्राण ले लिये? मान लिया कि वह कपट-माँ थी और उसने मातृत्वका स्वांग रचा था, पर इतना तो सत्य ही है कि उसने मातृ-भावसे भावित होकर तुम्हारे मुखमें स्तन दिया था, फिर उस माँका प्राणहरण कर लेना क्या श्रेष्ठ कार्य है?

प्रियतम श्रीकृष्णने पूछा – मुझे क्या करना उचित था?

बाबाने कहा – ज्यों ही पूतनाने शिशुको गोदमें लिया, शिशुके स्पर्श मात्रसे उसमें दिव्य भावका संचार हो जाना चाहिये था। स्पर्श मात्रसे वह उन्मादिनी बन जाती और उन्मादिनी पूतनाको स्तन-पान करानेकी स्मृति ही नहीं रहती। वह आजीवन उन्मादिनी ही रहती और मधुपुरीमें कंसके पास यही समाचार पहुँचता कि जो पूतना बाल-हत्याके लिये गयी थी, वह तो उन्मादिनी हो गयी है। यह तो तुम्हारे स्पर्शका प्रभाव होना ही चाहिये था।

प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – प्राणेश्वरी! किसी कल्पमें ऐसी लीला भी हो जायेगी।

फिर बाबाने कैकेयीके बारेमें कहा – माँ कैकेयीने तो तुमको अपने पुत्र भरतसे भी अधिक प्यार किया। कैकेयीका रामके प्रति वात्सल्य विश्वविख्यात है। कैकेयीके रामानुरागको देखकर माँ कौशल्या भी विस्मित होती थी और कैकेयीके कारण रामकी ओरसे निश्चिन्त थी। जो माँ कैकेयी ऐसी महावात्सल्यमयी थी, उस उत्सर्गमूर्तिके मुखपर ऐसी कालिख लगा दी कि जन्म-जन्मके लिये, युग-युगके लिये वह कलंकित हो गयी। वह किसीको मुख दिखलाने लायक नहीं रही। विश्वकी आँखोंसे वह सदाके लिये ऐसी गिर गयी कि कोई भी अपनी बेटीका नाम कैकेयी

नहीं रखेगा। जिसने तुमको अपने प्राणोंका निर्मलतम प्यार दिया, उसीको मलिनताकी मूर्ति और कालुष्यकी कोठरीके रूपमें अपकीर्तित करवा दिया। यह क्या अनुमोदनीय है?

इसपर प्रियतम श्रीकृष्ण बोले – सारा संसार यशके लिये मरता है, पर माँ कैकेयीकी बात तो सर्वथा निरुपम है। माँ कैकेयीका वात्सल्य इतना महान है कि अपने वात्सल्यास्पदके मनकी बातको रखनेके लिये उसने अपने यशकी भी बलि चढ़ा दी। संसार उसकी सराहना करता, तभी वह महान होती क्या? संसारके साधारण प्राणी भले उसे न जान पायें और जानकर भी भले उसे न समझ पायें, पर वह तो स्वतः ही स्वयंकी महिमासे सदाके लिये महिमान्वित है। अपने प्रियका प्रिय कार्य करनेके लिये अपने यशका ईमानदारी पूर्वक पूर्ण त्याग किस प्रकार किया जा सकता है, इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माँ कैकेयी है। माँ कैकेयीके उत्सर्गकी यह गरिमा सर्वथा अनिर्वचनीय, सर्वथा कल्पनातीत है।

प्रियतम श्रीकृष्णकी बातको सुनकर बाबाको चुप हो जाना पड़ा। बाबाने मनसे स्वीकार कर लिया कि प्रियतम श्रीकृष्ण उचित कह रहे हैं।

* * *

इसी काष्ठ मौनकी अवधिमें कीर-लीलाके दर्शन हुए। कीर-लीलामें अन्तरके अनवरत आँसुओंकी आह है। उधर प्रियतम श्रीकृष्ण मथुरासे द्वारका चले गये और इधर व्रजमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा अत्यधिक विरह व्यथिता हैं। श्रीप्रियाकी विरह-व्यथा द्वारका स्थित प्रियतम श्रीकृष्णके हृदयमें प्रतिध्वनित हो उठती है और वे अपना प्रीति-संदेश निजी कीरके द्वारा व्रज भेजते हैं। कीरके अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई भी ऐसा नहीं, जो मर्मकी बात वहाँतक पहुँचा दे। कीरके लिये अपने जीवनेश्वरका वियोग एक क्षणके लिये भी सम्भव नहीं। क्या व्रज, क्या मथुरा और क्या द्वारका, वह सदैव साथ-साथ रहा है, पर अब अपने जीवनसर्वस्वकी आज्ञाका अनादर भी तो सम्भव नहीं। अपने जीवनधनसे वियुक्त होते ही वह अपने स्थूल शरीरका परित्याग कर देता है और अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सूक्ष्म शरीरसे व्रज आता है। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा अपने प्राणप्रियतमके नित्य सेवक-सहचर कीरको पहचान लेती हैं

और उसके सूक्ष्म शरीरके रहस्यको जानकर अत्यधिक व्यथित हो उठती हैं।

'राधा संदेश' और 'चातक संदेश'की भाँति बाबा जब 'कीर संदेश' लिखनेकी बात अपने मनमें सोचने लगे तो प्राणप्रियतम श्रीकृष्णने थोड़ा अंकुश लगा दिया, इसीलिये कि उन गम्भीर एवं अन्तरंग भावोंकी निर्मलताको ये जागतिक लोग हृदयंगम नहीं कर पायेंगे। इस संकेतके अनुसार कीर लीलाके अनेक प्रसंग संक्षिप्त कर दिये गये।

* * * * *

लोकोत्तर भावपूर्ण प्रसंग

सन् १९५८ के अप्रैल मासमें बाबूजीको पूज्य श्रीसेठजीके आग्रहपर रतनगढ़से गोरखपुर आ जाना पड़ा। इन दिनों बाबाकी अन्तर्मुखता अपनी पराकाष्ठापर थी। बाबाके एकान्तमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित न हो, एतदर्थ बाबूजीने बाबाकी कुटियाके चारों ओर ईंटकी दीवालका एक घेरा बनवा दिया। यह घेरा भूमिसे लगभग सात फीट ऊँचा होना चाहिये। इस बाड़ेके बन जानेसे व्यवधानकी सम्भावना अत्यधिक न्यून हो गयी। बाबाकी जैसी भावमयी स्थिति चल रही थी, उसको देखते हुए बाड़ेका निर्माण आवश्यक था। केवल भगतजी और रामसनेहीजी बाड़ेके भीतर जाते थे, पर वे जाते थे समय-समयकी सेवाको सम्पन्न करनेके लिये। बाड़ेके भीतर बाबूजी, माँजी तथा बाईके अतिरिक्त अन्य कोई जा ही नहीं सकता था। केवल वही जा सकता था, जिसे बाबूजी अपने साथ लेकर जायें बाबाका दर्शन करानेके लिये। बाई दोपहरके समय जल पिलाने जाया करती थी और सूर्यास्तके समय माँ भिक्षा कराने जाया करती थीं। बाबूजी भी बाबाके पास जाया करते थे, परंतु बाबूजी बाबाकी ही रुचिका आदर किया करते थे। बाबूजीके द्वारा यह प्रयास कभी नहीं हुआ कि बाबा मुझसे बात करें। बाबा शौच जानेके लिये बाड़ेसे बाहर निकलते थे, पर उनकी दृष्टि भूमिपर लगी रहती थी। बाबाके बाड़ेके पास ही श्रीमोतीजी महाराजकी एक कुटिया थी और कुटियाके सामने एक टिन-शेड था। इस छोटेसे टिन-शेडमें अनेक लोग बैठे रहते थे इस प्रतीक्षामें कि कब बाबा शौचालयके लिये बाड़ेसे बाहर निकलें और कब उनका पावन दर्शन मिले। प्रतीक्षामें खड़े लोगोंकी ओर बाबाकी दृष्टि जाती ही नहीं थी। बाबा कुटियाके बाड़ेसे बाहर

निकलकर सीधे शौचालय चले जाते थे। उन्हें भला क्या पता कि कितने लोग खड़े हैं, वे कौन-कौन हैं और क्यों खड़े हैं।

उन अन्तरंग लीलाओंका जो दर्शन कर रहा हो और उन लीलाओंमें जो सम्मिलित हो, उसे अवकाश कहाँ है इस प्रापञ्चिक धरातलकी ओर दृष्टि उठानेके लिये। निकुञ्जकी अन्तरंग लीलाओंमें मात्र श्रीप्रिया-प्रियतम हैं और वहाँ हैं रसिक युगलकी सतत सेवामें संलग्न सखियाँ-मञ्जरियाँ। कुञ्ज-निकुञ्जकी दिव्य लीला और सखियों-मञ्जरियोंकी दिव्य संनिधिकी सरसतामें सदा निमग्न रहनेके कारण बाबाको पुरुष मात्रका दर्शन बड़ा विचित्र लगा करता था। शौचालय जाते समय यदि अचानक कभी दृष्टि ऊपर उठ गयी और यदि संयोगसे कभी कोई मूँछ-दाढ़ी वाला पुरुष दिखलायी पड़ जाता था तो बाबा मन-ही-मन सोचा करते – मैं कहाँ हूँ? मुझे यह सब क्या दिखलायी दे रहा है? ये पुरुष कहाँसे आ गये? यह कौन-सा देश है?

हमारे प्रापञ्चिक जगतके पुरुषोंकी आकृति-प्रकृति-परिधान बाबाको बड़े विचित्र लगा करते थे। प्रियतमके सखाओंके दर्शन बाबाको यमुना-तटपर, गिरिराज-परिसरमें, वन-उपवनमें होते थे, पर वे तो बड़े सुन्दर वस्त्र धारण करते हैं, उनकी मुखाकृति बड़ी सौम्य होती है, ऐसे सुन्दर वस्त्र और सौम्य आकृतिके स्थानपर अन्यका दर्शन हो तो बाबाको अटपटा लगना स्वाभाविक ही है।

एक बार बाबा अपनी कुटियाके बाड़ेके भीतर खुले स्थानपर विराज रहे थे। आकाशमें बादल घिर आये और वर्षा आरम्भ हो गयी। कब नभ मेघाच्छन्न हुआ और कब वे मेघ बरसने लगे, इसकी जानकारी भी बाबाको नहीं हुई। भावोंकी लहरोंपर लहरानेसे उत्पन्न जो मस्ती थी, उस तन्मयतामें शरीरकी सुधि भला कहाँ? श्रीप्रिया-प्रियतमके और सखियों-मञ्जरियोंके 'अवलोकनि, बोलनि, मिलनि, प्रीति, परस्पर हास' में सर्वथा निमग्न मन तो बाह्य जगतको छोड़ चुका था।

* * *

एक बार बाबा बाबूजीके साथ ट्रेनमें यात्रा कर रहे थे। बाबा बर्थपर लेटे अथवा बैठे हुए थे। बाबूजीके मनमें आया कि बाबाको जल पीनेके

बारेमें पूछना चाहिये। बाबाके पास जाकर बाबूजीने कहा – ऐ बाबा! ऐ बाबा! ऐ बाबा! आप जल पी लें।

काफी देर बाद बाबाने बहिर्मुख होकर बाबूजीसे कुछ दृष्टि मिलायी। नेत्र आधे खुले थे, दृष्टिमें शून्यता थी, मुखकी रेखाएँ अन्य-मनस्कता व्यक्त कर रही थीं। बाबाने गर्दनको तनिक-सा हिलाकर संकेत कर दिया कि जलकी इच्छा नहीं है। बाबाका संसार ही दूसरा था।

* * *

ट्रेनकी एक और घटना कृष्णजीने बतलायी –

बाबा और बाबूजी प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें यात्रा कर रहे थे। बाबा ऊपरी बर्थपर सोये हुए थे। बाबाको लघुशंकाका वेग हुआ। वेग इतना तीव्र था कि वस्त्रोंके खराब हो जानेकी आशंका थी। बाबा ऊपरी बर्थसे उतरकर नीचे आना चाहते थे, परंतु गम्भीर अन्तर्मुखताके कारण उनको न सूझ पड़ रहा था और न समझमें आ रहा था कि नीचे कैसे उतरा जाय। ज्यों-ज्यों क्षण व्यतीत हो रहे थे, त्यों-त्यों उलझन बढ़ती चली जा रही थी। एक ओर वेगकी तीव्रता और दूसरी ओर समझकी अस्तव्यस्तता, इस उलझनमें पड़े बाबा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे थे। कृष्णजी भी उसी डिब्बेमें थे। किसी अचिन्त्य प्रेरणासे बाबाको सँभालनेकी बात उनके मनमें उभरी। वे नीचे बैठे थे और उठकर तुरन्त खड़े हो गये। कृष्णजीने कहा – बाबा! क्या बात है? आपको लघुशंकाके लिये जाना है क्या?

बाबा तो मौन थे, पर कृष्णजीने अनुमान लगा लिया और उन्होंने बाबासे पुनः कहा – आप इस ओरसे और इस प्रकारसे उतर आइये।

कृष्णजीके खड़े हो जानेसे सारी बात बन गयी।

* * *

एक बार बाबा और बाबूजी स्वर्गाश्रम गये हुए थे। ग्रीष्म ऋतु होनेके कारण गर्मी खूब पड़ रही थी। बाबा अपनी कुटियामें विराज रहे थे और निमग्न थे अपनी मस्तीमें। जगतका कुछ भी भान नहीं था और भावधारामें बहते हुए कुछ गुनगुना रहे थे। बाबाने प्रातःकालसे जल नहीं पीया था, अतः जल पिलानेके लिये माँ गयी। माँने जाकर कुटियाका

दरवाजा खटखटाया तथा पुकारा भी, पर भीतरसे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। बाबा जागतिक धरातलपर होते तो उत्तर देते। उन्हें अपने शरीरकी ही स्मृति जब नहीं थी, तब माँके आगमनका भान कैसे हो पाता! माँने कुछ देरतक प्रतीक्षा की, पर जब कुटियाका द्वार नहीं खुला तो माँने मनमें यही सोचा – अभी बाबा अपनी मस्तीमें हैं। व्यवधान डालना ठीक नहीं। थोड़ी देर बादमें आकर जल पिला दूँगी।

माँ वापस आयी। वह चली तो आयी, पर मनमें रह-रह करके याद उभरती रहती थी कि बाबाने जल नहीं पीया है। थोड़ी देर बाद माँ फिर गयी और फिर उनको असफल होकर वापस लौट आना पड़ा। जब माँको तीसरी और चौथी बार भी वापस लौट आना पड़ा, तब उनको विशेष चिन्ता हुई और उन्होंने वस्तुस्थितिकी सूचना बाबूजीको दी। बाबूजी तत्काल बाबाकी कुटियाके पास आये। उन्होंने आते ही न द्वार खटखटाया और न पुकारा, अपितु द्वारके फाटकके पास कान लगाकर खड़े हो गये। वे बहुत देरतक खड़े रहे और खड़े-खड़े गुनगुनाहटकी स्वरलहरीको सुनते रहे। इसके बाद बाबूजीने स्वयं ही कुटियाका फाटक खोला और कुटियाके भीतर गये। वे भीतर गये हृदयकी सरसता और नेत्रोंकी सजलताको लिये-लिये। उस स्वर-लहरीको सुनकर बाबूजीका मन भी भाव-धारामें बहने लगा था।

बाबूजी बाबाके पास आये और अपनी दोनों हथेलीको आबद्ध करके और आबद्ध हथेलीको बाबाकी ग्रीवापर झुला करके बड़ी प्यार भरी मीठी-मीठी वाणीमें कहने लगे – बाबा! थोड़ा जल पी लीजिये।

और फिर बाबाको बाबूजीने जल पिलाया। बाबाके जल पी लेनेसे माँको बड़ा संतोष हुआ।

* * *

बाबाके दर्शन हेतु एवं उनको प्रणाम करनेके लिये व्यक्ति-व्यक्ति उत्सुक रहा करता था। काष्ठ मौन लेनेके बाद दो-तीन सालतक तो ऐसी गम्भीर अन्तर्मुखता थी कि बाबूजी किसीको भी बाबाके पास नहीं ले जाते थे। तब श्रीबनारसी नाई मासमें एक बार बाबाकी कुटियाके भीतर जाया करता था उनका केश-मुण्डन करनेके लिये। जब वह शीशके सारे केशोंको उतारकर कुटियाके बाहर आता था, तब न जाने कितने बड़े-बड़े लोग

श्रीबनारसी नाईके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया करते थे और मन-ही-मन कहा करते थे कि यह कितना सौभाग्यशाली है, जो महाभाव-निमग्न बाबाका स्पर्श करके आ रहा है।

* * *

स्थान जितना जन-शून्य और वायुमण्डल जितना रव-शून्य रहेगा, बाबाके लिये उतनी ही अधिक अनुकूलता रहेगी, अतः बाबूजीने कह रखा था कि कुटियाके पास न कोई जाये और न कोई हल्ला करे। इस प्रकारका स्थायी निर्देश होनेके कारण कुटियाके चारों ओरका वातावरण बड़ा शान्त रहा करता था।

एक बारकी बात है, श्रीठाकुरजी बाबाकी कुटियाके पासवाली पगडंडीसे होते हुए अपनी कुटियापर जा रहे थे। उन दिनों ठाकुरजी जिस कुटियामें ठहरा करते थे, वह बाबाकी कुटियाके पीछेकी ओर बनी हुई थी। वे पगडंडीपर चलते-चलते स्वामी श्रीहरिदासजी महाराजका एक पद अपनी मस्तीमें गाने लगे। वह पद है –

तू रिस छाड़ि री राधे राधे।
ज्यौं ज्यौं तोकों गहरु त्यौं त्यौं मोकों बिथा री साधे साधे।।
प्राननि कों पोषत हैं री तेरे बचन सुनियत आधे आधे।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा तेरी प्रीति बाँधे बाँधे।।

ठाकुरजी मात्र गुनगुना नहीं रहे थे, अपितु उच्च स्वरसे गा रहे थे। पद गाते-गाते अपनी कुटियापर पहुँचे। पहुँचकर भी पदका गायन होता रहा। अब बैठकर अपनी मस्तीमें गाने लगे। नीरव और एकान्त वातावरण होनेसे वे और भी उच्च स्वरसे गाने लगे। ठाकुरजी अपने आपको भूल गये। स्वरकी आलापचारीमें तथा गायनके आरोहावरोहमें ठाकुरजीको समयका ज्ञान नहीं रहा। वे इस पदको लगभग डेढ़-दो घंटे तक गाते रहे।

इसी बीच बाबूजी बाबाके पास आये। मध्याह्नका समय था। ऐसा लगता है कि आज किसी कारणसे जल पिलानेके लिये बाई नहीं आयी, अतः बाबूजी आये। बाबूजीने बाड़ेका कपाट धीरेसे खोला। खोलते ही जो दृश्य देखा, उससे बाबूजी तो अवाक् रह गये। बाबाकी कुटियाके सामने बाड़ेके भीतर लीचीका एक पेड़ है। पेड़की एक डालको दोनों हाथसे पकड़े

हुए बाबा खड़े हैं, कुछ लटकते हुए-से खड़े हैं और खड़े-खड़े अपनी मस्तीमें झूम रहे हैं। यों कह लीजिये कि वे डालको पकड़े-पकड़े झूल रहे हैं। बाड़ेके भीतर आ करके और कपाटको बन्द करके बाबूजी चुपचाप खड़े हो गये और खड़े-खड़े देरतक बाबाकी मस्तीभरी स्थिति देखते रहे। बाबाको पता नहीं चला कि बाबूजी बाड़ेके भीतर आ गये हैं और उनको देख रहे हैं। बाबूजीको भी खड़े-खड़े बहुत देर हो गयी। फिर बाबूजीने बाबाको सम्बोधित करके पुकारा। बाबूजीके स्वरको सुनते ही बाबाने मुड़कर देखा और धम्मसे वहीं भूमिपर बैठ गये। स्वयं बैठ गये और वहींपर बाबूजीको भी बैठा लिया तथा कहने लगे – पता नहीं, यह बात कैसे बन गयी कि आज यह ठाकुर उसी भावका पद गाने लग गया, जिसमें मैं बह रहा था। मेरा मन मानकी भाव-धारामें डूबा हुआ था। नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकिशोरीके मानके विमोचनके लिये नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण जैसा अनुनय और मनुहार करते हैं, उसी भावका पद यह ठाकुर गाने लगा। इस ठाकुरको भला क्या पता कि मेरी भावदशा क्या है, पर इसने मेरी मनकी स्थितिके अनुकूल पद गाया। आज इसके गायनसे बड़ा सुख मिला।

इस विवरणको सुनकर बाबूजीको भी बड़ा सुख मिला। बाबूजीने बाबाको जल पिलाया ही, उन एकान्त क्षणोंमें मानकी चर्चा भी बहुत देरतक चलती रही।

* * *

एक बार बाबा अपने बाड़ेके भीतर इतने अधिक भावाविष्ट हो उठे कि केवल एक शब्द 'तुम' को बार-बार बहुत देरतक गाते रहे। 'तुम-तुम-तुम-तुम-तुम-तुम-तुम-तुम' का अनवरत गायन करना और इसीके साथ बाड़ेके उस नितान्त एकान्तमें उन्मुक्त भावसे नृत्य करना, बाबाकी यह मधुर लीला बहुत देरतक चलती रही। इस नितान्त एकान्तमें न कोई वहाँ देखनेवाला था और न बाबाके भीतर दिखावेकी कोई स्फुरणा थी। यह भावोच्छलन तो दृष्ट लीलाका एक सहज परिणाम था। वह लीला थी श्रीप्रिया-प्रियतमके एकान्त झूलनकी। कदम्बके वृक्षपर झूला पड़ा हुआ है और श्रीप्रिया-प्रियतम झूल रहे हैं। झूलते-झूलते श्रीप्रियाजीको कदम्ब वृक्षके पत्ते-पत्तेमें ऐसा दिखलायी देने लगा कि श्रीप्रिया-प्रियतम झूल रहे हैं। इस

छविको देखकर श्रीप्रियाजी भ्रमित हो उठीं। वे सोचने लगीं कि हम सत्य हैं अथवा पात-पातमें दिखलायी देनेवाले श्रीप्रिया-प्रियतम सत्य हैं। श्रीप्रियाजी इस भ्रमसे अत्यधिक अभिभूत हो उठीं। उसी समय श्रीप्रिया-प्रियतमके चरण-युगलसे शुक और सारिकाका आविर्भाव होता है और वे गा-गा करके बतलाने लगते हैं और सत्यकी ओर संकेत करने लगते हैं कि 'तुम-तुम-तुम-तुम'। शुक-सारिकाके गायनको सुनकर बाबा अपनी चौकीके बिस्तरपरसे नीचे उतरकर स्वयं गाने लगे और नृत्य करने लगे।

जिस समय बाबा हमलोगोंके सामने इस लीलाका वर्णन कर रहे थे, वे वर्णन करते-करते 'तुम-तुम-तुम-तुम'का गायन करने लगे। कभी जल्दी-जल्दी बोलकर, कभी धीरे-धीरे उच्चारण कर और कभी मीठे-मीठे गा कर बाबाने उस निकुञ्ज लीलाकी जो एक मधुर झलक दिखलायी, वह बड़ी ही मनभावनी लग रही थी।

जिस प्रकार बाबा बाड़ेके भीतर एक बार 'तुम-तुम' बहुत देरतक गाते रहे, इसी प्रकार एक बार 'निया-कप्पा-पिया-कप्पा' गाते रहे। 'निया-कप्पा' माने नीला कपड़ा और 'पिया कप्पा' माने पीला कपड़ा। श्रीप्रिया-प्रियतमके नीलाम्बर और पीताम्बरकी मनोहर छविसे मन इतना अधिक अभिभूत हो उठा कि बाबा उन वस्त्रोंका ही गीत गाने लगे। यह स्वाभाविक ही है। वे वस्त्र भी उस चिन्मय राज्यकी वस्तु होनेके कारण चिन्मय और दिव्य हैं। थोड़ी देरके लिये नहीं, यह गायन कई घंटेतक चलता रहा। बाबा अपने आसनपर कभी बैठ जाते, कभी लेट जाते और कभी खड़े हो जाते। बाबाकी मस्तीकी सीमा नहीं थी। वह झूम अपने ही ढंगकी थी। कोई देखता तो यही कहता कि क्या यह व्यक्ति पागल है? वास्तविकता यह है कि जगतके साधारण व्यक्तिके लिये समझना तो दूर रहा, वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि महाभावका सागर जब लहराने लगता है, तब उसकी उत्ताल तरंगोंका स्वरूप क्या होता है और उन लहरोंपर नृत्य करनेवालेका जीवन क्या-से-क्या हो जाया करता है।

* * * * *

काष्ठ-मौनावधिमें गम्भीर अन्तर्मुखता

बाबाको भिक्षा करानेके लिये माँ जाया करती थी। भिक्षा करनेके लिये माँने पत्तल परोस दी है, पर पत्तलकी वस्तुओंको बाबाकी वृत्ति ग्रहण नहीं कर पा रही है। माँको भिक्षाके समय अनेक बार बतलाना पड़ता था कि यह रोटी है, यह भात है, यह दाल है, यह शाक है। एक बार भिक्षा कराते समय माँने बाबासे कहा – यह शाक है, इसे आप खा लीजिये।

माँके कहते ही बाबा वह शाक खा गये। सारा-का-सारा शाक खा गये। भिक्षा हो चुकनेके बाद जब अन्य लोगोंने वह शाक खाया तो वह खाया नहीं जा सका। उस शाकमें मिर्च बहुत ज्यादा थी। मिर्चकी भीषणताको देखकर चकित स्वरमें माँ कहने लगी – हे राम! बाबाने यह शाक कैसे खाया होगा? उनको तो तनिक-सी भी मिर्च सह्य नहीं। इस शाकको खाकर उन्हें तो बड़ा कष्ट हुआ होगा।

वास्तविकता तो यह है कि बाबा कष्टानुभूतिके धरातलसे बहुत दूर थे। 'बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही'। भावराज्यमें प्रवेश करनेके बाद बाबा पाञ्चभौतिक आवरण (अर्थात् शरीर) से इतना अधिक अतीत हो गये थे कि भीषण मिर्चकी तिक्तताकी अनुभूति भी उस भाव-निमग्नताकी स्थितिको प्रभावित नहीं कर सकी। खट्टा-मीठा-तीखा-तीताकी अनुभूति और स्मृति तभीतक है, जबतक शरीरसे सम्बद्धता बनी रहती है।

इसी तरह रतनगढ़का एक प्रसंग और है। प्रायः सूर्यास्तके समय बाबाको भिक्षा माँ करवाया करती थी और मध्याह्नके समय जल पिलानेके लिये बाबूजी जाया करते थे। एक बार बाबूजी जल पिलानेके लिये हवेलीके छतवाले कमरेमें गये। इसी एकान्त कमरेमें बाबा रहा करते थे। बाबाको किसी प्रकारका व्यवधान नहीं हो, इसीलिये छतके एकान्त कमरेमें रहनेकी व्यवस्था की गयी थी। बाबूजीने देखा कि बाबा कमरेमें नहीं हैं। बाबूजी सोचने लगे कि क्या बाबा शौचके लिये गये हैं, पर इस समय तो वे प्रायः नहीं जाया करते हैं। उसी समय बाबूजीको दिखलायी दिया कि बाबा छतपर खड़े हैं। उनके शरीरपर मात्र कौपीन है। गर्मीके दिन होनेसे धूप इतनी कड़ी थी कि छतपर पैर रखते ही तलवा जलने लगता था। ऐसी कड़कड़ाती धूपमें तपती छतपर बाबाको खड़े देखकर बाबूजीको बड़ा कष्ट हुआ। बाबा तो एकदम शान्त खड़े

थे। अन्तर्मुख बाबाको शरीरका भान नहीं था और न थी छतके तपनकी अनुभूति। बाबूजीने जाकर बाबाका हाथ पकड़ा और वे उन्हें कमरेमें ले आये। थोड़ा समय बीत जानेपर तथा ऊष्माके शमित हो जानेपर बाबूजीने बाबाको जल पिलाया।

* * *

उन दिनों बाबाकी निजी सेवामें रामसनेहीजी और राधेश्याम भगतजी रहा करते थे। बाबाकी भाव-दशाका वर्णन करते हुए एक बार रामसनेहीजीने बतलाया था – बाबा इतने भाव-निमग्न रहा करते थे कि भिक्षा करते समय भोजनकी सुधि नहीं रहा करती थी। उन्होंने एक कौर मुखमें ले लिया, परंतु कौरको चबाने और निगलनेकी विस्मृति हो गयी। लीलाराज्यमें गहरे चले जाते ही मन तनसे अलग हो गया। अन-मन होते ही शारीरिक क्रियाओंका व्यापार स्वतः कुण्ठित हो गया। बाबाको भिक्षा करानेके लिये माँको बहुत-बहुत देरतक बैठे रहना पड़ता था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद ग्रासको उठानेके लिये अथवा चबानेके लिये अथवा निगलनेके लिये याद दिलाना पड़ता था। याद दिलानेपर मन जब कुछ प्रकृत धरातलपर आता था, तब ग्रासका चबाया जाना और निगलना हो पाता था। बाबाके भिक्षा करनेमें प्रायः एक-डेढ़ घंटे लग जाया करते थे। बाबाको प्रायः देह-भान नहीं रहा करता था। काष्ठ मौनके समय बाबा यदि खड़े हैं तो चार-चार घंटेतक लगातार एक स्थानपर खड़े ही रह जाते। वे किस भावधारामें बह रहे हैं, यह तो वे ही जानें, पर देखने वालेके लिये तो वे एक पाषाणस्तम्भके समान दिखलायी देते थे।

काष्ठ मौन व्रत लेनेके बाद डेढ़-दो वर्षतक बाबाकी अन्तर्मुखता अपनी पराकाष्ठापर थी। इस अवधिमें किसीकी ओर दृष्टि उठाकर भी उन्होंने नहीं देखा। जब बाबाको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाना होता था तो वे बाबूजीके साथ जाया करते थे और जाते समय या तो बाबूजी बाबाका हाथ पकड़े रहते थे अथवा बाबाकी दृष्टि बाबूजीके कुरतेके आँचलपर रहा करती थी। पीठकी ओर लटकते हुए कुरतेके अन्तिम छोरको दृष्टिसे 'पकड़े' हुए बाबा चला करते थे।

संतों और शास्त्रोंका कथन है कि लीलासिन्धुमें नितान्त निमग्नताका यह सहज और स्वाभाविक परिणाम है। जन-साधारणकी भाँति वह न बोलता है, न चलता है और न हिलता है। उसकी शब्दरहितता-गतिरहितता-स्पन्दनरहितता ही परिचायिका बन जाती है अबाध रसास्वादन और अगाध रसावगाहन वाली दिव्य लोकोत्तर स्थितिकी। देवर्षि नारदने कहा है कि 'उसे' जान करके और प्राप्त करके वह

सिद्ध प्रेमी 'न रमते, नोत्साही भवति, मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति' और 'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव चिन्तयति'। वह अनासक्त-अनुत्साही-मत्त-स्तब्ध-आत्माराम प्रेमी उसीका अवलोकन करता है और उसीका चिन्तन करता है। श्रीमद्भागवत महापुराणमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है 'विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ'। अर्थात् हरिभक्त अमृतके सागरमें क्रीड़ा करता है। प्रेमराज्यकी यह परमावस्था है ही ऐसी, जहाँ रस-सिद्ध-प्रेमी रस-सागरकी लहरोंपर सदा संतरण करता रहता है। अपने अनुभवके आधारपर बाबूजीने भी उस अनिर्वचनीय और अचिन्त्य स्थितिकी ओर संकेत करते हुए कहा है —

अन्तरमें हो रहा खेल अति मधुर विलक्षण।
बाहर कैसे दीखे वह निश्शब्द अलक्षण।
कौन बताये? किसे? वहाँके कैसे अनुभव?
आ न सके पल एक छोड़कर वह रस नित नव॥
बाहर आते समय रोक देती वह लीला।
भीतर ही है रमा रही वह चारु सुशीला॥
उस लीलाका त्याग बड़ा ही कठिन, असम्भव।
इसीलिये बन रहा नहीं बाहर कुछ सम्भव॥
मधुर मनोहर सुधामयी लीला नित होती।
जगी उसमें वृत्ति, बाह्य जगमें वह सोती॥
मन-इन्द्रिय सब अंग बुद्धि उसमें ही तन्मय।
हुए इसीसे बाह्य बुद्धिके कार्य सभी लय॥

सभी बाह्य कार्योंका 'विराम' ही संकेत कर रहा है कि उस लीला-निमग्नके मन-इन्द्रिय-बुद्धि आदि कहाँ तन्मय हो रहे हैं। बाबाकी जगतके प्रति घोर उपरामता और शरीरके प्रति घोर उदासीनता, इस प्रकार मम-परकी नितान्त विस्मृति ही उस अनिर्वचनीय स्थितिकी ओर संकेत कर रही है कि बाबा प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके दिव्य महान नामामृत-रूपामृत-प्रेमामृत-लीलामृत-गुणामृत-स्वरूपामृतके रस-सागरमें सतत और सर्वथा निमग्न हैं।

बाबाने इस प्रकारके भाव कई बार व्यक्त किये कि काष्ठ मौनकी अवधिमें कई बार भावोंका प्रवाह इतना तीव्र रहता था कि माथा भन्ना उठता

था। ऐसा लगता था कि माथा फट जायेगा। वह भाव-प्रवाह है चिन्मय राज्यकी वस्तु और उस दिव्य वस्तुके भारको यह शरीर वहन करनेमें असमर्थताका अनुभव करने लगता है। भावोद्वेलनका आधिक्य भी तो शारीरिक रुग्णताका एक कारण है और इससे शरीरमें कई प्रकारके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। बाबाके सिरमें कभी-कभी पीड़ा होने लगती थी। जब ऐसी दशा उपस्थित होती और जब स्थिति सहनकी सीमाका अतिक्रमण करने लगती तो बाबा कुटियाके बाहर आकर नभके विस्तारको, वृक्षोंकी हरियालीको, लताओंके पुष्पोंको देखने लगते, जिससे भाव किंचित् शमित हो और इन प्राकृतिक दृश्योंको देखनेका परिणाम अनुकूल होता था। एक दो घंटा व्यतीत होनेके बाद शारीरिक स्थिति कुछ ठीक हो पाती थी।

* * *

एक और प्रसंग ध्यान देने योग्य है। बाबाके काष्ठ मौनके बाद बाबाके अनेक दायित्वोंको बाबूजीने अपने ऊपर ले लिया। पहले जब बाबा सक्रिय थे तो अनेक आत्मीय जनोंके हितका चिन्तन और सम्पादन वे स्वयं ही किया करते थे, किन्तु कठोर मौन व्रतके बाद बाबाकी घोर अन्तर्मुखतासे बाबूजीके उत्तरदायित्वकी परिधि बहुत विस्तृत हो गयी। ठाकुर श्रीघनश्यामजी काफी रुग्ण हो गये थे, अतः ठाकुरजीकी चिकित्सा करानेके लिये बाबूजीने उन्हें वृन्दावनसे रतनगढ़ बुला लिया।

चिकित्सासे ठाकुरजीको क्रमशः स्वास्थ्य लाभ होने लगा। एक दिन ठाकुरजी अपने कमरेमें सारंगी बजाने लगे। वे सारंगीपर पीलू राग बजा रहे थे। इसी समय बाबा अपने कमरेसे निकलकर शौचालय गये। ठाकुरजीका कमरा इतनी दूरीपर था कि वहाँसे सारंगीकी स्वरलहरी बाबाके शौचालयतक भली प्रकार पहुँच रही थी। इधर ठाकुरजी अपनी मस्तीमें बजा रहे थे और उधर बाबा पीलूरागकी लहरीमें मस्त हो रहे थे। बाबाकी एक रचना है, जिसमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा शुभ्र एवं मृदुल बालुकामय पुलिनपर घुटने टेककर बैठी हुई है और यमुनाजीसे विनम्र प्रार्थना कर रही है – 'मेरे साँवर उतरेंगे पार, कालिन्दी धीरे बहो'। यह पंक्ति पीलू रागमें ही गायी जाती है। पीलू रागकी लहरीमें लहराते हुए लीला-निमग्न बाबाको समय-ज्ञान भूल गया। विमुग्ध बाबा तीन घंटेसे अधिक समयतक शौचालयमें ही रहे।

बाबाको क्या पता कि बाहर क्या हो रहा है? परिचर्या-रत

श्रीरामसनेहीजी और श्रीभगतजी बड़े चिन्तित हो रहे थे कि क्या हो गया? बाबा कभी इतनी देरतक शौचालयमें नहीं रहा करते थे। अधिक-से-अधिक आधा घंटातक, पर आज तो तीन घंटासे भी अधिक समय हो गया। श्रीरामसनेहीजीने जाकर सारी बात बाबूजीको बतलायी। बाबूजी तत्काल शौचालयकी ओर आये। आते ही उनके कानमें सारंगीकी स्वरलहरी पड़ी। बाबूजी तुरंत समझ गये कि सारंगी-वादनके मादक प्रभावके कारण बाबाको स्वयंकी सुधि नहीं है। बाबाको सँभालनेका कार्य तो बादमें होगा, बाबूजी पहले ठाकुरजीके कमरेमें गये। बाबूजीको सामने देखते ही ठाकुरजीने हड़बड़ा करके सारंगीका बजाना बन्द कर दिया और वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। ठाकुरजीके कंधेपर हाथ रखकर बाबूजीने कहा – भइया! बाबाको तन्तु-वाद्य बड़े प्रिय हैं और उनमें भी उन्हें सारंगी तो बहुत अधिक प्रिय है। एक बात और, रागोंमें भी पीलू रागसे बड़ा भावोद्दीपन होता है। सारंगीपर बजाये गये पीलू रागका बाबापर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनको स्वयंकी स्मृति नहीं रही। बाबाको शौचालय गये साढ़े तीन घंटे हो गये और अभीतक वे बाहर नहीं निकले। तीन घंटेसे उन्हें अपनी सुध-बुध नहीं है।

ठाकुरजी समझ नहीं पा रहे थे कि इसे मैं सारंगी-वादनकी सराहना कहूँ अथवा सारंगी-वादनसे निवारण मानूँ। बाबूजीके मुखसे यह सुनकर ठाकुरजीको संकोच तो हो रहा था, पर साथ ही प्रसन्नता भी। बाबा अपनी भावभरी मस्तीमें हैं, इसे सुनकर प्रसन्नता; किन्तु बाबाको साढ़े तीन घंटे शौचालयमें रहना पड़ा, इससे ठाकुरजीको संकोच भी कम नहीं हुआ। ठाकुरजीके पाससे बाबूजी बाबाके पास गये और उनसे शौचालयसे बाहर आनेके लिये कहा।

* * * * *

'जय जय प्रियतम' काव्य

'जय जय प्रियतम' काव्यकी रचनाकी स्फुरणा सर्वप्रथम व्रज-भूमिमें हुई। नवम्बर १९५६ से अप्रैल १९५८ तक बाबा और बाबूजी रतनगढ़में रहे। इसी १९५८ के जनवरी मासमें बाबा और बाबूजी रतनगढ़से व्रजभूमि गये थे श्रीगिरिराज भगवानकी परिक्रमा लगानेके लिये। साथमें भक्तोंका भी समुदाय था, जो भिन्न-भिन्न स्थानोंसे परिक्रमा हेतु वहाँ आ गया था। सभीके

ठहरनेका प्रबन्ध किया गया था बिड़ला-मन्दिरमें, जो वृन्दावन और मथुराके मध्य स्थित है। इन दिनों बाबाका अति कठोर काष्ठ-मौन-व्रत चल रहा था, अतः इसी बिड़ला-मन्दिरके एक कमरेमें बाबाके नितान्त एकान्त आवासकी व्यवस्था की गयी थी।

एक बार बाबा इस बिड़ला मन्दिरके एक खुले स्थानमें श्रीधाम वृन्दावनकी ओर मुख करके बैठे हुए थे। तभी अचानक नेत्रोंसे अश्रुका प्रवाह बह चला, साधारण नहीं, अनर्गल प्रवाह। कोई हेतु नहीं, फिर भी अनर्गल अश्रु-प्रवाह बाबाके कपोलोंको रह-रह करके संसिक्त कर रहा था। उसी समय बाबाने एक मयूरको नृत्य करते हुए देखा। इससे और अधिक भावोद्दीपन हुआ। फिर भावोंका वेग इतना अधिक बढ़ चला कि समक्ष स्थित वृन्दावन और व्रजभूमिका दिखलायी देना बन्द हो गया। स्थूल वृन्दावन तिरोहित हो गया और बाबाके दृष्टि-पथपर अवतरित हो उठा दिव्य चिन्मय वृन्दावन, केवल दिव्य चिन्मय वृन्दावन ही नहीं, अपितु वहाँकी दिव्य रसीली लीलाकी अद्‌भुत-अभिनव अवली। तभी लीलाके प्रसंग और भाव, काव्यके छन्दोंमें ढलने लग गये।

इन छन्दोंकी रचनामें कोई क्रम नहीं था, पर उस क्रमबद्धताके अभावोंमेंसे एक अद्‌भुत भवितव्यकी सम्भावना उभरकर सामने उपस्थित हो गयी। ऐसा लगता है कि इस अद्‌भुत भवितव्यको बाबाके समक्ष प्रस्तुत करनेके लिये किसी अचिन्त्य विधानसे छन्दोंकी रचनामें क्रमबद्धताका समावेश नहीं हो पाया। इस समय जिस प्रकारसे पंक्तियोंकी रचना हुई, उससे बाबाको अनुमान हो गया कि जिस काव्यकी भविष्यमें रचना होनेवाली है, उसके कुल ग्यारह शतक होंगे। प्रथम शतककी आठ पंक्तियाँ, द्वितीय शतककी चार अथवा आठ पंक्तियाँ, इस प्रकार प्रत्येक शतककी चार अथवा आठ अथवा सोलह पंक्तियोंकी रचना हो गयी। ग्यारह शतकोंकी आरम्भिक पंक्तियोंकी रचना उसी बिड़ला मन्दिरमें तत्काल हो गयी। क्रमकी विशृंखलताने ही संकेत दे दिया कि कुल ग्यारह शतकोंकी रचना होगी।

ज्यों ही महाभाव-भावित बाबाको यह आभास हुआ कि ग्यारह शतकोंवाले किसी भावी काव्यकी रचनाके ये पूर्व-संकेत हैं, त्यों ही उन्होंने प्रियतम श्रीकृष्णसे किंचित् उपालम्भ-मिश्रित स्वरमें कहा – जो अबतक अनेक भक्त कवियों द्वारा लिखा जा चुका है, वही सब मेरे द्वारा पुनः

लिखवानेसे क्या लाभ ?

बाबा तो श्रीराधा-भावमें थे। बड़े प्यार भरे शब्दोंमें परम ऐकान्तिक सम्बोधन करते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – प्राणेश्वरि! तुम रचना करो तो सही।

बाबाने पुनः उसी स्वरमें कहा – वह रचना पिष्ट-पेषण मात्र ही तो होगी। मुझसे व्यर्थ श्रम क्यों करवा रहे हो? यदि रचना करवानी ही हो तो कुछ ऐसी करवाओ, जो आजतक हुई ही नहीं हो। वह एक नवीन रचना हो।

अपने अनुरोधमें और अधिक माधुर्य घोलते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – प्राणाधिके! तुम्हारी भावनाके अनुरूप ही रचना होगी।

प्राणाधिक प्रियतम श्रीकृष्णने जब बाबाकी भावनाका अनुमोदन कर दिया, तब और कुछ कहनेके लिये रह ही क्या गया था। बाबाका मन श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-सिन्धुमें निमग्न था ही, तभी मनकी ऊर्मिल भावनाएँ अनायास और अचानक काव्यकी पंक्तियोंके साँचेमें ढलने लग गयीं। इसके पहले बाबाने कभी भी काव्य-रचना नहीं की थी। काव्य-रचनाका प्रयास भी बाबाके द्वारा नहीं हुआ था। बाबाको न कवि कहलानेका चाव था और न काव्य-जगतमें किसी प्रकारकी प्रतिष्ठा पानेकी चाह थी। कविताको और पदको सुननेकी उमंग तो बाबाके मनमें रहा करती थी, पर कविता रचनेकी स्फुरणा उनके मनमें कभी उदित हुई ही नहीं। यह सर्वप्रथम अवसर था, जब बाबाके अन्तस्तलमें काव्य-धारा स्वतः प्रस्फुटित हो पड़ी। कविके हृदयके संगीतको ही कविता कहते हैं। हृदयके कोमल भावोंकी मधुरताका आधिक्य जब सीमाको पार करने लगता है, तब वह आश्रय पाना चाहता है कान्त-कलित पदावलीके लालित्यकी मृदुल परिधिमें। बाबाके अन्तरके भावोंकी वह ऊर्मिलता न जाने कितनी सुन्दर, कितनी मधुर रही होगी कि वह ढलने लग गयी काव्यकी सुन्दर-सुन्दर शब्दावलीमें। लोगोंको भला क्या पता कि बाबाके भीतर-ही-भीतर क्या चल रहा है। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि उन एकान्त क्षणोंमें कविताके धरातलपर भावोंकी ऊर्मिलताके अवतरणका शुभारम्भ हो गया है।

काष्ठमौनकी कठोरताके कारण कागज-कलम माँगा जाना सम्भव नहीं था और जो-जो दिव्य लीलाएँ दृष्टि-पथपर आतीं, उनकी अभिव्यक्तिके

क्रमका शुभारम्भ बिड़ला मन्दिरसे ही हो चुका था, अतः कई वर्षोंतक यह काव्य बाबाकी स्मृतिमें सुरक्षित रहा। जब यह व्रत शिथिल हुआ, तब बाबाने इसे बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) को लिखवाया। बाबा बोलते जाते थे तथा बाई लिखती जाती थी। इस लेखन-कार्यमें बाईके अतिरिक्त बाबूजीने भी सहयोग दिया। मौनव्रतके शिथिल होनेपर भी काव्य-सृजनमें विराम आया नहीं। अन्य प्रकारके काव्यकी रचनाका क्रम चलता रहा। यह आवश्यक नहीं कि जिस समय काव्य-रचना हो रही हो, उस समय बाई अथवा बाबूजी उपस्थित रहे। अनेकों पंक्तियोंकी रचना हो जाती और जब बाई आती, तब फिर बाबा बाईको लिखनेके लिये कहते। इसमें अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि उन विविध काव्योंकी रचित पंक्तियाँ विस्मृत हो जातीं और जो विस्मृत हो गयीं, वे सदाके लिये विलुप्त हो गयीं।

ग्यारह शतकों वाला यह काव्य कहलाया 'जय जय प्रियतम' काव्य। इस काव्यकी प्रत्येक पंक्तिके अन्तमें 'प्रियतम' शब्द आता है और यह 'प्रियतम' शब्द सम्बोधनात्मक शब्द है। प्रत्येक पंक्तिमें वह सम्बोधन इसलिये है कि अपने प्रियतमको सुनाते हुए ही प्रत्येक पंक्तिकी रचना प्राणप्रिया द्वारा हो रही है। यह काव्य आद्यन्त तुकान्त नहीं है। रचनाके प्रवाहमें तुक बैठ गया तो उत्तम, अन्यथा तुक बैठानेका आग्रह मनमें नहीं था। रचित काव्यमें न तो संशोधन करना था और न परिवर्तन। पंक्तियोंमें जो भाव ढल गये और जिस प्रकारसे ढल गये, वही स्वीकार्य था। हाँ, एक स्थानपर एक परिवर्तन बाबाने नहीं किया, अपितु बाबासे प्रियतम श्रीकृष्णने करवाया। जब काव्य-रचना होती थी तो बाबाके सामने उपस्थित रहते थे प्रियतम श्रीकृष्ण। प्रथम शतकके आरम्भमें एक स्थानपर एक पंक्ति आयी है 'गोबर मिट्टीसे यद्यपि थी अवनी लीपी पोती प्रियतम'। पहले 'गोबर' शब्द नहीं था। बाबाने रचना करते समय प्रयोग किया था 'गैरिक' शब्द। प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – 'गैरिक' शब्दका प्रयोग मत करो।

प्रियतम श्रीकृष्णका ऐसा संकेत मिलते ही बाबाने शब्दका परिवर्तन कर दिया और 'गैरिक' शब्द के स्थानपर 'गोबर' शब्दका प्रयोग किया।

इसी प्रकार एक बार एक चरणकी पूर्ति स्वयं प्रियतम श्रीकृष्णने की। बाबाके द्वारा छन्दके तीन चरणोंकी रचना हो गयी, पर चौथा चरण उभरकर सामने नहीं आया। जब पर्याप्त विलम्ब होने लगा तो चौथे

चरणको पूर्ण करते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – ''प्राणोंका सौदा होता है क्षणमें कुछ ऐसे ही प्रियतम''। यह चरण-पूर्ति चतुर्थ शतकके छन्द क्रमांक ३२४ में है।

'जय जय प्रियतम' काव्यके चौथे शतककी इस चरण-पूर्तिके सम्बन्धमें एक बार बाबाने बतलाया था – यह पंक्ति कोई साधारण वाक्य नहीं है, अपितु मन्त्र है।

'जय जय प्रियतम' काव्यसे सम्बन्धित अनेक तथ्य प्रकाशित पुस्तककी भूमिकामें उल्लिखित हो चुके हैं। उनकी आवृत्ति करना उचित नहीं। इस काव्यके कुछ छन्द बानगीके रूपमें यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण श्रीअक्रूरके साथ मथुरा चले गये। विरह-विकला प्रेम-प्रतिमा वृषभानुनन्दिनीको जीवन नितान्त भार-स्वरूप लगता है। वे स्वयंको श्रीयमुनाजीके शीतल प्रवाहमें विसर्जित कर देना चाहती हैं। आत्म-विसर्जनके पूर्व उनके हृदयस्पर्शी मर्म भरे उद्‌गार हैं –

मस्तकपर वारि बिखेर, अहो! बोली वह सरितासे, प्रियतम!
''री बहिन! आज मैं आयी हूँ तेरे समीप रोने, प्रियतम!
देगी तू मुझे उरस्थलकी किञ्चित् शीतलता क्या? प्रियतम!
जल रहे प्राण-तन हैं मेरे, क्षणभर शीतल ये हों, प्रियतम!
मैंने तेरा अपराध किया, मैं गर्व भरी तब थी, प्रियतम!
साँवरको नित्य साथ पाकर फिरती इठलाती थी, प्रियतम!
अधिकार नील तनपर करके मेरी मति बौरायी, प्रियतम!
कितनी ही बार तुझे पदसे मैंने ठुकराया है, प्रियतम!
नीला श्रीमुख दृगमें रखकर तेरी परवाह न की, प्रियतम!
नीला कर अहो! कण्ठमें था, गिनती न तुझे मैं थी, प्रियतम!
नीले तन-सौरभसे माती आयी न पास तेरे, प्रियतम!
नीले तरुपर समुदित फलका रस पी न मिली तुझसे, प्रियतम!
नीले मुखका मधु रव सुनती, कल-कल न सुना तेरा, प्रियतम!
नीला था अङ्क मिला, तेरी गोदी न सुहाती थी, प्रियतम!
नीले कर सेते थे पदको, सेवा न रुची तेरी, प्रियतम!
नीली वह अलकावलि हरती श्रमकण, भूली तुझको, प्रियतम!

मेरी निधि वह छिन गयी किंतु, हूँ अब भिखारिणी मैं, प्रियतम!
जो सत्य महारानी कल थी इन सब निकुञ्ज वनकी, प्रियतम!
मेरा सब गर्व चूर होकर, हूँ बनी आज दीना, प्रियतम!
सोने अब आयी हूँ तेरी शीतल गोदीमें ही, प्रियतम!

तू मुझे निराश नहीं करना, तू मुझे न ठुकराना, प्रियतम!
मुझसे जो हुआ अनादर है, उसको बिसार देना, प्रियतम!
अपनी अप्रतिम शीलतासे, निस्सीम अनुग्रहसे, प्रियतम!
तू ठौर मुझे देना अपने नीले, शीतल उरमें, प्रियतम!

* * * * *

शिमलापालकी यात्रा

सन् १९६० के मार्च मासमें पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) की आँखोंके मोतियाबिन्दका ऑपरेशन बाँकुड़ामें हुआ। उस अवसरपर पूज्य बाबूजी, पूज्या माँजी और पूज्य बाबा बाँकुड़ा गये थे। परम सम्मान्य श्रीजयदयालजी डालमिया भी साथ हो लिये थे। उनकी आँखका ऑपरेशन करनेवाले डाक्टर साहब भी उसी गाड़ीमें साथ गये थे। ऑपरेशनका कार्य जब भली प्रकारसे पूर्ण हो गया तो कुछ लोगोंके मनमें शिमलापाल चलनेकी बात उभरने लगी और जानेका कार्यक्रम भी बन गया।

यहाँ शिमलापालका थोड़ा परिचय देना आवश्यक लग रहा है। शिमलापाल बाँकुड़े जिलेके भीतरी भागमें एक छोटा-सा ग्राम है, जो बाँकुड़ासे २४ मील दूर पड़ता है। यह वही शिमलापाल ग्राम है, जहाँ अँग्रेजी सरकारने बाबूजीको इक्कीस मासतक नजरबन्द रखा था। बाबूजी योगिराज अरविन्दकी तरह पहले राजनैतिक कार्योंमें भाग लिया करते थे। भारतसे अँग्रेजी राज्यकी सत्ताको उखाड़ फेकनेके लिये बाबूजीका सक्रिय सहयोग क्रान्तिकारियोंको प्राप्त था। क्रान्तिकारियोंने रोड्डा एण्ड कम्पनीसे कारतूस और पिस्तौलकी पेटियाँ, जो जर्मनीसे आयी थीं, उनको गायब कर दिया और उनमेंसे कुछ पेटियाँ बाबूजीने अपने यहाँ छिपाकर रखी थीं। बाबूजी बिना किसी भयके देश-सेवाके कार्यक्रमोंमें भाग लिया करते थे। गुप्त समितिमें भाग लेनेके कारण तथा क्रान्तिकारियोंके मुकादमोंकी पैरवीमें सहयोग देनेके कारण बाबूजीका नाम पुलिसकी डायरीमें नोटकर लिया गया था। पुलिस बाबूजीकी गतिविधिका निरीक्षण करने लगी। किसीका सक्रिय सहयोग

भला कैसे छिपा रह सकता है? बन्दी होनेके एक मास पूर्व बाबूजीको सूचना मिल गयी थी कि सरकार उन्हें बन्दी बनानेके लिये प्रयत्नशील है। सूचना मिलनेके बाद भी बाबूजी न तो कहीं भागकर छिपे और न अपने कार्यक्रमोंसे विरत हुए। अभी इनका विवाह हुए तीन मास भी नहीं हुए थे कि २० जुलाई १९१६ को अँग्रेजी सरकारने बाबूजीको गिरफ्तार लिया। पहले तो सरकारने कुछ दिन जेलमें रखा, फिर शिमलापाल ग्राममें नजरबन्द कर दिया। इक्कीस मासकी नजरबन्दीके बाद मुक्ति मिली और बाबूजीको सरकारी आदेशके अनुसार बंगाल छोड़ देना पड़ा।

शिमलापाल ग्रामका नाम बाबूजीके जीवनके साथ जुड़ा हुआ है। राजनैतिक जीवन तथा आध्यात्मिक जीवन, दोनोंकी दृष्टिसे शिमलापालका महत्त्व है। राजनैतिक जीवनके बाद आध्यात्मिक जीवनका शुभारम्भ शिमलापालसे ही होता है। इसी शिमलापालकी नजरबन्दीमें बाबूजीने कठोर साधना की और उनकी आरम्भिक साधनाका स्वरूप था नामका जप, ध्यानका अभ्यास और ग्रन्थोंका स्वाध्याय।

बाबूजीकी नजरबन्दीके दिनोंमें शिमलापाल जानेके लिये पक्की सड़क नहीं थी। बैलगाड़ीसे ही यात्रा करनी होती थी। उन दिनों पूज्य श्रीसेठजीको बाबूजीके पास जो डाक चिट्ठी या अन्य आवश्यक सामान भेजना होता था, वह सब बाँकुड़ासे उधर जानेवाली बैलगाड़ीसे वे भेजा करते थे। अब तो सड़क बन गयी है। सभी लोग मोटरसे शिमलापाल गये।

शिमलापाल पहुँचते ही एक बड़ा भावपूर्ण दृश्य देखनेको मिला। आज बाबाका हृदय बड़ा उमड़ रहा था। वहाँ पहुँचते ही बाबा वहाँके चैराहेकी धूलमें लोटने लगे। बाबाका सारा शरीर धूल-धूसरित हो उठा। बाबाके अन्तरका आह्लाद उनके नेत्रोंमें उमड़ रहा था। इसके बाद बाबूजी वहाँकी जिस नदीमें प्रतिदिन स्नान किया करते थे, वहाँ सभीने स्नान किया।

सरकारने बाबूजीके रहनेका प्रबन्ध श्रीअधरचन्द मण्डलके घरपर कर रखा था। बाबूजीने श्रीअधरचन्द्रजीके घरमें ही इक्कीस मास बिताये थे। सब लोग उनके घरपर गये। उस घरकी जिस कोठरीके दीवालपर बाबूजीने 'श्रीनृत्य गोपाल' लिख रखा था, वह इतने वर्षोंके बाद भी उसी प्रकार लिखा हुआ था। बाबूजीने वह 'श्रीनृत्य गोपाल' दिखलाया। नजरबन्दीके मध्यमें सरकारने बाबूजीके पास पत्नीको जाने और रहनेकी अनुमति दे दी थी और वे आकर रही भी थीं। इस यात्रामें पूज्या माँ भी साथ-साथ आयी थी। वे बताने लगी कि यहाँ रसोई बनती थी, यहाँ स्नान होता था और यहाँ विश्राम होता था। यह वर्णन सुनकर बड़ा अच्छा लग

रहा था। पूज्या माँजीने वे सब प्रसंग सुनाये कि कैसे फूलोंके पौधे लगाये तथा कैसे लोगोंकी होमियोपैथिक चिकित्सा की जाती थी और उससे स्थानीय लोगोंको कितना लाभ हुआ। एक गूँगा और बहरा व्यक्ति होमियोपैथिक दवाके लिये आया और जिद्द करके बैठ गया कि वह दवा लिये बिना नही जायेगा। बात टालनेके लिये उसके लक्षण अफीमचीकी तरह देखकर बाबूजीने उसको होमियोपैथिक 'ओपियम' दे दिया। भगवानकी ऐसी कृपा हुई कि उसीसे वह बोलनेमें और सुननेमें सक्षम हो गया। इस घटनासे बाबूजी सभीके लिये बड़े आदरणीय-विश्वसनीय बन गये थे।

शिमलापालमें एक जगह धान सूख रहा था। बाबाने उसको भाड़में भुनवाया। उस धानकी लाईको बाबाने अपनी झोलीमें भरकर ले लिया। जितने लोग साथमें थे, सबको एक-एक दाना प्रसादके रूपमें दिया। जिसका धान था, बाबाने उसे धानके मूल्यसे कई गुना अधिक मूल्य दिलवाया। शिमलापालसे विदा होते समय सभीने उस पवित्र भूमिको बार-बार प्रणाम किया।

* * * * *

षोडश गीत

श्रीराधा-माधवके दिव्य प्रेमके रस-सागरकी सुधामयी लहरोंपर कभी संतरण करना और कभी अतल तलमें डूब जाना, यही बाबूजीके आन्तरिक जीवनका स्वाभाविक स्वरूप बन गया था। स्थिति साधारण हो अथवा असाधारण, श्रीराधा-माधवके लीला-रसका आस्वादन करना, वह भी जगतकी दृष्टिसे स्वयंको बचाते हुए निरन्तर आस्वादन करना, उनके सागरसे गम्भीर व्यक्तित्वका सुगुप्त अंग था। रस-सागरमें लहराते-लहराते जब रसानुभूति प्रगाढ़ हो जाती, तब तो उनके सब लौकिक कार्य-व्यापार हठात् बंद हो जाते और शरीर निस्स्पन्द हो जाता। इस मूर्तिवत् निस्स्पन्दावस्थामें एक मात्र श्वास-प्रश्वासके अतिरिक्त चेतनाके कोई अन्य लक्षण बाहर दिखलायी नहीं देते थे। इस स्थितिमें बाबूजी, केवल थोड़ी देरके लिये नहीं, घंटों-घंटों निश्चल-निश्चेष्ट पड़े रहते थे। अपनी इस गम्भीर भाव-समाधिकी स्थितिको लोगोंसे छिपाये रखनेके लिये बाबूजीने एक अच्छी शब्दावली गढ़ ली थी कि 'माथा खराब' हो गया है। भाव-समाधिकी स्थितिमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी उत्तरोत्तर अभिवृद्ध होनेवाली एक-से-एक सुन्दर छवि, एक-से-एक मधुर उद्गार, एक-से-एक ललित लीलाएँ, एक-से-एक

अनुपम दृश्य बाबूजीके समक्ष प्रत्यक्ष होते और उन अनेकानेक दिव्यातिदिव्य प्रसंगोंमेंसे किसी-किसीको बाबूजी स्वान्तः सुखाय शब्द-बद्ध कर लिया करते थे। यह शाब्दिक अभिव्यक्ति कभी गद्यमें और कभी पद्यमें होती थी। अपने इन स्व-रचित पदोंको एक नोटबुकमें बाबूजी लिख लिया करते थे और वे इस नोटबुकको सदा छिपा कर रखते थे। यह नोटबुक एक सुगुप्त मंजूषा थी कतिपय दिव्य-सरस-प्रत्यक्ष प्रसंगोंकी।

सम्भवतः सन् १९६० ई. के श्रीराधाष्टमी-महोत्सवकी बात है। महोत्सवकी विशद तैयारी चल रही थी। प्राकट्य-दिवसके चार-पाँच दिन पहले एकान्तके क्षणोंमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी कोई अनूठी लीला बाबूजीके समक्ष आविर्भूत हुई। आत्म-निवेदनके भावपूर्ण दृश्योंका दर्शन एवं रसपूर्ण उद्‌गारोंका श्रवण तो पहले भी हुआ था, परंतु आजकी झाँकी तो अनिर्वचनीय रूपसे अभूतपूर्व थी। आज एक दूसरेके प्रति पूर्ण आत्म-निवेदन करते हुए उन महाभाव-रसराज श्रीराधा-माधवके पारस्परिक संलापकी वह झाँकी सर्वथा लोकोत्तर तथा सीमातीत मधुर थी। उस असाधारण माधुर्यके रससे बाबूजीका तन-मन अत्यन्त सराबोर था, अत्यधिक विभोर था। उस असाधारण स्थितिके किंचित् शमित होनेपर बाबूजीने अपनी नोटबुक उठायी तथा लिखे गये पदोंके संग्रहमेंसे उन्होंने सोलह पद अपनी रसानुभूतिके अनुरूप छाँट लिये, आठ पद प्रेम-प्रतिमा प्रिया श्रीराधाके भावोद्‌गारोंके और आठ पद प्रेम-मूर्ति प्रियतम श्रीकृष्णके भावोद्‌गारोंके। छाँटे हुए सोलह पदोंका क्रम उस दृष्ट झाँकीके अनुसार इस रीतिसे सजाया गया कि सर्वप्रथम पदमें प्रियतम श्रीकृष्ण अपने प्रेमोद्‌गार प्राणाराध्या श्रीराधाके प्रति निवेदित करते हैं और तदुपरान्त द्वितीय पदमें प्रियतमा श्रीराधा अपने प्रेमोद्‌गार प्राणाराध्य श्रीकृष्णके प्रति। प्राण-प्रिया श्रीराधाके प्रेमोद्‌गारको सुनकर प्राण-प्रियतम श्रीकृष्ण तृतीय पदमें पुनः प्रेमोद्‌गार व्यक्त करते हैं और चतुर्थ पदमें पुनः प्रेम-प्रतिमा श्रीराधा आत्म-निवेदन करती हैं। इस क्रमसे दोनों परम प्रेमी-प्रेमास्पद एक दूसरेके प्रति अपने-अपने प्रेमोद्‌गारोंका पारस्परिक निवेदन करते हैं। इन सोलह पदोंमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवका पारस्परिक वार्तालाप है, जिसमें काम-गन्ध-शून्य तत्सुखमयी प्रीतिके अनूठे रूपका दर्शन मिलता है। निवेदित प्रेमोद्‌गारोंमें भावका स्तर क्रमशः गहनसे गहनतर, गहनतरसे और अधिक गहनतर होता चला जाता है। अधिकाधिक गहनतर होते-होते अन्तिम सोलहवें पदमें परमोज्ज्वल प्रीतिका ऐसा चिन्मय स्वरूप उद्भासित हो

उठता है, जो 'महाभाव'की स्थितिका दुर्लभ उदाहरण है।

उस श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके अवसरपर वृन्दावनधामसे कई भक्त गायक भी पधारे थे। बाबूजीके निर्देशानुसार एक विशिष्ट कार्यक्रम आयोजित हुआ। प्रेम-प्रतिमा श्रीराधाका एक अति विशाल चित्र एक स्थानपर खड़ा कर दिया गया तथा कुछ हटकर दूसरे स्थानपर खड़ा कर दिया गया प्रेम-मूर्ति श्रीकृष्णका भी एक वैसा ही अति विशाल चित्र। एक गायकको नन्दनन्दन श्रीकृष्णके चित्रके पीछे तथा एक गायकको वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके चित्रके पीछे बैठा दिया गया। कार्यक्रमके आरम्भ होनेपर सोलह पदोंके बंधानके अनुसार पहले श्रीकृष्ण-चित्रके पार्श्व-गायकको पद-गान करना था, इसके बाद श्रीराधा-चित्रके पार्श्व-गायकको। इस प्रकार बारी-बारीसे सोलह पदोंका गायन होना था।

निर्धारित समयपर बाबूजी कार्यक्रममें पधारे तथा बाबूजीके साथ-साथ बाबा भी। भक्तगण तो कार्यक्रममें पहलेसे ही विराजित थे। बाबा-बाबूजीके आसन ग्रहण करनेपर सोलह गीतोंके गायनका कार्यक्रम आरम्भ हुआ। पूर्व-प्रदत्त निर्देशके अनुसार एक-एक करके सोलह पद गाये गये। सोलहों पदोंके गायनसे सुख तो सभी उपस्थित भक्तोंको मिला, पर बाबाकी स्थिति तो दूसरी ही थी। 'थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह'। इन पदोंको सुनकर बाबा तो स्तम्भित रह गये। हीरेकी पहचान और परख जौहरी ही कर पाता है। विवेचनातीत एवं मात्र-भाव-गम्य भाव-राज्यके अचिन्त्य-अनिर्वचनीय उच्च भावोंकी सरल भाषामें इतनी सरस अभिव्यक्तिको देखकर बाबाके आनन्द और आश्चर्यकी सीमा नहीं थी।

सोलह गीतोंके गायनका कार्यक्रम पूर्ण हो गया और उस वर्षकी श्रीराधाष्टमीका महोत्सव भी सानन्द सम्पन्न हो गया। बादमें बाबाने बाबूजीसे कहा – वन्दना और पुष्पिकाकी आप और रचना कर दें। सोलह पदोंके आरम्भमें वन्दना और अन्तमें पुष्पिकाको जोड़ दें। वन्दना-पुष्पिकासे इन सोलह पदोंको सम्पुटित करके आप इसे छपवा दें और फिर मुझे दे दें।

बाबूजीने वैसा ही किया। वन्दनाके पाँच दोहोंकी और पुष्पिकाके पाँच दोहोंकी रचना करके बाबूजीने सोलह पदोंके आरम्भमें वन्दनाको तथा अन्तमें पुष्पिकाको जोड़ दिया। वन्दना-पुष्पिका-सहित सोलह पदोंकी पुस्तिकाका नाम रखा गया 'श्रीराधा-माधव-रस-सुधा'। गीताप्रेससे प्रकाशित इस पुस्तिकाको लोग षोडश गीतके नामसे ही जानते हैं।

बाबाके मनमें रह-रहकर ऐसे भाव उठ रहे थे कि यह कैसा संयोग

घटित हो गया कि अत्यन्त दुर्लभ वस्तु आज हस्तगत है। भगवत्कृपाका यह अप्रतिम उदाहरण है। जगतके लोग भले ही षोडश गीतकी गरिमाको नहीं समझ पायें, परंतु इससे क्या हुआ? वस्तुका वस्तु-गुण समझ या सम्मानकी अपेक्षा नहीं रखता। अपने वस्तु-गुणके कारण यह षोडश गीत तो स्वयंकी गरिमासे गरिमान्वित है। बाबा यही चाहते थे कि इस षोडश गीतका अधिक-से-अधिक प्रचार हो, प्रचार हो इसलिये कि जगतको ज्ञात हो सके कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णका प्रेम कितना शुचितम, कितना अनुपम, कितना दिव्य, कितना समर्पणपूर्ण है और प्रचार हो इसलिये भी कि प्रेमके इस आदर्श रूपको अपने सामने रखकर प्रेम-पथके साधक अपनी साधनामें प्रवृत्त हों तथा दिव्य भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कर सकें।

प्रेम-पथके साधकोंको विशेष प्रकाश मिले तथा प्रेमासव-छके रसिकोंको विशेष सुख मिले, इस दृष्टिसे बाबाने षोडश गीतके पाठको बड़ा महत्त्व प्रदान किया। मध्य रात्रिके उपरान्त दो बजेसे लेकर साढ़े चार बजेतककी समयावधिके सम्बन्धमें ऐसा कहा जाता है कि यह दिव्य वेला सिद्ध संतोंके गुप्त रूपसे विचरण करनेकी, अधिकारी-जनोंपर अनुग्रहकी वर्षा करनेकी तथा एकाग्र मनसे ईश्वरका स्मरण करनेकी होती है। बाबाके मनमें यह स्फुरणा उदित हुई कि कोई मुझे इस दिव्य वेलामें दो बजेसे लेकर साढ़े-चार बजेतक अर्थात् कुल अढ़ाई घंटेतक प्रतिदिन षोडश गीत सुनाया करे। भाई श्रीनटवरलालजी गोस्वामी (साधु श्रीकृष्णप्रेमजी महाराज) को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ और कई वर्षोंतक वे नित्य-निरन्तर निष्ठापूर्वक निशान्त वेलामें बाबाको षोडश गीत सुनाते रहे। इस प्रसंगसे प्रेरणा लेकर कई साधकोंने इस दिव्य वेलामें अढ़ाई घंटेतक षोडश गीतके पाठका नित्य-नियम ले रखा है।

षोडश गीतके प्रचारके लिये बाबाने अनेक कार्यक्रम अपनाये तथा उनको मूर्त रूप प्रदान करनेके लिये अपूर्व प्रयास किया। भारतके कोने-कोनेमें षोडश गीत पहुँच सके, इसके लिये बाबाने अनेक विद्वानोंद्वारा षोडश गीतका कई भाषाओंमें अनुवाद करवाया। संस्कृत, उड़िया, तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, सिंधी, उर्दू आदि अनेक भाषाओंमें षोडशगीतका अनुवाद हुआ ही; अँगरेजी, जर्मन, फ्रेंच तथा रशियन भाषाओंमें भी अनुवाद करवाया गया, जिससे षोडशगीतका प्रचार भारतकी सीमाके बाहर भी हो सके। षोडशगीतका पद्यात्मक अनुवाद संस्कृत भाषामें

हुआ, जिससे अहिन्दी भाषा-भाषी लोग, जो संस्कृत समझते हैं, वे अर्थ समझते हुए षोडशगीतका गायन कर सकें और प्रीति-रसकी मधु धारामें बह सकें।

विदेशी भाषाओंमें हुए अनुवादका भारतके बाहर सम्मान भी हुआ। अमेरिकामें कैलिफोर्नियाके विलयर-लेक-हाई-लैंड स्थित दी फ्री काम्युनियन चर्च (THE FREE COMMUNION CHURCH) में ईसाई मतावलम्बी बन्धु स्वयं-प्रेरणासे षोडशगीतके अँगरेजी अनुवादका उपयोग अपनी उपासनामें करते हैं। अपने एक पत्रमें इन ईसाई बन्धुओंने षोडशगीतके रचयिताके जीवनके बारेमें जिज्ञासा व्यक्त की थी। इसी पत्रमें उन्होंने बाबूजीके 'गोपी प्रेम' नामक पुस्तकके अँगरेजी अनुवादके मुद्रणकी अनुमति प्राप्त करनी चाही थी। इसी प्रकार जर्मनीके एक प्रकाशकने अपने देश जर्मनीमें ही षोडशगीतके जर्मन अनुवादको स्वेच्छासे पुनः मुद्रित किया।

षोडशगीतका जिस प्रकार अनेक भाषाओंमें गद्यात्मक-पद्यात्मक अनुवाद हुआ, उसी प्रकार उसपर व्याख्यात्मक साहित्य भी लिखा गया। बाबाने पद्यात्मक व्याख्याको लिखवानेका शुभारम्भ ग्यारहवें पदसे किया है, षोडशगीतके प्रारम्भसे नहीं। सर्वप्रथम ग्यारहवें पदकी ही व्याख्या क्यों की गयी, इसके पीछे एक विशेष कारण है, जिसका उल्लेख आगे आयेगा। चार-चार पंक्तियोंका एक-एक चौपदा, इस प्रकारके अढ़ाई सौ चौपदोंमें बाबाने व्याख्या लिखवायी है। बाबाके मनमें जितने भाव उमड़ते थे, वे सब भाव इन अढ़ाई सौ चौपदोंमें नहीं सिमट पाये। एक बार बाबाने बताया था कि यदि अढ़ाई सौ चौपदोंकी एक इकाई मान ली जाये तो इस प्रकारकी सत्तरह-अट्ठारह इकाइयोंकी रचना हो सकती थी। ग्यारहवें पदकी व्याख्या हो जानेके बाद सम्पूर्ण षोडशगीतकी व्याख्या करनेकी बात बाबाके मनमें उभरी, अतः वे आरम्भसे व्याख्या लिखवाने लगे। षोडशगीतके आरम्भमें वन्दनाके पाँच दोहे हैं। शायद दो-तीन दोहोंकी व्याख्या लिखवायी होगी कि फिर लिखवाना स्थगित हो गया। बाबूजीका स्वास्थ्य अत्यधिक खराब हो जानेसे बाबाका अधिक समय उनकी परिचर्या तथा चिकित्साकी सँभालमें जाने लगा। जब बाबूजी नित्य-लीलामें लीन हो गये, तब तो उसके बाद लिखवानेका

भाव ही सर्वथा विसर्जित हो गया।

षोडशगीत-मन्दिरकी स्थापना करना बाबाकी अपनी सूझ थी। षोडशगीतके अट्ठारह पदोंको बाबाने एक विशेष धातुके पत्रपर उत्कीर्ण करवाया। साढ़े-अट्ठारह इंच लम्बे तथा ग्यारह इंच चौड़े, इस आकारके तेरह धातु-पत्रोंपर बड़ी कलात्मक रीतिसे सम्पूर्ण षोडशगीत खुदवाये गये। उत्कीर्ण होकर जब ये षोडशगीत गोरखपुर आये तो इनको बाबूजीके कमरेमें ससम्मान विराजित किया गया। प्रत्येक धातु-पत्रको अलग-अलग पीत वस्त्रसे आवेष्टित किया गया। बाबूजीके पावन कमरेसे धातु-पत्रोत्कीर्ण षोडशगीतकी शोभा-यात्रा निकली। पीत-वस्त्र-आवेष्टित एक-एक धातु-पत्र एक-एक भक्तके शीशपर विराजित था। इस शोभा-यात्रामें युगल रसिक संत बाबा-बाबूजी साथ-साथ चल रहे थे। हरिनाम संकीर्तनके मधुर स्वरसे तथा वाद्योंके मधुर नादसे सारा वातावरण गुञ्जित हो रहा था। बाबूजीके कमरेसे यह शोभा-यात्रा चलकर गीतावाटिकाके समक्ष स्थित नयी कोठीकी छतपर उस कमरेमें आयी, जहाँ इन षोडशगीत-धातु-पत्रोंको पधराना था। अति सुन्दर काष्ठ-आलमारीमें षोडशगीतके तेरह धातु-पत्रोंको आदरसहित प्रस्थापित किया गया तथा इनका सविधि पूजन हुआ। षोडशगीत-मन्दिरमें इन धातु-पत्रोंकी विग्रह रूपमें प्रतिष्ठा सम्भवतः सन् १९६३ ई. में हुई। कुछ भक्तोंने ताम्र-पत्रोंपर उत्कीर्ण कराकर तथा विग्रह रूपमें पधराकर षोडशगीतको अपनी नित्य अर्चनामें स्थान दे रखा है।

कई स्थानोंपर षोडशगीतको संगमरमर पत्थरपर खुदवाकर दीवालोंपर लगवाया गया। भारतके चार प्रधान धामोंमेंसे पूर्व दिशामें स्थित श्रीजगन्नाथपुरीके मुख्य मन्दिर श्रीजगन्नाथमन्दिरमें उड़िया अनुवाद सहित मूल पद लगे हुए हैं। इसी प्रकार वृन्दावनके अति विख्यात श्रीराधारमणमन्दिरमें ब्रजभाषा अनुवाद सहित मूल पद लगे हुए हैं। बाबाके प्रयाससे ही उक्त मन्दिरोंके अधिकारियोंसे षोडशगीतके संगमरमर पत्थरोंको लगवानेकी अनुमति प्राप्त हो सकी। इसके अतिरिक्त और भी कई स्थानोंपर ये पद पत्थरपर खुदवा करके लगवाये गये। बाबा जहाँ श्रीगिरिराजजीकी नित्य परिक्रमा करते थे, वहाँ भी घेरेकी दीवालपरके पत्थरपर ये षोडशगीत उत्कीर्ण हैं।

श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके अवसरपर षोडशगीतको बाबाने जब सर्वप्रथम सुना था, तब श्रीराधा एवं श्रीकृष्णके विशाल चित्रोंके पीछे बैठे हुए पार्श्व गायकोंने गाकर सुनाया था। इस गायनको और भी अधिक स्वाभाविकता प्रदान करनेके लिये, इतना ही नहीं, इस षोडशगीतमें 'प्राण-प्रतिष्ठा' कर देनेके लिये बाबाने सन् १९६३ ई. में ही एक और विशेष आयोजन किया। बाबाकी रुचिके अनुसार वृन्दावनधामके श्रीश्रीरामजी शर्माकी रासमण्डलीको आमन्त्रित किया गया और उनकी रासमण्डलीके द्वारा षोडशगीतकी बड़ी सुन्दर रासलीला अभिनीत हुई। 'प्राण-प्रतिष्ठा' की यह पद्धति बड़ी अद्भुत है और अपने ढंगकी अकेली है। इस प्रकारसे प्राण-प्रतिष्ठाका विधान तो पहली बार ही देखने-सुननेको मिला। जब कोई नया मन्दिर बनता है तो उसमें नवीन मूर्ति स्थापित की जाती है और फिर शास्त्रानुमोदित विस्तृत पूजन-प्रणालीके द्वारा उसमें भगवत्ताकी प्रतिष्ठा की जाती है, जिससे वे विग्रह भगवद्विग्रहके रूपमें जन-जन द्वारा पूजित हो सकें और भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण कर सकें। इसी प्रकार बाबाने षोडशगीतकी रासलीलामें चन्द्रिका एवं मोरमुकुट-मुरली-धारी श्रीप्रिया-प्रियतम द्वारा इन पदोंका गायन करवा करके प्राण-प्रतिष्ठाका विधान ही पूर्ण किया है। यदि वह विधान शास्त्रानुमोदित है तो यह विधान संतानुमोदित है। परम सिद्ध संत बाबूजीकी कृति होनेसे ये षोडशगीत स्वतः सिद्ध पद हैं। इन पदोंमें बाबूजीकी परम सिद्ध वाणी है, अतः इस प्रकारके विधानकी कोई आवश्यकता नहीं थी, मात्र जन-जनकी आस्थाको परिपुष्ट करनेके लिये बाबाने इस विधानका आश्रय लिया।

षोडशगीतकी सुन्दर रासलीलाका क्रम चार दिनतक चला। रासलीला-स्थलीपर चारों दिन दीपावली मनायी गयी। चतुर्दिक् पथको वन्दनवारसे सजाया गया था। पथके दोनों ओर गुलालसे चौक पूरे गये थे और दोनों ओर शुद्ध घृतके शत-शत दीपक जलाये गये थे। वृक्षोंकी-पौधोंकी डाल-डालमें और प्रसरित लताओंकी शाखाओंमें विद्युत प्रकाशकी झालरें लटक रही थीं, उनका टिमटिमाता हुआ रंग-बिरंगा प्रकाश बड़ा आकर्षक लग रहा था। प्रत्येक दिन चार-चार पदका गायन

हुआ। वन्दना और पुष्पिकाके पदोंका गायन तो सखियों एवं समाजियोंद्वारा हुआ, परंतु मूल पदोंका गायन श्रीप्रिया-प्रियतमके द्वारा हुआ। श्रीप्रिया अथवा श्रीप्रियतमके द्वारा पदका गान हो चुकनेके उपरान्त गोस्वामीपाद श्रीचिम्मनलालजीके द्वारा उन पदोंका अर्थ व्रजभाषामें कहा जाता था। लीला-मंचके सामनेका स्थान दर्शकोंसे तो भरा ही पड़ा था, परंतु इस रासलीलाके तो प्रधान रसिक दर्शक थे श्रीबाबा-बाबूजी। षोडशगीतकी रासलीलाके आरम्भ होनेपर जब श्रीप्रिया-प्रियतम हाव-भाव सहित ललित कण्ठसे षोडशगीतका पद गाते, उस समय मानो रसका सागर उमड़ने लगता। चार दिनतक ऐसा लगता रहा मानो नित्य धामकी निकुञ्ज लीला यहीं अवतरित हो उठी है। इन चारों दिनों एक खुमारी-सी दर्शकोंपर छायी रही। जब साधारण दर्शकोंकी यह स्थिति थी, तब अनुपम-रस-रसिक-युगल श्रीबाबा-बाबूजीका कहना ही क्या? भीतर-बाहर-सर्वत्र अनोखी सरसता परिव्याप्त हो रही थी। अपनी-अपनी पात्रताके अनुसार सभी रस-मग्न थे। सारा कार्यक्रम बड़ा सरस और स्वाभाविक लग रहा था। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि 'वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस'।

* * *

षोडशगीतसे सम्बन्धित एक विशेष प्रसंग बाबाके जीवनमें घटित हुआ, 'यहाँ उसका उल्लेख कर देना आवश्यक है, जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि षोडशगीतके ग्यारहवें पदको बाबा क्यों अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं? एक बारकी बात है कि बाबा अपने भाव-राज्यमें दिव्य महाभाव-श्रीराधाभावसे गहरे भावित थे। न जाने ऐसी कौन-सी बात भावराज्यमें घटित हो गयी थी कि बाबा 'मान'की स्थितिमें प्रतिष्ठित हो गये। बाबाके मनमें और नयनमें प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके प्रति घना उपालम्भ था। उपालम्भके भावोंमें लहराते हुए बाबा शौचालय गये। शौचालयकी ओर जाते समय और वहाँसे लौटते समय भी बाबा रह-रह करके प्राणप्रियतम व्रजेन्द्रनन्दनको घना उपालम्भ दे रहे थे, केवल मन-ही-मन नहीं, वे कभी-कभी बोल भी पड़ते थे। शौचालयसे आनेके बाद स्नान करके बाबाने अपने कुटीरमें

प्रवेश किया।

बाबाका कुटीर तो नितान्त निर्जन एवं नीरव स्थलपर है ही, पर उस कुटीरके भीतर एक और एकान्त कक्ष है। इस एकान्त कक्षमें किसीका प्रवेश नहीं। बाबाके निजी परिचारक श्रीभगतजी और श्रीरामस्नेहीजी अवश्य उस कक्षमें जाते हैं, पर वह भी केवल स्वच्छ करनेके लिये। इन दो निजी परिकरोंके अतिरिक्त अन्य किसीका भी प्रवेश उस कक्षमें है ही नहीं। इसी एकान्त कक्षमें पूजावाली एक चौकोर चौकी है, जिसपर बाबा बैठा करते थे। बाबाने कक्षके अन्दर ज्यों ही पैर रखा, बाबाने देखा कि उस पूजावाली चौकीपर षोडशगीत पुस्तिकाका ग्यारहवाँ पद खोलकर रखा हुआ है। यह देखकर बाबाके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। बाबा खड़े-के-खड़े रह गये। खड़े-खड़े बाबा चकित दृष्टिसे यही सोचने लगे कि षोडशगीत पुस्तिकाको खोलकर और उसका ग्यारहवाँ पद निकालकर यहाँ किसने रखा? इस कक्षमें किसीका भी प्रवेश नहीं है। कक्षमें प्रवेशका अधिकार केवल श्रीभगतजी और श्रीरामस्नेहीजीको है, परंतु वे दोनों ऐसा कर सकते नहीं, करनेकी वे सोच ही नहीं सकते। फिर ऐसा किसने किया? किसने इस ग्यारहवें पदको खोलकर चौकीपर रखा है?

बाबा मूर्तिवत् खड़े-खड़े बहुत अधिक उधेड़-बुनमें पड़े हुए थे। अधिकाधिक चिन्तनके साथ-साथ बाबाके मनकी उलझन अधिकाधिक बढ़ती चली जा रही थी। बहुत-बहुत सोचनेपर भी कोई समाधान नहीं मिल पा रहा था, तभी बाबाके सामने प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दन प्रकट हो गये। बाबासे उनकी दृष्टि चार हुई। वे बाबासे वीणा-विनिन्दित स्वरमें कहने लगे — प्राणाधिके! इस ग्यारहवें पदको देखो तो सही।

अब रहस्य, रहस्य नहीं रह गया था। सारी उलझन समाप्त हो गयी थी तथा अब बात स्पष्ट थी कि पूजावाली चौकीपर षोडशगीत पुस्तिकाका ग्यारहवाँ पद कैसे खुला रखा था। बाबाने उत्तर दिया — मैं क्या देखूँ?

बाबाके शब्दोंमें कुछ क्षोभ था। मनमें जो उपालम्भ था, उस भाव-प्रवाहकी क्षुब्धता बाबाके स्वरको आच्छादित किये हुए थी। बाबाके स्वरमें जितना क्षोभ था, प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके स्वरमें उतना

माधुर्य। बड़े मधुर स्वरमें मनुहार करते हुए प्राणप्रियतमने कहा – तनिक देखो तो सही।

प्राणप्रियतमके प्यारभरे अनुरोधको स्वीकार करना ही था। अनुरोधके अनुसार बाबा ग्यारहवाँ पद पढ़ने लगे – मेरा तन-मन सब तेरा ही, तू ही सदा स्वामिनी एक।

दिव्य राधा-भाव-भावित बाबाको ऐसा लगने लगा मानो इस पदके मिससे मेरे प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दन अपनी प्रीति-परवशता व्यक्त कर रहे हैं। इतना ही नहीं, अपना अनन्त प्यार उड़ेलते चले जा रहे हैं। पदका वाचन करते-करते बाबाके मनका सारा उपालम्भ तुरंत उड़ गया और पदके समाप्त होते-होते बाबाका सारा अस्तित्व ही उस दिव्य प्यारकी अनन्त लहरियोंमें बह चला।

पदके समाप्त होते ही बाबाने सरस हृदयसे और सजल नयनसे तुरंत गाया – हौं तो दासी नित्य तिहारी।

यह षोडशगीतका दूसरा पद है। अब थी न तो मानकी स्थिति और न उस स्थितिकी स्मृति। वहाँ तो अब उमड़ रहा था प्यारका अद्भुत सागर। बाबाके जीवन-कालमें जब भी दशमी तिथिको परिक्रमाके समय षोडशगीतका पाठ होता था, तो सम्पूर्ण षोडशगीतका पाठ हो जानेके बाद सबसे अन्तमें पुनः ग्यारहवें पदका, तदुपरान्त द्वितीय पदका पाठ किया जाता था। इन दोनों पदोंके पुनः पाठ किये जानेके पीछे हेतु यही था और है कि बाबाके जीवनके इस दिव्य प्रसंगके कारण इन दोनों पदोंका विशेष महत्त्व है और यही कारण था कि बाबाने व्याख्या लिखवानेके कार्यका आरम्भ ग्यारहवें पदसे किया।

षोडश गीतोंमें जिन भावोंकी अभिव्यक्ति हुई है, उन भावोंका उद्भव बाबूजीकी भाव-समाधिकी दशामें होनेके कारण षोडशगीतकी महिमा अनन्त है और बाबाके जीवनकी प्रत्यक्ष घटनासे सम्बद्ध होनेके कारण यह अनन्त महिमा अनन्तानन्त गरिमासे मण्डित हो गयी है। ऐसे महिमामय षोडशगीतका गायन-श्रवण, चिन्तन-मनन जितना ही हो, उतना ही उत्तम है, जिससे उस परमानन्दपूर्ण प्रेमकी दिव्य झाँकी मिल सके और उस परमानन्दपूर्ण प्रेमके दिव्य प्रदेशमें प्रवेश मिल सके।

* * * * *

गुरुजनों को वन्दन

पूज्य बाबूजी किसी कार्यसे कलकत्ता गये हुए थे। वापसी यात्राके समयका यह प्रसंग हावड़ा स्टेशनके प्लेटफार्मका है। बाबूजीके साथ बाबा गोरखपुर आ रहे थे। स्टेशनपर आनेके बाद बाबाको ट्रेनके वातानुकूलित डिब्बेमें बैठा दिया गया। प्लेटफार्मपर उन लोगोंकी बड़ी भीड़ थी, जो बाबूजी-बाबाको विदा करनेके लिये आये थे। आये हुए लोगोंमें धनी-गरीब, सभ्रांत-साधारण सभी प्रकारके लोग थे। उस भीड़को चीरकर कोई सामान्य वेष-भूषावाला व्यक्ति वातानुकूलित डिब्बेतक आनेकी बात सोच ही नहीं सकता था। जिसमें बाबा बैठे हुए थे, उस डिब्बेमें काँचके बड़े-बड़े शीशे लगे थे। अचानक बाबाकी दृष्टि दूर खड़े एक व्यक्तिपर पड़ी। वे थे बाबाके भाई। वे आयुमें बड़े थे और बाबाके लिये पूज्य थे। बाबा अपनी बर्थपरसे उठे तथा डिब्बेके दरवाजेकी ओर बढ़े। बाबाका दरवाजेसे नीचे उतरना सबके लिये बड़े कौतूहलका विषय हो गया कि बाबा क्यों उतरे हैं तथा किधर जा रहे हैं। बाबा उतरकर सीधे उनकी ओर बढ़ने लगे। सभीने बाबाके लिये मार्ग दे दिया। उनके पास जाकर बाबाने श्रीचरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। प्यारके मारे वे बड़े भाईजी कुछ बोल न सके, उनके नेत्र सजल हो गये। ट्रेनके चलनेमें अभी दस मिनट बाकी थे। बाबाने उनका हाथ पकड़ा और हाथ पकड़े-पकड़े वातानुकूलित डिब्बेकी ओर बढ़े।

बाबा उनको अपने साथ ले आये और वातानुकूलित डिब्बेमें बर्थपर बैठाया। वे (बड़े भाई) इतने अधिक भावाभिभूत हो गये थे कि बोल नहीं पा रहे थे। उनकी आँखोंसे आँसुओंका प्रवाह झर-झर बह रहा था। जबतक वे बर्थपर रहे, बाबा ही उनके सम्मानमें बोलते रहे। प्यारके आवेगमें बोलना उनके लिये असम्भव-सा हो रहा था, पर वत्सलतासे भरा हुआ उनका हाथ बाबाकी पीठपर फिर रहा था। बाबाका व्यक्तित्व चाहे जितना महान हो, वे भले एक सिद्ध संत हों, पर उनके लिये तो अपने छोटे भाई ही थे और वात्सल्याधिक्यमें उनकी फिरती हुई अँगुलियाँ तथा उनकी झरती हुई आँखें क्षण-प्रति-क्षण कह रही थीं – यह कितने गौरवकी बात है कि मेरा भाई अध्यात्म-जगतका एक उज्ज्वल रत्न है और महान होकर भी वह मुझे नहीं भूला नहीं है। मेरा भाई अधिक-से-अधिक आध्यात्मिक उन्नति करे, समुन्नत होते-होते सर्वोच्च सफलता प्राप्त करे, यही मेरे अन्तरकी अन्तरतम मंगल

कामना है।

दस मिनटके बीतते क्या देर लगती है। इंजनके सीटी देनेपर वे ट्रेनसे नीचे उतरे। बाबाने उनका पुनः अभिवादन किया।

इस प्रसंगको सुनाकर बाबा कहा करते थे – बड़ोंका आशीर्वाद जीवनमें बड़ा काम करता है। उनके आशीर्वादसे जीवनके कठिनतम कार्य सरल हो जाते हैं। गुरुजनोंके प्रति किये गये वन्दनने ही महाभारतके युद्धमें युधिष्ठिरको विजय दिला दी। अपनी मर्यादा, अपनी परम्परा, अपने सदाचार, अपने शिष्टाचारको कभी नहीं छोड़ना चाहिये। पश्चिमी सभ्यताके प्रभावमें आर्य-परम्परादिकी जो अवहेलना आज हो रही है, वह तो आत्मघाती नीति-रीति है।

* * * * *

कमली मैया

कमली मैयाका बाबाके प्रति पुत्र-भाव था। वह बड़ी भोली थी, बड़ी सरल थी। सचमुच, उसे छल-छद्म-छिद्र छू नहीं गया था। उसकी बाबाके प्रति ऐसी श्रद्धा, ऐसी आत्मीयता उमड़ी कि वह अपने पुत्रोंको छोड़कर, परिवारकी सुख-सुविधाको छोड़कर बाबाके पास यहीं गीतावाटिकामें ही रहने लग गयी।

गीतावाटिकामें रहते समय कमली मैयाने एक नियम-सा बना लिया था। दोपहरके समय जब बाबा शौचके लिये जाते तो वह देखनेके लिये आ जाती। उस समय बाबा अपनी पुरानी कुटियामें रहते थे। पुरानी कुटियासे मेरा प्रयोजन उस कुटियासे है, जिसमें बाबा, बाबूजीके महाप्रस्थानके पूर्व रहा करते थे। बाबूजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके बाद बाबाने उस कुटियामें प्रवेश किया ही नहीं। फिर तो बाबा एक वृक्षके नीचे खुली कुटियामें रहने लगे। कमली मैया वाली बात उस समयकी है, जब बाबाका निवास पुरानी कुटियामें था। इस पुरानी कुटियाके पास ही २० –२५ गजकी दूरीपर एक टिनशेड था। कमली मैया प्रतिदिन दोपहरके समय आती और इसी टिनशेडमें बैठ जाती। बाबा शौचके लिये कुटियासे कब निकलेंगे, यह समय निश्चित तो था नहीं। वे निकलते थे कभी बारह बजे, कभी साढ़े-बारह बजे और कभी एक बजे, पर कमली मैया बारह बजेके पहले ही आकर बैठ जाती और तबतक बैठी रहती, जबतक बाबा शौचके लिये चले नहीं जाते। बाबाको यह

पता भी नहीं रहता था कि वह आकर बैठी है। बाबा अपनी कुटियासे निकलते, आँखें नीची किये हुए चलते, धीरे-धीरे चलते हुए शौचालय जाते और फिर शौचादिसे निवृत्त होकर अपनी कुटियामें लौट आते। एक दिन बाबाने देख लिया कि कमली मैया बैठी है। बाबाने उससे पूछा तो पता चला कि वह नित्य दोपहरके समय दर्शन करनेके लिये आती है। यह सुनकर किंचित् उपालम्भ देते हुए बाबाने कहा – अरी मैया! यदि तू मुझे तनिक भी आभास दे देती कि तू नित्य मेरे लिये आकर बैठती है तो मैं दृष्टि उठाकर तुझे देख लिया करता।

तब कमली मैयाने कहा – बाबा! मैं केवल तुम्हारे लिये ही थोड़े आती हूँ। मैं तो एक और मतलबसे आती हूँ।

बाबाने पूछा – तेरा और क्या मतलब है, जिसके लिये तू आती है?

वह नितान्त-निरीह-मति अत्यधिक-सरल-हृदया मैया अपने सहज ढंगसे कहने लगी – बाबा! जब तुम शौचके लिये जाते हो न, तब तुम्हारे पीछे-पीछे बड़ा सुन्दर-सा, बड़ा सलोना-सा एक छोटा नीला बालक चलता रहता है। उसके सिरके लहरदार बाल, उसके पैरोंकी पायजेब, उसके चलनेका ढंग, उसके शरीरका रंग, उसके कमरकी तागड़ी, उसके हाथका हिलना, ये सब आँखोंको- कानोंको बड़े ही प्यारे-प्यारे लगते हैं। मैं तो उस नन्हें-से बालकको देखनेके लिये आती हूँ।

कमली मैयाकी बात सुनकर बाबा तो चकित रह गये। यह तो एक उदाहरण है। उसको ऐसी अनुभूतियाँ सदा ही होती रहती थीं। स्वयं मुझसे उसकी बात हुई है। एक बारकी बात है। दोपहरके समय वह टिनशेडके नीचे बैठी थी। मैंने उससे विनोद करना आरम्भ कर दिया – मैया! तू आजकल कृपण हो गयी है, कुछ खिलाती-पिलाती नहीं।

कुछ देरतक ऐसे ही विनोद चलता रहा, फिर पारस्परिक बातचीतने सरस रूप ले लिया। वह मुझसे कहने लगी – बेटा! देख! यह पेड़ है न! इस पेड़के पत्ते-पत्तेमें राधाकृष्ण हैं। वे तुमको दिखलायी नहीं देते क्या? मुझे तो दीख रहे हैं।

* * *

कमली मैयाकी एक बेटी थी आशा। प्रयत्न करनेके बाद भी आशाकी

सगाई कहीं हो नहीं पा रही थी। एक दिन उसने बाबासे कहा – बाबा! आशाकी सगाई नहीं होगी?

बाबाने उत्तर दिया – मैं तेरा बेटा अभी जीवित हूँ, तब तू क्यों चिन्ता करती है?

बाबाके मुखसे ऐसे शब्द निकलते ही कमली मैयाने कहा – अब मैं बेफिक्र हो गयी।

और सचमुच ही वह निश्चिन्त हो गयी। इसके बाद विधिने ऐसी बात बनायी कि इस प्रकार आश्वासन दिये जानेके लगभग चार-पाँच दिन बाद ही आशाबाईकी सगाई गाजीपुर शहरमें हो गयी। सगाई हो जानेके कुछ दिन बाद विवाहकी तिथि भी निश्चित हो गयी। आशाबाईका विवाह गोरखपुरमें नहीं, कलकत्तेमें हुआ था। विवाहकी तिथि समीप आनेपर कमली मैयाने बाबासे एक दिन कहा – बाबा! क्या आप आशाके विवाहमें नहीं आइयेगा?

बाबाने कहा – मैया! मैं आऊँगा तो जरूर, पर मैं यह नहीं कह सकता कि तू मुझे देख पायेगी अथवा नहीं। यदि तेरे पास 'वे आँखें' होंगी तो मुझे देख भी लेगी।

सौभाग्याकांक्षिणी आशाका विवाह हुआ कलकत्तेमें और बाबा थे गोरखपुरमें। जब गोरखपुरसे बाबूजी ही नहीं गये, तब बाबाका जाना होता ही कैसे? बाबूजी जाते तो उनके साथ बाबाका जाना हो पाता। विवाह हो जानेके बाद कमली मैया गोरखपुर आयी और बाबासे कहने लगी – बाबा! विवाहवाले दिन आप भी पधारे और भाईजी भी पधारे। भात भरनेका समय था। मैंने देखा कि आप आये हैं तथा एक स्थानपर आसन लगाकर बैठ गये हैं। भात दोपहरके समय भरा गया था और आप दोपहरके बादसे तबतक बैठे रहे, जबतक वर-वधूके फेरोंका काम पूरा नहीं हो गया। भात भरनेसे लेकर भाँवर देनेके समयतक आप मुझे बैठे हुए दिखलायी देते रहे। इसी प्रकार भाईजी आये, भाईजी और आप दोनों ही साथ-साथ आये थे। श्रीभाईजीने भात भरनेके समय मुझको चुनरी ओढ़ाई, बहुत बढ़िया चुनरी और फेरोंके कामतक विराजे रहकर विवाहके कार्यमें सहयोग देते रहे।

कमली मैयाको यह अनुभूति हुई, कोई एक मिनट या दो मिनटके लिये नहीं, अपितु लगातार अपराह्न कालसे लेकर मध्य रात्रितक। इन्हीं कमली मैयाका सन् १९६१ ई. के मई मासमें देहान्त हो गया।

'सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग', उसी तरह वह

पाञ्चभौतिक शरीरका परित्याग करके इस संसारसे विदा हो गयी। शामके समय बाबाकी भिक्षाके लिये चावलोंको चुग रही थी, चावलोंसे भरी थाली अपने हाथमें लिये कंकड़-कचरा साफ कर रही थी, उसी समय उसके पेटमें हलका-सा दर्द हुआ। हाथकी थाली नीचे रखकर वह कमरेकी जमीनपर ही लेट गयी। लेटनेके कुछ देर बाद ही उसने सदाके लिये विदाई ले ली। उसके लेटते ही डाक्टर बुलाया गया, डाक्टर साहब पहुँच पायें, इसके पहले ही जा चुकी थी। यह सूर्यास्तका समय था। उसके जाते ही गीतावाटिकामें शोक छा गया।

बाबूजी और बाबा एक कार्यसे प्रयाग गये हुए थे। जिस समय कमली मैयाका देहान्त हुआ, उसी समय वे प्रयागसे प्रस्थान करनेवाले थे। तुरंत प्रयाग फोन किया गया। पता चला कि वे लोग ट्रेन द्वारा प्रयागसे प्रस्थान कर चुके हैं। ट्रेन प्रयागसे चलकर वाराणसी होते हुए गोरखपुर आती है। ट्रेनके वाराणसी पहुँचनेमें अभी कुछ देर थी। तुरंत ही वाराणसीमें एक व्यक्तिको फोन करके कहा गया – आप वाराणसी स्टेशनपर जाकर ट्रेनमें बाबा-बाबूजीसे मिलें और उनको कमली मैयाके निधनका समाचार दें। फिर यह बतायें कि हमलोग शव लेकर गोरखपुरसे वाराणसी पहुँच रहे हैं, बाबा-बाबूजी वाराणसी उतर जायें और कलकत्तेसे कमली मैयाके लड़के वाराणसी आ जायेंगे। फिर बाबा-बाबूजीकी उपस्थितिमें श्रीगंगाजीके तटपर मैयाका अन्तिम संस्कार उनके पुत्रके हाथों वाराणसीमें हो जायेगा। बाबा-बाबूजीसे बात कर चुकनेके बाद हमलोगोंको फोनसे उनकी सहमतिकी सूचना तुरन्त दें।

हम लोगोंका फोन पाकर वे व्यक्ति तुरन्त वाराणसी स्टेशनपर गये। वे वहाँ ट्रेनपर बाबा-बाबूजीसे मिले तथा उन्हें सारी बातें बतायी। बाबाने उनसे कहा – आप तुरन्त गोरखपुर फोन कर दें कि शवको वाराणसी नहीं लाना है। अन्तिम संस्कार गोरखपुरमें ही होगा। हमलोग इसी ट्रेनसे सबेरे गोरखपुर पहुँच रहे हैं।

उन व्यक्तिने वाराणसीसे फोन करके यह समाचार हमलोगोंको बता दिया। समाचार सुनकर हमलोगोंको आश्चर्य हो रहा था, आश्चर्य इसलिये कि कमली मैयाके परिवारके लोग कलकत्तेसे वाराणसी बहुत आसानीसे प्रातःकालतक पहुँच जाते, किंतु गोरखपुर पहुँच सकना किसी भी प्रकारसे

सम्भव नहीं था। बाबाका यह निर्णय हमलोगोंको बड़ा अटपटा लग रहा था और मन-ही-मन कह रहे थे कि बाबाका खेल बड़ा विचित्र है। अस्तु, सबेरे बाबा-बाबूजी गीतावाटिका पहुँचे। शव-यात्राकी तैयारी होने लगी। अब प्रश्न था कि चितामें अग्नि कौन देगा। बाबाने कहा – मैं दूँगा।

यह सुनते ही बाबूजी क्षुब्ध हो गये और क्षुब्ध स्वरमें ही बोले – यह कौन-सा धर्म है कि संन्यासी अग्निका स्पर्श करे और इससे भी आगे बढ़कर किसीकी चितामें अग्नि दे?

बाबाने बड़े शान्त स्वरमें कहा – आद्य शंकराचार्यजीने भी तो अपनी माँकी चितामें अग्नि दी थी।

बाबूजीने कहा – वह तो उनकी जन्मदात्री माँ थी, पर यह क्या आपकी जन्मदात्री माँ है? फिर उनके द्वारा जो अग्नि दी गयी, वह प्रदत्त वचनके अनुसार असाधारण परिस्थितिमें उनके लिये एक विशेष धर्म था। क्या असाधारण परिस्थितिकी बातको साधारण स्तरपर उतार लाना चाहिये?

बाबाने फिर उसी शान्त स्वरमें कहा – विशेष धर्म नहीं, परम-विशेष-धर्मके अनुसार यह मेरी जन्मदात्री माँसे भी बढ़कर है।

बाबूजीने निराश स्वरमें कहा – आपको समझा सकना कठिन है।

इस प्रेम-कलहका स्वरूप था बड़ा अनोखा। बाबा अपने प्रेम-धर्मका निर्वाह करनेके लिये प्रीतिकी वेदीपर अपनी प्रतिष्ठा, अपनी मर्यादा, अपने सर्वस्वकी बलि चढ़ानेके लिये कटि-बद्ध थे। अब अर्थ लगा कि बाबाने शवको वाराणसी लानेसे क्यों मना कर दिया था। इसके साथ ही बाबूजीके मनमें भी अपनी धर्म-बहिन कमली मैयाके प्रति स्नेहकी एक धारा प्रवाहित हो रही थी, जो प्रच्छन्न थी। शवके साथ बाबा तथा बाबूजी श्मशान भूमि राजघाट गये। बाबाने चिताको अग्नि दी और बाबाके साथ-साथ बाबूजीने भी अग्नि दी, बाबाने चरणोंकी ओरसे और बाबूजीने मस्तककी ओरसे। जबतक शव पूर्णतः भस्मीभूत नहीं हो गया, तबतक अर्थात् तीन घंटेसे भी बहुत अधिक समयतक बाबूजी और बाबा, दोनों ही राजघाटपर रहे। बाबूजी तथा बाबा, दोनोंने अपने-अपने ढंगसे प्रेम-धर्मका निर्वाह किया।

गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है –

'प्रीति कि रीति न जाति बखानी'।

* * * * *

दधि-कर्दमोत्सव का उल्लास

गीतावाटिकामें जो श्रीराधाष्टमी महोत्सव मनाया जाता है, उसमें अष्टमी तिथिको श्रीराधा-जन्म एवं नौमी तिथिको दधि-कर्दमका उल्लास रहता है। प्रसंग सम्भवतः सन् १९६२ का है। दधि-कर्दमोत्सव वस्तुतः बधाई दिवस है, जिस दिन सभी व्रजवासी वृषभानुनन्दिनीके प्राकट्यपर अपने अन्तरके आह्लादको व्यक्त करते हैं। गीतावाटिकामें बाबा द्वारा मनाये जानेवाले श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें श्रीबजरंगलालजी बजाज पद गाकर बधाई दिया करते थे। उन्हें बाबाका ढाढ़ी कहना चाहिये। जबतक उनका शरीर रहा, वे ही मुख्य ढाढ़ी होते थे।

श्रीबजरंगजी जबलपुरके रहनेवाले थे। घर-गृहस्थीका सारा दायित्व अपने बालकोंको सौंपकर आप स्थायी रूपसे बाबूजीके पास गीतावाटिका चले आये थे। श्रीराधा-सुधा-निधिका वे सदा पाठ किया करते थे। उनका हृदय इतना रसार्द्र था कि श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-पदोंको सुनते समय उनके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा बह चलती थी। जबतक पदोंका सरस गायन होता, उनके कपोल भीगते ही रहते थे। आपका बाबूजीके प्रति सख्य-भाव था। बाबूजीके हितका चिन्तन और उनके सुखका संयोजन-सम्पादन, यही श्रीबजरंगजीकी सभी चेष्टाओंका प्रेरक तत्त्व था। बाबूजी जब कभी गम्भीर हुआ करते थे तो उनको प्रफुल्ल बनानेका श्रेय श्रीबजरंगजीको ही मिलता था। गम्भीर स्वभाववाले बाबूजीको कमरेका एकान्त अधिक अच्छा लगा करता था, पर कमरेके उस गम्भीर एकान्तसे उत्सवके उल्लासके मध्य बाबूजीको ले आनेका कार्य अनेक बार श्रीबजरंगजी ही कर पाते थे। श्रीबजरंगजी दधि-काँदोके दिन ढोलक बजाकर और ढाढ़ीके पद गाकर बधाई दिया करते थे, अतः लोगोंने उनको 'ढोलकियाजी' कहना आरम्भ कर दिया था। इतना ही नहीं, बाबाके अधिकांश परम ऐकान्तिक कार्यक्रमोंमें ढोलकियाजीकी उपस्थिति रहा करती थी और उनका काम था उन परम ऐकान्तिक गायन-कार्यक्रमोंमें ढोलक बजाकर ठेका देना।

किंचित् आवश्यक था, अतः बीचमें श्रीबजरंगजीका परिचय देना पड़ गया। बाबूजीकी बड़ी चाह रहा करती थी कि श्रीराधाष्टमी महोत्सव

सुन्दर प्रकारसे मनाया जाये, जिससे सच्चे भावग्राही और नखशिख रसमय बाबाको परम सुख मिले। अबतक नौमी तिथिको दधि-कर्दमोत्सवमें कोई भी गायक किसी प्रकारका भी अवसरोयुक्त बाह्य वेष धारण नहीं किया करता था, साधारण वेषमें ही पद-गायन कर दिया जाया करता था। उस समयतक रासमण्डलीका श्रीराधाष्टमी महोत्सवपर कभी आना हुआ ही नहीं था। इस बार नयी बात यह हुई कि उत्सवके एक-दो दिन पहले बाबूजीने ठाकुर श्रीघनश्यामजीको बुलाकर कहा— नौमी तिथिको बजरंगजी ढाढ़ीके रूपमें खड़े होकर बधाईवाले पद गायेंगे, उनको पदके भावानुकूल वस्त्र पहना देना। उस वेषमें पद-गान करनेसे भावोद्दीपन अधिकाधिक होगा और बाबाके मनको बड़ा भायेगा।

बाबूजीका इतना संकेत पर्याप्त था। ठाकुरजी बाजार गये तथा कई व्यक्तियोंको धारण कराने योग्य शृङ्गारका आवश्यक सामान खरीद लाये। इस वर्ष श्रीराधाष्टमीपर श्रीहरिवल्लभजी तथा श्रीश्रीरामजी भी आये थे। श्रीबजरंगजी थे मुख्य ढाढ़ी, उनके साथमें श्रीहरिवल्लभजी और श्रीश्रीरामजी ढाढ़ीके रूपमें खड़े थे और ठाकुरजी बने ढाढ़ीके बालक। नौमी तिथिको दधि-काँदोके उत्सवमें ये सभी लोग उचित शृंगार धारण करके मण्डपमें आये। वेष धारण करके उत्सवमें आनेका यह सर्वप्रथम अवसर था। वेष-सहित आने भरकी देर थी, फिर क्या कहना? उत्सवमें रंग आ गया। रंग केवल आ ही नहीं गया, अपितु रंग उमड़ने लगा, रंग बहने लगा। मण्डपमें खड़े होकर ढाढ़ी लोग बधाईके पद गाने लगे। उपस्थित भक्त लोग तो यह दृश्य पहली बार देख रहे थे, देख-देख करके आश्चर्य कर रहे थे कि आज क्या हो रहा है। आश्चर्य-चकित भक्तगण रस-रंगके प्रवाहमें बहे जा रहे थे। 'परम प्रेम लोचन न अघाता'। मंचपर बैठे हुए बाबूजीके आनन्दकी सीमा नहीं थी। बाबा तो बाबूजीके पार्श्वमें नेत्र बन्द किये हुए निस्स्पन्द ध्यानस्थ बैठे हुए थे।

ढाढ़ी-बालक (ठाकुर श्रीघनश्यामजी) के मनमें आज उमंग उफन रहा था, उसके मनमें चुलबुली मची हुई थी, पर उसके अन्तरको चैन कहाँ? बाबा जबतक नेत्र बन्द किये ही बैठे रहेंगे, तबतक तो सारा

आनन्द ही फीका है। जबतक इस नवीन दृश्यको बाबा अपनी आँखोंसे देख न लें और देखकर भावमें बह न जायें, तबतक तो सारा सुख ही ओछा है, ओछा ही नहीं, सर्वथा थोथा है। ढाढ़ी-बालकने सोचा कि आज मजा तब आये, जब बाबाके हाथसे बधाई मिले। इस विचारके मनमें आते ही ढाढ़ी-बालक मंचपर चढ़ गया और बाबाको प्रणाम करके बोला – बाबा! बाबा! ओ बाबा! दण्डोत। बधाई है! बधाई है!!

बाबा 'भीतर'से 'बाहर' आये और फिर उन्होंने अपने नेत्र खोले। नेत्र खोलकर कुछ विस्मय, कुछ जिज्ञासा, कुछ कौतूहल भरी दृष्टिसे देखने लगे कि यह कौन-सा बालक मेरे पास आकर खड़ा हो गया है और बधाई दे रहा है। ढाढ़ी बालकने मूँछ लगा रखी थी, अतः बाबा पहचान नहीं सके। बाबूजी समझ गये कि बाबा पहचान नहीं पाये हैं। बाबासे बाबूजीने कहा – बाबा! यह अपना घनश्याम है न!

फिर तो बाबा ठठाकर हँस पड़े और प्यारमें अत्यधिक उमड़कर उसी क्षण एक प्यारभरी चपत ढाढ़ी-बालकके गालपर लगा दी।

ढाढ़ी-बालकने कहा – बाबा! इस गालपर भी।

बाबाने फिर दूसरे गालपर भी मीठी-सी चपत लगा दी। जिन-जिनने यह दृश्य देखा, उनका हृदय भर आया, उनकी आँखें भर आयीं।

'प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े'।

ढाढ़ी-बालक तुरंत मंचपरसे उतरकर अपने ढाढ़ी-परिवारमें सम्मिलित हो गया और लगा नाच-नाच करके रिझाने। बाबाके मनमें भी आह्लाद इतना उमड़ा कि वे उठकर खड़े हो गये। बाबाको मंचपर खड़े देखकर ढाढ़ी-परिवारको अपार आनन्द हुआ, उनके हृदयका उल्लास जितना और जैसा उमड़ा, उसको शब्दोंमें व्यक्त कर सकना सर्वथा असम्भव है। उनके उल्लासका सागर आज अमर्यादित रूपसे चंचल हो उठा था। वे झूम-झूम कर, नाच-नाच कर, मटक-मटक कर बधाईके पद गा रहे थे। सारा दृश्य विचित्रसे विचित्र होता चला जा रहा था। 'अति विचित्र कहि जात सो नाहीं'। बाबाके अन्तरका भावाह्लाद रह-रह करके कभी हास्य, कभी मुस्कान, कभी जय-जय स्वर, कभी बाहूत्तोलनके रूपमें व्यक्त हो रहा था। ढाढ़ी-बालक पुनः मंचपर आया और मटक कर बाबासे कहने लगा – लाली जायी है न!

उसकी बधाई दो। केवल प्यारभरी चपतसे काम नहीं चलेगा।

मंचपर व्रज-मण्डलकी रचना बनायी गयी थी। उसमें तुलसी-कानन भी बनाया गया था। बाबाने तुरंत झुककर कई तुलसी-दल तोड़ लिये। ढाढ़ी-बालकने अपना मुँह खोल दिया और उसके मुँहमें बाबाने तुलसी-दल अपने हाथसे डाल दिया। बाबाने फिर तुलसी-दल श्रीबजरंगजी, श्रीहरिवल्लभजी और श्रीश्रीरामजीको भी दिया। बाबासे प्राप्त तुलसी-दलको चाँदीके थालमें रखकर और उस थालको हाथपर रखकर ढाढ़ी-बालकने आज एक निराला ही नृत्य प्रस्तुत किया। दर्शकगण चकित हो रहे थे कि आज यह क्या देखनेको मिल रहा है। किसीको सुध-बुध नहीं थी कि हम कहाँ बैठे हैं। सभी गीतावाटिकाको, यहाँतक कि स्वयंको भी विस्मृत कर चुके थे। आजकी रसमयता वस्तुतः वर्णनातीत है। 'कहिअ काह कहि जाइ न बाता'।

इसी बीच एक और नवीन बात घटित हो गयी। अपनी सेवा-परायणता, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, संकोची प्रकृति, मित-भाषिता आदिके कारण रामसनेहीजी हम सभीके लिये बड़े आदरणीय हैं। ऐसे गम्भीर स्वभाववाले रामसनेहीजी पंडालमें एक किनारे बैठे हुए यह सब देख रहे थे। बाबाको मंचपर खड़े देखकर वे बहुत अधिक भावोर्मिल हो उठे। बाबा तो सदा ही मंचपर ध्यानस्थ बैठे रहा करते थे, यह तो पहला ही प्रसंग है कि बाबा मंचपर खड़े हुए हों और उनके हृदयका आस्लाद उछल रहा हो। भाव-सागरकी इन दिव्य तरंगोंपर रामसनेहीजीका सारा अस्तित्व लहराने लगा। भाव-विभोर रामसनेहीजी अपने स्थानपरसे उठे और बैठे हुए भक्तोंकी भीड़को चीरते हुए मंचकी ओर बढ़ने लगे। लोगोंको बड़ा कौतूहल हो रहा था कि प्रकृतिसे अति गम्भीर रामसनेहीजी आज क्या करने जा रहे हैं। लोगोंकी दृष्टि रामसनेहीजीपर टिक गयी। रामसनेहीजीने मंचपर जाकर बाबाके कर-पल्लवको थाम लिया और विनम्र वाणीमें उन्होंने अनुरोध किया — आप मंचसे उतरकर नीचे ढाढ़ी-परिवारके बीच नृत्य-मण्डलमें पधारें।

रामसनेहीजीके इस अनुरोधको सभी लोग बड़ी चकित दृष्टिसे देख रहे थे। बाबा भली-भाँति समझ रहे थे कि रामसनेहीजी इस समय 'दूसरे राज्य' में हैं, अतः प्यारसे थपथपा करके उन्हें अपने पास ही बिठा लिया।

रामसनेहीजीकी इस भावमयताने वातावरणकी रसमयताको और अधिक घनीभूत बना दिया। गायन एवं नृत्यका उल्लास ढाढ़ी-परिवारमें बढ़ता ही चला जा रहा था। बाबाके पास ही श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला बैठे हुए थे। बाबाने उनके हाथकी कलाई-घड़ी उतरवाकर बधाईकी न्योछावरके रूपमें दे दी। पंडालका सम्पूर्ण वातावरण जयकारकी ध्वनिसे भर आया। बाबाको इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ। बाबाने माँसे एक स्वर्ण-चूड़ी माँग ली। माँने अपनी कलाईमेंसे स्वर्ण-चूड़ी उतारकर बाबूजीके हाथपर रख दी और बाबाने बाबूजीके द्वारा ही वह स्वर्ण-चूड़ी बधाईमें मुख्य ढाढ़ीको दिलवा दी। अब जय-जयकारका तुमुल नाद पंडालमें चारों ओर फूट पड़ा। न तो ढाढ़ी-परिवारका बधाई-उल्लास कम हो रहा था और न बाबाकी उमंग घट रही थी। बाबाके पास ही बाबूजी भी खड़े थे। बाबाने बाबूजीकी धोतीका अगला भाग अपनी ओर खींच लिया और उस धोतीका लगभग दो-तीन अँगुल छोर फाड़कर हरिवल्लभजीको दे दिया। उस छोरकी माला बनाकर हरिवल्लभजीने उसे अपने गलेमें पहन लिया। ऐसी ही छोर-प्रसादी सभी ढाढ़ियोंको भी मिली।

छोर-प्रसादी पानेवालोंके सौभाग्यकी सराहना एक-एक व्यक्ति मुक्त कण्ठसे कर रहा था। दधि-काँदोके बाद जब ठाकुरजी बाबासे मिले तो बाबाने कहा – ठाकुर! आज तो लोकातीत दिव्य दृश्य उपस्थित हो गया था। पन्द्रह-बीस साल पहलेकी मेरी भावनाको आज श्रीपोद्दार महाराजने मूर्त रूप प्रदान कर दिया। जो बात बीस साल पहले मैं सोचा करता था, वही आज मेरे सामने प्रत्यक्ष थी। एक बात और, पोद्दार महाराजकी धोतीका जो छोर मिला है, उसे तू साधारण मत समझना। वह छोर परम दिव्य वस्तु है।

फिर बाबाने उस छोरपर एक छन्द बनाकर ठाकुरजीको सुनाया। वह छन्द इस प्रकार है –

साँवर सुन्दरकी धोतीकी वह एक किनारी फाड़ी है।
तुम तुच्छ न वस्तु उसे समझो, उसमें व्रज-रसकी खाड़ी है।।
राधा-करसे खोदी, उसके कण-कणमें कृष्ण खिलाड़ी है।
अवगाहन मत्त सहित उसके जो पहरे नीली साड़ी है।।

इस प्रकार कुटियाके एकान्त स्थलमें बाबासे ठाकुरजीकी बातचीत

होती रही। ठाकुरजीने बाबाको सारा वृत्त बताया कि किस प्रकार बाबूजीने बाजारसे वस्त्र खरीदनेके लिये प्रेरित किया था। इसके बाद ठाकुरजीने बाबासे कहा – बाबा! हमलोग तो युगल निधिके उपासक हैं।

बाबाने पूछा – तुम्हारे इस कथनका अर्थ क्या?

ठाकुरजीने कहा – बाबा! जिस प्रकार हमें बाबूजीके वस्त्रकी छोर-प्रसादी मिली, उसी प्रकारसे हमें आपके वस्त्रकी भी प्रसादी मिलनी चाहिये।

बाबाने कहा – ठाकुर! तू भला कहाँ अवसर चूकनेवाला है?

बाबाने फिर अपनी भी वस्त्र-प्रसादी प्रदान की। यह दुर्लभ वस्त्र-प्रसादी श्रीबजरंगजी, श्रीहरिवल्लभजी तथा ठाकुरजीको मिली।

* * * * *

स्विटजरलैंड निवासी श्रीरुडोल्फ सुएस

स्विटजरलैंडके ल्यूजर्न नगर निवासी श्रीरुडोल्फ सुएस (Shri Rudolf Suess) के जीवनके आरम्भसे ही हृदयमें आध्यात्मिक पिपासा भरी हुई थी, अतः चौबीस वर्षकी आयुमें ये छोटी मोटर कार द्वारा अपने देशसे भारत-यात्राके लिये निकल पड़े तथा मार्गमें पड़नेवाले कई देशोंकी सीमाओंको पार करते हुए आप १९६३ की १७ मार्चको गीतावाटिका पहुँचे।

श्रीसुएस हिन्दी भाषा तो जानते ही नहीं थे। उनका जर्मन, स्विस तथा फ्रेंच भाषापर अच्छा अधिकार था। अँग्रेजी भाषाका ज्ञान साधारण स्तरका कहा जा सकता है। प्रथम बातचीतके बीच उन्होंने बतलाया – मैं ऐसे व्यक्तिकी खोजमें भारत आया हूँ, जो मुझे भगवत्प्राप्ति करा दे या मुझे आत्मसाक्षात्कार करा दे।

मैं उनको बाबाके पास ले गया। तब बाबा अपनी पुरानी कुटियामें रहते थे। बाबाने बड़े सम्मान सहित उनसे आसन ग्रहण करनेके लिये कहा। इतना ही नहीं, श्रीसुएसका हाथ अपने हाथमें लेकर वन्दन भी किया।

बाबाका दर्शन करते ही श्रीसुएसकी विचित्र भावदशा हो गयी।

बाबासे उनकी बहुत देरतक बातचीत होती रही। बाबाके पाससे आनेके बाद श्रीसुएसने बतलाया था –

Now I know I have found this man, Swami Chakradharaji is the personification of the highest aim, every human being is searching for and at the same time he is the personification of the path, that leads to this aim. I have found, what I have been yearning for and at this moment my yearning is stilled. I feel complete harmony and I am put into a blessed state, beyond all words. The hour, that I was permitted to spend with Swamiji, belongs to the deepest experiences of my life.

(जिसकी खोज थी, वह व्यक्ति मुझे प्राप्त हो गया है। मानव मात्रके लिये जो उच्चतम प्राप्तव्य लक्ष्य हो सकता है, उसके साकार स्वरूप स्वामी श्रीचक्रधरजी हैं। इतना ही नहीं, उस प्राप्तव्यकी प्राप्ति करा देनेवाले साधनपथके भी साकार स्वरूप हैं। जिस वस्तुकी मुझे तीव्राभिलाषा थी, वह मुझे मिल गयी है। मेरी लालसा अब शान्त है। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं एक अनिर्वचनीय दिव्यानन्दमें निमग्न हूँ।)

श्रीसुएस इस पहली भेंटमें बाबाके पास लगभग एक घण्टा रहे। बाबासे अंग्रेजी भाषामें जो आध्यात्मिक बातचीत हुई तथा उनकी जो भावमयी संनिधि मिली, वे श्रीसुएसके जीवनके लिये स्मरणीय क्षण थे। इस पहली भेटमें ही बाबाने उनसे कहा था – मैं जानता था कि आप मुझे मिलेंगे।

इस भेंटसे श्रीसुएस इतने भाव विभोर थे कि रात्रिके समय उन्हें निद्रा नहीं आ सकी। दूसरे दिन १८ मार्चको बाबासे विदाई लेकर श्रीसुएस नेपालकी ओर चले गये। चलते-चलते उन्होंने बाबासे सम्बन्धित एक वाक्य अपनी डायरीमें लिख लिया – 'I shall never forget him.' अर्थात् मैं उन्हें कभी नहीं भूलूँगा। गीतावाटिका आकर उनको अपार आनन्द हुआ, किन्तु यहाँके आध्यात्मिक वातावरणसे विदाई लेते समय उन्हें व्यथा भी कम नहीं हुई।

श्रीसुएस १७ मार्च १९६३ को आये और एक दिन बाद १८ मार्चको यहाँसे नेपालके लिये चले गये। १८ मार्चसे लेकर ७

नवम्बरतक वे नेपाल तथा भारतके विभिन्न स्थानोंका भ्रमण करते रहे।

अब उन्हें स्वदेश स्विटजरलैंड जाना था। जानेके पहले पुनः बाबाके दर्शनार्थ वे गोरखपुर आये। आये ८ नवम्बर १९६३ को। संयोगसे इस दिन छोटी श्रीराधाष्टमी थी।

एक कमरेमें सामान रखकर तथा स्नानादिसे निवृत्त होकर श्रीसुएस बाबाके पास आये। उन्होंने बाबाको भारतीय रीतिसे प्रणाम किया। बाबाने बैठनेके लिये आसन दिया। श्रीसुएससे सारी बातचीत अँगरेजी भाषामें हुई। बातचीतमें बाबाने श्रीसुएससे कई बार कहा – मैं और आप एक ही हैं। मैं आपके साथ हूँ, आपके भीतर हूँ। आपके प्रत्येक अणु-अणुमें हूँ।

इस वाक्यको अनेक बार कहनेका प्रयोजन यही था कि इस तथ्यपर उनका मन टिक जाय और उनके मनमें विश्वास स्थिर हो जाय। बातचीत करते-करते बाबा अपने आसनसे उठे, अपनी कुटियाके भीतर गये और एक छोटी-सी पोटली उठा लाये। उस पोटलीको खोलकर बारह छोटे-छोटे पूजा-वस्त्र निकाले। उन पूजा-वस्त्रोंको रुमाल कहा जा सकता है। उन बारहों रुमालोंपर कम या अधिक संख्यामें कुमकुमके चिह्न थे। उन पूजा-वस्त्रोंको क्रम-क्रमसे बाबाने फैला दिया तथा श्रीसुएससे कहा – इन बारहोंमेंसे किसी एकको चुन लें।

ज्यों ही एक पूजा-वस्त्र श्रीसुएसने उठाया, बाबाने प्रसन्न मनसे सराहना करते हुए कहा – आपने चुनाव बड़ा सुन्दर और सही किया है। इसे सुरक्षित रखियेगा। इसको सुरक्षित रखना अनेक प्रकारसे उपयोगी सिद्ध होगा। यह पूजा-वस्त्र आपके आध्यात्मिक जीवनके लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

सचमुच यह पूजा-वस्त्र श्रीसुएसकी जीवननिधि बन गया। इस पूजा-वस्त्रको वे सदा साथ रखते। भविष्यमें वे जब-जब भारत आये, इसे अपने साथ लाये। यह पूजा-वस्त्र उनके लिये बाबाकी संनिधिका एक प्रतीक था।

आज श्रीराधाष्टमी है, अतः बाबाने अपने कर-कमलसे प्रसादका एक कौर श्रीसुएसको खिलाया। श्रीसुएसके आनन्दकी सीमा नहीं थी। आनन्दातिरेकमें आज रातको भी नींद नहीं आ सकी। अगले दिन ९ नवम्बरको सारे दिन श्रीसुएस बाबाके समीप रहे। सारे दिन आनन्दकी

लहरोंपर उतराते-बहते रहे। वह आनन्द वर्णनातीत है। उस दिन शामको उन्हें विदा होना था। विदाईके प्रसंगने उनके भीतर एक टीस उत्पन्न कर दी। तब उन्हें आश्वस्त कर देनेके लिये बाबाने कहा – हम दोनों फिर मिलेंगे।

उत्सुकतापूर्वक श्रीसुएसने पूछा – कब?

बाबाने कहा – उचित समयके आते ही आपको स्वतः जानकारी हो जायेगी।

जब श्रीसुएसने विदाई ली तो बाबाने एक हिन्दी गीतके भाव बतलाये। वह इस प्रकार है –

तू मेरे स्मितकी आभा अपने साथ लेता जा।

तू मेरे चिन्तनका नवनीत अपने साथ लेता जा। क्या तुमने देखा नहीं है कि रात्रिके घोर अन्धकारकी तनिक भी परवाह न करते हुए लघु-लघु सितारे मुस्कुराते रहते हैं? तब तुम बतलाओ कि तुम्हारे किसलयके समान कोमल अधरोंका उल्लास कुण्ठाकी जड़तासे विदलित क्यों है? यदि तुमको निर्जन पथपर चलना पड़ रहा है तो भयान्वित क्यों हो रहे हो? मार्ग-दर्शनके लिये तू मेरे जीवनकी ज्योति अपने साथ लेता जा।

तू मेरे स्मितकी आभा अपने साथ लेता जा।

तू मेरे अन्तरका सौरभ अपने साथ लेता जा। यदि मार्गमें चलते-चलते तेरे हाथका पथ-प्रकाशक दीपक अचानक बुझ जाता है और निशान्धकारकी सघनतामें पथानुसन्धान नहीं मिल पानेसे तेरे चरण स्तम्भित हो जाते हैं, तो तुम बतलाओ कि इस प्रतिकूलतामें भी तुम्हारी आस्था विचलित और तुम्हारे चरण विकलित क्यों हो रहे हैं? भले घनी निराशाकी कालिमाने तुमको पूर्णावृत कर लिया है, पर विश्वास करो, तिमिराच्छन्न मार्गमें जहाँ तुम्हारे चरण ठहर गये हैं, उसी स्थानपर मंजिल अपने आप आ जायेगी। लक्ष्य-सिद्धिके लिये तू मेरे आशीर्वादकी निधि अपने साथ लेता जा।

तू मेरे स्मितकी आभा अपने साथ लेता जा।

दिव्य और भव्य भावोंकी यह निधि श्रीसुएसके जीवनकी अलौकिक वस्तु थी। इसे प्राप्त करके श्रीसुएस अपने भाग्यकी सराहना करने लगे। उन्होंने बड़े भारी मनसे बाबासे विदाई ली। बाबा अपनी कुटियाके द्वारपर

खड़े रहे और तबतक खड़े रहे, जबतक श्रीसुएस दिखलायी देते रहे। श्रीसुएस बम्बई होते हुए अपने देश स्विटजरलैंड चले गये।

सन् १९६३ में श्रीसुएसकी बाबासे भेंट दो बार हुई। इसके बाद श्रीसुएस अपने देशसे बाबासे मिलनेके लिये सन् १९८९ और १९९१ में आये। वे बाबाके तिरोधान होनेके बाद भी १९९३ के फरवरी मासमें भाव-भरा हृदय लिये हुए आये। सम्भवतः सन् २००० के आस-पास श्रीसुएसका निधन हो गया। फिर श्रीसुएसकी धर्मपत्नी सन् २००२ में स्विटजरलैंडसे बाबाके श्रीविग्रहको प्रणाम करनेके लिये गीतावाटिका आयीं।

* * * * *

भगवती श्रीविष्णुप्रिया जन्मोत्सव

सं. २०२० वि. वसंत पंचमी, अर्थात् १९ जनवरी १९६४ के दिन बाबाने नदियाविहारी शचीनन्दन श्रीनिमाई पण्डितकी प्राणनिधि भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका जन्मोत्सव बड़े भावपूर्वक मनाया था। भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके प्रति श्रीजयदयालजी डालमियाका अत्यधिक भक्तिभाव है। प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीने महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवपर, श्रीलक्ष्मीप्रियापर, श्रीविष्णुप्रियापर तथा विष्णुप्रिया-निमाईपर प्रभूत साहित्यकी रचना की है। इन्हींकी बंगला भाषामें एक श्रेष्ठ रचना 'श्रीविष्णुप्रिया नाटक' है। इस नाटकके हिन्दी अनुवादकी पाण्डुलिपिका पूजन भी इसी वसंत पंचमीको हुआ। मेरा अनुमान है कि इस नाटकका बंगला भाषासे हिन्दीमें रूपान्तर स्वयं श्रीडालमियाजीने किया है, भले अनुवादका किंचित् संशोधन किसी अन्यसे करवाया गया हो। मेरा यह भी अनुमान है कि जिस प्रकार बाबाने 'सनातन शिक्षा'के अनुवाद और प्रकाशनके लिये श्रीडालमियाजीको प्रोत्साहित किया, उसी प्रकार 'श्रीविष्णुप्रिया नाटक'के अनुवाद और प्रकाशनका कार्य बाबा द्वारा श्रीडालमियाजीको सौंपा गया होगा। इस नाटकका पुस्तकाकार प्रकाशन तो सं. २०२१ वि. की रासपूर्णिमाको हुआ, पर जब इसके हिन्दी अनुवादकी पाण्डुलिपि तैयार हो गयी, उस समयकी बात है।

पाण्डुलिपिके तैयार होते ही बाबाने निश्चय कर लिया कि

सं. २०२० वि. की वसंत पंचमीके दिन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका और इस ग्रन्थका पूजन करना है तथा यह पूजन श्रीडालमियाजीसे करवाना है। वसंत पंचमी तो आयेगी दस-ग्यारह मास बाद, पर बाबाकी ओरसे अग्रिम तैयारी अभी से आरम्भ हो गयी। वसंत पंचमीसे आठ-नौ मास पूर्व एक दिन बाबाने मुझको बुलाया और मुझसे कहने लगे – आपको एक कविता लिखनी है। उसकी वर्ण्य-वस्तु तथा कथा-प्रवाह क्या होगा, वह मैं आपको अभी बतलाऊँगा। मेरे बतलाते समय आप न कोई प्रश्न पूछियेगा और न कोई जिज्ञासा करियेगा। मेरी बतलायी हुई बातोंमेंसे जितना स्मरण रह जाय, उतना पर्याप्त है। मेरे वर्णनके आधारपर जो कविता आप लिखें, उसे वसंत पंचमीके पूर्वतक कभी भी मुझे दिखलाइयेगा मत और यदि कविताकी रचना आपके द्वारा नहीं हो सके तो मनमें ग्लानि भी मत करियेगा। यदि आपने कविताकी रचना कर ली तो वसंत पंचमीके दिन अपनी कुटियाके एकान्तमें जयदयालजीको सुनवाऊँगा।

इस प्रकार अनेक प्रतिबन्ध लगाकर बाबा लगभग एक-डेढ़ घंटेतक लगातार बोलते-बतलाते रहे। मैं दत्त-चित्त होकर सुन रहा था, पर कितना स्मरण रख पाता। सुनी हुई बातोंमेंसे जितना मुझे स्मरण रह सका, वह भी दो-तीन मासमें विस्मृतिके गर्भमें चला गया। अभी तो बहुत समय है – ऐसा सोचकर तुरन्त रचना की नहीं और समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ स्मृति अधिकाधिक धूमिल होती चली गयी। छः-सात मास बाद तो कुछ भी याद नहीं आ रहा था। बाबा द्वारा वर्णित सम्पूर्ण कथा-प्रवाह ही पूर्णतः विस्मृत हो चुका था। मेरा मन बड़ा खिन्न हो गया। निराश और निर्बलका आधार प्रार्थना ही है। मैं मन-ही-मन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीकी बार-बार वन्दना करके उनसे प्रार्थना करने लगा। चार-पाँच सप्ताहकी सतत वन्दना-प्रार्थनाके उपरान्त जो भाव मनमें उभरे, वे ही कविताकी पंक्तियोंमें ढल गये। अपने प्रमाद और विस्मृतिपर मुझे बड़ी शर्म आ रही थी, पर अब मैं इसी बातसे ही सन्तोष कर रहा था कि साधारण स्तरकी कविताकी रचनाके हो जानेसे बाबाके सामने रिक्त-हस्त जानेवाली स्थिति नहीं रही।

बाबाके मनमें एक बहुत बड़ी समस्या थी श्रीविष्णुप्रियाजीके समक्ष निवेदित किये जानेवाले नैवेद्यके सम्बन्धमें। सब जानते हैं कि वे प्रातःकालीन दैनन्दिन पूजनादिके बाद एक पात्रमें कुछ चावल अपने सामने रखकर बैठती थीं और सोलह नामवाले मन्त्रको एक बार जप करके

चावलका एक दाना दूसरे पात्रमें डाल देती थीं। चावलके दानोंके साथ उनका यह जप अपराह्न काल तक चलता रहता। इस रीतिसे दूसरे पात्रमें जितने चावल संचित हो जाते, उसका ही रन्धन किया जाता और फिर वे सिद्ध भातसे अपने प्राणनाथ श्रीचैतन्यदेवको भोग लगाती थीं। इसमेंसे वे थोड़ा-सा प्रसादी भात स्वयं पातीं, शेष प्रसादान्न भक्तोंमें बाँट दिया जाता था। जिन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका समर्पित जीवन कठोर तपका, महान उत्सर्गका, दिव्य भावका मूर्तिमान स्वरूप था, उनके समक्ष निवेदित किया जानेवाला नैवेद्य भी तो परमातिपरम शुद्ध सात्त्विक होना चाहिये। इसके लिये बाबाको आवश्यकता थी परम पवित्र धनकी, जिससे नैवेद्य-निर्माणके लिये सामग्री खरीदी जा सके।

बाबाने अपने निकट आनेवाले प्रत्येक धनपतिसे कमाये गये धनकी शुद्धताके बारेमें पूछा तो बाबाको बड़ी निराशा मिली। सभी धनपतियोंने स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया कि *द्रव्यार्जनमें असत्य अथवा असद्भावका* किंचित् भी आश्रय लिया ही नहीं गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जो व्यापारी अथवा उद्योगपति आयकरकी चोरी नहीं करते, उनके द्वारा भी अपने कर्मचारियोंके प्रति कभी अन्यथा व्यवहार नहीं हुआ हो, यह स्वीकार करना सर्वथा असम्भव था। बाबाकी इस कसौटीको देखकर सारे धनपति स्वजनोंने अपनी-अपनी विवशता व्यक्त कर दी। जो सरकारी कार्यालयोंके साधु कर्मचारी थे अथवा नगरके महाविद्यालयके सुयोग्य प्राध्यापक थे, उन्होंने भी बाबासे अनुरोध किया। उन सभीसे बाबाका प्रश्न था कि क्या वे लोग डटकर-खटकर-जमकर पूरे समय अपना कार्य सदा करते रहे हैं। बाबाके प्रश्नोंकी झड़ीके सामने वे लोग भी विवशताका अनुभव करने लगे। बाबा हृदयसे चाहते थे कि भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके लिये जो नैवेद्य बने, उस नैवेद्यकी सामग्रीको परम पवित्र रीतिसे कमाये गये अत्यधिक शुद्ध रुपयोंसे खरीदा जाय।

बाबाकी परेशानीको देखकर गोस्वामीजी (श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) ने उनसे कहा — क्या आप मेरा वेतन इस पवित्र काममें ले सकते हैं?

गोस्वामीजीकी बात सुनकर बाबा कुछ देर तक मौन रहे और फिर बोले — आपके धनकी शुद्धता और पवित्रताके बारेमें संदेह करनेके लिये स्थान ही नहीं है। 'कल्याण-कल्पतरु' पत्रिकाका सम्पादन-कार्य स्वरूपतः

परम श्रेष्ठ कार्य है। आपके जीवनमें असत्यका अंश नहीं। आप छः घंटेके स्थानपर तेरह-चौदह घंटे कार्य प्रतिदिन करते हैं, यहाँतक कि आप रविवारको भी अवकाश नहीं लेते। अबतक मैंने जितने भी व्यक्तियोंसे बात की है, उन सभीमें आपका स्थान सर्वोपरि है। इतना होकर भी यहाँ मेरे लिये एक तथ्य विचारणीय है। पत्रिकाके सम्पादन-कार्यके द्वारा आप समाजमें ज्ञानका वितरण करते हैं और इस कार्यको करनेके बदलेमें आप मासिक वेतन लेते हैं। अब विचारणीय तथ्य यह है कि किसी ब्राह्मणके द्वारा ऐसा किया जाना क्या अनुमोदनीय है? अपने भारतवर्षके हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृतिके अनुसार समाजको ज्ञानका दान करनेवाले ऋषि तो आकाश-वृत्तिसे जीवन व्यतीत किया करते थे। कुछ देकर बदलेमें कुछ लेना, यह लेन-देन तो वणिक् वृत्ति है और अपने ऋषियोंका जीवन तो वणिक् वृत्तिसे सर्वथा शून्य रहा है। वे ज्ञानका दान निरपेक्ष भावसे करते थे। यदि आप वैश्य होते तो मैं आपका पवित्र धन सहर्ष स्वीकार कर लेता, किन्तु आप ब्राह्मण हैं, अतः अब मुझे सोचना पड़ रहा है कि आप द्वारा उपार्जित धन स्वीकार करूँ अथवा नहीं।

बाबाकी बात सुनकर गोस्वामीजी मौन हो गये। वैश्यके द्वारा उपार्जित धनको स्वीकार किया जा सकता है, यह सुनकर मैंने कुछ निवेदन करनेके लिये साहस किया। विनम्र शब्दोंमें मैंने बाबासे कहा— बाबा! मैं भी कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

बाबा श्रीविष्णुप्रियाजीकी अर्चनाके लिये जिस प्रकारका परम पवित्र धन चाह रहे थे और पद-पदपर जैसी निराशा मिल रही थी, ऐसी विषम मनस्थितिमें मेरे द्वारा कुछ भी निवेदन किया जाना एक दुस्साहस ही था, यह जानते हुए भी मुझसे निवेदन किये बिना रहा नहीं गया। मेरी बात सुनकर बाबाने पूछा — क्या कहना चाहते हैं?

बाबाने मुझसे पूछा ऐसे स्वरमें, जिसमें कुछ निराशा और कुछ उदासीनता थी। उनके स्वरमें चिरपरिचित सरसता न देखकर मैं साहस बटोर करके डरते-डरते अपनी बात कहने लगा। मैंने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया — बाबा! जब मैं सरदारशहरमें पढ़ाया करता था, तब कई वर्षतक मैं अपने हाथसे चरखे द्वारा सूत कातता रहा हूँ। मैं अपना कमरा बन्द कर लेता था। श्रीरासपञ्चाध्यायीका पाठ बोल-बोलकर करता रहता और सूत कातता जाता। इसमें प्रतिदिन लगभग ४५ मिनट लगते।

अभीतक मैंने किसीको बतलाया नहीं और बतलानेका साहस भी नहीं हुआ, पर सूत कातनेके पीछे भावना यह थी कि इस कते हुए सूतका वस्त्र बने और वह वस्त्र आपके धारण करनेके काममें आये। वह सारा सूत अभीतक मेरे पास पड़ा हुआ है। यह श्रम तो मैंने किया है और परम सात्त्विक उद्देश्यसे किया है। मेरा ऐसा अनुमान है कि इस सूतको बेचकर जो पैसा मिले, वह तो इस पूजनके कार्यमें आ ही सकना चाहिये।

बाबाने मुझसे पूछा – जिस कालेजमें आप पढ़ाते थे, वहाँ नियुक्ति-प्राप्तिके लिये क्या आपने किसीसे सिफारिश करवायी थी, जिसके फलस्वरूप कालेजमें कार्य करनेका अवसर आपको मिल गया और आपसे अधिक योग्य व्यक्ति निराश होकर चला गया?

मैंने पुनः कहा – बाबा! कम-से-कम मैं आपके सामने सत्य बोलूँगा। मैंने किसीसे भी सिफारिश नहीं करवायी थी। कालेजके प्रबन्धकों द्वारा समाचारपत्रमें रिक्त स्थानको विज्ञापित करवाया गया था। मैंने अपना प्रार्थना-पत्र भेज दिया और मुझे साक्षात्कारके लिये बुलवाया गया। मैं उनके लिये और वे मेरे लिये सर्वथा नवीन व्यक्ति थे। और भी कई व्यक्ति आये थे, पर उन लोगोंने नियुक्ति-पत्र अपनी स्वेच्छासे मुझे दिया।

इस विवरणसे बाबाको पूर्ण समाधान हो गया। बाबासे अनुमति मिलते ही सारा सूत एक स्वजनको बेच दिया गया। बेचनेसे जितना रुपया मिला, उसमेंसे रूईका मूल्य निकाल दिया गया। शेष पाँच-छः रुपये बचे। इन्हीं रुपयोंसे नैवेद्य-निर्माणके लिये चावल, बेसन, दही, नमक, हल्दी, जीरा, घी, कोयला आदि खरीदा गया और पूजनके लिये नैवेद्य निर्माणकी तैयारी होने लगी।

चावलको खरीदनेके बाद अब चावलके एक-एक दानेको सोलह नामवाले महामन्त्रसे अभिमन्त्रित करना था। सभी चाहते थे कि इस कार्यमें मुझे भी भाग लेनेका अवसर मिले, पर इस कार्यको करनेकी दृष्टिसे भी बाबाने मन-ही-मन एक विशेष निर्णय ले रखा था। जिसके हृदयमें महातपस्विनी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके त्रयतापहारी श्रीचरणोंमें सच्ची निष्ठा हो और जिसकी मति-रति उन परम विश्ववन्दनीयाके महोत्सर्ग और महानुरागपर बार-बार बलिहारी जा रही हो, उन्हींके द्वारा अभिमन्त्रित करनेका कार्य होना चाहिये और ऐसा सोचकर बाबाने इस कार्यको करनेका सम्पूर्ण सौभाग्य श्रीडालमिया-दम्पतिको प्रदान किया। कुछ लोगोंने बाबासे

निवेदन किया – श्रीजयदयालजी और उनकी जीवनसंगिनी, ये दोनों मिलकर एक दिनमें चावलके कितने दाने अभिमन्त्रित कर पायेंगे?

बाबाने तत्काल उत्तर दिया – इस रीतिसे भले सौ दाने ही अभिमन्त्रित किये जा सकें, पर मुझे तो केवल ये ही सौ दाने चाहिये।

बाबाके उत्तरसे सभीके अधर मौन हो गये। परमादरणीया चाचीजी (डालमियाजीकी धर्मपत्नी) तथा डालमियाजी, दोनोंने स्नान करके शुद्ध देशी वस्त्र धारण किये और पवित्र आसनपर बैठ करके ''हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।'' का जप करते हुए वे चावलके एक-एक दानेको अभिमन्त्रित करने लगे। प्रातःकालसे लेकर दोपहरके लगभग एक-दो बजे तक जप करनेसे जितने दाने अभिमन्त्रित किये जा सके, उनको ही सिद्ध किया गया। जहाँ रन्धन किया गया, उस स्थानकी शुचिताके बारेमें भी बाबा बड़े सावधान थे। सारी भूमिको गायके गोबरसे लीपा गया था। कुछ-कुछ ऐसा याद आ रहा है कि रन्धनका कार्य सम्पन्न हुआ था गोस्वामीजीकी धर्मपत्नीके द्वारा। आज बाबा पद-पदपर सावधान थे, जिससे कठोर-व्रती, महा-साध्वी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके भावोंके अनुरूप कार्य हो सके।

दो नयी चौकीपर विश्वपावनी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका और विश्वप्रेरक श्रीविष्णुप्रिया नाटकका सविधि पूजन हुआ। एक ब्राह्मण दम्पतिका बड़े भाव पूर्वक पूजन किया गया और भोजन कराकर उन्हें पर्याप्त वस्त्र एवं द्रव्य दिया गया। बाबाने यह सारी पूजा श्रीडालमियाजीके द्वारा करवायी। कीर्तनके बोल तो मुझे स्मरण नहीं, परंतु पूजनके बाद भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी एवं महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके नामका बहुत देरतक तुमुल कीर्तन होता रहा। इसके बाद वह परम दिव्य प्रसाद सबके मध्य वितरित किया गया। मात्र कुछ कण ही सभीको मिल पाये। वह प्रसाद था अति दुर्लभ और परम प्रभावकारी। कुटियाके आस-पासका वातावरण बड़ा भावमय हो रहा था। बाबा आज विशेष रूपसे भावाविष्ट थे। बाबाने पहले भी कई बार कहा है और पूजनके समय भी कहा – क्रन्दन ही मेरा जीवन है। सच पूछा जाय तो आज 'क्रन्दन' का उत्सव था। श्रीविष्णुप्रियाजी तो क्रन्दनकी साक्षात् प्रतीक हैं।

रात्रिके समय जगरेके पास बाबाने वह कविता श्रीडालमियाजीको सुनवायी। जाड़ेके दिन थे और कुटियाके बाहर धूनी जल रही थी।

वहींपर बाबाने श्रीडालमियाजीको बैठाया। कुछ और स्वजन भी स्वेच्छासे आ गये और उनको भी बाबाने बैठनेका अवसर दिया। बाबाकी चाह तो पूर्ण एकान्तकी थी, पर वैसी बात बन नहीं पायी। सभीके सामने वह कविता पढ़ी गयी। कविताको सुनकर बाबाने बड़ा साधुवाद दिया और कहने लगे – श्रीगंगाजीमें पापी-तापी-शापीको मुक्ति प्रदान करनेकी जो क्षमता है, उस क्षमतामें और श्रीगंगाजीकी सम्पूर्ण सत्तामें प्रेमकी प्रतिष्ठा करनेके लिये, इतना ही नहीं, उस मुक्ति-प्रदायिनी सत्ताके कण-कणमें प्रेमोद्भूत क्रन्दनकी ज्वाला भरनेके लिये श्रीराधाकृष्णने व्रजका यमुनातट छोड़कर नवद्वीपमें गंगातटपर अवतार लिया, इस तथ्यकी अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर रीतिसे हुई है। मैं सही-सही कह रहा हूँ कि मेरा भावराज्य रुपयेमें बारह आना इस कवितामें उतर आया है।

मैंने विनम्र शब्दोंमें कहा – आठ-नौ मास पहले आपने जो बताया था, वह मैं सर्वथा भूल गया। मैंने रचना करनेमें बड़ी देर कर दी। जब कविता लिखनेके लिये बैठा तो कुछ भी याद नहीं आ रहा था। फिर मैं भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीसे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा। उनकी कृपासे जो स्फुरित हुआ, वही इस कवितामें लिखा गया है।

बाबाने कहा – जो लिखा गया है, वह एक अद्भुत वस्तु है।

फिर बाबाने श्रीडालमियाजीसे कहा – आप इस कविताको छपवा दें।

श्रीडालमियाजी तो छपवानेकी बात सोच ही रहे थे, अब तो बाबाने भी निर्देश दे दिया। वह कविता भी इस विवरणके अन्तमें दी जा रही है।

उस कते हुए सूतके सम्बन्धमें भी एक तथ्यको इस विवरण-क्रममें लिख देनेकी स्फुरणा मनमें हो रही है। जिनको वह कता हुआ सूत बेचा गया था, वे अपने ही एक आत्मीय जन थे और वह सूत उनके पास पूर्णरूपेण सुरक्षित रखा हुआ था। उस कते हुए सूतका वस्त्र यहाँके खादी भण्डारने बनवा दिया और क्या ही सुन्दर बात बन गयी कि ठीक श्रीराधाष्टमीके दिन बाबाने उस वस्त्रको धारण किया। जैसा मैं वस्तुतः चाह रहा था, वैसा घटना-क्रमके अनुसार क्रमशः अपने आप हो गया। मैं इसके बारेमें कुछ कहने या करनेका साहस नहीं कर पा रहा था, पर परम कृपालु भगवानने स्वतः वह ढंग बैठा दिया, जिससे मेरी एक अभिलाषा पूर्ण हो सकी।

सूतको कातने तथा बेचनेका और कविताको रचने तथा सुनानेका जो प्रसंग ऊपर लिखा है, यह सब यहाँ प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। अपनी बात अपने मुँहसे बताना और अपनी कलमसे लिखना कोई अच्छी बात नहीं है। ऐसा होकर भी मैंने लिखनेकी धृष्टता की है। इस लिखनेके पीछे सचमुच मूल प्रेरणा है बाबाके सत्यपरायण जीवनकी एक झाँकी प्रस्तुत करना। बाबा किसी बातकी कितनी अधिक गहराईमें उतरते थे, किसी बातको कितना अधिक परखते थे, किसी बातकी तहतक पहुँचनेके लिये कितनी अधिक खोज-बीन करते थे और शुद्धता-पवित्रता-सत्यताके प्रति कितना अधिक आग्रह रखते थे, इन सबको जाननेके लिये यह प्रसंग एक उदाहरण है। इस प्रसंगके साथ मेरा नाम जुड़ा रहनेसे मुझे वस्तुतः बड़ा संकोच हो रहा है, पर संकोचके भारको मनने सहन किया यही सोचकर कि इससे बाबाके व्यक्तित्वका एक गौरवपूर्ण पक्ष उद्‌घाटित होगा।

वसंत पञ्चमी, सं. २०२० वि. के दिन गीतावाटिका, गोरखपुरमें पढ़ा गया श्रीश्रीविष्णुप्रिया स्तवन

नीरव दिशि-दिशि नीरव निशीथ, नीरव था नभका तारक दल।
नीरव नभ-गंगाके कण-कण, नीरव था नभका नीलाञ्चल।।
उस नीरवतामें था स्पन्दित, नीरव संलाप मृदुल अविरल।
निशिका निशीशका नेह छके, दो हृदयोंका अतिशय निश्छल।।

दो अधर हिले चुपचाप खुले, नभ-गंगाके नव पनघटपर।
दो हृदय इधर उन्मुक्त खिले, नवद्वीप-पार्श्विनीके तटपर।।
था सजा शयन गृह, शय्यापर विकसित पुष्पोंकी नव चादर।
शय्यापर पुष्पोंका वितान, शय्यापर पुष्पोंकी झालर।।

धूप-गंधसे शुचि शोभासे, मुखरित था शयनागार सकल।
शोभाकी शोभा बढ़ी और पा विमल स्नेहकी सुरभि विमल।।
दो स्नेही हृदयोंसे विकसित जो स्नेह लहरियाँ थीं निर्मल।
उनकी सुषमासे शयन-कक्षकी शोभा थी बोझिल प्रतिपल।।

उस शयन-कक्षकी शय्यापर थे परम सुशोभित नित्य युगल।
श्रीविष्णुप्रिया चैतन्य गौर, प्रेमी-प्रेमास्पद नित्य नवल।।

दोनों ही दोनोंमें डूबे, दोनों ही सुखदाता अविरल।
थीं पैर दबाती विष्णुप्रिया, चैतन्य हृदय पुलकित पल-पल॥

कुछ कौतूहल, कुछ उत्सुकता, कुछ जिज्ञासाकी मधुर लहर।
उभरी धीरे-से मन्द-मन्द श्रीविष्णुप्रिया-मुख-मण्डलपर॥
उस नीरवतामें छलक पड़ा भीना-भीना-सा नीरव स्वर।
प्राणोंने पूछा मौन-मौन – ''क्या मैं ही राधा हूँ? प्रियवर''॥

प्राणोंका नीरव प्रश्न सुना – नवद्वीप-पार्श्विनी सुरसरिने।
उस शयन-कक्षके कण-कणने चैतन्य गौरके अन्तरने॥
मौन प्रश्नका दिया मौन उत्तर था अधर-अरुणिमाने।
चैतन्य गौरके अधर-विहारी, नित्य विलासी मधु स्मितने॥

'प्रियतमे! भूल क्या गयी स्वयंको, मुझको, इतनी भोली तुम?
हम नित्य सङ्ग सम्बन्ध नित्य, मैं माधव हूँ, हो राधा तुम'॥
प्राणोंने पूछा पुनः प्रश्न – 'फिर कहाँ तरणिजा-धार परम?
त्यागी क्यों वह स्नेहिल यमुना? सुरसरिता-तीर बसे क्यों हम'?

मूक प्रश्नका मूकोत्तर था तुरत दिया फिर मधु स्मितने।
'पायी मुक्ति परम दुर्लभतम, सुरतरंगिणीसे जगने॥
उस मुक्तिदायिनी सत्ताके कण-कणमें आये हैं भरने।
क्रन्दन-ज्वाला, जिसमें जल-जल नित ज्वलित ज्वालके स्नेह सने'॥

'तो क्या मुझको जलना होगा क्रन्दनकी ज्वालामें? प्रियतम!
क्या मुझको अब बहना होगा, आँसूकी धारामें हरदम'?
''हम तुम एक, अतः प्राणाधिक प्रियतमे! जलो क्यों केवल तुम?
क्रन्दन ज्वालामें साथ-साथ अनवरत जलेंगे दोनों हम'॥

शब्दातीत सरल जिज्ञासा व्यक्त हुई जो बिना शब्द ही।
सरस गरलमय समाधान भी प्राप्त हुआ जो अनायास ही॥
सुना शयनगृहने, शय्याने, सुरसरिने अन्दर-अन्दर ही।
निशि-निशीश, नभ-गंगा, नभके नीलाञ्चलने मौन-मौन ही॥

* * *

जाने कितने तारे टूटे नभके विस्तृत नीलाञ्चल से।
जाने कितने अश्रु बह गये, सुरतरंगिणीके कपोलसे।।
जाने क्यों कहता फिरता है, व्यथित समीरण अपने मुखसे।
व्यथा-तप्त करुणार्द्र कहानी, दो विरही हृदयोंकी जगसे।।

नीलाचलमें नील उदधिके नील तीर पर व्यथित विराजित।
सुध-बुध सभी गौर सुन्दरकी, नील-धारमें बही अपरिमित।।
नीलकृष्णके एक चरणपर, सुख-दुख सब हो गया समर्पित।
'कृष्ण', 'कृष्ण' के करुण रुदनसे दिशा-दिशा हो गयी निनादित।।

रुदन कण्ठमें, रुदन रोममें, रुदन नयनकी हर हलचलमें।
धधक उठी क्रन्दनकी ज्वाला गौर-हृदयके प्रति स्पन्दनमें।।
कृष्णान्वेषण दिनमें, निशिमें, जलमें, नभमें, जड़-चेतनमें।
कृष्ण-विरहकी चिता जल गयी व्यथित गौरके अङ्ग-अङ्गमें।।

एक बह चला सजा चिताको, नीलाचलकी नील धारमें।
एक गयी सम्पूर्ण डूब, अपने आँसूके गहन उदधिमें।।
गौर-हृदयकी नितविहारिणी, जली गौरके विरह-ज्वालमें।
जल-जल बुझना, बुझ-बुझ जलना, शेष यही था उस जीवनमें।।

कितने आँसू हुए प्रवाहित विष्णुप्रियाके तृषित नयन से?
कितनी भीगी साड़ी उतरी, गौर-विरहमें दग्ध बदनसे?
कबसे हो रहा संगमन, सुरतरंगिणीकी धारासे?
सरस्वती-यमुनाका अविरल, निकल-निकलकर शून्य नयनसे?

कैसी चाह मिलनकी भीषण, जली प्रियाके हृदय सदनमें?
कैसा हाहाकार मचा था, तनमें, मनमें और नयनमें?
'हा-हा' भीतर, 'हा-हा' बाहर, भीतर-बाहरके कण-कणमें।
'हा-हा' का रव व्याप्त हो गया, जलमें, थलमें और गगनमें।।

हाहाकार भरे घरमें था कहीं न कुछ भी स्वरका स्पन्दन।
सूनी आँखें, सूना जीवन, सूना घरका सारा आँगन।।
नीरव प्राङ्गणमें बैठी थी, विष्णुप्रिया अति ही नीरव मन।
नमित नयनकी व्यथित अश्रु-धाराने पूछा – "हे जीवन-धन"।।

तुरत गौर सुन्दरकी मनहर गौर कान्तिसे नित संस्पर्शित।
नील लहरियोंसे ध्वनि आयी-''कहो प्रियतमे! क्या अभिवाञ्छित?''
स्वप्न देशके वीणा-रव-सी, नीरव ध्वनि सुन हुई विकम्पित।
अश्रु-धारकी परमाकुलता मौन-मौन ही हुई निवेदित।।

''कब तक मुझको बहना होगा? क्या सत्य एक यह क्रन्दन है?
जलना-बुझना, बुझना-जलना, क्या यही एक बस जीवन है?
कब तक ये गीले नयन गलें? क्यों दूर हृदयका चन्दन है?
क्या आशा करूँ न दर्शनकी? क्या दासी पूर्ण अभागिन है?''

नील लहरियोंकी नीरव ध्वनि हुई ध्वनित नीरव प्राङ्गणमें।
''हम तुम एक, सदा सङ्गी हैं दुसह विरहके भी प्रसङ्गमें।।
विरह मिलनका पोषक, हम-तुम जलें और भी, प्राणप्रियतमे।
क्रन्दन और हास्यसे ऊपर पुनः मिलन होगा निकुञ्जमें।।

आशा छूटी, बिजली टूटी कलित बेल पर गौर मिलनके।
सम्बल छूटा, तारा टूटे पूर्ण तिमिरमय नीलाम्बरके।।
धीरज छूटा, बन्धन टूटे भग्न हृदयके, नयन-कोषके।
टूट-टूटकर आँसू बिखरे, आँगनमें सम्पूर्ण विश्वके।।

डूब गया वसुधाका आँगन, डूब गया नभका नीलाञ्चल।
डूब गया नवद्वीप-पार्श्विनी सुरतरंगिणीका भी आँचल।।
आँचलकी सारी सत्ता भी डूब गयी आँसूमें गल-गल।
बची समयके दो कपोल पर शुभ्र अश्रुकी धार अनर्गल।।

वही समय साक्षी है जगमें, शुभ्र अश्रुकी शुभ धाराका।
वही समय साक्षी है अब भी, नव निकुञ्जकी शुभ शोभाका।।
जहाँ छिटकता शुभ प्रकाश है, पीली-नीली ललित शिखाका।
जिसके शुभ्रालोक-पुञ्जमें, डूबा कण-कण है अग-जगका।।

* * * * *

कालती बुढ़िया का श्राद्ध-दिवस

बाबूजीके घरमें झाड़ू लगाने, बरतन माँजने आदि कार्यके लिये एक बुढ़िया काम किया करती थी। वह अत्यधिक श्याम वर्णा थी, अतः उसका नाम ही पड़ गया था कालती बुढ़िया। उसका घर गोरखपुर शहरके पास एक देहातमें था, किन्तु वह गीतावाटिकामें ही रहा करती थी। यहाँ काम करते हुए उसे बहुत समय हो गया था।

सम्भवतः सन् १९६४ में उसका देहान्त हो गया। उसके घरवालोंने शवका अग्नि-संस्कार पारिवारिक परम्पराके अनुसार गोरखपुरके किनारे बहनेवाली राप्ती नदीके राजघाटपर किया। उसके परिवारवालोंने अपने घरपर उसका श्राद्ध-कर्म किस प्रकारसे सोलहवें दिन किया, यह मुझे पता नहीं, परन्तु गीतावाटिकामें बाबाने जो श्राद्ध-दिवस मनाया, वह अपने ही ढंगका था।

बाबाने चार-पाँच निज जनोंको अपनी (पुरानीवाली) कुटियाके सामने खुले आकाशमें बैठाया। बिछी हुई दरीके ऊपर ये सभी निज जन बैठे हुए थे। इन लोगोंके पास हरिनाम संकीर्तन करनेके लिये हारमोनियम, झाँझ, ढोलक आदि वाद्य रखे हुए थे। फिर बाबाने इन लोगोंसे षोडश नामात्मक महामन्त्रका कीर्तन आरम्भ करवा दिया। इस हरिनाम संकीर्तनमें बाबाके निर्देशानुसार प्रत्येक बारह मिनटपर एक वाक्य उच्च स्वरसे बोलना पड़ता था। हरिनाम संकीर्तनका शुभारम्भ सूर्योदयके समय हुआ। बाबाने जैसा कहा था, उसके अनुसार वह वाक्य मुझे ही कहना पड़ता था। बारह मिनट बीतनेपर मुझे ही विराम करनेके लिये संकेत देना होता था। श्रीहरिनाम संकीर्तनके विराम होते ही, जैसा बाबाने लिखवा करके दिया था, मुझे बोलना पड़ता था – 'कल्याण' सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके घरमें मातृहृदया कालती बुढ़ियाका आवरण स्वीकार करके झाड़ू-बहारू आदिकी सेवा करनेवाले नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी सदा ही जय हो, जय हो, जय हो।

इतना बोल चुकनेके बाद पुनः महामन्त्रका सुमधुर और पावन संकीर्तन शुरू हो जाता था। संकीर्तनके मध्य हर बारह मिनटपर जय-जयकार बोला जानेवाला यह शुभानुष्ठान लगभग अपराह्न कालतक चलता रहा। कुटियाके वातावरणमें अद्‌भुत दिव्यता समायी हुई थी। इसके

बाद गीतावाटिकाके सभी नौकरोंको भोजन करवाया गया। भोजन कर रहे थे सेवा करनेवाले नौकर लोग और परोस रहे थे सेवा लेनेवाले मालिक लोग। बाबाकी कुटियाके सामने सम्पन्न होनेवाले श्राद्ध-भोजका यह दृश्य बड़ा ही अनुपम था और सभीके मनपर एक स्थायी और अनोखी छाप छोड़ गया।

* * * * *

पूज्य सेठजीका महाप्रयाण

श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के प्रति बाबाके भावोद्‌गार हैं—

वैकुण्ठ नामकी नगरी थी, ज्ञानी थे एक वहाँ प्रियतम!
राजा विदेहके सदृश भला प्रेमी रघुकुलमणिके प्रियतम!
आदर्श चरित्रोंके वे थे, 'जय सीताराम' तथा प्रियतम!
'नारायण' नाम अधिक उनको प्रिय था ऐसा लगता प्रियतम!

जीवनमें उनके छाया थी उस तुलाधारकी भी प्रियतम!
थे अतिशय सरल, दक्षपर थे जगके व्यवहारोंमें प्रियतम!
देखा था उनको मैंनें जब आकाशचारिणी थी प्रियतम!
होती थी सुनकर फुल्ल सदा प्रवचन पवित्र उनका प्रियतम!

(श्रीसेठजी परम ज्ञानी थे और वे भावात्मक रूपसे वैकुण्ठ अर्थात् विष्णुलोकमें नित्य निवास करते थे। भगवान विष्णु उनके उपास्य थे। वे भगवान विष्णुकी उपासनाके लिये प्रेरणा दिया करते थे। मिथिला पति श्रीविदेहराजके समान वे परम विरक्त और परम तत्त्वज्ञ थे। उनका चरित्र आदर्श था। वे भगवान श्रीराघवेन्द्रके बड़े प्रेमी थे। उनको 'जय सीताराम' और 'नारायण' बड़ा प्रिय था और वे इसीका कीर्तन करवाया करते थे। वैश्यकुलमें उत्पन्न श्रीसेठजीके जीवनमें परम भक्त तुलाधारके समान अति सरलता और अति दक्षता थी। जागतिक व्यवहारमें वे बड़े पटु थे। जब मैं उनके सानिध्यमें आया, तब उनके आध्यात्मिक प्रवचनोंको सुनकर बड़ा प्रफुल्ल हो उठता था।)

सन् १९३६ में बाबा श्रीसेठजीके सम्पर्कमें आये। यद्यपि बाबा श्रीसेठजीके सगुण-साकार-उपासना सम्बन्धित मान्यतासे सहमत नहीं थे,

परन्तु वे मुग्ध थे श्रीसेठजीके निर्गुण-निराकार-तत्त्व सम्बन्धित चिन्तन-मननपर। बाबाके जीवनमें श्रीमद्भगवद्गीताका स्थान अति महत्त्वपूर्ण रहा है और श्रीसेठजीके प्रवचनोंमें श्रीमद्भगवद्गीताके गम्भीर तत्त्वोंका सहज रीतिसे सुन्दर प्रतिपादन देखकर बाबाका अन्तर प्रफुल्लतासे भर जाता था। यही कारण था कि बाबाने श्रीमद्भगवद्गीताकी विशद् टीकाको लिखवानेमें श्रीसेठजीको अपना भरपूर सहयोग दिया। गीताप्रेससे श्रीमद्भगवद्गीताकी विशद् टीका 'गीता तत्त्व विवेचनी'के नामसे प्रकाशित है। इस ग्रन्थमें मूलतःबाबाने अपने हाथसे लिखी है और इस ग्रन्थमें भाव और विचार श्रीसेठजीके हैं, इस सारी टीकाको मूलतः बाबाने अपने हाथसे लिखी है और इस ग्रन्थमें सारी टिप्पणी और सारा संशोधन बाबूजीका किया हुआ है। इस विशद् टीकाको लिखनेमें लगभग तीन साल लग गये।

इस तीन सालकी अवधिमें श्रीसेठजीके बाबाकी कितनी सेवा-सँभाल की और कितना सम्मान दिया, इसकी सराहना करते हुए बाबा थकते नहीं थे। बाबाने स्वयं एक स्थानपर अपनी लेखनीसे लिखा है—

'मै तो श्रीजयदयालजी (श्रीसेठजी) के चरणोंकी जूती बनकर भी उनका ऋण नहीं चुका सकता, क्योंकि तीन साल अपने पास रखकर उन्होंने मुझे इस लायक बनाया कि मैं भाईजीके पास रहनेकी योग्यता प्राप्त कर सकूँ।'

प्रसंगानुरोधसे पूर्व-पृष्ठोंमें वर्णित एक-दो प्रसंगोंकी सांकेतिक आवृत्ति आवश्यक लग रही है। श्रीगीताजीकी टीकाके लेखनका कार्य पूर्ण होनेके बाद श्रीसेठजीकी चाह थी कि बाबा सदा मेरे साथ रहें श्रीमद्भगवद्गीताके संदेशको चारों दिशाओंमें गुँजा देनेके लिये। यह चाह थी श्रीसेठजीकी, परन्तु भगवान श्रीकृष्णकी योजना इससे अलग थी और भगवदीय योजनानुसार बाबा नित्य-संगका संकल्प लेकर बाबूजीके साथ रहने लगे। इस तथ्यपर टिप्पणी करते हुए बाबाने स्वयं लिखा है—

(मेरा श्रीसेठजीके साथ रहना नहीं हो पाया।) मैं क्या करूँ? मेरा मन भाईजीके प्रति ही अधिक खिचता है। इसलिये उनके (श्रीसेठजीके) चरणोंमें सब प्रकारसे न्योछावर होनेकी चाहना करनेपर भी 'किसी खास विशेष पारमार्थिक कारणसे उनकी (श्रीसेठजीकी) बात नहीं मान सकता। वे (श्रीसेठजी) मुझे बहुत प्यारे हैं और मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि उनके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले घनश्यामजी, रामसुखदासजी आदिके चरणोंकी रजको मैं हृदयसे आदर करता हूँ।

जितना आन्तरिक लगाव बाबाका श्रीसेठजीके प्रति था, वैसा ही गहरा लगाव था श्रीसेठजीका बाबाके प्रति। भगवान श्रीकृष्णकी भगवदीय योजनाके अनुसार बाबा नित्य-साथका संकल्प लेकर बाबूजीके साथ गीतावाटिकामें रहने लगे। एक बार परिस्थितिने अनचाहा मोड़ ले लिया। मोड़ ले लिया, इसके स्थानपर यह कहना चाहिये कि मन्थरा-स्वभाववाले एक व्यक्तिने श्रीसेठजी और बाबाके बीच दरार डालनेका कुप्रयास किया। उसको कुछ हद तक अपने कारनामोंमें सफलता भी मिल गयी। उसने कुछ तथ्योंको भद्दे रूपसे तोड़-मरोड़-जोड़ करके और श्रीसेठजीके कथनको अन्यथा अर्थ लगा करके बातोंको इस ढंगसे प्रस्तुत किया कि परिस्थितिने अत्यधिक विकृत रूप ले लिया। इसके फलस्वरूप बाबाके मनमें यह विचार उठने लगा कि यदि श्रीसेठजीको गीतावाटिकामें मेरे रहना उचित नहीं लग रहा है, तो भाईजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) से आज्ञा लेकर मुझे गोरखपुरसे वृन्दावन चले जाना चाहिये।

ज्यों ही मलिन मनोवृत्ति वाले व्यक्तिके काले कारनामोंकी कलई खुली और उसके कुप्रयासका असली रूप सामने आया और ज्यों ही श्रीसेठजीको बिगड़ी परिस्थितिके यथार्थ स्वरूपकी जानकारी मिली, वे गीतावाटिका आये और बाबासे कहने लगे– मैंने ये कब कहा कि स्वामीजी हम लोगोंको छोड़कर चले जायँ। आपके चले जानेके लिये मैंने कभी कहा ही नहीं इतना ही नहीं, इस बातसे सम्बन्धित कोई स्फुरणा मेरे मनमें उदित कभी उदित हुई ही नहीं। मैं तो भगवानसे यहाँतक प्रार्थना करता हूँ कि यदि मेरे प्रसुप्त मनमें इस प्रकारकी कोई बात हो तो वे उसकी छायाको तुरन्त मिटा दें।

श्रीसेठजीके इस उद्गारोंको सुनकर बाबाका मन निर्मल प्यारके प्रवाहमें बह चला। यथार्थ सत्यके प्रखर सूर्यके सामने खल-प्रयासका धुन्ध भला कबतक टिक पाता। अब गीतावाटिकाके वातावरणमें व्याप्त थी दैवीय भावोंकी भगवदीय सुरभि।

श्रीसेठजी चाहते थे कि बाबा नित्य मेरे साथ रहें और बाबा नित्य श्रीसेठजीके साथ रहे, परन्तु प्रकारान्तरसे साथ रहे भगवान श्रीकृष्णकी भगवदीय योजनाके अनुसार। बाबा नित्य साथ रहे बाबूजीके साथ और बाबूजीका नित्य संग बना रहा श्रीसेठजीके साथ। प्रकारान्तरसे बाबा श्रीसेठजीके सदा साथ रहे।

श्रीसेठजी चाहते थे कि श्रीमद्भगवद्गीताके भगवदीय सन्देशके प्रचार-प्रसारके लिये बाबाका सहयोग मिलता रहे और बाबाका सहयोग परोक्ष रूपसे मिलता रहा। श्रीसेठजीके प्रवचनोंमें जिन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन होता था, उन सिध्दान्तोंके प्रत्यक्ष प्रमाणके रूपमें सबके सामने उपस्थित था बाबाका वन्दनीय संन्यासी जीवन। यह सर्व विदित है कि गीताप्रेसका आधार एवं प्राण है श्रीसेठजीका आध्यात्मिक जीवन। इस गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाली हिन्दी पत्रिका 'कल्याण' और अंग्रेजी पत्रिका 'कल्याण कल्पतरु'के सम्पादन कार्यमें तथा गीताप्रेससे मुद्रित होनेवाले आर्षग्रन्थ तथा विविध साहित्यके प्रकाशन-कार्यमें बाबाका सहयोग, वह सहयोग जो समाजके नजरोंसे छिपे रहकर दिया गया है, उस सहयोगकी जानकारी केवल कतिपय अन्तरंग जनोंको है। यथार्थ सत्य यह है कि बाबूजीके माध्यमसे जीवनके अन्ततक श्रीसेठजीका और बाबाका नित्य साथ और नित्य सहयोग बना रहा।

सन् ६३-६४ की अवधिमें इन्हीं महान आध्यात्मिक विभूति श्रीसेठजीका स्वास्थ्य सतत कार्य-परायणताके कारण क्रमशः अधिकाधिक शिथिल होता चला गया। सन् १९६५ के आरम्भमें ऐसा लगने लगा कि जीवनका अन्तिम क्षण अब निकटसे निकटतर होता चला जा रहा है। इन दिनों श्रीसेठजी बाँकुड़ा नगरमें थे। यदि शरीरका अवशान होना ही है तो वह माँ गंगाके तटपर हो, ऐसे विचारोंके उठते ही श्रीसेठजी बाँकुड़ासे प्रस्थान करके ३१ मार्च १९६५ को स्वर्गाश्रम स्थित गीताभवन पहुँच गये।

अकस्मात बाबूजीको गोरखपुरमें यह समाचार मिला कि सेठजीके स्वास्थ्यकी दशा चिन्ताजनक है। इस समाचारके मिलते ही बाबूजी, बाबा और माँजी गोरखपुरसे वायुयान द्वारा रवाना होकर लखनऊ आये और फिर ट्रेनसे चलकर ६ अप्रैल १९६५ को स्वर्गाश्रम पहुँच गये। ज्यों-ज्यों शरीरकी चिन्ता जनित स्थितिका अप्रिय समाचार फैलने लगा, श्रद्धालु और आत्मीयजनोंकी भीड़ गीताभवनमें बढ़ने लगी। १५ अप्रैलको स्वास्थ्यने खतरनाक मोड़ ले लिया। बाबूजी तुरन्त बाबाको साथ लेकर श्रीसेठजीके पास पहुँच गया। स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज वहींपर थे ही। बाबा लगातार दो घण्टेतक श्रीसेठजीके पास बैठे रहे और निरन्तर

नाड़ी देखते रहे। १५ अप्रैल और १६ अप्रैलका दिन अति कष्टमें बीता। इस भीषण कष्टकी स्थितिमें भी नाम-जप लगातार हो रहा था। अधरोंका हिलना और अंगुलियोंकी पोरोंपर अँगुठेका फिरना तथ्यकी साक्षी दे रहे थे। दर्शनार्थ आनेवाले जनोंको प्रणाम करते देखकर श्रीसेठजी बदलेमें सबको संकेतसे राम-राम कहते। १७ अप्रैल १९६५ के अपराह्णकालमें पार्थिव शरीरसे 'हंस' ने 'विदाई' ली और उड़कर अपने देश चला गया।

इस विदाईकी वेलामें बाबा श्रीसेठजीके समीप ही थे। उन्होंने देखा– अद्वैत सिद्धान्तका सूर्य अस्ताचलको चला गया, संतोंसे आध्यात्म ज्ञानकी चर्चा करनेवाला चला गया। साधकोंको पथ बतलानेवाला सिद्ध संत चला गया, अभावसे ग्रस्त जनोंका सच्चा अभिभावक चला गया, धार्मिक संस्था गीताप्रेसका महान संस्थापक चला गया और चल रही थी अश्रुजलकी दो धाराएँ बाबाके दोनों कपोलोंपर। बाबाके नयनोंसे अविरल अश्रुप्रवाह हो रहा था और वे उस पावन पार्थिव शरीरपर रह-रह करके हाथ फेर रहे थे।

शव-यात्रामें बालक-वृद्ध, मालिक-नौकर, गृहस्थ-संन्यासी, मूर्ख-पण्डित, छोटे-बड़े सभी थे। ठीक वट वृक्षके सामने और ठीक भगवती गंगाके तटपर सजी हुई चिताको वह पावन पार्थिव शरीर सौंप दिया गया और चिताके लपटोंको क्या देर लगी उसे आत्मसात् करनेमें। यह सारा दृश्य बाबा अपने शोकाकुल नयनोंसे देख रहे थे और मन-ही-मन जय जयकार कह रहे थे उस महान आध्यात्मिक विभूतिकी।

* * * * *

पण्डित नेहरू के सूक्ष्म-देह से बातचीत

मृत्युके बाद जीवकी क्या गति होती है तथा स्थूल-शरीर, सूक्ष्म-शरीर और कारण शरीरका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है, इसीपर बाबा कुछ बातें अपने अनुभव और अध्ययनके आधारपर बता रहे थे। शव माने है वह स्थूल-शरीर, जिसका सूक्ष्म और कारण शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका हो। यह सम्बन्ध-विच्छेद ही मृत्यु है। मृत्यु होते ही सूक्ष्म-शरीर कर्म फलके अनुसार तुरन्त अन्य लोक या अन्य शरीरमें चला नहीं जाता। यदि शव-रूपात्मक स्थूल-शरीर पड़ा हुआ है तो वह

सूक्ष्म-शरीर आसक्तिके वशीभूत होकर अपने मोहकी तीव्रताके अनुपातमें इस बातके लिये प्रयास करता है कि वह पुनः उस स्थूल-शरीरमें प्रवेश करे, पर सम्बन्ध-सूत्रके विच्छिन्न हो जानेके कारण प्रवेश नहीं कर पाता और स्थूल-शरीरके आस-पास मँडराता रहता है। आस-पास मँडरानेकी अवधि अधिकतम छत्तीस घण्टे होती है। स्थूल-शरीरमें रहते हुए सूक्ष्म शरीरका जिन-जिनसे सम्बन्ध या सम्पर्क हुआ था, उन सभीको वह शवके पास देखता है और पूर्वकी भाँति उन सबसे मिलना-जुलना, बात करना चाहता है, पर अब असहाय है। बाबाने बताया — जब पण्डित श्रीजवाहरलाल नेहरूकी मृत्यु हुई, उनके शवका दाह-संस्कार लगभग तीस घण्टे बाद हुआ था। दोपहरके लगभग उनका शरीरान्त हुआ था और निधनके दूसरे दिन सूर्यास्तके आस-पास चिता प्रज्वलित हुई। जिस दिन चिता जली, उस दिन प्रातः काल अर्थात् उनकी मृत्युके लगभग अट्ठारह-उन्नीस घण्टे बादकी बात है। गोरखपुरकी गीतावाटिकामें स्थित मैं अपनी कुटियामें बैठा था। अचानक मेरे सूक्ष्म-शरीरको दिल्लीमें पण्डित नेहरूके शवके पास पहुँचा दिया गया। मेरा स्थूल-शरीर तो गोरखपुरकी गीतावाटिकाकी कुटियामें ही था। सूक्ष्म-शरीरसे वहाँ पहुँचनेपर यह दिखलायी दिया कि पण्डित नेहरूका सूक्ष्म-शरीर अपने शव-रूपात्मक शरीरके आस-पास मँडरा रहा है। मेरी (अर्थात् मेरे सूक्ष्म-रूपात्मक शरीरकी) उनसे (अर्थात् उनके सूक्ष्म-रूपात्मक शरीरसे) लगभग दो अढ़ाई मिनट बात हुई होगी। मैंने उनसे पूछा — क्या आप ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करते हैं?

मेरे ऐसे पूछनेका एक विशेष हेतु था। अब न तो वे भारतके प्रधानमन्त्री थे और न अब इन्दिराके पिता थे। प्रधानमन्त्री-पदका सारा रोबदाब समाप्त हो चुका था और निज जनोंसे सारा सम्बन्ध छिन्न हो चुका था, ऐसी स्थितिमें उनकी आस्थाके धरातलको मैं जानना चाहता था। जानना इसलिये चाहता था कि उस धरातलमें यदि आस्तिकताके अणु होंगे तो यह आस्तिकता उनके निधनोत्तर जीवनमें सहायक सिद्ध होगी। पण्डित नेहरूके सूक्ष्म-शरीरने उत्तर दिया — हाँ, मैं ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करता हूँ।

उनसे यह उत्तर पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। इसके बाद मैंने दूसरा

प्रश्न किया – क्या आप प्रसन्न हैं?

इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा – नहीं, मैं प्रसन्न नहीं हूँ।

इसके बाद उनसे और भी कई बातें हुईं, जिनको मैं यहाँ बता नहीं सकता। दो-अढ़ाई मिनटके बाद मैं पुनः गीतावाटिकाकी कुटियामें पहुँचा दिया गया। उन्होंने जो कहा कि मैं प्रसन्न नहीं हूँ, वह ठीक ही कहा। प्रसन्न वही हो सकता है और वही रह सकता है, जिसके मानव शरीरमें कर्म श्रेष्ठ रहे होंगे। उस सूक्ष्म-शरीरमें अब प्रधानमन्त्रीपनेका रोबदाब काम तो करेगा नहीं। वह तो इस मृत्यु लोकसे परेका जगत है, जहाँ खरे सत्यका साम्राज्य है। हाँ, इतना जरूर है कि उनके सूक्ष्म-शरीरकी किरणें उत्तम कोटि की थीं। उनके जीवनमें अनेक गुण थे। यही कारण था कि उनके चतुर्दिक् व्याप्त प्रभा-मण्डल भी उत्तम कोटिका था।

बाबाने बतलाया – मेरा सम्पर्क राष्ट्रपति डा.श्रीराजेन्द्र प्रसादजीसे भी रहा है। श्रीलालबहादुर शास्त्रीसे भी मैं प्रभावित हूँ। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक उच्चस्तरीय नेताओंसे मेरी निकटता रही है, पर इस प्रकारकी बातचीत (अर्थात् उस नेताके निधनके बाद उनके सूक्ष्म-शरीरसे बातचीत) केवल पण्डित नेहरूके साथ ही हो सकी।

* * * * *

रसकी बूँदें

एक बार बाबूजी और बाबा दिल्ली पधारे और ये ठहरे आदरणीय श्रीरामकृष्णजी डालमियाके निवास स्थानपर। बाबूजी तो अपने किसी विशेष कार्यसे अन्य स्थानपर चले गये थे, पर इधर बाबाके समीप आध्यात्मिक सांनिध्यकी प्यास लिये अनेक व्यक्ति बैठे हुए थे।

इसी समय आदरणीया श्रीद्रौपदीबाई रायजादा अपने साथ तरबूजका एक टोकरा लेकर आयीं और बड़े भक्ति-भाव पूर्वक बाबाको प्रणाम किया। स्नेहसनी भाषामें बाईका सम्मान करते हुए बाबाने पूछा – टोकरा लिये हुए यह व्यक्ति तुम्हारे साथ आया है क्या?

श्रीद्रौपदीबाई – हाँ, बाबा! यह व्यक्ति अपना ही है और ये

तरबूज मैं आपके लिये लायी हूँ। घरपर एक छोटी बगीची है, उसीमें ये लगे थे।

बाबा – अच्छा, तो इन तरबूजोंको बिनारो-सुधारो और बैठे हुए इन सभी लोगोंको खिलाओ।

यह तो श्रीद्रौपदीबाईके मनकी बात थी। उनका मन प्रसन्नतासे भर गया। उन्होंने अपने व्यक्तिसे चाकू मँगवाया और तरबूजको बिनारकर-सुधारकर उसकी फाँके बाबाको देने लगीं। बाबा फाँकोंको अपने हाथसे उपस्थित लोगोंको खानेके लिये देते जा रहे थे। बाबा द्वारा वितरण तथा स्वजनों द्वारा आस्वादन, इससे वहाँका वातावरण बड़ा ही उल्लासभरा-प्यारभरा हो रहा था। बाबा अपने हाथसे तरबूजकी फाँकें दे रहे हैं, यह दृश्य ही सबको प्रीतिकी धारामें बहाये ले जा रहा था। तरबूज भी बड़ा स्वादिष्ट था और उसके बिनारने- सुधारने-देने-खानेके रसमें निमग्न रहनेसे किसीको भी भान रहा ही नहीं कि वह टोकरा कब खाली हो गया। प्यारके प्रवाहमें ऐसा ध्यान रख सकना सम्भव था भी नहीं। जब टोकरेके तरबूज समाप्त हो गये तो श्रीद्रौपदीबाईने अपने हाथका चाकू भूमिपर रख दिया। बाबा तो इस आशामें थे कि वितरणके लिये तरबूजकी फाँकें और मिलेंगी, पर चाकूको भूमिपर रखते हुए देखकर विस्मयके स्वरमें बाबाने पूछा – क्या टोकरा खाली हो गया?

श्रीद्रौपदीबाईके अधर तो मौन रहे, पर उनके दो नेत्रोंने बता दिया कि आपका कथन यथार्थ है। इस तथ्यका आभास मिलते ही बाबाको एक खेद हुआ और उस खेदको व्यक्त करते हुए वे बाईसे बोल पड़े – अरे, तेरे लिये तो बचा ही नहीं!

भले ही श्रीद्रौपदीबाईने बोलकर उत्तर नहीं दिया, पर उनका मन बार-बार यही कह रहा था कि इन लोगोंके मुखसे मैंने ही खाया है और यह क्या मेरे लिये कम सौभाग्यकी बात है कि तरबूजकी फाँकोंका वितरण आपके कर-पल्लवसे हुआ। यह आन्तरिक समाधान श्रीद्रौपदीबाईके अन्तरका था, पर बाबाका आतुर अन्तर आकुल था कि बाईको कुछ-न-कुछ मिलना ही चाहिये। बाबाने उसी समय बाईसे कहा – तुम यह चाकू कुछ ऊपरसे मेरी हथेलीपर रख दो।

उपस्थित लोगोकी कौतूहल और जिज्ञासासे भरी दृष्टि बाबापर

ठहर गयी और दृष्टिको टिकाये-टिकाये वे लोग सोचने लगे – तरबूज तो समाप्त हो गये हैं और अब चाकू लेकर बाबा क्या करेंगे?

सभीका कौतूहल-भरा चिन्तन अपने-अपने ढंगका था, पर किसीमें यह पूछनेका साहस नहीं था कि अब आप चाकू लेकर क्या करेंगे। बस, सब दृष्टि गड़ाये बाबाकी ओर देख रहे थे। सबने देखा यह कि बाबाने चाकूसे काछ करके अपनी हथेलीपर लगे रसको इकट्ठा किया और चाकूपरसे रसकी बूँदोंको अपनी अँगुलीपर लेकर श्रीद्रौपदीबाईसे कहा – अपनी हथेली पसार।

श्रीद्रौपदीबाईने अपनी हथेली पसार दी और बाबाने इकट्ठे किये हुए चार-पाँच बूँदोंको उसकी हथेलीपर चुआकर कहा – बाई! ये बूँदें ही तुम्हारा भाग हैं।

बाबाके ऐसा करते ही बाईकी आँखें भर आयीं और भरे-भरे मनसे उन्होंने इन बूँदोंको अपने अधरोंपर रख लिया। उपस्थित लोग बाबाके प्यारकी इस निराली रीतिको देख रहे थे और उन लोगोंमेंसे कोई सरस हो रहा था, कोई सजल हो रहा था, कोई सराह रहा था और कोई सिहर रहा था।

श्रीद्रौपदीबाई जब-जब उस प्रसंगकी चर्चा करती हैं, तब-तब वे रसकी बूँदें उनकी आँखोंके कोनोंमें छलकने लगती है। रसकी वे दो-चार बूँदें सरस नयनोंकी असंख्य बूँदोंके रूपमें ढलकर न जाने कितने-कितने सहृदयोंको प्यारका रसास्वादन कलतक कराती रही हैं और सदा कराती रहेंगी।

* * * * *

व्रज-रस के पदों का गायन

बाबाका कठोर काष्ठ मौन व्रत सन् १९६२ के आते-आतेतक बहुत शिथिल हो गया था। इसके एक या दो वर्षके बाद सम्भवतः १९६४ की बात है। बाबाने चार व्यक्तियोंसे कहा – आप लोग मेरे पास यहाँ गीतावाटिकामें रहें और यहाँ रहते हुए व्रजभावके पद मुझे सुना दिया करें।

ये चार व्यक्ति थे श्रीहरिवल्लभजी, श्रीठाकुरजी, श्रीवल्लभजी और

श्रीअबीरचन्दजी। इन चारों व्यक्तियोंके साथ भाई श्रीनटवरजीका नाम भी पाँचवें व्यक्तिके रूपमें जोड़ा जा सकता है, जो श्रीवल्लभजी और श्रीअबीरचन्दजीके गायन-वादनमें सहायक थे। गायनके क्रमकी व्यवस्था निर्धारित करते समय हुआ यह कि श्रीहरिवल्लभजी और श्रीठाकुरजीका एक जोड़ा बन गया और श्रीवल्लभजी और श्रीअबीरचन्दजीका दूसरा जोड़ा। जिस समय पद-गायनकी व्यवस्था हुई थी, उस समय ठाकुरजी गीतावाटिकामें लगातार चार माहतक रहे थे। जिस दिन ध्रुपद-धमारके पद होते थे, उस दिन चारों व्यक्ति साथ बैठते थे। ध्रुपद-धमारके पद चाहे वे वसन्तके हों या होलीके या झूलनके, इनमें समय और श्रम अधिक लगता था, अतः उन चारों लोगोंका साथ बैठना आवश्यक था। बाबा कुटियाके बाहर आकर ठीक समयसे बैठ जाया करते थे और गायकोंके लिये अलग लम्बे-लम्बे पाटे बिछा दिये जाते थे। कुटियाके बाहर केलेके बड़े-बड़े पेड़ थे। यह हरी-भरी कदली कुञ्ज बड़ी लुभावनी बड़ी सुहावनी लगती थी। इसी कदली कुञ्जमें इन पदोंका गायन हुआ करता था। पदोंका गायन प्रातः नौ बजेसे ग्यारह बजेतक अर्थात् दो घण्टे हुआ करता था।

बाबाको पद सुनानेके ढंगमें अनेक बार कई प्रकारके परिवर्तन हुए। एक बार ऐसा क्रम बना कि प्रातःकाल पदोंका गायन आरम्भ होता और वह गायन अपराह्ण कालतक चलता रहता। सारे दिन पदोंके गायनमें गायक ये ही पाँच थे। प्रातःकाल गायनका आरम्भ करते थे श्रीवल्लभजी और श्रीअबीरचन्दजी। कुटियाके पास उन दिनों एक विचित्र-सा वृन्दावनी रसमयताका वातावरण बना रहता था।

* * *

एक बार ऐसा हुआ कि ठाकुरजी अपने हाथमें तानपूरा लेकर इस प्रकार बजा रहे थे मानो सितार बजा रहे हों। वे तानपूराके तारोंको सितार सरीखे बजाते हुए टुन-टुनका मधुर स्वर निकाल रहे थे। श्रीठाकुरजीकी इस चेष्टाको बाबा दूरसे एकटक देख रहे थे और वे बहुत देरतक देखते रहे। तभी बाबाके मनमें यह भाव उभरा कि वीणा मँगवानी चाहिये। उसी समय बाबाने चिम्मनलालजी गोस्वामीको बुलवाया

और कहा – गोस्वामिपाद! आप कलकत्ता श्रीफोगलाजीके पास एक पत्र लिख दें कि वे एक उत्कृष्ट वीणा खरीद करके इस मासके अन्ततक यहाँ गीतावाटिका भिजवा दें।

गोस्वामीजीने कलकत्ते पत्र लिख दिया। कलकत्तेसे उत्तर यह आया कि वीणा मुख्यतः तीन प्रकारकी होती है। सरस्वती वीणा, रूद्र वीणा और विचित्र वीणा, इन तीनोंमेंसे कौन-सी वीणा चाहिये। इसे सुनकर बाबाने कहा – सर्वोत्तम सरस्वती वीणा है और इसीको मँगवाना है।

गोस्वामीजीने सरस्वती वीणा भिजवानेके लिये कलकत्ते श्रीफोगलाजीके पास पत्र लिख दिया। वह सरस्वती वीणा तुरन्त नहीं आ सकी। उसके आनेमें विलम्ब तो हुआ, पर आ गयी। वह बड़ी विशाल वीणा थी। इसके दोनों ओर बहुत बड़े-बड़े तुम्बे लगे हुए थे। प्रत्येक तुम्बेकी गोलाईका व्यास लगभग डेढ़ फीट होना चाहिये। यह वीणा लगभग पाँच फीट लम्बी थी। एक दिन शुभ मुहूर्तमें बाबाने उस सरस्वती वीणाका पूजन किया। उस दिन उन्होंने उसपर जो चन्दन चढ़ाया, वह आजतक उस वीणापर सुशोभित है। फिर बाबाने ठाकुरजीसे कहा – अब तुम बजाकर सुनाओ।

ठाकुरजीको सारंगी बजाना आता था, किन्तु उनको वीणा-वादनका अभ्यास नहीं था। श्रीठाकुरजीने दबे स्वरमें कहा – बाबा! मुझे वीणा बजानी नहीं आती।

बाबाने कहा – तुम संकोचको छोड़कर बजाओ। यह मेरा अपना 'खेल' है और अपने ही ढंगका है। किसी अन्यको नहीं सुनाना है। मैं तो अपने आनन्दके लिये सुनना चाहता हूँ।

ठाकुरजीने श्रीसरस्वती वीणाको मस्तक टेककर प्रणाम किया और फिर वे बजानेके लिये बैठ गये। तन्तु वाद्य बाबाको स्वभावतः प्रिय हैं। ज्यों ही श्रीठाकुरजीने उसके तारोंको छेड़ा और छेड़नेसे जो स्वर-लहरी प्रवाहित हुई, वह लहरी बाबाको न जाने कहाँ-से-कहाँ बहा ले गयी। बाबाको बड़ा सुख मिला। उन्होंने ठाकुरजीसे कहा – तुम प्रत्येक राधाष्टमीको यह वीणा सुना दिया करो, भले पाँच मिनट ही सुनाओ।

एक दिन एक और विचित्र घटना हो गयी। जब व्रजभावके पद

गाये जा रहे थे, तब वहाँ कोई व्यक्ति बालूपर 'राधा' नाम लिखकर चला गया। कुटियाके सामने बालू फैली हुई थी और उसी बालूपर उसने अपनी अँगुलीसे लिख दिया था। पद-गानके कार्यक्रमके बाद बाबाकी उसपर दृष्टि गयी। दृष्टि-पथमें आते ही बाबा उसके पास बैठ गये और विचार मग्न हो गये। ठाकुरजी सोचने लगे कि अचानक क्या समस्या उपस्थित हो गयी अथवा क्या बात बिगड़ गयी, जो बाबा यहाँ बैठ गये। ठाकुरजीने उनसे पूछा – बाबा! क्या बात हो गयी?

बाबाने कहा – ठाकुर! क्या बतलाऊँ? एक बड़ी उलझन सामने आ गयी है।

ठाकुरजी – क्या हुआ?

बाबा – देखो। किसीने यहाँ बालूपर 'राधा' नाम लिख दिया है और लिख करके चल दिया। अब यदि किसीका पैर इसपर पड़ जायेगा तो कितना बुरा होगा। जिसने लिखा, उसको इस नामके महत्त्वकी जानकारी नहीं। उसकी असावधानीमें या प्रमादसे कितना अनुचित कार्य हो गया। जबतक मैं इसकी कोई व्यवस्था न कर दूँ, तबतक मैं यहाँ बैठा रहूँगा।

ठाकुरजी – बाबा! क्या मैं बैठ जाऊँ यहाँपर?

बाबाने कुछ झुँझलाये स्वरमें कहा – तुम्हारे बैठनेसे क्या बात बन जायेगी? तुम्हारे बैठनेसे क्या होनेवाला है? तुम कबतक बैठे रहोगे? केवल बैठना कोई हल तो है नहीं।

अब ठाकुरजी चुप और बाबा भी चुप थे। कुछ देरतक दोनों चुपचाप रहे। इसके बाद बाबाने अपना उत्तरीय फैलाया। उन्होंने अपने उत्तरीयके आँचलमें वह सारी बालू, जहाँ 'राधा' नाम लिखा था, उसको बिटोर करके रख लिया। फिर उसे लेकर वे अपनी कुटियाके बाड़ेके भीतर गये। वहाँ तुलसीजीका एक गमला था। बाबा तुलसीजीका पूजन और वन्दन नित्य किया करते थे। उस गमलेके चारों ओर बाबाने उस बालूको फैला दिया। बाबाकी इस राधा-नाम-निष्ठाको देखकर श्रीठाकुरजीका हृदय बड़ा विह्वल हो रहा था और वे मन-ही-मन सराहना कर रहे थे।

श्रीसरस्वती वीणा और राधानामकी चर्चा बीचमें आवश्यक होनेसे आ गयी। बाबाकी कुटियाके सामने व्रजभावके पद जब ये गायक लोग गाया करते थे, तब वहाँ निकुञ्जका भावराज्य अवतरित हो उठता था।

जो-जो इस कार्यक्रमको सुननेके लिये बैठते थे, उनके अन्तरमें व्रजभावकी सरिता लहराती रहती थी और उनके मानस-पटलपर प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवकी लीला चलती रहती थी। अहर्निश एक नशा छाया रहता था। सांसारिकता नामकी कोई चीज है, इसका भान ही नहीं होता था। चित्तकी वृत्ति जागतिक धरातलसे उठकर, बहुत अधिक ऊपर उठकर निरन्तर दिव्य लीला राज्यमें विहरण करती रहती थी। पदोंके गायनसे दिव्य रंगका सागर ऐसा उमड़ता रहता था कि मन-मस्तिष्क उसीसे संसिक्त रहते थे।

एक दिन होलीका रंगभरा उल्लास पदोंके गायनके माध्यमसे गीतावाटिकाके कदली कुञ्जमें छलक रहा था, तभी एक अनचाही परिस्थिति सामने आ गयी। एक सज्जन थे, जिनको ऐसा लगा कि इस प्रकारके उन्मुक्त हास-विलासका गायन तो बड़ा अनुचित है। उसकी चर्चा ही जब अनुचित है, तब उसका गायन तो सर्वथा वर्जनीय है। जो चीज वस्तुतः आलोचनीय है, उसीको यहाँपर खुले रूपमें सारे संकोच और सारी मर्यादाको किनारे रखकर गाया जा रहा है। जिस गीतावाटिकाके हाथमें धार्मिकताका ध्वज है, उस ध्वजके नीचे यह सब होना ही नहीं चाहिये। उन्होंने जाकर बाबूजीसे शिकायत की। थोड़ी देर बाद बाबूजीने बाबासे कहा – लोगोंका स्तर एक-सा नहीं होता। मानसिक धरातल भिन्न-भिन्न होनेसे समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। सामान्य लोगोंकी पात्रता ऐसी नहीं होती कि व्रजभावके गम्भीर पदोंको यथार्थ रूपमें ग्रहण कर सकें, अतः इस प्रकारकी अपचर्चाको उठने और फैलनेके लिये अवसर ही क्यों दिया जाय?

बाबूजीने यह बात ज्यों ही कही, उसी समय बाबाने गायन-वादनके सारे कार्यक्रमको एकदम विराम दे दिया। प्रातःकालसे जो पदगान हो रहा था, वह दोपहरतक हो पाया होगा कि सब विसर्जित हो गया। तुरन्त पूर्णतः विराम दे देनेसे सारा वातावरण ऐसा गमगीन हो गया मानो किसी कोमल लतिकापर घोर हिमपात हो गया हो। बाबाको तो बाबूजीकी रुचिके अनुसार करना है। भावुक भक्तोंको यह विराम बड़ा चुभ रहा था, पर विवशता थी। पदोंके गायनका यह कार्यक्रम केवल चार मासतक चल पाया। इसके बाद सभी गायक लोग अपने-अपने स्थानको चले गये।

* * * * *

बरसाने के मन्दिर में

सन् १९६५ की ११ फरवरीके दिन मथुरामें श्रीकृष्ण जन्मभूमिपर भागवत भवनका शिलान्यास हुआ। इसीके निमित्तसे बाबूजी गोरखपुरसे मथुरा गये थे। शिलान्यासका उत्सव बहुत विशाल रूपसे मनाया गया था। तब बाबूजी मथुरामें तीन सप्ताह तक रहे। वहाँ समय-समयपर व्रजमण्डलके अनेक महान संतोंके पास जा-जा करके उन्होंने उनके दर्शन किये। बाबूजीके साथ बाबा तो रहते ही थे।

इस तीन सप्ताहकी अवधिमें एक बार बरसाना जानेका भी कार्यक्रम बन गया। इस दिन श्रीश्रीजीके मन्दिरमें सभी भक्तोंने प्रसाद पाया। अनुमानतः सात-आठ सौ भक्तोंने छक करके प्रसाद पाया होगा। प्रसादकी व्यवस्था और व्ययका सारा भार श्रीजयदयालजी डालमियाने अपने ऊपर ले लिया था। बाबा तथा बाबूजी तो बरसाना कारसे गये थे, बाकी सब लोग बससे गये थे। श्रीश्रीजीके मन्दिरमें भोग लगे, इसके बहुत पहले ही भक्त लोग वहाँ पहुँच गये थे। श्रीश्रीजीका दर्शन पाकर सभी भक्तोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

श्रीश्रीजीके मन्दिरके गर्भ-गृहकी जो चौखट है, उसके पास लकड़ीका एक बड़ा और मजबूत घेरा है। यह घेरा चौखटसे लगभग चार-पाँच फीटकी दूरीपर है। यह घेरा इसलिये है कि इसके अन्दर पुजारीजी खड़े रह सकें, कोई उनका स्पर्श न कर सके तथा वे सुविधा पूर्वक अमनिया नैवेद्य लोगोंसे ग्रहण कर सकें और भक्तोंको प्रसाद दे सकें।

बाबूजी और बाबा मन्दिरमें काफी पहले आ गये थे। मन्दिरमें आकर उन्होंने युगल सरकारके दिव्य श्रीविग्रहका दर्शन किया। दर्शन करके बाबूजी तो एक किनारे बैठ गये, पर बाबा उसी घेरेका सहारा लेकर खड़े हो गये। बाबाने अपने शरीरका सारा भार काठके उस घेरेपर अपने दोनों हाथोंके द्वारा छोड़ रखा था और उनकी दोनों आँखें श्रीश्रीजीके विग्रहपर टिकी हुई थीं। हम कई लोग बाबाके आस-पास खड़े थे केवल इस बातकी सावधानीके लिये कि किसी स्त्रीसे अथवा उसके वस्त्रसे बाबाका स्पर्श न हो जाय। वे घेरेके सहारे खड़े-खड़े कुछ-कुछ नहीं, बहुत बोल रहे थे। उनके अधर खूब हिल रहे थे और उनकी आवाज हमारे कानोंमें साफ-साफ पड़

रही थी, पर हम लोग यह नहीं समझ पा रहे थे कि वे क्या बोल रहे हैं। उनकी भाषा वे ही जानें, परन्तु यह स्पष्ट लग रहा था कि वे अपनी 'किसी भाषा'में श्रीश्रीजीसे वार्तालाप कर रहे हैं। इसके साथ ही बाबा द्वारा एक और चेष्टा लगातार हो रही थी। उनके दोनों हाथ तो घेरेपर टिके हुए थे, किन्तु वे रह-रह करके अपने पैरको कभी उठाते और गिराते थे। कभी दाहिना पैर और कभी बाँया पैर उठाने-गिरानेका क्रम चलता रहा। शरीरका भार तो घेरेपर था ही, किन्तु जब बाँयें पैरका घुटना मुड़ता तो बाँयी एड़ी बाँयें जंघेतक आ जाती और इसी प्रकारकी बात दाहिने पैरके साथ थी, अर्थात् कभी दाहिनी एड़ी दाहिने जंघेतक आ जाती। यह भावमयी स्थिति लगभग पौन घंटेतक बनी रही।

बाबाकी इस भावमयी स्थितिकी ओर बहुत लोगोंका ध्यान आकृष्ट हो गया। अनेक लोग बाबाके पास, परन्तु कुछ हटकर बैठ गये और उनकी इस भावमयी स्थितिको देखते रहे। इन दर्शकोंमें सम्मान्य लाला श्रीहरगूलालजी भी थे, जो वृन्दावनके अति विख्यात रसिक और रसज्ञ हैं। श्रीडालमियाजीके आत्मीयता भरे अनुरोधपर सम्मान्य लालाजी श्रीजीके मन्दिरमें भोगकी तथा भक्तोंके भोजनकी सारी व्यवस्था सँभालनेके लिये वृन्दावनसे बरसाना आये थे। बाबाकी इस भावमयी स्थितिको देखकर वे भी परम विस्मयान्वित हो रहे थे।

सम्मान्य श्रीलालाजी इस दृश्यसे इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने अपना एक ग्रन्थ 'प्रान-पुष्पांजलि' बाबाको बादमें भेंट स्वरूप प्रदान किया, बादमें माने कुछ साल बाद। इस ग्रन्थमें प्रियाप्रियतम श्रीराधाकृष्णके एकान्त निकुञ्जकी अन्तरंग केलिका वर्णन है। यह अन्तरंग केलि सार्वजनिक वस्तु नहीं है, अपितु मात्र सुयोग्य अधिकारीके लिये अवलोकनीय है। यह वस्तु एक मात्र अधिकारीके हाथ लगे, इसलिये ऐसा सुननेमें आया कि सम्मान्य लालाजीने 'प्रान-पुष्पांजलि' ग्रंथकी केवल दो सौ प्रतियाँ ही आर्ट पेपरपर छपवायी थी, उसीमेंसे उन्होंने एक प्रति बाबाके पास भेंट स्वरूप भेजी थी।

प्रसंगानुरोधसे प्रान-पुष्पांजलिकी चर्चा बीचमें आ गयी इसीलिये कि सम्मान्य लालाजी बाबाकी उस भावमयी स्थितिपर बार-बार बलिहार जा रहे थे। बाबा घेरेका सहारा लिये हुए श्रीश्रीजीके समक्ष बहुत देरतक खड़े रहे।

भोगका समय हो जानेपर श्रीश्रीजीके मन्दिरमें पट आ गया। पटके बन्द होनेके बाद भी बाबा उसी प्रकार कुछ देरतक खड़े रहे। थोड़ी देर बाद इनके लिये एक आसन घेरेसे हटकर लगाया गया और बाबूजीने बाबाको वहाँ बैठाया।

* * * * *

मंगल-प्रवाहिणी भगवती गंगा

प्रयाग-निवासी मानस-कथावाचक पण्डित श्रीओंकारनाथजी मिश्र जब भी गोरखपुर आते थे, तब बाबाके दर्शनार्थ गीतावाटिका पधारते ही थे। उनके पधारनेपर बाबा उनसे कुछ-न-कुछ सुनते ही थे, भले ही वे केवल बारह-पन्द्रह मिनट ही कथा सुनायें। आदरणीय श्रीमिश्रजीने जब अपना आसन ग्रहण किया तो बाबाने कुशल समाचार पूछ लेनेके बाद कुछ हरिकथा सुनानेके लिये उनसे प्रार्थना की। आदरणीय श्रीमिश्रजीने कहा – मेरे पास अपना है ही क्या, जो मैं बोलूँ? जो आप मेरे हृदयमें भरते हैं, वही मेरे अधरोंसे बाहर निकल पड़ता है। मैं तो प्रतिध्वनि मात्र हूँ। आप ही मुझपर कृपा करें। मेरे उर-प्रेरक और उर-परिपूरक आप ही हैं।

बाबाने कहा – आपका यह दैन्य आपके संत-स्वभावका परिचायक है, परंतु सबके ही हैं 'उर-प्रेरक रघुबीर'। घाट हो चाहे हरिद्वारका अथवा कानपुरका अथवा वाराणसीका अथवा पटनाका, परंतु सभी स्थानोंकी गंगाजीमें जल गंगोत्रीसे ही आता है। सभीके हृदयमें प्रेरणा वे भगवान श्रीरघुवीर ही करते हैं। सबको भाव और भाषाका दान भगवानसे ही मिलता है।

बाबाने तो अपनी बात समझानेके लिये श्रीगंगाजीका उदाहरण मात्र दिया था, परंतु इसीपर बाबाने आदरणीय श्रीमिश्रजीको अपने जीवनके दो प्रसंग सुना दिये –

बाबा तथा बाबूजी एक बार स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गये हुए थे। ठहरे थे डालमियाकोठीमें, जो एकदम श्रीगंगाजीके तटपर ही थी और है। एक दिन बाबा गंगा-स्नान करनेके लिये धीरे-धीरे चलते हुए चले जा रहे थे, तभी बाबूजी घबराये हुए-से आये और चिन्तापूर्ण भाषामें कहने लगे – जयहरि (सम्मान्य श्रीजयदयालजी डालमियाका बालक) नहीं मिल रहा है। जयदयालकी ओरसे और हमलोगोंकी ओरसे बहुत देरसे खोज हो रही है। ज़यहरिके नहीं मिलनेसे

लोग मनमें भाँति-भाँतिकी आशंका कर रहे हैं कि कहीं गंगाजीमें डूब न गया हो, उसका पैर फिसल गया हो और बह गया हो। उसकी खोजमें लोग यत्र-तत्र दौड़-धूप कर ही रहे हैं।

बाबाने बाबूजीकी बात सुन ली तथा पूर्ववत् शान्त भावसे चलते-चलते गंगाजीके किनारे आये और तटपर बैठ गये। बाबाको यह प्रिय नहीं कि तुरन्त स्नान करके तुरन्त वापस लौट चलें। वे कुछ देरतक गंगातटपर बैठते तथा बैठकर धाराका दर्शन करते हुए माँ गंगासे कुछ बातें करते। अपने उसी अभ्यासके अनुसार बाबा गंगातटपर आकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद बाबाने भगवती श्रीगंगाके प्रवाहमें प्रवेश किया और कटितक जलमें पहुँचकर खड़े हो गये। आनेके पूर्व बाबूजीने जयहरिके खो जानेवाली बात सुनायी ही थी, उस बातकी स्मृति आते ही बाबाने माँ गंगासे प्रार्थना की – माँ! श्रीजयदयालजीका पुत्र जयहरि नहीं मिल रहा है। उसकी बड़ी खोज हो रही है। क्या वह तेरे अन्दर है? यदि तेरे अन्दर हो तो बता दे।

इसके बादकी घटनाका वर्णन करते हुए बाबा बताने लगे – मेरे द्वारा ऐसी प्रार्थना होते ही बड़ी मधुर ध्वनि सुनायी दी। मेरे समक्ष प्रत्यक्ष रूपमें न कोई थी और न कोई था। मुझे कोई भी दिखलायी नहीं दिया, परंतु धाराकी लहरोंसे निकलकर आती हुई एक अति मधुर ध्वनि सुनायी दी कि 'मेरे लाल! वह मेरे अन्दर नहीं है'।

यह सुनते ही बाबाका जी भर आया कि आज माँ गंगाकी वाणी सुननेको मिली। वे जल-प्रवाहसे तुरन्त बाहर निकलकर शीघ्रतापूर्वक बाबूजीके पास गये और कहने लगे – जयहरि श्रीगंगाजीके अन्दर तो नहीं है। अब वह जहाँ कहीं भी हो, उसकी आप खोज करवाइये, पर यह निश्चित है कि वह गंगाजीके अन्दर नहीं है।

* * *

बाबाने अपना दूसरा प्रसंग सुनाया –

गंगादशहराका दिन था। सूर्यास्तके समय बाबा गंगातटके एक एकान्त स्थानपर बैठे हुए थे। गंगादशहराका दिन होनेके कारण भक्तोंने गंगाजीको दीप-दान किया था। वे दीप गंगाजीकी लहरियोंपर बहते हुए बड़े भले लग रहे थे। लहरियोंके ऊपर दीपोंके लहरानेका दृश्य बड़ा ही मनोहारी था। ये दीपक लहरियोंके साथ खेल करते हुए बहते चले जा रहे थे। इस दृश्यको देखकर

बाबाके मनमें यह भाव आया – मैं भी माँ गंगाकी अर्चना करूँ, पर यह हो कैसे ? मैं तो एक भिक्षुक संन्यासी हूँ। मेरे पास तो ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिससे माँकी अर्चना सम्पन्न हो सके।

अर्चनाकी स्फुरणा उदित होनेपर बाबाने माँ गंगासे प्रार्थना की – माँ ! मैं तेरा वत्स हूँ। तू मेरी माँ है। तेरी वस्तु मेरी ही है। लहरोंपर इतने दीपक बह रहे हैं, एक दीपक मुझको दे दे। मेरे पास एक दीपक भेज दे। उस दीपकको लेकर, फिर उसी दीपकसे तेरी अर्चना करके मैं उसे तेरी धाराको अर्पित कर दूँगा। मानसिक रूपसे जो स्तवन-अर्चन-वन्दन मुझे करना है, वह तो होगा ही, पर तू मुझे एक दीपक दे दे।

बाबाके द्वारा ऐसी प्रार्थनाके होते ही आश्चर्य यह हुआ कि दूर धारामें जो कई दीपक बह रहे थे, उनमेंसे एक दीपक बाबाकी ओर लहरियोंपर नाचता हुआ अग्रसर होने लगा। लहरियोंके मस्तकपर उस दीपकका नाचना भी अनोखा था। कभी दाहिने झुकता हुआ, कभी बाँयें झूमता हुआ, कभी ऊपर उठता हुआ, कभी नीचे ढरकता हुआ, कभी इस ओर अर्द्ध गोलाकार चक्कर काटता हुआ, कभी उस ओर अर्द्ध गोलाकार सहज बहता हुआ, इस प्रकार नर्तन करता हुआ वह दीपक बाबाकी ओर बढ़ने लगा। वे लहरियाँ, सचमुच लहरियाँ नहीं थीं, अपितु वे थीं माँ गंगाकी कर-वल्लरी। माँ अपने हाथोंसे ही वह दीपक बाबाको दे रही थी। वह दीपक इतना समीप आ गया था कि कठिनतासे एक हाथकी दूरीपर होगा। कहाँ तो वह तब था बहुत अधिक दूर धारामें बहता हुआ और कहाँ वह अब है इतने अधिक समीप किनारेपर लगा हुआ ! बाबाने वह दीपक अपने हाथपर ले लिया। भाव भरे मनसे बाबाने माँकी अर्चना और स्तुति की और फिर माँके चरणोंमें वह दीपक अर्पित कर दिया।

* * * * *

'श्रीकृष्ण चरितामृत' पर शुभाशंसन

परम सम्मान्य पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्रको विधाताने श्रीराधाबाबाके सहोदर अग्रज कहलानेका सौभाग्य प्रदान कर रखा है। आप हृदयसे भक्त हैं। भक्तिकी निधि तो आपको अपने धर्म-परायण कुलसे धरोहरके रूपमें मिली है। प्रौढ़ावस्थामें पण्डितजीकी भक्ति-भावनामें बाढ़ आ गयी। भगवान श्रीकृष्णकी लीलाओंमें उनका मन रमने लगा। लीला-चिन्तनसे उत्पन्न होनेवाली रस-धारा

उनके तन-मन-जीवनको भाव-विभोर बनाये रहती। उनके अन्तरकी भावोद्रेकता कविताके रूपमें बहने लगी। पण्डित श्रीतारादत्तजीने ललित भाषामें जो लीला काव्य लिखा है, उसका नाम है 'श्रीकृष्ण चरितामृत'। श्रीकृष्ण चरितामृतका प्रणयन जब पूर्ण हो गया, तब उसकी पाण्डुलिपि पण्डित श्रीतारादत्तजीने अपने गाँवसे गोरखपुर बाबूजीके पास भेज दी। मेरा अनुमान है कि यह प्रसंग सन् १९६५ के आस-पासका होना चाहिये। पाण्डुलिपि भेजकर उन्होंने यह अनुरोध किया कि जब अनुकूल और प्रसन्न अवसर मिले, तब यह काव्य स्वामीजीको सुना दिया जाय।

पण्डित श्रीतारादत्तजीके अनुरोधको आज्ञा मानकर बाबूजीने यह काव्य बाबाको सुनाया। पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्र द्वारा रचित 'श्रीकृष्ण चरितामृत' काव्यको सुनकर बाबाको बड़ा सुख मिला। उस सुखानुभूतिको उन्होंने चार छन्दोंमें व्यक्त किया। इन छन्दोंमें श्रीकृष्णलीलाके गायनकी सराहना की गयी है तो उसके साथ ही यह भी संकेतित हुआ है कि उनकी रुचिके अनुसार अपने जीवनको ढाल देनेमें ही सुन्दरता है।

वे चार छन्द इस प्रकार हैं —

सुन्दर इस निज चरित्र छविको मेरे उरपर लिखना, प्रियतम!
लिखते लिखते जब कर-पल्लव हो जाय अधिक चिकना प्रियतम!
लेना तुम पोंछ उसे अपने पीले दुकूलमें ही, प्रियतम!
देखूँगी मैं उन चिह्नोंपर सहचरियोंका बिकना प्रियतम!

रजनीको जब विराम देने आयेगी उषा सखी प्रियतम!
आयेंगी तब वे भी निकुञ्ज वातायनके समीप प्रियतम!
होगा फिर द्वार मुक्त भीतर होंगी अपलक सब वे प्रियतम!
बाहर अलिसे मुखरित होगा, फूलोंसे लदा नीप प्रियतम!

मंगल नीराजन होनेपर बाहर लायेंगी वे प्रियतम!
हम दोनोंको उनके पीछे पीछे चलना होगा प्रियतम!
कालिन्दीकी उन लहरों में हमको नहलायेंगी प्रियतम!
उनकी रुचि के साँचे में ही हमको ढलना होगा प्रियतम!

अतएव अभी से सच तुमको इंगित कर देती हूँ प्रियतम!
मैं नित्य अहो रंगस्थलकी जो नित्य नटी ठहरी प्रियतम!

हो नहीं समयसे पहले ही झंकृत यह रंग मंच प्रियतम!
इसलिये बनी बैठी हूँ मैं गूँगी एवं बहरी प्रियतम!

इन चार छन्दोंके अर्थ गम्भीर भी हैं और साधारण भी। गम्भीर अर्थमें बाबा निकुञ्ज लीलामें तन्मय होकर कह रहे हैं निकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्णसे। नित्य निकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्णने परम पवित्र चिन्मय लीलाका एक प्रस्ताव रखा और उसे सुनकर निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा कह रही हैं— वहाँ उस निकुञ्ज-भित्तिपर पुष्प-वृन्तसे और मृगमदके अनुलेपनसे चित्र मत बनाओ भला! यह इसलिये कि उन चित्रोंको चित्रांकित करते-करते तुम आत्म-विस्मृत हो जाओगे और मैं भी आत्म-विस्मृत हो जाऊँगी। वह चित्र मेरी सखियोंके लिये, मञ्जरियोंके लिये, सहचरियोंके लिये परम आह्लादका विषय बनेगा अवश्य, किन्तु मुझे उससे संकोच होगा। तुम्हारे उद्देश्यकी पूर्ति भी नहीं होगी। इसीलिये कहती हूँ कि लिखना ही हो तो इन विविध रसमय चित्रोंको विहंगमका रूप देकर, लता-वल्लरियोंका रूप देकर, उनके अन्तरालसे व्यक्त होते हुए उन व्यक्त भावोंको मूर्त रूप देकर मेरे वक्षस्थलपर ही उसकी रचना करो। उसे मैं आवृत कर लूँगी। मेरी सखियों-सहचरियों-मञ्जरियोंका आह्लाद तो अक्षुण्ण रहेगा ही, साथ ही मेरे लिये निरर्थक संकोचका प्रश्न नहीं रहेगा। 'सुन्दर इस निज चरित्र छविको मेरे उर पर लिखना प्रियतम'।

तुम्हारे कर-पल्लव अनुलेपनकी मसृणता लेकर ऐसे मसृण बन जायँ कि तूलिका चले ही नहीं, तब उसे मेरे नील अरुण परिधानोंमें न पोंछकर अपने पीले दुकूलमें ही पोंछ लेना। बनाये हुए चित्र तो आवृत हो ही जायेंगे, परन्तु चित्र बननेके उपकरण स्वरूप अनुलेपनके पोंछनेका चिह्न तुम्हारे पिंगल दुकूलपर वर्तमान रहेगा। उसे मेरी सखियाँ-सहचरियाँ-मञ्जरियाँ अवश्य देख लेंगी और उन चिह्नोंपर ही वे अपने आपको न्योछावर कर देंगी। देखो, ऊषा होने जा रही है, परन्तु मैं ठीक निर्णय नहीं कर सकती हूँ कि अभी कितनी देर है। कदाचित् रजनी अभी कुछ शेष रही हो, पर ऊषा आयेगी और रजनी अन्तर्हित होगी ही। श्रान्त रजनी मेरी सेवा करते-करते थक गयी है। इसे विश्राम देनेके लिये ही ऊषा आती है भला। वह मेरी अत्यन्त प्रिय सहचरी है। उसके लिये मैंने एक ही सेवा दे रखी है, अथवा मैं भूल गयी हूँ। प्रतिदिन कोई-न-कोई सेवा बतला देती हूँ और मैं समझती हूँ कि इसके लिये मैंने एक ही सेवा सौंपी है। कुछ भी हो, वह रजनीको विश्राम देनेकी सेवा तो करेगी ही। और देखो, जैसे

ही वह आयी कि उसके साथ मेरी सखियाँ-सहचरियाँ और मञ्जरियाँ अवश्य आयेंगी, पर वे भीतर सहसा प्रविष्ट नहीं होंगी भला। निकुञ्ज वातायनके समीप अवस्थित होकर वे हम दोनोंकी गतिविधियोंको देखेंगी। कुछ देर रस लेनेके अनन्तर ही उनमेंसे एक निकुञ्जका द्वार उन्मुक्त कर देगी और सब-की-सब अन्तर भागमें प्रविष्ट हो जायेंगी। आह्लादके कारण उनकी आँखें अपलक हो जायेंगी। उनका कण्ठ तो अवरुद्ध हो ही जायेगा, किन्तु निकुञ्जके बाहर पुष्पित-नीप-द्रुमावली भ्रमरोंके गुञ्जनसे गुञ्जित होकर यह सम्पूर्ण निकुञ्ज परिसर मुखरित हो उठेगा। वे सखियाँ-सहचरियाँ-मञ्जरियाँ हम दोनोंका सर्वप्रथम मंगल नीराजन करेंगी, फिर शत-शत प्रेमिल मनुहारसे मुझे और तुम्हें बाहर चलनेके लिये विवश कर देंगी। हम दोनोंको ठीक उनका ही अनुसरण करना पड़ेगा भला। कलिन्दनन्दिनीकी लहरोंमें वे हम दोनोंको नहलायेंगी और न जाने क्या-क्या हम दोनोंसे करवायेंगी। उनकी रुचिके साँचेमें ही हम दोनोंको अपने प्राणोंको मिला देना है भला। अतएव अभीसे मैं तुम्हें सारी बात समझा दे रही हूँ। समझा दे रही हूँ इसलिये कि यदि तुम उन सखियों-सहचरियों-मञ्जरियोंके सामने मुझसे कुछ पूछोगे तो मुझे संकोच होगा। पहलेसे ही सारी व्यवस्थाकी बात स्पष्ट कर दे रही हूँ, क्योंकि जब तुम नट बनकर आनेके लिये और रंगस्थलपर कूद पड़नेके लिये प्रस्तुत हो जाओगे तो फिर विवश होकर मुझे तुम्हारे सम्पूर्ण खेलकी व्यवस्था करनी ही पड़ेगी। पता नहीं कितने दिन बीत गये, युग-युगान्तर बीत गये होंगे, तबसे रंगस्थलका निर्देशन-कार्य मुझे ही करना पड़ता है। तुम बार-बार पूछते हो कि ऐसा क्यों, ऐसा क्यों। इन प्रश्नोंको सुनकर मुझे तुम्हारी सरलतापर हँसी आती है। हँसी आती है इसीलिये कि सब जानते रहनेपर भी तुम ऐसे निरर्थक प्रश्न करते रहते हो। तुम्हारा स्वभाव ही है मुझे छेड़ते रहनेका। तुम्हें पता नहीं है, ऐसी बात तो है नहीं। तुम तो जिद कर बैठते हो और यदि निर्धारित समयसे पहले ही मेरी नूपुर बज गयी एवं मेरी साँसका एक स्वर भी रंगस्थलके मंचपर ध्वनिके आभासका संकेत कर बैठा तो रंगमंच झंकृत हो उठेगा। सखियों- सहचरियों-मञ्जरियोंके कर्णपुटोंमें मेरी साँसकी वह स्वर-लहरी बैखरी बनकर मूर्त हो जायेगी और फिर कोलाहल हो उठेगा, इसीलिये तो मैं गूँगी और बहरी बनी रहती हूँ, न बोलती हूँ और न सुनती हूँ।

* * * * *

श्रीमद्भागवत पुराण का लेखन

बाबाके मनमें ऐसी चाह थी कि सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पुराणको हाथसे लिखवाया जाये और वह हस्तलिखित ग्रन्थ स्वयंमें इतना गरिमामय हो कि उसका दर्शन मात्र लाभकारी हो। लेखकके रूपमें श्रीमोतीलालजी पारीक जैसा सात्त्विकजीवन भक्तहृदय श्रेष्ठब्राह्मण और कहाँ मिलता? बाबाने इसकी चर्चा श्रीमोतीजीके सामने की। संकेत मिलते ही बाबाकी भावनाके अनुसार श्रीमोतीजीने श्रीमद्भागवत महापुराणका लिखना प्रारम्भ कर दिया। श्रीमद्भागवत पुराणको कागजके जिन पत्रोंपर लिखा गया है, वे हस्तनिर्मित हैं तथा वे इतने मजबूत हैं कि जलवायुके प्रभावसे वे जल्दी नष्ट नहीं होंगे। कागज-निर्माताने ऐसा आश्वासन दिया है कि वे कई सौ वर्षतक टिके रहेंगे। लिखनेके लिये बाबाने स्याही भी विशेष रूपसे बनवायी थी। केलेका रस, आँवलेका रस, गंगाजल आदि-आदिके मिश्रणसे परम पवित्र स्याही बनवायी, जो भावकी दृष्टिसे तथा वस्तु-पदार्थकी दृष्टिसे पूर्ण सात्त्विक हो। स्याही भी ऐसी है कि उसके अक्षर न तो जलसे मिट पायेंगे और न कभी धूमिल होंगे, अपितु समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ उन अक्षरोंमें चमक अधिकाधिक बढ़ती चली जायेगी।

सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतको लिखनेमें श्रीमोतीजीको कुल तीन वर्ष लगे। हस्तलेखन कार्यके पूर्ण हो जानेके बाद उसके संशोधनकी व्यवस्था बाबाने की। श्रीगोस्वामीजीके नेतृत्वमें पं.श्रीरामनारायणदत्त शास्त्री तथा पं.श्रीरामजीलालजी शर्माने, इन तीनों व्यक्तियोंने साथ-साथ बैठकर भागवत-ग्रन्थको आदिसे अंततक पढ़ा तथा लेखनकी जहाँ-जहाँ अशुद्धियाँ थीं, उन सबका संशोधन किया। इस प्रकार शुद्ध हो जानेके बाद बाबाने खुले पन्नोंवाले इस हस्तलिखित श्रीमद्भागवत महापुराण ग्रन्थकी पञ्चोपचार पद्धतिसे शत वर्षीय पूजा करवायी। तदुपरान्त बाबाने कहा – जो भी इस श्रीमद्भागवत महापुराण ग्रन्थका दर्शन करेगा, वन्दन करेगा, उस व्यक्तिमें व्रजभावका बीजारोपण हो जायेगा। अब यह बीज कब (अर्थात् किस जन्ममें किस रूपमें किस विधिसे) फूलेगा-फलेगा, यह बात दूसरी है, पर उसे कभी-न-कभी, 'व्रज-भाव-जीवन'की प्राप्ति अवश्य होगी।

यह श्रीमद्भागवत महापुराण ग्रन्थ काठकी जालीदार पेटीके अन्दर

सुरक्षित है। आजकल श्रीमद्भागवत पुराणकी पेटी श्रीराधा-कृष्ण-साधना-मन्दिरमें रखी हुई है।

* * * * *

श्रीगिरिराज परिक्रमा का शुभारम्भ

सं. २०१२ वि. आश्विन कृष्ण १२, बुधवार, २२-९-१९६५ के दिन बाबूजीका पावन जन्मदिवस था। ऐसा निश्चित किया गया कि बाबाकी कुटियाके सामने बाड़ेके बाहर जन्मदिवस मनाया जाय। उस अवसरपर क्या-क्या होगा, यह सारा कार्यक्रम बाबाके निर्देशानुसार बना लिया गया। बाबूजी स्वभावतः बड़े संकोची हैं, अतः यह भी तय किया गया कि केवल श्रीनटवरजी ही बाबूजीकी पुष्प-चन्दन-मालासे अर्चना करके प्रणाम कर लेंगे और अन्य सभी लोग बैठे-बैठे यही भावना कर लेंगे कि श्रीनटवरजी द्वारा की गयी अर्चना मेरे द्वारा ही हो रही है।

जब बाबूजीको कार्यक्रममें आनेके लिये अनुरोध किया गया तो उन्होंने स्पष्ट रूपसे अस्वीकार कर दिया। 'मेरा जन्मोत्सव मनाया जाय' यह उनको प्रिय था ही नहीं। गम्भीर अनिच्छा होनेके बाद भी येन-केन-प्रकारेण उनको जन्मोत्सवमें पधारनेके लिये मना लिया गया। निर्धारित समयपर बाबूजी कार्यक्रममें पधारे।

बाबूजीके आते ही उच्च जयकारके साथ भगवन्नाम संकीर्त्तन आरम्भ हुआ। फिर बाबाने ठाकुरजीसे नृत्य करवाया। उनके कलापूर्ण सुन्दर नृत्यसे वातावरणमें सरसता व्याप्त होने लगी। उस सरसताको घनीभूत बना दिया भावपूर्ण पदोंके गायनने। सघन-सघनतर होती हुई सरसताने बाबूजीपर बड़ा प्रभाव डाला और वे विशेष रूपसे अन्तर्मुख हो गये।

देहातीतावस्थामें निमग्न होते हुए बाबूजीको अधिक समयतक बैठाये रखना बाबाने उचित नहीं समझा, अतः उन्होंने संकेत द्वारा श्रीनटवरजीसे अर्चना करनेके लिये कहा। श्रीनटवरजीने बाबूजीके भालपर तिलक किया, फूलोंकी माला पहनायी तथा भूमिपर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। सभी उपस्थित लोग बड़े भक्ति-भावसे यह अर्चना देख रहे थे।

उपस्थित लोगोंके बीच बैठे थे एक भक्त महात्मा भी। उनका भावुक

हृदय कुछ अधिक ही भावाप्लावित हो उठा और उनके उल्लासाधिक्यने रसकी बाढ़में बाधा डाल दी। कार्यक्रमकी पूर्व निर्धारित सुनिश्चित प्रक्रियाका यथावत् पालन न होनेसे उपस्थित भक्तोंको तो अच्छा लगा ही नहीं, बाबाका भी मन खिन्न हो गया।

अब बाबाके सामने प्रश्न यह था कि इस भावपूर्ण कार्यक्रममें आकस्मिक रूपसे उत्पन्न भावदोषके परिहारके लिये क्या किया जाय, जो मंगलकारी हो। भावदोषके परिमार्जनके लिये बाबाने निश्चित कर लिया कि मुझे सदाके लिये श्रीगिरिराजजीकी तरहटीमें निवास करना चाहिये।

इस निश्चयसे तुरन्त एक धर्म-संकटकी स्थितिका उद्भव हो गया। यदि बाबा श्रीगिरिराज तरहटीमें निवास करनेके लिये गोरखपुरसे गोवर्धन जाते हैं तो क्या बाबूजी भी सदाके लिये वहाँ जायेंगे? बाबूजीके कन्धोंपर जो विविध प्रकारके एवं अनेक स्तरके गुरुतर दायित्व हैं, उनको देखते हुए बाबूजीका गोवर्धन जा सकना सम्भव है ही नहीं। तो क्या बाबूजीके नित्य सांनिध्यमें अहर्निश निवास करनेवाले संकल्पको बाबा विसर्जित कर देंगे? यह भी सर्वथा असम्भव था। इस धर्म-संकटके निवारणके लिये यह हल निकाला गया कि गीतावाटिकाके श्रीगिरिराजजीकी तरहटीमें बाबा निवास करें।

गीतावाटिकामें विराजित श्रीगिरिराज भगवानकी स्थापनाका एक संक्षिप्त वृत्त है। सन् १९६३ में बाबाने श्रीषोडशगीतकी रासलीला करवायी थी, जिसमें श्रीप्रिया-प्रियतमने इन सोलह पदोंका गायन किया था। इस सारे कार्यक्रमका एक विशेष प्रयोजन था। इस रासलीलामें चन्द्रिका और मोरमुकुटधारी श्रीप्रिया-प्रियतम द्वारा इन पदोंका गायन करवा करके बाबाने षोडशगीतमें दिव्य भावोंकी 'प्राण-प्रतिष्ठा'का विधान भाव-विधिसे सम्पन्न किया था। यह लीला रेलवे कालोनीमें स्थित बाल्टी कारखानेके प्रांगणमें हुई थी। बाबा चाहते थे कि लीलाके समय यहाँ श्रीगिरिराज भगवानकी उपस्थिति रहे। उस कारखानेके एक कोनेमें कुछ रोड़े-पत्थर पड़े हुए थे। बाबाने उन्हीं रोड़े-पत्थरोंमें श्रीगिरिराज भगवानकी भावना कर ली और भावात्मक रूपसे उनकी अर्चना भी कर दी। लीलाके आयोजनके सम्पन्न हो जानेके कई माह बाद उन रोड़े-पत्थरोंको हटानेकी आवश्यकता हुई। यह प्रश्न बाबाके सामने आया। बाबाने कहा — उनको यों ही नहीं फेंक देना

चाहिये। इनकी अर्चना मैं श्रीगिरिराजजीके रूपमें कर चुका हूँ। यदि उन रोड़े-पत्थरोंको वहाँसे हटाना ही है तो उन रोड़े-पत्थरोंको ट्रकपर रखकर गीतावाटिका लाया जाय और मेरी कुटियाके सामने पधरा दिया जाय।

बाबाके निर्देशानुसार कार्य किया गया। बाबा इस बारेमें बड़े सावधान थे कि श्रीगिरिराज-भाव-भावित उन रोड़े-पत्थरोंको उचित स्थान और उचित सम्मान मिलना ही चाहिये।

गीतावाटिकामें श्रीगिरिराजजीके विराजित होनेका यह संक्षिप्त वृत्त है। बाबाके सामने जो धर्म-संकट आ गया था, उसका निवारण करनेके लिये जो सुन्दर हल उभर करके सामने आया, वह यह था कि जो गिरिराजजी कुटियाके सामने विराज रहे हैं, इनकी तरहटीमें निवास करते हुए बाबा श्रीगिरिराजजीकी नित्य परिक्रमा लगाया करें। यह हल सर्व-प्रिय था। इस हलके अनुसार बाबाकी कुटियाके सामने स्थित श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाका शुभारम्भ इसी पावन जन्म-दिवसपर हुआ। व्रजभूमिके श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमामें आनेवाले स्थान श्रीराधाकुण्ड, श्रीआन्योर, श्रीपूँछरी, श्रीजतीपुरा, श्रीगोवर्धनग्रामकी स्थापना कहाँ की जाय, इसके बारेमें बाबाने श्रीठाकुरजीसे कहा – ठाकुर! तुम जो कहोगे, मैं वही मान लूँगा। केवल मैं ही नहीं, मेरे प्रियतम श्रीनीलसुन्दर भी ज्यों-के-त्यों उसे स्वीकार कर लेंगे।

थोड़ी देर बाद बाबाने इतना अवश्य कहा कि मेरी कुटियामें बरसाना ग्रामकी भावना करके अन्य स्थानोंकी भावात्मकता पूर्वक अवधारणा करना। उसी समय ठाकुर श्रीघनश्यामदासजीके सुझावानुसार राधाकुण्ड, गोवर्धन, आन्योर, जतीपुरा आदि स्थलोंका निर्धारण हुआ। श्रीगिरिराजजीकी एक परिक्रमा १३ मीलकी होनेसे यह भी तय हुआ कि एक सप्ताहमें बाबाकी दो परिक्रमा पूर्ण हो जाया करे।

बाबाकी कुटियाके समक्ष स्थित स्थापित श्रीगिरिराजजीकी परिधिको नापनेसे यह ज्ञात हुआ कि ४७ परिक्रमा देनेसे एक मीलकी दूरी तय होती है। इन सब बातोंका निर्धारण करके बाबाने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा आरम्भ की। क्षीण स्मृतिके अनुसार ऐसा स्मरण हो रहा है कि रातको ग्यारह बजकर सैंतालिस मिनटपर बाबाने परिक्रमा लगाना आरम्भ कर दिया था। बुधवारका दिन होनेसे इसका शुभारम्भ श्रीराधाकुण्डसे हुआ और कुल ४७ × ३ = १४१

फेरी लगायी गयी अर्थात् बाबा राधाकुण्डसे गोवर्धनतक तीन मील चलकर आये और गोवर्धन ग्राममें विश्राम किया।

अतः परिक्रमाका क्रम इस प्रकार निश्चित किया गया –

गुरुवार	गोवर्धनसे आन्योर	२ मील
शुक्रवार	आन्योरसे जतीपुरा	३ मील
शनिवार	जतीपुरासे राधाकुण्ड	५ मील
रविवार	राधाकुण्डसे आन्योर	५ मील
सोमवार	आन्योरसे जतीपुरा	३ मील
मंगलवार	जतीपुरासे राधाकुण्ड	५ मील
बुधवार	राधाकुण्डसे गोवर्धन	३ मील
		२६ मील

जब परिक्रमाके क्रमका शुभारम्भ हुआ, तब पद-गान तथा संकीर्तन नहीं होता था। यह क्रम तो बादमें परिक्रमाके साथ जुड़ गया। पद-गान तथा 'कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल' के कीर्तनका क्रम जुड़नेके साथ-साथ श्रीगिरिराजजीके नित्य पूजन एवं भोग-रागका भी विस्तार होता गया।

* * *

सन् १९६५ में इन श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाके शुभारम्भ होनेके बाद सन् १९७१ में बाबूजीकी चिता-वेदीका निर्माण भी इसी श्रीगिरिराज-परिसरमें हुआ। आजकल जहाँ प्रस्तर-निर्मित चौकी है, वहाँ पहले काठकी चौकी थी। इसे स्थायी रूप देनेके लिये उसके स्थानपर प्रस्तर चौकी बनवा दी गयी और यह बनवायी गयी सं. २०३४ वि. ज्येष्ठ कृष्ण ९, बुधवार, ११-५-१९७७ के दिन। जब प्रस्तर चौकीका निर्माण हुआ, तब रात्रिमें विशेष रूपसे हरिनाम संकीर्तन तथा प्रसाद-वितरण हुआ। अब तो प्रायः ही श्रीगिरिराज भगवानके समक्ष सविधि पूजन सहित अन्नकूटोत्सव मनाया जाता है। श्रीगिरिराज भगवानके चतुर्दिक् जो परिक्रमा पथ है तथा परिसर है, वह आज गीतावाटिकाका एक प्रमुख उपासना स्थल है।

परवर्ती कालमें बाबाका शरीर जब बहुत अस्वस्थ रहने लगा तब वे कुर्सीपर बैठकर श्रीगिरिराजजीकी पाँच परिक्रमा लगाया करते थे, परन्तु इसके पहले तो परिक्रमाके समय उनके चलनेकी स्फूर्ति देखते ही बनती थी। परिक्रमा आरम्भ करनेके पूर्व बाबा श्रीगिरिराजजीकी चौकीपर अपनी गुदड़ी रख दिया करते थे और फिर उस गुदड़ीपर अपना दाहिना हाथ टिकाकर बहुत देरतक नेत्र बन्द किये हुए बैठे रहते थे। परिक्रमा स्थलीमें बैठे हुए भक्तजन बाबाको एकटक निहारते रहते थे। एक दिन एक व्यक्तिने अवसर देखकर प्रश्न कर लिया – बाबा! आप गुदड़ीपर हाथ रखकर नेत्र बन्द किये हुए क्या किया करते हैं?

समाधान प्रस्तुत करते हुए बाबाने बतलाया – मुझसे कई हजार व्यक्ति जुड़े हैं। इन व्यक्तियोंके मनका धरातल बड़ा निम्न है। वे मायामें इतने अधिक लिप्त हैं कि उनके पास भगवत्स्मरणके लिये समयका अभाव है। उनका अपने परमार्थकी ओर ध्यान नहीं। कुछ-एक लोगोंकी बात तो अलग है, पर अधिकांश लोग तो सांसारिकतामें सीमातीत रूपमें निमग्न हैं। मैं आँख मूँदे-मूँदे उन माया-निमग्न व्यक्तियोंकी ओरसे भगवानकी प्रार्थना-अर्चना कर लिया करता हूँ। मुझको मेरे लिये कुछ नहीं चाहिये। मेरे जीवनसर्वस्व श्रीनीलसुन्दर नित्य मेरे साथ हैं। मेरे लिये क्या याद करना और क्या प्रार्थना करना, मैं तो उन व्यक्तियोंकी ओरसे भगवानको याद करता हूँ।

बाबाके श्रीमुखसे भावपूर्ण समाधान सुनकर वे भाई बहुत विभोर हो उठे।

* * * * *

सरिता और सागर

अष्टछापके विख्यात भक्त-कवि श्रीनन्ददासजीके एक पदकी दो पंक्तियाँ हैं–

बेसर कौन की अति नीकी।
होड़ परो प्रीतम अरु प्यारी, अपने-अपने जीकी।

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा और नन्दनन्दन श्रीकृष्ण बैठे-बैठे परस्परमें प्रेम-सनी चर्चा कर रहे थे, तभी बेसरकी सुन्दरतापर बात चल पड़ी। पारस्परिक बातचीतके मध्य दोनों ही अपनी-अपनी बेसरको सुन्दरतर बतला रहे थे और बतलाते-बतलाते दोनों पक्षोंको अपनी-अपनी समझका आग्रह हो गया।

इसी प्रकारका आग्रह एक बार सन् १९६६ में बाबा और बाबूजीको अपनी-अपनी भावनाका हो गया था। प्रसंग गीता-भवन (स्वर्गाश्रम) का है, जो ऋषिकेशके उस पार गंगाजीके तटपर स्थित है। एक बहिन अपने कमरेमें बैठी हुई श्रीगंगाजीकी धाराको देख रही थी। उसका कमरा एकदम गंगाजीके तटपर ही था। हिमालयके शिखरसे उतरकर और घाटियोंको पीछे छोड़कर उसका जल-प्रवाह निरन्तर आगे मैदानी भागकी ओर तीव्र गतिसे बहता चला जा रहा है। पर्वतीय घाटियोंसे उतरकर आनेके कारण उस जल-प्रवाहमें बहुत वेग है। उस अविरल प्रवाहको देखकर वह बहिन मन-ही-मन कहने लगी– यह भी कैसी बात है कि यह सरिता सागरकी ओर सदा-सदा बहती ही रहती है। कभी एक क्षण ठहरनेका नाम भी नहीं लेती।

निरन्तर बहते रहनेकी भावनासे वह बहिन इतनी अभिभूत हुई कि उसने अपने मनके भावोंको बाबाके समक्ष व्यक्त किया। बाबाने इन भावोंकी बड़ी सराहना की और वे उस बहिनसे कहने लगे– यही तो राधा-भाव है। सिन्धु अत्यन्त खारा है, परंतु सिन्धु-पक्षकी इस न्यूनताकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते हुए सरिता निरन्तर सागरकी ओर बहती ही रहती है। सरिता तो समर्पणकी साक्षात् प्रतीक है। प्रेमास्पदके गुण-अवगुणकी ओर तनिक भी दृष्टिपात न करते हुए प्रेमास्पदके प्रति प्रेमीका सर्व समर्पण, यही राधा-भाव है। प्रेमकी पाठशालाका यही प्रथम और यही अन्तिम पाठ है। अविरल प्रवाहके अन्तरालसे सरिताके समर्पणकी जो झलक तुमको

मिली है, वह सर्वथा प्रशंसाके योग्य है।

बाबाने उन बहिनकी भाव-धाराकी सराहना हृदयसे की थी। इस सराहनासे उत्साहित होकर एक-दो दिन बाद अनुकूल अवसर मिलनेपर उस बहिनने वही बात बाबूजीसे भी कह दी, जो उसने बाबासे कही थी। बाबूजीसे उसने यह भी बता दिया कि बाबा तो श्रीगंगाजीके निरन्तर बहते रहनेकी बड़ी महिमा बता रहे थे और वे यह भी कह रहे थे कि भक्तकी भाव-धारा बस, इसी प्रकार भगवानके प्रति होनी चाहिये।

उस बहिनके द्वारा ऐसा कह दिये जानेपर बाबूजीने बाबाके विचारोंका अनुमोदन तो किया ही, पर फिर बाबूजी सागरका पक्ष लेकर कहने लगे– उस सागरको भी तो देखो, जो युग-युगसे सरिताकी राह देख रहा है, निरन्तर प्रतीक्षा कर रहा है।

यदि सरिताका पक्ष लिया बाबाने तो बाबूजीने लिया सागरका पक्ष। उसी दिन बाबूजीने तो गीताभवनके सत्संगमें प्रवचन देते हुए इसी बातकी चर्चा छेड़ दी। उन्होंने सागरकी प्रशंसा की और कहने लगे– सागरके दर्शनकी आकुलतामें यदि सरिता निरन्तर बहती रहती है तो सरितासे मिलनकी आतुरता लिये सागर निरन्तर उमड़ता रहता है। सरिताकी आकुलता अनन्त है तो सागरकी आतुरता भी अनन्त है। तटोंका सहारा लेकर यदि सरिता सदा बढ़ती रहती है तो कभी-कभी तट-रेखाका अतिक्रमण करके आगे बढ़कर लहरोंका हाथ उठाये सागर सदा प्रतीक्षा करता रहता है। सरिताका कल-कल क्रन्दन यदि असीम है तो सागरका हा-हा गर्जन भी अनन्त है। सरिताकी प्रतीक्षामें रात-दिन लहरोंके रूपमें अपने हाथ उठाये-उठाये हाहाकार करनेवाले अनन्त सागरकी आतुरता किसी भी प्रकार न उपेक्षणीय है और न किसी प्रकार न्यून है। जगतके साधारण प्राणी कभी अनुमान कर ही नहीं सकते कि सच्चे प्रेमीके लिये भगवानके हृदयमें कैसी अनन्त आतुरता और कैसी अनवरत प्रतीक्षा बनी रहती है।

सरिता और सागरका, प्रेमी तथा प्रेमास्पदका, भक्त और भगवानका यह रसमय विवाद कई दिनतक चलता रहा। विवादके स्थानपर इसे संवाद कहना चाहिये। यह सरस संवाद था अभूतपूर्व और इसका आस्वादन भी था लोकोत्तर।

प्रेमी और प्रेमास्पदके परस्पराकर्षणका बड़ा सुन्दर चित्रण एक स्थानपर बाबूजीने किया है। महाभावमयी श्रीराधाके श्रीमुखके उद्‌गारोंको शब्द-बद्ध करते हुए बाबूजीने बताया–

होता जब वियोग, तब उठती तीव्र मिलन-आकांक्षा जाग।
पल-अमिलन होता असह्य तब, लगती हृदय दहकने आग।।
चलती मैं रस-सरि उन्मादिनी विह्वल, विकल तुम्हारी ओर।
चलते उमड़ मिलाने निजमें तुम भी रस-समुद्र तज छोर।।

(जब वियोग होता है, तब अत्यन्त तीव्र मिलनाकांक्षाका उदय हो जाता है, फिर एक-एक पलका अमिलन असह्य हो उठता है और हृदयमें ज्वाला धधक उठती है। उस समय मैं रस-सरिता उन्मादिनी और विह्वल-विकल होकर तुम्हारी ओर चल पड़ती हूँ, उधर तुम रस-समुद्र कूल-किनारा त्यागकर मुझे अपनेमें मिला लेनेके लिये उमड़ चलते हो।)

'प्रेमी पक्ष'की भाव-धारापर उन दिनों एक कविताकी रचना हुई थी। यह रचना तो भावग्राही बाबाको अत्यन्त प्रिय लगी ही, 'प्रेमास्पद-पक्ष'का समर्थन करनेवाले बाबूजीका रसमय हृदय भी इस रचनापर बहुत अधिक रीझ गया था। वह कविता इस प्रकार है–

अनुपम धारा सुर-सरिताकी।
प्यार भरी अतुलित गति अविरल, सागर-लक्ष्य स्नेह-भरिताकी।।
कहा शिलाने– 'तुम मधु-सलिला और पुञ्ज वह खारेपनका।
सोचो तनिक, तुली हो क्यों तुम करने शेष मधुर जीवनका'?
कहा तटोंने– 'कहाँ चली तुम? क्या पाओगी उससे मिलकर?
क्यों खोती अस्तित्व स्वयंका, नाम-रूपका सिन्धु-चरणपर'?
शिला खण्डको, युगल तटोंको, मिला न कुछ सरिताका उत्तर।
सुना तनिक-सा कल-कल स्वरमें विकल हृदयका कल क्रन्दन वर।।
'कितनी दूर अभी बहना है? कितनी दूर सिन्धुका तट है?
दूर भला क्यों मिलन घड़ी है? मधुर मिलन क्यों नहीं निकट है'?
पथके पत्थर रोक न पाये सरिताकी उस धार प्रखरको।
विविध प्रश्न भी मोड़ न पाये, विरत न कर पाये पल भरको।।

भले क्षारमय उसे कहें सब, सिन्धु रूप बस, बसा नयनमें।
एक निरन्तर सिन्धु-मिलनकी छायी बस, उत्कण्ठा मनमें।।
सिन्धु-पुलिनका बस, अन्वेषण, एक साध्य बस, सिन्धु-देश है।
अविरल बहना, बहते जाना, बहना ही बस, कार्य शेष है।।

* * * * *

भगवान श्रीविष्णु से संभाषण

बाबाकी कुटियाके बाड़ेके भीतर अमरूदका एक पेड़ है। बाबा भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी पूजा कर चुकनेके बाद निर्माल्य जहाँ रख दिया करते थे, उसी स्थानपर निर्माल्यमेंसे यह अमरूद-वृक्ष उग आया। बाबा अपनी कुटियाके बाहर, पर बाड़ेके भीतर खड़े थे कि उस अमरूद वृक्षके ऊपर आकाशमें भगवान श्रीविष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये हुए प्रकट हो गये। बाबाने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। भगवान श्रीविष्णुका मुखमण्डल अत्यधिक प्रसन्न था। भगवान श्रीविष्णुने बाबासे कहा – तुम माता देवहूतिकी भूमिकाको स्वीकार कर लो।

माता देवहूतिके गर्भसे प्रकट हुए थे सांख्य-शास्त्रके प्रवर्तक आचार्य कपिल, जिनकी गणना चौबीस अवतारोंमें भी की जाती है। सांख्य-शास्त्रमें ज्ञान-तत्त्वका विशेष विवेचन और प्रतिपादन हुआ है। माता देवहूतिकी स्थितिको स्वीकार करनेका अर्थ होता है 'प्रेम' से 'ज्ञान' को श्रेष्ठतर और फिर सर्वोपरि मान लेना, किन्तु बाबा तो श्रीराधाभावमें प्रतिष्ठित थे, जहाँ प्रेम-ही-प्रेम है। भगवान श्रीविष्णुके वचनोंसे प्रेरणा पाकर वे बाबा, जो अपने दिव्यस्वरूपमें प्रतिष्ठित थे, उन्होंने एक माँग उनके सामने रखी। माँगको सुनकर भगवान श्रीविष्णुने कहा – अभी काल (समय) अनुकूल नहीं है।

बाबाने कहा – पर आप तो सर्वसमर्थ हैं। कालके नियामक एवं नियन्त्रक भी तो आप ही हैं। अनुकूल कालका निर्माण आपके लिये कठिन कार्य नहीं है।

बाबाके ऐसा कहते ही भगवान श्रीविष्णु अन्तर्धान हो गये। उस पुरातन प्रसंगको सुनाकर बाबा बता रहे थे – भले भगवान श्रीविष्णुने

उस समय 'तथास्तु' नहीं कहा, पर उनके सामने मेरी अर्जी तो आ ही गयी है। रह-रह करके उनको मेरी अर्जीपर विचार करना पड़ता है ही।

बाबाने यह नहीं बताया कि उन्होंने भगवान श्रीविष्णुके सामने क्या माँग रखी थी।

* * * * *

'राधा-सुधा-निधि' की कथा

अजमेर-यात्रामें रसिक-संत श्रीसनम साहबके भाव-शिष्य राजवैद्य पण्डित श्रीलक्ष्मीनारायणजी बाबाके सम्पर्कमें आये। आप 'श्रीराधा-सुधा-निधि' नामक रस-ग्रन्थके अच्छे मर्मज्ञ थे। उदयपुरसे आप नित्य निवासके लिये श्रीवृन्दावन चले आये थे। श्रीसनम साहब भले मुसलमान थे, पर थे श्रीराधाजीके परम भक्त। हितकुलावतंस गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी महाप्रभुके सेव्य श्रीराधावल्लभलालजी ही श्रीसनम साहबके उपास्य थे।

श्रीसनम साहबके 'पधार' जानेके बादकी दो घटनाएँ उल्लेखनीय हैं।

एक बार वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजीको एक पत्र एक संतने राधाकुण्डसे आकर दिया। पत्रके अन्तमें 'सनम सखी'के हस्ताक्षर थे और राधाकुण्डपर उस संतको श्रीसनम साहबने दिया था वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजीको दे देनेके लिये।

इसी प्रकार वृन्दावनके सेवाकुञ्जमें श्रीसनम साहबने सखी रूपमें श्रीवैद्यजीको दर्शन दिये थे और कहा था कि वे षष्ठी-उत्सवमें श्रीवैद्यजीके घर आयेंगे। श्रीसनम साहबकी उत्कट भक्तिका प्रभाव वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजीपर पड़ा और उनकी जीवन-धारा श्रीप्रिया-प्रियतमकी रसमयी उपासनाकी दिशामें बह चली।

श्रीवैद्यजी और बाबाकी निकटता क्रमशः बढ़ती ही चली गयी। श्रीवैद्यजी सन् १९६५ ई.में गीतावाटिकामें बहुत दिनोंतक रहे तथा प्रतिदिन डेढ़-दो घंटा 'श्रीराधा-सुधा-निधि'की सरस कथा बाबाको सुनाया करते थे। कई मासतक श्रीराधा-रस-सुधाका पावन प्रवाह स्वच्छन्द रूपसे बहता रहा। इस सरस कथाके पावन प्रवाहने बाबाको बड़ा सुख प्रदान किया। २७० श्लोकोंवाला यह रसमय ग्रन्थ रसिक भक्तोंका कण्ठहार है।

स्वजन काव्य गोष्ठी

अलमस्त संतकी भीतरी मौज कब और क्या रूप ले लेगी, इसे कोई साधारण व्यक्ति अनुमान भी नहीं कर सकता। अगला प्रसंग कबका है, इसे बतला सकना कठिन है, परन्तु अनुमानतः कहा जा सकता है कि सन् १९६६ के आस-पासका होना चाहिये। एक बार बाबा अपनी पुरानीवाली कुटियाके बाहर बैठे हुए थे और उनके पास बैठे हुए थे गीतावाटिकाके ही निज जन जैसे गोस्वामीपाद श्रीचिम्मनलालजी महाराज, परमादरणीया श्रीसावित्रीबाई फोगला, भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल, श्रीभीमसेनजी चोपड़ा आदि-आदि। स्वजनोंका यह सामीप्य ही स्वजन काव्य गोष्ठीके रूपमें परिणत हो गया। कैसे परिणत हो गया? परिणत होना कोई कठिन बात थोड़े ही है। बाबाके मनकी मौजका यह परिणाम था। बाबाने उपस्थित सभी निज जनोंसे कहा– जो-जो यहाँ बैठे हैं, सभी एक-एक कविता या गीत या श्लोक या शायरी बोलें। जिसको जो याद हो, जैसा भी याद हो, वह उसे ही बोले।

बाबाकी यह मौज देखकर सभीके अधरोंपर हर्षकी कान्ति उभर आयी और इस स्वजन काव्य गोष्ठीका शुभारम्भ हुआ श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके द्वारा। जिसने-जिसने जो जो सुनाया, वह नीचे दिया जा रहा है।

१– पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महो धावति।।

(ध्यानाभ्याससे मनको स्ववश करके योगीजन यदि किसी प्रसिद्ध निर्गुण निष्क्रिय परमज्योतिको देखते हैं तो वे उसे भले ही देखें; परन्तु हमारे लिये तो श्रीयमुनाजीके तटपर जो कृष्णनामवाली वह अलौकिक नील ज्योति दौड़ती फिरती है, वही चिरकालतक लोचनोंको चकाचौंधमें डालनेवाली हो।)

२— आदरणीया मैया (प्रयागवाली मैया, श्रीजजसाहबकी सहधर्मिणी)

कब दुखदाई होयगो मोंको बिरह अपार।
रोइ रोइ उठि धाइहौं कहि कहि नंदकुमार।।

३— श्रीरामप्रसादजी दीक्षित (सम्मान्य श्रीजज साहब)

He prayeth best who loveth best,
All things both great and small,
For the dear God who made us,
He made and loveth all.

(सबसे श्रेष्ठ प्रार्थना उसकी जिसका प्रेम पूत परमोत्तम।
सकल वस्तुके प्रति हो चाहे गुरु महान या तुच्छ लघुत्तम।।
क्यों कि स्नेहमय ईश्वरने ही है हम सबको रचा बनाया।
नहीं रचा ही केवल, निज वत्सलताका भी पात्र बनाया।।)

४— ठाकुर श्रीघनश्यामदासजी शर्मा

राधाकरावचितपल्लववल्लरीके,
राधापदाङ्कविलसन्मधुरस्थलीके।
राधायशोमुखरमत्तखगावलीके,
राधाविहारविपिने रमतां मनो मे।।

(जहाँके पल्लव और मञ्जरी श्रीराधिकाजीके हाथोंसे चुने गये हैं, जहाँकी मनोहर भूमि श्रीराधिकाजीके चरणचिह्नोंसे सुशोभित हो रही है और जहाँके पक्षीगण श्रीराधिकाजीके यशोगानमें ही मस्त हैं, ऐसे श्रीराधिकाजीके क्रीडावन वृन्दावनमें मेरा मन विहरण करे।)

५— श्रीहरिवल्लभजी शर्मा

बेसर कौन की अति नीकी।
होड़ परी प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की।।
न्याय परौ ललिता के आगे कौन सरस को फीकी।
नंददास प्रभु बिलगि जिन मानो कछु इक सरस लली की।।

६– स्टेशन मास्टर श्रीशंकरलालजी

इस कदर मश्के तसव्वुर हो मेरी आँखों में।
कुछ नजर आये न यार की सूरत के सिवा।।

* * * * *

आपकी याद का चुभ जाये जो दिल में काँटा।
हम कसम खाते हैं फूलू का नजारा न करें।।
आपके दर्द दी दौलत अगर हमको हो नसीब।
हम कभी दुनिया की राहत को पुकारा न करें।।

* * * * *

मोहब्बत में इक ऐसा वक्त भी आता हैं इन्साँ पर।
कि तारों की चमक से चोट लगती है रगे जाँ पर।।

* * * * *

तेरी मखमूर आँखों ने मुझे मस्ती अदा की है।
नही तो गैर-मुमकिन था मेरा बेहोश हो जाना।।

* * * * *

इस कदर तेरा तसव्वुर मुझे बढ़ जाता है।
आइना देखता हूँ मुँह तेरा नजर आता है।।

* * * * *

आँखें हों और तुम न हो आँखों के सामने।
मंजूर वह नजर व नजारा न मुझको।।

७– बहिन श्रीसावित्रीबाई फोगला

काहू के बल भजन को काहू के आचार।
व्यास भरोसे कुँवरि के सोवें पाँव पसार।।

८– बहिन कमलजी

सर बसजूद है मगर अज्म में पुख्तगी नहीं।
कायले बन्दगी तो हूँ काबिले बन्दगी नहीं।।

कौन सुनेगा तेरे सिवा पेशे नजर कभी तो आ।
सिज्दा करूँ किसे बता जब तू ही सामने नहीं।।
माना कि मैं गरीब हूँ माना कि मैं हकीर हूँ।
मुझसे न ऐसे रूठिये जैसे मेरा कोई नहीं।।

(मेरा मस्तक तो झुका हुआ है, परन्तु मेरे संकल्पमें दृढ़ता नहीं है। यह तो मानती हूँ कि उपासना करनी चाहिये, परन्तु मुझमें उपासना करनेकी योग्यता नहीं है। तेरे सिवा मेरी पुकारको कौन सुनेगा? कभी तो मेरी आँखोंके सामने आ। जब तू ही सामने नहीं है तो बता, मैं किसे प्रणाम करूँ? यह तो मैं स्वीकार करती हूँ कि मैं गरीब हूँ और अत्यन्त तुच्छ हूँ, परन्तु मुझपरसे तुम अपनी नजर इस भाँति न हटा लो, मानो मेरा कोई नहीं हो।)

९– पानकी नानी

सीताराम सीताराम बोल सुवा।
सुवा ने खुवा द्यौ माल पुवा।।
राधेश्याम राधेश्याम बोल चिड़ी।
चिड़ी ने खुवा द्यौ खीर पुड़ी।।

१०– श्रीगुलाबचन्दजी बोथरा

अय मेरे जख्मे जिगर नासूर बनना है तो बन।
क्या करूँ, इस जख्म पर मरहम लगाना है मना।।
मकतबे इश्क का देखा अजब दस्तूर।
उसे छुट्टी न मिली जिसे सबक याद हुआ।।

११– श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल

आमि त तोमारे चाहिनि
तुमि आमागोरे चेयेछो।
आमि ना डाकिते हृदय माँझारे
निजे एसे देखा दियेछो।।
चिर आदरेर विनिमये लाड़िली
चिर अवहेला पेयेछो।

(मैंने तो जीवनमें तुम्हें चाहा नहीं, तुमने ही मुझ अभागेको चाहा

है। मैंने तो कभी तुम्हें पुकारा नहीं, पर फिर भी स्वयं तुमने ही मेरे हृदय-देशमें आकर दर्शन दिया है। हे लाड़िली! तुमने मुझे चिर आदर दिया, पर मेरे द्वारा उस आदरके बदलेमें चिर अवहेलना ही हुई है।)

१२– श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव

हृदयमें पीर नयनमें नीर।
यही मम जीवनकी तस्वीर॥

* * * * *

हृदय बेपीर नयनमें तीर।
यही जीवनधनकी तस्वीर॥

१३– श्रीभीमसेनजी चोपड़ा

असु अमी सुखाने पत्थर पायातील।
मन्दिर उभविणे हेच आमुचे शील॥
वृक्षाचा शाखा उँचनि भाँतरि जावो।
विश्रान्ति सुखाने विहग वृन्द ते घेवो॥
हे दैवच आमुचे ध्येय मन्दिरातील।
असु अमी सुखाने पत्थर पायातील॥

(मेरा सुख इसीमें है कि मैं मन्दिरकी चौखटका पत्थर बन सकूँ। मन्दिरका निर्माण हो जाना चाहिये, यही मेरा शील है। मुझे उसका कलश बननेकी अकांक्षा नहीं है। मन्दिरके प्रांगणके वृक्षकी शाखायें खूब फूलें-फलें और ऊँची उठती जायें, जिससे उसपर विहग-वृन्द सुखसे विश्राम कर सकें। हे देव! मेरा सुख तो उस ध्येय मन्दिरकी नींवका पत्थर बन जानेमें ही है।)

* * * * *

गोरक्षा आन्दोलन में गोपनीय सहयोग

धर्मप्राण भारतमें गोवंशकी हत्या देशके लिये एक कलंक है। गोवध-बन्दीके लिये समय-समयपर अपने देशमें अनेक प्रयत्न हुए, किन्तु इन सभी प्रयत्नोंमें 'सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति' द्वारा संचालित सन् १९६६ के नवम्बर-दिसम्बर वाले आन्दोलनका विशेष स्थान है। इस आन्दोलनसे सारे देशमें गोरक्षाके लिये अभूतपूर्व लहर फैल गयी थी, किन्तु काँग्रेसी सरकारकी मुस्लिम संतुष्टीकरण वाली नीतिके कारण आन्दोलन असफल हो गया। ७ नवम्बरके दिन दिल्लीमें अति विराट जुलूसका निकलना, परमपूज्य श्रीपुरीशंकराचार्यजी और श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीका अनशन व्रतपर बैठना, सत्याग्रहियों द्वारा जेलोंका भर दिया जाना, ये सब उस आन्दोलनकी महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक बातें हैं।

'सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति' का संचालन करनेवाली 'सर्वोच्च समिति' के सात सदस्योंमेंसे एक सदस्य बाबूजी भी थे। बाबूजीके द्वारा ही इस आन्दोलनका बीजारोपण स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में हुआ था। पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज तथा पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके बीच जो पारस्परिक गतिरोध था, उस गतिरोधको मिटा करके उनको एक मंचपर ले आनेका और आन्दोलनके संकल्प-पत्रपर दोनों विभूतियोंका प्रसन्न मनसे हस्ताक्षर करवा लेनेका श्रेय बाबूजीको ही है और हस्ताक्षरके रूपमें इस आन्दोलनकी नींव स्वर्गाश्रममें पड़ी। फिर आन्दोलनके काममें खूब तेजी आयी। कार्य-विस्तारके समय अथवा नीति-निर्धारणके समय आन्दोलनके शीर्ष नेताओंके मध्य जब-जब कोई गतिरोध उत्पन्न हुआ, तब-तब वह विषमता, कभी आंशिक रूपमें और कभी पूर्ण रूपमें दूर हो सकी बाबूजीके प्रयाससे। उन्होंने अपनी 'कल्याण' मासिक पत्रिकाके माध्यमसे विशाल जनमत तैयार किया। पत्रिकाके पन्ने गोरक्षाकी बातोंसे भरे रहते थे। अपनी पत्रिका तो अपनी थी, अतः उसको तो इस कार्यमें झोंक ही दिया, इसके अलावा विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओंको वक्तव्य भेजकर, नेताओं-महापुरुषोंके पास पत्र लिखकर, यत्र-तत्र सार्वजनिक सभाओंमें भाषण देकर, जेलमें सत्याग्रहियोंसे तथा आश्रमोंमें साधु-संतोंसे मिलकर, अपने व्यक्तियोंको

स्थान-स्थानपर कार्य करनेके लिये भेजकर, इस प्रकार विविध रीतिसे उन्होंने आन्दोलनको सफल बनानेका अथक प्रयास किया। किसी भी आन्दोलनको चलानेके लिये धनकी पदे-पदे जरूरत होती है। बाबूजी कोषाध्यक्ष थे और आवश्यक धन-संग्रह भी उनके द्वारा हुआ।

बाबूजी द्वारा होनेवाला यह सारा कार्य ऐसा था, जिसे समाज अपनी आँखोंसे देख रहा था तथा देख-देख करके बाबूजीको वन्दन कर रहा था, पर कुछ ऐसे भी सुगुप्त प्रयास थे, जिसकी जानकारी समाजको मिल ही नहीं पायी। बाबूजीके साथ बाबा नित्य रहते ही थे। उनका भी हृदय गोहत्यासे व्यथित था। वे भी हृदयसे चाहते थे कि गोहत्या बन्द होनी ही चाहिये, इसमें बाबाका प्रयास कम नहीं रहा, भले वह लोगोंके सामने प्रकाकशमें नहीं आ सका।

जब ७ नवम्बर १९६६ को विशाल जुलूस निकलनेवाला था, तब बाबूजी और बाबा दिल्लीमें ही थे। गोरक्षार्थ निकलनेवाले उस जुलूसको और उस विराट आन्दोलनको कुचल देनेके लिये इन्दिरा सरकारने कमर कस रखी थी। दिल्लीमें प्रधानमंत्री श्रीइन्दिराजीका जो निवास-स्थान था, वहाँ कब-कब और क्या-क्या चर्चा होती है, इसकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये बाबाने अपना ढंग बैठा रखा था। अपने विद्यार्थी जीवनमें बाबाने देशको स्वतन्त्र करानेवाली क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें खूब भाग लिया था। उस क्रान्तिकारी जीवनका अनुभव होनेके कारण उनको भीतरी बातोंको पता लगा लेनेवाले 'तरीकों'की जानकारी थी। वह पुरानी जानकारी अब गोरक्षाके निमित्त काम आयी। प्रधानमन्त्रीके निवासस्थान तीन-मूर्ति भवनकी अनेक बातोंकी जानकारी प्राप्त करके वे बाबूजीको बतला दिया करते थे। तीन-मूर्ति-भवनकी तरह कुछ और भी महत्त्वपूर्ण 'चर्चा केन्द्र' थे। उन-उन स्थानोंकी अनेक आवश्यक बातोंकी जानकारी प्राप्त करके आप बाबूजीको पूर्ण सूचना दे दिया करते थे।

धन-संग्रहमें भी बाबाका कम योगदान नहीं रहा। जितने भी धनपति बाबासे मिलनेके लिये आते थे, आप उनको प्रेरणा देते थे कि गोरक्षाके लिये जितना रुपया दे सकते हैं, आप लोग अवश्य दें और आप श्रीपोद्दार महाराजकी थैली भर दें। गो-ब्राह्मण-मन्दिर-तीर्थ आदिकी सेवामें जो धन लग जाता है, वह दान अमोघ होता है।

बाबूजीको उन्होंने समय-समयपर जो सही परामर्श तथा उचित

सुझाव दिया, यह कार्य तो सदा परम गोपनीय रहा।

बाबाको तो अपने जीवनकी परवाह रहती ही नहीं थी। समयपर वे अपने निज जनोंके जीवनको भी दाँवपर लगा दिया करते थे। इन्दिरा सरकारकी कूटनीतिके कारण जो धक्कामुक्की, पथराव, आगजनी, अश्रु-गैस, फायरिंग आदि हुई, उसके फलस्वरूप ७ नवम्बर वाला विराट जुलूस विफल हो गया। दिल्लीमें पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरातसे हजारों गोभक्त सैकड़ों बसोंके द्वारा आये थे। ये बसें लाल किला मैदान और सुभाष पार्कमें थीं। जुलूसके विफल होते ही पुलिस अपने डंडेके बलपर उन बसोंको अपने-अपने स्थानपर वापस भेजने लगी। लाल किलेके सामनेवाले मैदानमें सेना मार्च कर रही थी।

८ नवम्बरको दिल्लीके वातावरणमें बड़ी सनसनी थी। बाबाको इसका अखबारी समाचार नहीं, सही आँखों-देखा समाचार चाहिये था। उन्होंने तुरन्त चोपड़ाजीसे कहा – आप लाल किला और सुभाष पार्क जाइये और वहाँका सारा समाचार लाइये। डरियेगा नहीं। देश-धर्मके लिये जानको हथेलीपर रखना चाहिये। हाँ, एक बात और। आपको अकेले नहीं भेजूँगा। आपके साथ बंकाजी भी जायेंगे।

बाबाकी प्रेरणासे चोपड़ाजी गये और उनके साथ मैं था। वहाँ हम दोनों गये और वहाँका सारा समाचार लाकर बाबाको दिया।

मैं यहाँ कहना यह चाहता हूँ कि गोरक्षामें बाबूजी तो पूर्ण सक्रिय थे ही, परन्तु बाबूजीके साथ बाबा भी थे, भले वे बाबा ऊपरसे देखनेमें पूर्ण निष्क्रिय दिखलायी देते थे। निष्क्रिय दिखलायी देनेवाले बाबा गोरक्षाके लिये कितने सक्रिय थे, यह रहस्य केवल वे जानते हैं, जो उन दिनों उनके पास थे।

* * * * *

एक छिपे भक्त

एक बार राजस्थानकी बात चल रही थी, अतः बाबाने राजस्थानके एक मारवाड़ी गुप्त भक्तकी गाथा सुनानी आरम्भ की। यह घटना बाबूजीके महाप्रस्थानसे कुछ साल पहलेकी है। एक मारवाड़ी सज्जन बाबूजीके पास आये। सिरपर खूब बड़ी पगड़ी थी। वे ऐसा

बोलते थे, मानो खड़ी बोली बोलना जानते ही नहीं हों। एकदम मारवाड़ी भाषामें बात करते। वे गीतावाटिका आकर बाबूजीके कमरेमें गये तथा कहा – मैं तो बाबासे मिलना चाहता हूँ।

बाबूजीकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। उन्होंने उस व्यक्तिमें कुछ देखा, अतः किसीके साथ उन बहुत प्रौढ़ मारवाड़ी सज्जनको बाबाके पास भेज दिया। बाबा अपनी कुटियाके बाड़ेसे बाहर निकलकर उनके पास बैठ गये। वे अपनी बात सुनाने लगे। उन मारवाड़ी सज्जनने बताया – मैं एक बार बीमार पड़ा। घरवालोंने चिकित्सा की, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। हालत दिन-प्रति-दिन बिगड़ती चली गयी। एक दिन तो मरणासन्न स्थिति हो गयी। मुझे कुछ क्षणोंका मेहमान मानकर घरवालोंने खाटपरसे उतारकर जमीनपर सुला दिया। जमीनपर सुलानेके बाद मुझे तो होश रहा नहीं, पर मैंने देखा कि एक बड़ा सुन्दर-सा छोरा मेरे पास बैठा है। होठोंपर अँगुली लगा रखी है और मेरी ओर एकटक देख रहा है। उस छोरेके शरीरका रंग नीला-नीला है। उसकी सुन्दरताकी सीमा नहीं है। उसकी बड़ी ही प्यारी-प्यारी, भोली-भोली सूरत है। मुझे शरीरका तनिक भी भान नहीं था। मैं उसे देख रहा था और वह छोटा-सा छोरा मुझे देख रहा था। मुझे तो पता नहीं, पर घरवालोंने कहा कि उस बेहोशीकी हालतमें मैं दस दिनतक पड़ा रहा। जब दस दिनतक मेरे प्राण बचे रहे तो मेरे घरवालोंने मुझे पुनः खाटपर लिटा दिया। दस दिनके बाद उस छोरेका दिखलायी देना बन्द हो गया। उसका दिखना तो बन्द हो गया, पर उसकी मीठी-मीठी आवाज सुनायी देती रही। इस आवाजका सुनना कभी बन्द नहीं हुआ। वह आवाज इतनी मीठी है कि क्या कहूँ? उस मिठासका बखान सम्भव नहीं। उसके सुननेसे मन भरता ही नहीं है, पर एक आश्चर्य यह कि उसकी मीठी आवाज केवल मुझको ही सुनायी देती थी। पासके किसी भी व्यक्तिको यह आवाज सुनायी नहीं देती। अब तो मैं उससे रोज बात करने लगा। धीरे-धीरे मेरी तबियत ठीक होने लगी और मैं चलने फिरने लगा। समय बीतनेपर मैं एकदम ठीक हो गया, पर उससे बात करनेकी चाह हमेशा बनी रहती। उससे बात करनेका सिलसिला सदा बना रहा। वह जो कहता, उसको मैं कभी टालता नहीं था। एक उदाहरण लें। घरवालोंने मुझे पीनेके लिये दूध दिया। दूध पीनेके

लिये मैंने ज्यों ही गिलास हाथमें लिया, त्यों ही यदि उसने कह दिया कि दूध मत पीओ तो मैं दूध नहीं पीता था। मैं दूधका गिलास वहीं रख देता था। कभी आधा पीनेके बाद मना करता तो दूध पीना बन्द कर देता। वह जैसे कहता, वही मैं करता। यही बात भोजनके बारेमें अथवा कहीं जानेके बारेमें थी। मैं चौराहेपर यदि दाहिनी ओर मुड़कर जाना चाहता हूँ, पर यदि उसने कह दिया कि सामनेकी ओर चले चलो तो फिर मैं सामने ही जाता था। धीरे-धीरे उससे संकोच हट गया। मैं उससे व्यापार सम्बन्धी बातें भी पूछने लगा कि क्या मैं अमुक सौदा कर लूँ। वह जब हाँ कहता, तभी मैं वह सौदा करता। उस सौदेके करनेसे इतना लाभ हो जाता कि घर-गृहस्थीका खर्च निकल जाता। यह सब तो ठीक है, पर एक बातका बड़ा दुख है कि वह दिखलायी नहीं देता। बस, यह चाह होती है, बहुत अधिक चाह होती है कि वह दिखलायी दे। मुझे तो आपसे यही पूछना है कि वह छोरा मुझे कब दिखलायी देगा, कैसे दिखलायी देगा।

वे मारवाड़ी सज्जन बाबाको बड़े भाव भरे ढंगसे यह सारी गाथा सुना रहे थे और उनके स्वरमें बड़ी उत्सुकता थी कि उस छोरेका दर्शन होना चाहिये। बाबाने उनसे कहा – मृत्युसे पहले आपको दर्शन हो जायेंगे।

यह उत्तर सुनकर वे बड़े उद्विग्न हो उठे और ठेठ मारवाड़ी भाषामें क्षुब्ध हृदयसे कहने लगे – मृत्युके समय दर्शन हुआ तो क्या हुआ? क्या वह दर्शन भी कोई दर्शन है? दर्शनका मजा तो जल्दी-से-जल्दी होनेमें है। जिस तरह उस छोरेसे बात करनेका मजा मिलता रहता है, वैसे ही उसको देखनेका मजा भी मिलता रहे। उससे बात करनेका तथा देखनेका मजा हमेशा मिलता रहे। बस, आप तो यह बतायें कि जल्दी-से-जल्दी उसका दर्शन कब होगा।

वे निपट मारवाड़ी सज्जन बाबासे चिपट ही गये। बाबाने बतलाया – यदि वे श्रीपोद्दारमहाराजके भेजे हुए मेरे पास नहीं आये होते तो मैं कभीका बहला-फुसलाकर उन्हें विदा कर दिया होता। मैं जितना-ही-जितना उनसे कतराता, वे उतना-ही-उतना अधिक मुझपर हावी होते।

बाबासे उन्होंने कहा – मैंने आपकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। आप बहुत ऊँचे संत है। बड़ी आशासे मैं आपके पास आया हूँ। आप मेरी बात बना दें कि मुझे उस छोरेके दर्शन होने लग जाये।

उनसे पल्ला छुड़ानेके लिये बाबाने कहा – अच्छा मृत्युसे पर्याप्त समय पहले आपको उस छोरेका दर्शन हो जायेगा।

तब वे मारवाड़ी सज्जन बोले – मैं पढ़ा लिखा नहीं हूँ। मैं हिन्दी नहीं जानता। 'पर्याप्त' माने क्या होता है? आप पर्याप्तका भाव समझाइये।

तब बाबाने कहा – मृत्युके बहुत पहले।

यह सुनकर उन मारवाड़ी सज्जनने कहा – अच्छा, निरा पहले, बहुत अच्छा।

इतनी बात करके वे मारवाड़ी सज्जन उठकर चले गये और बाबा अपनी कुटियाके बाड़ेकी ओर चले। कुटियाके एकदम समीप एक बिल्व वृक्ष है। जब वे मारवाड़ी सज्जन बिल्व वृक्षके पास पहुँचे तो वे उस छोरेसे पूछते हैं – अरे, तू यह बात बता कि यह साधु जो बात कह रहा है, वह सही कह रहा है क्या?

उस छोरेने रोष भरी वाणीमें झिड़कते हुए कहा – पहले तो तू वहाँ गया ही क्यों और यदि गया तो फिर उस साधुके कहनेपर संदेह क्यों किया?

उस छोरेकी बात सुनकर उन मारवाड़ी सज्जनकी भावनाओंको बड़ा धक्का लगा कि मुझसे एक बड़ा अपराध हो गया है। अपराध-बोधकी भावनाके उदित होते ही वे बाबाकी कुटियाके बाड़ेकी ओर बढ़े। बाबा अपने बाड़ेका द्वार बन्द कर चुके थे। वे द्वारपर आकर बाड़ेका फाटक थपथपाने लगे तथा कहने लगे – ओ बाबा! ओ बाबा! बस, एक बार और खोल दें। बस, एक मिनटके लिये खोल दें। ओ बाबा! बस, एक बार। बस, एक बार।

बाबा लौटकर वापस आये तथा द्वार खोलकर खड़े हो गये। तब उन मारवाड़ी सज्जनने वह सब बात बाबाको बतायी, जो उस नीले छोरेसे विल्व वृक्षके पास हुई थी। यह सब कहकर और हाथ जोड़कर वे बाबासे क्षमा याचना करने लगे – मेरी गलती माफ कर दें। मेरा संदेह मिट गया। आपकी बात जरूर सच होगी।

इसके बाद वे मारवाड़ी सज्जन चले गये। इस भेंटके लगभग एक-डेढ़ साल बाद वे फिर आये, बड़े प्यारसे बड़ी श्रद्धा पूर्वक मिले तथा कहने लगे – बाबा, अब तो उस छोरेके दर्शन होने लग गये हैं! इतना ही नहीं, उसकी लीलाओंके भी दर्शन होते हैं। मै तो निहाल हो गया।

ये सब बातें वे अपनी सरल मारवाड़ी भाषामें बड़ी भोली रीतिसे कह रहे थे। उनके द्वारा ऐसा सब बता दिये जानेके बाद बाबाने उनसे पूछा – एक बात बताइये। क्या आपकी यह घटना मैं किसीके सामने कह सकता हूँ?

मेरे ऐसा कहते ही वे बिगड़ उठे – बस, आप साधुओंमें यही खोट है कि किसीकी बातको पचा नहीं सकते, छिपा नहीं सकते। आपको पूज्य मानकर यह सब बताया तो क्या इसलिये बताया कि आप लोगोंको बताते फिरें?

यह सुनकर बाबाने कहा – मैं यह वचन तो नहीं देता कि मैं नहीं बताऊँगा, पर यदि बताऊँगा तो आपकी हानि नहीं होगी। कोई यह नहीं जान पायेगा कि यह घटना किसके जीवनकी है।

यह प्रसंग सुनाते-सुनाते हम लोगोंको बाबाने बतलाया – फिर वे मेरे पाससे चले गये। अब पता नहीं कि उनका शरीर है या नहीं। उन मारवाड़ी सज्जनके हृदयमें अप्रकट रहनेकी जो भावना थी, वह स्वाभाविक थी। जो वस्तुतः श्रीकृष्णानुरागमें छका रहता है, वह भक्त तो अपनी भक्ति-भावनाको सुगुप्त ही रखना चाहेगा।

* * * * *

गैरिक वस्त्र की मर्यादा

१९५६ में बाबाने काष्ठ मौन व्रत ले लिया। काष्ठ मौनके बाद बाबाके नियमोंमें काफी कठोरता आ गयी। सही-सही समय बतला सकना कठिन है, परन्तु सम्भवतः सन् १९६६ में पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्र अपने चतुर्थाश्रमी सहोदर भाई अर्थात् बाबासे मिलनेके लिये गोरखपुर आये। जहाँतक पारिवारिक जनोंसे मिलनेकी बात है, बाबाके नियमानुवर्तितामें बड़ी कठोरता थी। उस कठोरताके कारण यह सम्भव ही नहीं लग रहा था कि बाबा अपने परिवारके किसी भी व्यक्तिसे, जिससे

रक्त-सम्बन्ध हो, उससे मिल लेना चाहेंगे। मिल लेनेकी बात तो दूर रही, उन कौटुम्बिक जनोंकी समीप-स्थिति भी बाबाको अभीष्ट नहीं थी। इसी कारण बाबूजीने पण्डित श्रीतारादत्तजीको गीतावाटिकाके बाहर श्रीजगदीशजी शर्माके घरपर ही ठहराया। बाबूजी नहीं चाहते थे कि बाबाके नियम-निर्वाहमें किसी प्रकारकी कोई बाधा या विघ्न उपस्थित हो।

बाबूजीको ज्ञात था कि बाबासे मिलनेके लिये ही पण्डित श्रीतारादत्तजी आये हैं और उन्होंने बाबाको उनके आनेकी सूचना देकर यह बतलाया कि वे आपसे मिलना चाहते हैं। इस समाचारको सुनकर बाबाने बाबूजीके माध्यमसे काव्यात्मक शैलीमें अभिव्यक्त एक संदेश पण्डितजीको दिया, जिसमें स्पष्ट संकेत है कि अब हम दोनोंका मिलन यहाँकी काँटों-भरी अटवीमें नहीं होगा। अब तो मिलन होगा उस व्रजपुरमें, जहाँके पशु-पक्षी, पत्र-पुष्प पल-पल हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं और जहाँ दिव्य रास-विलासका रस-सिन्धु नित्य उच्छलित रहता है। बाबाद्वारा प्रणीत वह काव्यात्मक संदेश नीचे दिया जा रहा है –

है पथ तुलसी वन जोह रहा हम दोनोंका पल पल प्रियतम!
नीली सरिता हो व्याकुल है कर रही शब्द कल कल प्रियतम!
हैं अपलक बाट निहार रहीं वे वल्लरियाँ फूली, प्रियतम!
सुस्पष्ट दे रही है इंगित सारी शुकपर झूली प्रियतम!

नश्वर तनकी पगडंडीपर ठहरो मत तुम प्यारी प्रियतम!
चलती जाओ चलते जाओ रहकर गुमसुम प्यारी प्रियतम!
कँाटोंकी अटवीमें मिलकर देरी न करो प्यारी प्रियतम!
चेरीपर चरण-सरोरुह की अविलम्ब ढरो प्यारी प्रियतम!

अतएव ध्यान रखना ही है हमको इस विनतीका प्रियतम!
एवं अपने पद चालनके तालोंकी गिनती का प्रियतम!
पहली दूसरी नृत्य थेई आयी सम पर ज्यों ही प्रियतम!
अग्रज को देगा डुबा सिन्धु रस महाभाव त्यों ही प्रियतम!

जो कहीं अनुज अधिकारी रुचि या महीपाल मतिका प्रियतम!
आदर कर परिचय देता जग सम्बद्ध नेह गतिका प्रियतम!
वे पहुँच नहीं पाते अबतक सच्चिन्मय मंजिलपर प्रियतम!
मायाका ताप नहीं मिटता मिलता न कृष्ण तरुवर प्रियतम!

अग्रजके दृश्य अनुज तनसे जिनका नाता था, हे प्रियतम!
वे पहुँचेंगे ही नित्य जहाँ कान्हा गाता था, हे प्रियतम!
है अतः नियम अमिलन जिससे सबकी अन्तिम घाटी प्रियतम!
हो सुखद अतीव लगे मिलने माटीमें जब माटी प्रियतम!

इसीलिये विश्वास, किये रहो अविचल अहो।
व्रजपुर नित्य निवास, कुंजस्थलपर दृग रहे॥
उपवनके उस पार, हम सब ही मिल जायँगे।
माया सरित कगार, पर मिलनेमें हानि है॥

यह संदेश पण्डित श्रीतारादत्तजीके जीवनका कण्ठहार बन गया। वे सदा इसे गाया करते थे। उनके श्रीमुखसे हमलोगोंको भी यह संदेश सुननेका सौभाग्य मिला है। वे बहुत ही सुललित और सुस्वर ढंगसे सुनाया करते थे।

यह संदेश बाबाकी ओरसे दिया गया। बाबाकी दृष्टिमें केवल श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण थे। संदेशमें अभिव्यक्त यह तथ्य ही एक प्रमाण है कि उनके व्यक्तित्वमें मात्र महाभावकी सत्ताका अस्तित्व था। उनकी ओरसे संदेश भले किसीको भी दिया जाय, किन्तु उसका अर्थ यही है कि महाभाव स्वरूपा श्रीराधा अपने प्रियतम जीवनेश्वर श्रीकृष्णको संदेश दे रही है।

पद्यात्मक संदेशका संक्षेपमें भावार्थ इस प्रकार है –

नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाको ऐसा अनुभव होता है कि प्रियतम श्रीकृष्णके हृदयमें मिलनाभिलाषा है। उसका उत्तर संकेतमें देती हुई कृष्णप्रिया श्रीराधा कह रही है – वृन्दावनमें मिलूँगी। वृन्दावन हम दोनोंकी प्रतीक्षा कर रहा है। वृन्दावनमें यमुनाके किनारे मैं उस स्थलपर मिलूँगी, जहाँ लहरें कल-कल शब्द करती हुई हमदोनोंको बुला रही हैं। वह देखो, पुष्पित वल्लरियाँ अपलक होकर हमलोगोंकी बाट देख रही हैं। इतना ही नहीं, उस कदम्बके वृक्षपर बैठी हुई सारिका अपनी ग्रीवा शुककी ओर झुकाये हुए है और ग्रीवा झुकाये-झुकाये सारिका मुझको और तुमको एक संकेत कर रही है। सुन लो कि वह क्या कह रही है। उसके संकेतका तात्पर्य यही है कि हे प्यारी राधे! हे प्रियतम श्रीकृष्ण! इस नश्वर तनरूपी पगडंडीपर बिल्कुल मत ठहरो। पगडंडीके दोनों ओर खड़े हुए व्यक्तियोंकी

किसी भी बातपर ध्यान मत दो। बस, चुप रहकर गुम-सुम रहकर चलती जाओ, चलते जाओ। कँाटोंके वनमें मिलकर व्यर्थ विलम्ब मत करो। यह इसलिये कि उस कँाटों भरे वनमें ठहरना तो है ही नहीं। हे प्यारी राधे! मैं सारिका तुम्हारे चरण-सरोरुहकी चेरी हूँ। तुम मुझपर कृपा करो और अविलम्ब ढर जाओ।

अब तुम तो परम खिलाड़ी हो, इसीलिये मैं तुम्हें सावधान कर दे रही हूँ कि हम दोनोंको सारिकाकी इस विनतीपर ध्यान रखना ही पड़ेगा और साथ-ही-साथ अपने पद-विन्यासकी तालोंकी गिनतीपर भी ध्यान रखना भला। मैंने तो आजतक कभी नृत्यमें भूल की नहीं, किन्तु तुम जान-बूझकर ताल बिगाड़ देते हो। अतएव मुझसे मिलना यदि सचुमच अभिप्रेत हो तो ताल मत बिगाड़ना भला। पहली अथवा दूसरी नृत्य-थेई जैसे ही समपर आयी कि बस, तत्क्षण महाभाव रस-सिन्धु, तुम जो एक गौर वर्णका चोला पहनकर अग्रजका अभिनय कर रहे हो, उस चोलेको वह महाभाव रससिन्धु तत्क्षण डुबा देगा और अपनेमें ही मिला लेगा। महाभाव-रससिन्धुका अर्थ समझ गये न? नहीं समझे हो तो समझ लो। इसका अर्थ है अनुज रूपी चोला।

एक खेल था भला, जहाँ तुमने अग्रजका चोला पहना था और मैंने जो चोला पहना था, उसका पता तुम्हें है ही। स्पष्ट फिरसे करवाना चाहते हो तो उस चोलेका नाम था अनुज। अब सोचो, उस प्राचीन खेलको स्मरण करो। स्मृति है न महीपाल-लीलाकी? उस लीलाको भूल गये हो तो याद कर लेना और यदि याद न आवे तो कोई बात नहीं, परन्तु 'महीपाल' की एक रुचि थी, उस रुचिको यदि स्वीकार करके वह अनुजरूपी चोला लौकिक सम्बन्धका आदर करते हुए संसारसे सम्बद्ध प्रीतिका ही परिचय देता तो अबतक 'अधिकारिणी और महीपाल' अपने सच्चिन्मय मंजिलपर पहुँच ही नहीं पाते। मायाका ताप, जो सारे विश्वको जला रहा है और जो उनको भी जला रहा था, वह ताप नहीं मिटता और कृष्ण-तरुवरकी छाँह उन्हें नहीं मिलती। 'कृष्ण तरुवर' समझ गये न कि क्या वस्तु होती है? नहीं समझते हो तो मैं खोलकर कहूँगी नहीं।

एक बात और है। अग्रजके चोलेका निर्माण जब दर्जीने किया और फिर जब अनुजके चोलेका निर्माण किया तो एक खेल हो गया था। अब उसे भूल गये हो तो कोई उपाय नहीं। याद कर लो, पर ये दोनों चोले दो

स्थानपर रख दिये गये थे। अब दोनों चोलोंको दो स्थानपर रखकर ही खेल चल रहा था और चल रहा है, पर अनुजरूपी चोलेका एक खेल यह भी है कि अनुजरूपी चोलेसे जिन-जिनने नाता जोड़ रखा है, वे अन्तमें मरते-पचते वहीं पहुँचेंगे, जहाँपर कन्हैया नामका एक अहीर गाता रहता है। अब प्रश्न होता है कि अनुजरूपी चोला और अग्रजरूपी चोला, ये दोनों अलग-अलग क्यों रखे जाते हैं और क्यों नहीं उनको मिलने दिया जाता है? उसका सीधा उत्तर यह है कि सबके लिये एक अन्तिम घाटी पार करना अत्यन्त आवश्यक है। उस घाटीको पार किये बिना कोई आगे बढ़ ही नहीं सकता। वह घाटी है साँस छूटनेकी घाटी, जो सबको पार करनी ही पड़ेगी। उस घाटीको पार करते समय वह घाटी सबको अत्यन्त सुखद प्रतीत हो, माटीमें माटीके मिलनेका जब ठीक प्रश्न उपस्थित हो, उस समय वह घाटी भयानक न बनकर आह्लादजनक बन जाय, इसीके लिये दोनों चोले परस्पर न मिलें, यह विधान किया गया है।

इसीलिये विश्वासको अविचल रखो। आँख टिकी रहे व्रजपुरके नित्य निवास स्थलपर। यह नितान्त सत्य है कि इस उपवनके उसपार हम सभी मिल ही जायेंगे और कहीं जिद कर बैठोगे कि माया-सरिताके तटपर ही हम मिल जायँ तो इसमें हानि है।

* * *

यह संक्षिप्त भावार्थ है बाबा द्वारा दिये गये संदेशका। पूज्य पण्डित श्रीतारादत्तजी बाबासे बिना मिले अपने गाँव लौट गये। उनके साथ बहिन आयी थीं, वे भी बिना मिले लौट गयीं। बाबासे उनका मिलन नहीं हो पाया, इसके लिये उनके मनके कोनेमें कुछ खिन्नता अवश्य थी, परन्तु मनमें यह भाव भी बहुत प्रबल था कि भाई (अर्थात् बाबा) की आध्यात्मिक उन्नतिमें हम बाधक क्यों बनें। पण्डित श्रीशिवनाथजी दुबे, जो कल्याणके सम्पादकीय विभागके एक सम्माननीय सदस्य थे, उन्होंने उचित अवसर देखकर अत्यन्त दुखी मनसे बाबासे कहा – इतने दिनों बाद ये लोग आपसे मिलनेके लिये आये थे, किन्तु आपने मिलनेसे सर्वथा इंकार कर दिया। आप सबसे तो मिलते ही हैं। उनसे भी मिल लेते तो कौन-सी बात बिगड़ जाती?

श्रीदुबेजीकी बात सुनकर बाबाने अपने हाथमें पेंसिल ली और

स्लेटपर लिखकर बताने लगे – देखिये दुबेजी! मैं सबसे मिल सकता हूँ, किंतु उनसे ही नहीं मिल सकता। इस बहिनने मुझे गोदमें खिलाया है और मेरा मल-मूत्र भी साफ किया है। इस प्रकार यह मेरी बहिन ही नहीं, मेरी माँ भी है और भैयाके बारेमें क्या कहूँ? भैयाका भी कम ऋण मुझपर नहीं है। गाँवमें रात्रिके समय जब रामलीला होती थी तो भैया मुझे रामलीला दिखानेके लिये साथ ले जाते थे। रामलीला देखते-देखते मैं सो जाता था और लौटते समय भैया मुझे अपने कंधेपर लादे हुए घर ले आते थे।

इतना बताते-बताते बाबाके नेत्र सजल हो उठे। क्या वह सजलता दिखानेके लिये थी? या वह यों ही छलक आयी थी? नहीं, यह बात नहीं है। गोरखपुरमें रहते हुए भी गाँववाले बचपनके दिन याद आ गये थे। मनमें प्राचीन स्मृतियोंकी आँधी चल उठी थी। भावोंका ज्वार कुछ अधिक ही था। कुछ ठहरकर बाबाने स्लेटपर धीरे-धीरे लिखना आरम्भ किया – आज बड़ा कठिन समय आ गया है। यह युग बड़ा विकट है। हिन्दू जातिकी अत्यन्त दुरवस्था है। आजके प्रख्यात साधु और संन्यासी व्याख्यान तो बड़ा सुन्दर दे लेते हैं और अच्छी-अच्छी पुस्तकें भी लिख लेते हैं। उनसे वेदान्त और ब्रह्मज्ञानकी ऊँची-ऊँची बातें जितनी चाहिये, उतनी सुन लीजिये, किन्तु जीवनमें वह चीज अत्यल्प दिखलायी देती है, जो एक सच्चे संन्यासीके लिये आवश्यक है। आप मेरा अहंकार न मानें। मैं सर्वथा सत्य कह रहा हूँ कि मेरी दृष्टिमें प्रसूतिगृहके मंगलदीपमें और श्मशानकी प्रज्वलित चिताग्निमें कोई अन्तर नहीं है। सुगन्धपूर्ण चन्दन एवं दुर्गन्धपूरित पुरीषमें तथा विद्वान ब्राह्मण एवं क्षुद्र कीटमें, सबमें एक ही प्रभुकी चिरन्तन सत्य सत्ता विद्यमान है। प्रभुके अतिरिक्त कहीं कुछ है ही नहीं, किन्तु संन्यास धर्मकी और इस गैरिक वस्त्रकी भी कुछ मर्यादा है और इसी कारण उस मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये मैं अपने पूर्वाश्रमकी सहोदरा बहिन और सहोदर भाईसे नहीं मिल सका। इतना ही नहीं, इस जीवनमें अपने रक्तसे सम्बन्धित किसी व्यक्तिसे मिलूँगा भी नहीं। इस गैरिक वस्त्रकी गरिमा और मर्यादाकी रक्षा करनी ही है।

अब श्रीदुबेजीके पास कहनेके लिये कुछ था ही नहीं। वे नत मस्तक थे।

* * * * *

एक आदर्श विवाह

किसी वय-प्राप्त कन्याका सम्बन्ध कहीं पर निश्चित करते समय दोनों पक्षोंके मध्य लेन-देनकी जो बात आजकल प्रायः चलती है, यह चर्चा बाबाको अत्यधिक अप्रिय थी। दहेजके रूपमें कन्याका पिता विवाहके अवसरपर अपने सामर्थ्यके अनुसार प्रसन्न मनसे जो दे, उसके लिये बाबाके मनमें कोई आपत्ति नहीं थी, किन्तु वर-पक्षकी ओरसे कुछ माँग रखी जाय और उस माँगके स्वीकृत होनेपर ही सम्बन्ध निश्चित हो, यह सब उनको बड़ा अनुचित लगता था। बाबाकी इच्छा यह रहा करती थी कि लेन-देनके स्थान पर सहज प्रीतिका राज्य हो और दोनों पक्षोंकी ओरसे हार्दिक उल्लासका ही आदान-प्रदान रहे।

जजसाहब (सम्माननीय श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) के सबसे छोटे पुत्रका नाम जगदम्बाप्रसाद दीक्षित है। जब जगदम्बाप्रसादकी आयु विवाहके योग्य हो गयी तो श्रीजजसाहबके सामने उसके सम्बन्धके बारेमें प्रस्ताव आने लगे। जजसाहब विवाहके सम्बन्धमें बाबाकी रुचि जानना चाहते थे। जजसाहबका तन-मन-जीवन सब कुछ बाबूजी एवं बाबाके श्रीचरणोंपर समर्पित था। इतना ही नहीं, उनके सम्पूर्ण परिवारकी बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। बाबासे पूछे जानेपर उन्होंने कहा – यदि आप मेरी रुचि जानना चाहते हैं तो मेरा यही निवेदन है कि प्रिय जगदम्बाका विवाह आदर्श रूपमें हो। वह आदर्श समाजके लिये एक उदाहरण बन जाय। प्रायः देखने-सुननेमें आता है कि माता-पिताके पास धनकी कमी है अथवा अभाव है, परन्तु लोकाचारके कारण लेन-देनमें, बाजे-गाजेमें, साज-सजावटमें, स्वागत-सत्कारमें शक्तिसे अधिक व्यय करना पड़ता है और उनको भारी ऋणके भारके नीचे दब जाना पड़ता है। मैं चाहता हूँ कि प्रिय जगदम्बाका विवाह लोगोंके लिये एक प्रेरणा प्रदायक उदाहरण बन जाये।

जजसाहबने विनम्र स्वरमें कहा – आपको इतना अधिक कहने-बतलानेकी आवश्यकता है ही नहीं। आपकी रुचि ही मेरे लिये महत्त्वपूर्ण है। प्रिय जगदम्बा और उसकी माँ तथा परिवारके अन्य लोग यही चाहते हैं कि जैसा बाबा कहें, वैसा ही हो।

जजसाहबके उत्तरसे बाबाको आन्तरिक प्रसन्नता हुई। बाबाके एक

निज जन थे परमादरणीय श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय। श्रीपाण्डेयजी पहले 'कल्याण' मासिक पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें कार्य करते थे और गीतावाटिकासे लगभग डेढ़ मीलकी दूरीपर पालड़ी बाजार ग्राममें रहते थे। सन् १९४५ में बाबाने गीतावाटिकामें सर्व प्रथम श्रीराधाजन्माष्टमीका उत्सव मनाया था और सन् १९४६ में कुछ विशेष परिस्थितिके उत्पन्न हो जानेपर यह गीतावाटिकामें नहीं मनाया गया, बल्कि पालड़ी बाजार ग्राममें श्रीपाण्डेयजीके घरपर श्रीराधाजन्मोत्सवके कार्यक्रम संक्षिप्त रूपमें सम्पन्न हुए। कुछ समय बाद श्रीपाण्डेयजी गोरखपुरसे बम्बई चले गये।

(यहाँ मैं उनका एक विशेष परिचय और देना चाहता हूँ। सम्मान्य श्रीरामानन्दजी सागर द्वारा रामायण सीरियलका निर्माण हुआ है, जिसको सारे भारतने टी.वी. पर देखा है। इस रामायण सीरियलकी देश-विदेशमें बड़ी विख्याति हुई। इस सीरियलके निर्माण-कालमें श्रीपाण्डेयजीका सराहनीय योगदान रहा है।)

पाण्डयेजीकी लाडली पुत्री लाडली पद्मा सयानी हो गयी थी। पाण्डेयजीसे भी बाबाने वही बात कही, जो उन्होंने जजसाहबसे कही थी। वे तो बाबाके निज जन थे ही। उन्होंने भी सारी बातें सहर्ष स्वीकार कर ली और लाडली पद्माका सम्बन्ध प्रिय जगदम्बासे निश्चित हो गया। निर्णय यह भी हुआ कि विवाह गोरखपुरमें बाबा एवं बाबूजीके सामने ही होगा।

विवाहके समय जजसाहबके परिवारके सभी लोग इलाहाबादसे गोरखपुर आ गये। पाण्डेयजीका परिवार भी बम्बईसे गोरखपुर आ गया और उनके परिवारको ठहराया गया भाई श्रीदूलीचन्दजीके मकानमें। विवाहके दिन दुजारी भवनमें कोई साज-सजावट नहीं थी। दूल्हा जगदम्बाके साथ बरातीके रूपमें दीक्षित परिवारके सदस्य और गीतावाटिकाके हमलोग थे। बाजा-गाजा भी नहीं था, अपितु बाजेके स्थानपर बाबाके प्रिय कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजी पैदल चलते हुए हारमोनियमपर उच्च स्वरसे श्रीहरिनाम-संकीर्तन करवा रहे थे और हमलोग उनके पीछे-पीछे बोल रहे थे। ३० जनवरी १९६७ के दिन शुभ मुहूर्तमें यह विवाह सनातन शास्त्रीय पद्धतिसे सम्पन्न हुआ, किन्तु वैवाहिक कार्यक्रमोंमें न कोई आडम्बर था और न कोई लेन-देन था। इस विवाहकी आदर्श सम्पन्नतापर बाबाको आन्तरिक संतोष था और हम सभी लोगोंका मन सात्त्विक उल्लाससे भरा

हुआ था।

बाबूजीका मन भी परम सात्त्विक उल्लाससे भरा हुआ था और उन्होंने निज जनोंके मध्य कहा – हिन्दू धर्ममें विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। अन्य मतावलम्बियोंके लिये यह एक शर्तनामा (Contract) हो सकता है, परन्तु हिन्दूके लिये विवाह एक आध्यात्मिक साधना है, जिसका लक्ष्य है धर्मपूर्वक अर्थ और कामका सेवन करते हुए मोक्षकी प्राप्ति। हिन्दू जीवनमें विवाह वह संगीत है, जिसकी स्वर-लहरी युगलके विचार और व्यवहारमें मधुरता भर देती है। विवाहोल्लास वस्तुतः है समर्पण-महोत्सव, जहाँ दो मिलकर एक हो जाते हैं। यह एकात्म भाव ही हिन्दू विवाहकी विशिष्टता है।

* * *

प्रसंगानुरोधसे एक और घटना स्मृतिमें उभर रही है और वह कथनीय भी है। मेरे परमादरणीय आत्मीयजन श्रीअष्टभुजाप्रसादजी मल्लकी सुपुत्री लाडली नीरजाका मंगल परिणय गोरखपुरमें ही हुआ। वर-पक्ष कहाँका था और बरात कहाँसे आयी थी, यह मुझे याद नहीं आ रहा है, परन्तु पूर्व निर्णयके अनुसार यह मांगलिक कृत्य गोरखपुरमें सम्पन्न हुआ। लाडली नीरजा क्षत्रिय-नरेश-कुलोत्पन्ना राजपुत्री है और अधिकांश रजवाड़ोंमें ऐसी परम्परा है कि बरातियोंके मनोरंजनके लिये रात्रिमें वह महफिल जमे, जिसमें वेश्या-नृत्य हो।

बाबा इस नीति-रीतिमें भी सुधार चाहते थे और उनके प्रयाससे एक आदर्श सुधारकी प्रतिष्ठा हुई। बरातियोंके सम्मान और मनोरंजनके लिये रातके समय महफिल जमी, परन्तु उसे महफिल न कहकर कहना चाहिये एक भव्य समारोह। इस समारोहमें श्रीकृष्णलीलाका प्रस्तुतीकरण हुआ और लीला अभिनीत हुई रासमण्डलीके द्वारा। बाबाके निर्देशपर वृन्दावनसे श्रीश्रीरामफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली यहाँ आयी थी। बाबा तो सामाजिक जीवनमें पदे-पदे स्नेह और सादगीको, सात्त्विकता और सहजताको प्रतिष्ठित देखना चाहते थे और उस दृष्टिसे ये कुछ उल्लेखनीय प्रसंग हैं।

* * * * *

द्वितीय काष्ठमौन पर प्रवचन

बाबा समय-समयपर अल्प अवधि अथवा दीर्घ अवधिके लिये मौन व्रत लेते रहते थे। बाबाने ७ अप्रैल १९६७ की मध्य रात्रिके कुछ समय उपरान्त जब दूसरी बार काष्ठ मौन लिया, इसके पाँच-छः घंटे बाद ८ अप्रैलको अपने प्रातःकालीन प्रवचनमें बाबूजीने बाबाकी भाव-स्थितिपर पर्याप्त प्रकाश डालते हुए कहा –

स्वामीजीका मौन व्रत आजसे आरम्भ हो गया। इन दिनों स्वामीजीके पास जो लोग बहुत आये-गये, जिन लोगोंसे स्वामीजीने बड़ी स्वच्छन्दतासे बात-चीत की, बहुत प्रेमका स्नेहसना व्यवहार किया, बड़ा अमृत उडेला, अब उन लोगोंके मनमें स्वामीजीके न बोलनेकी स्थिति उत्पन्न हो जानेसे क्षोभ होना स्वाभाविक है। अभीकी बात है कि मेरे घरके लोग, इतना ही नहीं, बच्चे और बूढ़े-बूढ़े लोग भी मेरे पास आये और रोने लगे। यह स्वाभाविक ही है। जिनसे लाभ मिला, जिनसे प्यार मिला, जिनसे स्नेह मिला, जिनसे अमृत मिला, उसका स्रोत यदि कहीं बन्द होता-सा दिखलायी दे तो स्वाभाविक ही मनमें क्षोभ होता है। पर स्वामीजीका यह मौन असलमें नया नहीं है। जो लोग बिलकुल नये नहीं हैं, वे जानते हैं कि लगभग दस वर्ष पहले इसी पंडालमें काष्ठमौनकी घोषणा स्वामीजीने की थी।

काष्ठमौनका अर्थ केवल वाणीका मौन नहीं होता, अपितु 'जगतकी और शरीरकी सारी क्रियाओंसे सर्वथा अपनेको हटा लेना, सबसे मौन हो जाना' – यह होता है काष्ठमौन। उसका विधान इस प्रकार है कि जो काष्ठमौन व्रत ले, वह सब कुछ परित्याग करके घरसे चल दे, कुटियासे चल दे हिमालयकी ओर। चलनेके लिये चल दे। उसके मनमें कहींपर विश्राम करनेके लिये अथवा ठहरनेके लिये संकल्प न हो। चलते-चलते दैवकी प्रेरणासे रास्तेमें कोई कुछ खिला दे तो खा ले, कोई कुछ पिला दे तो पी ले। जहाँ शरीर अशक्त होकर गिर जाये, वहाँ नींद ले ले। फिर उठकर चल दे। इस प्रकार चलते-चलते जहाँ अन्तिम रूपमें शरीर गिर जाये, वहाँ गिर जाये। उस दिन इसी पंडालमें काष्ठमौनका यही अर्थ स्वामीजीने समझाया था। उन्होंने कहा था कि इसीको लक्ष्य

करके मैंने काष्ठ-मौनका मनमें विचार किया था और यही विचार है, परंतु इस प्रकारसे इतना कड़ा व्रत कुछ ठीक नहीं रहता। इसलिये किसीकी ओर न देखना, किसी प्रकारका संकल्प न करना, इशारेसे भी किसी बातका किसी तरह उत्तर न देना, ऐसा व्रत उन्होंने लिया और कई वर्षोंतक उन्होंने किसीकी ओर देखातक नहीं। आगे चलकर कुछ ऐसी कठिन समस्याएँ सामने आयीं कि उनके मौन व्रतमें कुछ शिथिलता आयी। वह शिथिलता भी, उनके स्वरूपमें शिथिलता नहीं, अपितु पद्धतिमें शिथिलता आयी। क्रमशः शिथिलता बढ़ती गयी। फिर उस शिथिलताको विराम देनेके लिये पुनः यह कलवाला रूप सामने आ गया।

कुछ भीतरी बातें ऐसी हैं, जिनको मैं संकेत रूपसे ही कह सकता हूँ। सब बात तो कहना उचित नहीं। काष्ठमौनमें और स्वामीजीके काष्ठमौनमें थोड़ा-सा अन्तर है। ये सब साधनाके क्षेत्रमें सिद्धांतकी बातें हैं। एक होता है रस-मार्ग और दूसरा ज्ञान-मार्ग। दोनों मार्गोंमें ही तत्त्वज्ञान अपेक्षित है। रस-मार्गका सिद्ध पुरुष तत्त्वज्ञानसे रहित नहीं होता और तत्त्वज्ञानीमें तत्त्वज्ञान रहता ही है, रस चाहे न हो। दोनोंमें इतना-सा अन्तर है। तत्त्वज्ञानीमें रस चाहे न हो, पर वह तत्त्वमें स्थित होता है, ब्रह्मनिष्ठ होता है, मुक्त होता है। इसी प्रकार रस-सिद्ध पुरुष भी तत्त्वज्ञानी होते ही हैं। उनकी दृष्टिमें जगत वैसा नहीं रहता, जैसा हम सांसारिक लोगोंकी दृष्टिमें है। वे जगतसे मुक्त हो जाते हैं, परंतु उनमें एक प्रकारके रसका आविर्भाव होता है, जो आगे जाकर समुद्र बन जाता है। उस महासमुद्रमें अनन्त तरंगें उठती हैं और उन तरंगोंमें वह लहराता है। कभी-कभी वह उस समुद्रके तटपर आता है तो बाहर दिखलायी देता है, अन्यथा वह उन्हीं तरंगोंमें रहता है। इस प्रकारसे समुद्रमें डूबे हुए लोगोंके उदाहरणस्वरूप वर्तमानमें हमारे सामने थे श्रीचैतन्य महाप्रभु। अन्तिम गम्भीरा लीलाके समय वे इस रस-समुद्रके तटपर भी नहीं आये, उसीमें डूबे रहे। उसी प्रकारसे स्वामीजीका जो काष्ठमौन था, वह काष्ठमौन केवल तत्त्वज्ञानमें स्थितिजनित पंचम भूमिकातक वाला नहीं, क्रियाके अभावके स्वरूपवाला नहीं, अपितु रस-समुद्रके लहरानेके स्वरूपवाला है। बस, इतना इसमें और उसमें अन्तर है। यह काष्ठमौन रसका है और वह काष्ठमौन तत्त्वज्ञानका है।

पहले ये श्रीराजेन्द्रबाबूजीके साथ राजनैतिक क्षेत्रमें काम करते थे। वे उम्रमें कुछ बड़े थे और ये छोटे थे, पर उनके साथ बिहारमें काम करते थे। ये स्कूलसे निकलकर जेल गये और जेलमें कई दिनोंतक रहे। भगवानकी लीला विचित्र होती है। मनुष्यको पतातक नहीं लगता कि भगवान किसको कैसे किस मार्गमें ले जाना चाहते हैं, पर वे ले जाते हैं। राजनैतिक क्षेत्रमें कार्य करते-करते उसी जेलमें इनके मनमें कुछ दूसरे प्रकारके भाव आये। जेलमें ही और जेलसे निकलनेके बाद इन्होंने अध्ययन किया। शुरूसे ही ये बड़े प्रतिभाशाली थे। कालेजसे पहले ही स्कूलमें ही इनकी प्रतिभाका ज्ञान अध्यापकोंको और अधिकारियोंको हो चुका था। इन्होंने अद्वैत तत्त्वका अन्वेषण, अध्ययन और साधन किया और ये उसमें बहुत आगे बढ़ गये। कलकत्तेमें ये बड़े विरक्त भावसे रहते, कभी फुटपाथपर पड़े रहते। कहीं खानेको मिल गया, खा लेते और जो मिल गया, ले लेते।

श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) का गीतापर विवेचन बड़ा सुन्दर हुआ करता था। इनके मनमें उनके पास जानेकी इच्छा जाग्रत् हुई। ये चले गये बाँकुड़ा। बाँकुड़ा जाकर ये श्रीसेठजीके पास रहे। यह जो गीता-तत्त्व-विवेचनी टीका है, इसमें भाव श्रीसेठजीके हैं, पर इस सारी टीकाको मूलतः इन्होंने अपने हाथसे लिखी है और इसमें टिप्पणी और सारा संशोधन मेरा किया हुआ है। वहाँ ये श्रीसेठजीके पास रहने लगे। ये बड़े कट्टर निर्गुणवादी थे। श्रीसेठजी यद्यपि अद्वैत निर्गुण तत्त्वके ही परिपोषक थे, इसपर भी वे साधनाके क्षेत्रमें सगुण तत्त्वका भी निरूपण किया करते थे और ये उसे माया कहकर खण्डन कर देते थे। इनका आपसमें तर्क-वितर्क चलता। तर्क-वितर्कमें कहीं कटुता नहीं आती। यह होता बड़ा सुन्दर और आनन्दपूर्ण, पर तर्क-वितर्कमें एक-दूसरेको समझा सकें, ऐसी स्थिति नहीं आयी। श्रीसेठजीके पास अनुभव था, पर गीताके अतिरिक्त अन्य शास्त्र नहीं था और इनके पास बड़ा भारी अध्ययन था। जब ब्रह्मसूत्रके सूत्रोंको लेकर और उपनिषदोंके मन्त्रोंको लेकर ये अपने मतको पुष्ट करने लगते, तब श्रीसेठजी सिद्धान्तकी बात तो कह देते, पर वे उत्तरका प्रत्युत्तर नहीं दे पाते। श्रीसेठजी उस प्रकारकी शास्त्रीय भाषामें अपने मतका प्रतिपादन नहीं कर पाते थे। एक दिन श्रीसेठजीने

कहा – स्वामीजी! आप भाई हनुमानके पास चले जाइये।

श्रीसेठजी मेरे बड़े मौसेरे भाई लगते थे। मैं उनसे छोटा था, अतः वे मुझे हनुमान ही कहते थे। श्रीसेठजीके ऐसा कहनेपर स्वामीजीने कहा – वहाँ जाकर क्या करना है?

श्रीसेठजीने कहा – आप एक बार हो तो आइये।

उन्होंने टिकट कटवा दी और ये यहाँ आ गये। उस समय यहाँ साल भरका अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन चल रहा था। अखण्ड कीर्तनके साधकोंके लिये घासकी बहुत-सी कुटियाएँ यहाँ बनी हुई थीं, इनको एक छोटी-सी कुटिया रहनेके लिये दे दी गयी। इन्होंने मुझसे बतलाया कि मैं किसलिये आया हूँ। मैंने कहा कि मैं तो कुछ जानता हूँ नहीं, पर आप रहिये।

यहाँ आनेके पश्चात् ये बिलकुल बदल गये। बदलते-बदलते ये रस-तत्त्वमें प्रवेश करके व्रज-रसके उपासक बन गये। दो चीज होती है। रस-तत्त्ववाले अद्धैतके विरोधी होते हैं और अद्धैत-तत्त्ववाले रस-तत्त्वको अज्ञानकी भूमिकामें मानते हैं। अद्धैत मतावलम्बी सम्प्रदायमें कुछ ऐसे भी हैं, जो भगवानको भी मायाकी वस्तु मानते हैं और कहते हैं कि ईश्वर मायोपाधिक हैं तथा जीव अविद्योपाधिक है। अविद्या और मायाका निरसन हुआ कि न जीव है और न ईश्वर है। वे ईश्वरकी सत्ता भी तत्त्वतः स्वीकार नहीं करते। बस, साधनकालमें ईश्वरका उपयोग करना मानते हैं। वे अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये ईश्वरका स्तवन करना, पूजन करना आवश्यक मानते हैं। इसलिये वे कहते हैं कि साधनाकालमें उपासना भी बड़ी लाभदायक होती है, पर उपास्य ईश्वर कोई तत्त्वकी वस्तु नहीं, अपितु वह तो साधनाकी चीज है। इसी तरहसे रस-तत्त्वके लोग भी अद्धैत-तत्त्वका बड़ा मखौल उड़ाया करते हैं और इसे जड़ तथा आकाशकी भाँति शून्य कहकर उपहास किया करते हैं। वह उपहास कुछ तो उनका विनोद होता है (और विनोदमें तो कोई आपत्ति नहीं), कुछ वह शास्त्रार्थके लिये हठ होता है, कुछ वह दुराग्रह होता है, (जो अच्छा नहीं) और कुछ तो वह अज्ञान ही होता है, जिसका दोनों ओरसे निरसन ही होना चाहिये। ये कुछ सिद्धान्तकी बातें हैं। अद्वैत-तत्त्वमें स्वामीजीकी निष्ठा होते हुए भी रस-तत्त्वमें इनका प्रवेश हुआ और वह प्रवेश उत्तरोत्तर वर्धित होता चला

गया। जो इनके अन्तरंग जीवनके सम्पर्कमें आये हैं, उनको मालूम है कि महाभावकी जो अगले स्तरकी चीज है, जिसकी रूप-रेखा शायद जीव गोस्वामीजी तकने भी नहीं खींची, वैसी चीज इनमें व्यक्त हुई, इनके अनुभवमें आयी। वे व्रज-रसके उपासक बन गये और उसकी उत्तरोत्तर पुष्टि होती गयी और उसीका परिणाम था इनका पूर्वका काष्ठमौन! इस प्रकारसे इनका काष्ठमौन असलमें इनका रस-समुद्रमें निमज्जन है और रस-सागरमें जो भावतरंगें उठा करती हैं, सम्भव है, वे इनके जीवनमें उठें। कैसे उठें, क्या उठें, तरंगोंका कुछ पता नहीं चलता। इसलिये इनकी यह वस्तु आजकी कोई नयी नहीं, पुरानी चीज है और अवश्य ही साधनाके क्षेत्रमें यह एक बड़ी विलक्षण वस्तु है कि जहाँ रस-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व एक-दूसरेके अ-प्रतिद्वन्द्वी होकर एक साथ एक रूपमें रहते हों। ये रहे हैं पहले। ऐसा नारदादिमें था। भगवान शंकराचार्यमें भी ऐसा माना जाता है, लेकिन ये उदाहरण विरल होते हैं, बहुत कम होते हैं। इससे लोगोंको शिक्षा लेनी चाहिये।

जो लोग ऐसा समझते हैं कि स्वामीजीके मौन हो जानेसे अब हम लाभसे वंचित हो गये, यह उनकी भूल है। असली बात तो यह है कि लाभसे वंचित होता है भावसे रहित व्यक्ति। शास्त्रोंमें संतकी महिमा तो यहाँतक कही गयी है कि यदि किसी देशमें संतका अस्तित्व है, भले वह किसीसे बोलता नहीं, मिलता नहीं, वह बातचीत तो करता ही नहीं, कोई उसे जानता नहीं, किंतु यदि उसका अस्तित्व है तो उस अस्तित्वसे ही जितने अंशतक उस संतमें प्रागल्भ्य है, जितना उसका तेज है, उसके अनुपातसे जगतको लाभ अपने आप होता है। जैसे कहीं बर्फ ढकी हुई रखी हो और हमको दिखलायी नहीं दे, भले न दीखे, पर उसकी ठण्ड हमें मिलेगी ही। इसी प्रकारसे संतका रहना जगतमें लाभदायक है।

दूसरी बात यह है कि यदि किसी संतमें किसी व्यक्तिकी वास्तविक श्रद्धा, विश्वास या प्रेम-प्रीति है, तो संतके अंदर जो भाव हैं, उन भावोंका संक्रमण उस प्रेमीमें अपने आप होता रहेगा। वह संत न मिले, न बातचीत करे तो कोई बात नहीं, पर उन भावोंका संक्रमण अपने आप होता रहेगा।

तीसरी बात इससे भी और अधिक आवश्यक है संतकी सेवाके विषयमें। यह बड़ा सुन्दर है और सराहनीय है कि उनके न बोलनेके कारण हमें बोलीके वियोगमें दुःख होता है, पर जो उनकी सेवा करना चाहते हैं, उनके लिये उचित यह है कि हमने उनसे जो सीखा है, उन्होंने विभिन्न प्रकारसे जो शिक्षा दी है और इन दिनोंमें आने-जानेवाले लोगोंसे जिसके लिये जो उन्होंने कहा है, जैसे तुम सत्य बोला करो, तुम गरीबकी सेवा किया करो, तुम अमुक नामका इतना जप किया करो, तुम इतना पाठ किया करो, उसे अपने जीवनका व्रत मानकर अपने जीवनमें उतार लें। उनकी रुचिके अनुसार जीवन बनानेसे सच्ची सेवा होगी और उनके द्वारा लाभ प्राप्त करनेका यह बड़ा माध्यम सिद्ध होगा।

स्वामीजी आज मौन हो गये। उनका मौन होना बड़ा मंगलमय! वे यदि रस-समुद्रमें डूबें और डूब जायें हमेशाके लिये तो स्वाभाविक ही उसके कुछ कण हमलोगोंको मिलेंगे ही। उनका डूबना बड़ा अच्छा!

* * * * *

बात-बात में सँभाल

बाबाने दूसरी बार काष्ठ मौन व्रत लिया। व्रत लेते ही अन्तर्मुखताकी गम्भीर स्थितिमें बाबाके सँभालकी आवश्यकता बहुत बढ़ गयी और बाबूजी बहुत अधिक ध्यान रखने लगे। बाबूजीके साथ नित्य रहनेके कारण गोरखपुरसे बाहर जानेका अवसर बाबाके सामने अनेक बार आया है। बाहर जानेपर बाबूजी ही बाबाको अपने साथ लेकर चलते थे। किस रास्तेसे जाना है, किस दिशामें जाना है, सीढ़ीपर चढ़ना है या उतरना है, मोटरमें चढ़ना है या क्या करना है, यह बाबाको भला क्या पता? रास्ते भर बाबूजी ही बाबाकी सँभाल रखते थे। इस सँभालकी क्या कहीं कोई तुलना हो सकती है?

जब बाबा पुरानीवाली कुटियामें रहा करते थे, तब कई बार बाबा आनेवाले, मिलनेवाले सज्जनोंको प्रणाम किया करते थे। बाबाकी दृष्टिमें सभी भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। बाबाके पास आनेवाले लोग संख्यामें बहुत अधिक हुआ करते थे। जबतक वे आगन्तुक सज्जन

बाबाको प्रणाम करते, तबतक बाबा भी उनको प्रणाम करते रहते थे, अतः यह क्रम बहुत देरतक चलता रहता था। जमीनपर बार-बार माथा टेकते-टेकते बाबाके ललाटमें सूजन हो जाया करती थी। इस सूजनको देखकर बाबूजीका अन्तर व्यथित हो उठता। तब बाबूजी बाबाके ललाटपर अपनी हथेली लगा दिया करते थे, इसलिये कि लोगोंको प्रणाम करते समय जमीनकी रगड़ बाबाके ललाटपर न लगे। जब बाबूजी हथेली लगाते, तब बाबाको भान होता कि उनके द्वारा कोई ऐसी क्रिया हो रही है, जिसे बाबूजी उचित नहीं समझते। उसी समय बाबाके मनमें यह बात आती कि फिर मेरे द्वारा वह क्रिया हो ही क्यों, जिसे बाबूजी अभीष्ट नहीं समझते। बाबाके मनमें यह बात उठती, पर फिर जब बाबा देखते कि कोई मुझे प्रणाम कर रहा है तो बाबा भी सामनेवालोंको प्रणाम करने लगते। ऐसी स्थितिमें बाबूजी ही सामनेवाले लोगोंको मना करते कि आप प्रणाम न करें, अन्यथा बाबा द्वारा प्रणाम किया जाना बन्द नहीं होगा।

बाबाकी सँभाल बाबूजी बात-बातमें किया करते थे। बाबाके सुख-दुखके बारेमें बाबूजीका मन सदैव सावधान रहा करता था।

* * * * *

परिक्रमा के समय दिव्यानुभूति

परमादरणीया बहिन श्रीदेवकीजी मानवीय कोमलताकी साक्षात् स्वरूप थीं। उनकी मनोविज्ञान शास्त्रमें गहरी पैठ थी। परदुःख-कातरता तो उनके रोम-रोममें समायी हुई थी। नखशिख सत्त्वसम्पन्ना बहिन श्रीदेवकीजीके महान संतोचित व्यक्तित्त्वका निर्माण हो पाया था 'मानव सेवा संघ' संस्थाके संस्थापक परमपूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजके चरणाश्रयमें रहनेसे। बहिनजी श्रीस्वामीजी महाराजके आनुगत्यमें रहकर अपने जीवनको सफल बना रही थीं।

श्रीस्वामीजी महाराजके महाप्रयाणके उपरान्त बहिनजीके ऊपर ही मानव सेवा संघके संचालनका सारा दायित्त्व आ गया था।

श्रीस्वामीजी महाराज ग्रीष्म ऋतुमें स्वर्गाश्रम आ जाया करते थे

और गीता भवनमें उनका नित्य प्रवचन हुआ करता था।

एक बार श्रीस्वामीजी महाराजके सांनिध्यका लाभ उठानेकी भावनासे परमादरणीया बहिन श्रीदेवकीजी स्वर्गाश्रम आयीं और वे गीताभवनमें ठहरी हुई थीं। फिर वे गीताभवनसे डालमिया कोठी बाबूजीका दर्शन करनेके लिये गयीं। यह संयोगकी बात है कि उस समय बाबा डालमिया कोठीमें घेरेके भीतर श्रीगिरिराज भगवानकी परिक्रमा लगा रहे थे। बहिनजी खड़ी होकर परिक्रमाका दर्शन करने लगीं और उस समय उन्हें बड़ा दिव्यानुभव हुआ। बहिनजी डालमिया कोठीसे विदा होकर जब श्रीस्वामीजी महाराजके पास गयीं तो अपने दिव्यानुभवका वर्णन करते हुए कहने लगीं – जब मैं डालमिया कोठीमें पहुँची तो बाबा परिक्रमा लगा रहे थे। उस समय मुझे ऐसा लगा मानो धरतीसे प्यार उभर रहा है, आकाशसे प्यार बरस रहा है, हर दिशासे प्यार उमड़ रहा है और मैं प्यारकी लहरोंके आवर्तमें हूँ। प्यारकी तरंगें मेरे शरीरका स्पर्श कर रही हैं। वे तरंगें मेरे हृदयमें भरती चली जा रही हैं। मेरे भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, दायें-बायें, सर्वत्र प्यार-ही-प्यार परिव्याप्त हो रहा है। यह मेरे लिये एक दिव्यानुभव था।

इस दिव्यानुभवको सुनकर श्रीस्वामीजी महाराजने कहा – अरे! यह तो स्वाभाविक बात है। तुम तो मनोवैज्ञानिक क्रिया-प्रतिक्रियाकी प्रक्रियाको भलीभाँति समझती हो। जो वस्तु व्यक्तिके भीतर होती है, वही बाहर विस्फुटित-वितरित होती है। राधाभावापन्न बाबा तो प्यारकी प्रतिमा हैं। उनके समीप तुमको ऐसा अनुभव हो तो इसमें विस्मयकी भला क्या बात है?

बहिन देवकीजी मौन और नतमस्तक थीं।

* * * * *

भावोच्छलन और जडिमा-भाव

प्रसंग २९ मई १९६८ का है और है स्वर्गाश्रमका। ऋषिकेशसे लगभग तीन मील दूर भगवती गंगाके उसपार स्वर्गाश्रम नामक स्थान है और वहीं गंगाजीके पावन प्रवाहके तटपर ही गीताभवन है, जहाँ सत्संग और संत-समागमकी सुन्दर व्यवस्था है। बाबूजी गोरखपुरसे चैत्र

मासमें स्वर्गाश्रम चले आया करते थे और डालमिया कोठीमें ठहरा करते थे। डालमिया कोठी भी भगवती गंगाके तटपर ही है। यदि गंगाजीके पावन प्रवाहके साथ-साथ हम चलें तो पहले डालमिया कोठी है, इसके बाद बूबना भवन है, इसके बाद गीता भवन है और इसके बाद परमार्थ निकेतन आदि अनेक भवन आश्रम हैं। ये सभी गंगाजीके तटपर ही हैं। बाबूजी तो डालमिया कोठीमें ठहरा करते थे। डालमिया कोठीके भीतर एक छोटा-सा बाड़ा था। बाड़ेके भीतर एक छोटा-सा भवन था, जिसे हम लोग अपनी ऐकान्तिक भाषामें 'राधा कुञ्ज' कहा करते थे। यह राधा कुञ्ज दो मञ्जिल वाला है, नीचे मंजिलमें एक कमरा और ऊपर मंजिलमें एक कमरा। राधा कुञ्जके ऊपरवाले कमरेमें बाबाका निवास रहा करता था और उस निवास कक्षका दर्शन सहज ही मिल जाया करता था उन लोगोंको, जो बगलवाले बूबना भवनकी दूसरी मंजिलपर स्थित सात-आठ कमरोंमें रहा करते थे। इन सात-आठ कमरोंमेंसे एक कमरा, जिसका नम्बर अस्सी था, उस कमरेमें भाई श्रीनटवरजी गोस्वामी (स्वामी श्रीकृष्णप्रेमजी) ठहरे हुए थे। २९ मई १९६८ को भाई नटवरजीने अपने आत्मीयजनोंको इकट्ठा करके हरिनाम संकीर्तनका शुभारम्भ किया। शुभारम्भ दोपहरके दो बजे हुआ। भाई नटवरजीने अपने हाथमें हारमोनियम लिया और कोई ढोलक तथा कोई मजीरा लेकर बैठ गया। श्रीप्रिया-प्रियतमकी जयकारके साथ श्रीहरिनाम संकीर्तनका श्रीगणेश हुआ। सभी स्वरमें स्वर मिलाकर सुमधुर रीतिसे कीर्तन कर रहे थे और उच्च स्वरसे बोल रहे थे –

राधिका रमण अम्बुज नयन नन्दनन्दन नाथ हे।
गोपिका प्राण मन्मथ मथन विश्व रञ्जन कृष्ण हे।।

प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके नाम-रसकी लहरीमें भाई नटवरजी अपनी सुध-बुध खो रहे थे और यह नाम-खुमारी भी छूतका एक रोग है। सभी उपस्थित आत्मीयजन उस रस-धारामें डूब-उतरा रहे थे। उसी समय भाई नटवरजीने हितकुलावतंस श्रीहितहरिवंशजी महाराज द्वारा रचित रास-विहारके एक पदका गायन किया।

आज गुपाल रास रस खेलत पुलिन कल्पतरू तीर री सजनी।
सरद बिमल नभ चंद बिराजत रोचक त्रिबिध समीर री सजनी।।

चले चलनेके लिये उन्होंने मन्द स्वरमें कहा, पर इस अनुरोधका न कोई प्रभाव पड़ा और न कोई प्रतिक्रिया हुई। बाबा जगतके प्रकृत धरातलपर होते, तभी तो उस अनुरोधकी कुछ सुनवायी हो पाती। जब भगतजी असफल हो गये तो वे माँको बुला लाये। बुला लानेमें भी पन्द्रह-बीस मिनट लग गये, पर बाबा पूर्ववत् जड़वत् खड़े रहे। माँने आकर अनुरोध किया। 'बाबा' 'बाबा' कहकर कई बार मीठे स्वरमें पुकारा। माँका सतत प्रयास यह था कि बाबाको कुछ चेतना आ जाय तो वे कमरेके भीतर चल चलें, पर उनके प्रयास भी सफल नहीं हुए। फिर माँका संकेत पानेपर श्रीभगतजी बाबूजीको बुला लाये। उन्होंने आकर देखा कि बाबा आधा-आधा हाथ उठाये हुए खड़े हैं, जेठ मासके तपते सूर्यकी गर्म-गर्म किरणें उनके गौर शरीरपर सीधी पड़ रही हैं और पैरोंके नीचे छत भी तप रही है। न जाने कैसे उनका कोमल शरीर जेठ मासके इस कठिन तापको सह रहा होगा! बाबूजीका हृदय भर आया। वे आगे आये और अपनी दोनों भुजाओंके बीच उनके काष्ठवत् शरीरको ले लिया। फिर धीरे-धीरे, किंतु बड़ी कठिनाईसे कमरेके भीतर उनको ले गये। भीतर जाकर बाबूजीने उनको गैरिक बिस्तरपर लिटा दिया। उनका कोमल शरीर भावावेगके कारण काष्ठवत् ही हो रहा था। बाबूजी उनके पास बैठ गये और उनके काष्ठवत् शरीरको धीरे-धीरे सहलाने लगे। बाबूजीद्वारा सहलाया जाना कोई साधारण बात थी क्या? उस सहलाये जानेके माध्यमसे न जाने किन-किन लोकोत्तर भाव-तरंगोंका रहस्यमय आदान-प्रदान हो रहा था। उस पारस्परिक आदान-प्रदानको हम साधारण जन भला क्या जानें और क्या समझें? बाबूजी बहुत देरतक बैठे हुए सहलाते रहे। जब बाबाका वह भावोच्छलन कुछ-कुछ प्रशमित हो गया, तभी वे प्रकृत धरातलपर आ पाये।

हमें यह पता नहीं है कि श्रीराधाभावापन्न बाबाके भावराज्यकी कौन-सी दिव्य लीला वहाँ विलसित हो रही थी और हमें यह भी पता नहीं है कि बाबाके अन्तरमें उभरा और उमड़ा हुआ वह भावोच्छलन कितना विस्तृत और विशाल था, पर यह तो स्पष्ट दिखलायी दे रहा था कि उस दिव्य लीलाके विस्तृत-विशाल भावोच्छलनने किस सीमातक बाबाके गौर और कोमल वपुको पाषाणके समान जड़वत् बना दिया था, जिसे न तापका अनुभव था, जिसपर न थकानका प्रभाव था और जहाँ न शब्दका श्रवण था। २९ मई १९६८ के दिन जिन-जिन भक्तोंको बाबाके गौर वपुमें

आविर्भूत जड़िमा-भावके दर्शनका शुभ अवसर मिला, वे सभी भाग्यशाली थे।

अन्तमें एक बात और कहनी है। बाबाकी इस स्थितिपर टिप्पणी करते हुए बाबूजीने कहा था— महाभावस्वरूपा श्रीराधारानीके दिव्य जड़िमा-भावका किंचिदंशमें यह प्रकाश था।

* * * * *

उच्छिष्ट कणों का प्रभाव

एक अमेरिकन माताजी थीं। उनका नाम था श्रीईरीन। वे बाबाके सम्पर्कमें आयीं तब, जब १९६५ में श्रीभागवत भवनका मथुरामें शिलान्यास हुआ था। शिलान्यासके निमित्तसे ही बाबूजी और बाबा गोरखपुरसे मथुरा गये थे और मथुरा-वृन्दावनके मध्य बिड़ला मन्दिरमें ठहरे थे। बाबा तो सर्वथा मौन रहते थे। उनके मौनमें कोई बाधा उपस्थित न हो, इसलिये उनका कमरा एकदम अलग था, पर कभी-कभी वे बाहर निकलते ही थे। बस, इसी अवसरकी ताकमें वे माताजी रहा करती थीं और जब भी दर्शन मिलता, वे बाबाको एकटक निहारती रहतीं और आसुओंकी धारसे अपने कपोलोंको भिगोती रहतीं। इन माताजीने किसीसे संन्यासकी दीक्षा ले ली थी और नया नाम था श्रीसत्यप्रेमानन्दजी। इनका एक नाम मञ्जुश्री भी था। वे भारतमें आध्यात्मिक उद्देश्यको लेकर आयी थीं और अनेक आश्रमों और संतोंके पास गयीं, किन्तु उनका मन कहीं भी न रम पाया और न टिक सका। वे तो उन्मुक्त स्वरसे कहती थीं— मुझे गीतावाटिकाके श्रीराधा बाबा जैसा खरा संत अभीतक मिला ही नहीं।

बाबाके प्रति उनकी श्रद्धा अगाध थी। यह श्रद्धा भावना इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि वे बाबाके पत्तलके उच्छिष्टको प्रसाद रूपमें पानेके लिये गहरी चाह करने लगीं। वे देखती रहती थीं कि बाबाकी भिक्षा हो जानेके बाद उनके अनन्य सेवक श्रीभगतजी जूठी पत्तल कहाँ फेंका करते हैं। उन्होंने देख लिया कि श्रीभगतजी जूठी पत्तलको एक कोनेमें फेंक आया करते थे। वे ताकमें तो थीं ही कि बाबाका कोई उच्छिष्ट पदार्थ पानेको मिले। एक बार जूठी पत्तल चुपचाप चोरी-चोरी प्राप्त करनेमें उन्हें सफलता मिल गयी। श्रीभगतजीद्वारा फेंकी गयी पत्तलमें यहाँ-वहाँ कुछ उच्छिष्ट कण

तो चिपके हुए थे ही। श्रीमञ्जुश्रीने उन कुछ उच्छिष्ट कणोंको बड़ी श्रद्धा पूर्वक पा लिया। उन कणोंको खाते ही उनमें भीतर-ही-भीतर विस्मयकारी परिवर्तन होने लगा और विचित्र अनुभूतियाँ होने लगीं। जो कुछ भी उनके अनुभवमें आया, उन सबको उन्होंने स्वयं ही बाबाको बतलाया। उनकी बात सुनकर बाबाने उनसे कहा – आपके सारे षट्-चक्र सक्रिय हो गये और अनोखी-अनोखी अनुभूतियाँ होने लगीं, यह सब पत्तलके उच्छिष्ट कणोंके सेवनका प्रभाव नहीं है, अपितु आपकी श्रद्धाका परिणाम है।

बाबाने भले ऐसा कहा, पर श्रीमञ्जुश्री माताजी इसे माननेके लिये तैयार नहीं थीं। उनकी भावना यही थी – बाबा स्वयंको छिपाये रखनेके लिये ऐसा कह रहे हैं। यदि मेरी श्रद्धाका परिणाम है तो उच्छिष्ट कण ग्रहण करनेके पूर्व ऐसा क्यों नहीं हुआ और उन उच्छिष्ट कणोंको ग्रहण करते ही यह विस्मयकारी परिवर्तन कैसे और क्यों हो गया?

उनकी सुदृढ़ मान्यता थी कि जिनके उच्छिष्ट कणोंका यह प्रभाव है, वे स्वयंमें न जाने कितने महान होंगे!

* * * * *

एक घायल कौवा

सन १९७० ई. की श्रीराधाष्टमीके कुछ दिनों बादकी बात है। बाबाके शौचालयके पीछे एक कौवेको बन्दरोंने नोच डाला। उसकी छातीपर, गर्दनमें एवं पीठके पिछले भागमें गहरे घाव हो गये। उसका एक डैना टूट गया था। प्रातःकाल बाबा जब शौचके लिये उधर गये तो उन्हें वह कौवा दिखायी पड़ा। जीवमात्रको भगवत्स्वरूप माननेवाले बाबा कौवेके कष्टसे पीड़ित हो उठे। वे उसके उपचारमें लग गये। सेवकगण जुट गये। कौवेको उठाया गया। उसपर थोड़ा गंगाजल डाला गया, जिससे उसके घावोंपर लगी हुई मिट्टी घुल जाय, पानीके कारण उसमें ताजगी आ जाय तथा उसकी बेहोशी दूर हो जाय। गंगाजलसे धोनेसे कौवा कुछ होशमें आया। डा. चक्रवर्ती, जो बाबूजीके पारिवारिक चिकित्सक हैं, उनको फोन किया गया। वे तुरन्त घरसे चल पड़े। घरसे चलनेसे पूर्व उन्होंने बताया – उसे कोरामिनकी १५ बूँद, थोड़ा ग्लूकोज एवं जल दे दिया जाय।

तीनों चीजों मिलाकर चम्मचसे उसके मुँहमें डाली गयीं। कौवा पंख

फड़- फड़ाकर होशमें आ गया, पर एक डैना बुरी तरहसे टूट जानेसे वह उड़ नहीं पा रहा था। इतनेमें डाक्टर चक्रवर्ती आ गये। उन्होंने कौवेके घावोंको देखकर कहा – इसे बुरी तरह नोचा गया है।

घावोंपर सीवाजल पाउडर छिड़का गया। इतना उपचार पानेपर कौवा कुछ सँभल गया। डाक्टर साहबने कहा – मैं शामको या कल आकर फिर ड्रेसिंग कर दूँगा।

अब बाबाको चिन्ता हुई कि इसकी रक्षा कैसे हो। कहीं बन्दर फिरसे इस कौवेपर हमला न कर दें, नेवला-सियार-कुत्ता-बिल्ली उसे अपना भोजन न बना लें, चींटी-मकोड़े उसके घावको न खरोंच डालें, उसके परिवारके दूसरे कौवे आ-आ करके उसको ले जानेका असफल प्रयास न करें, ऐसी कई समस्याओंका समाधान करना था। बाबा स्वयं जुट गये इस व्यवस्थामें। वे मौन हैं, अतः बोल करके या संकेत करके अपना मनोभाव व्यक्त नहीं कर सकते। स्वयं उठकर जब कोई चीज वे उठाने लगते हैं या खोजते हैं तो उनकी चेष्टाओंसे अनुमान लगाया जाता है कि वे इस या उस चीजको चाहते हैं। तत्काल वह चीज जुटायी जाती। एक जालीदार पिंजड़ा आया, जो लगभग नौ इंच ऊँचा था। उसके भीतर पुवाल बिछाया गया। उसपर उस कौवेको लिटाया गया। पासमें एक परईमें पानी और दूसरी परईमें रोटीके टुकड़े रखे गये। अब पिंजड़ेके चारों ओरकी सुरक्षाकी व्यवस्था हुई। चारों ओर ईटोंको जोड़ा गया, जिससे कोई नेवला या सियार या कुत्ता या बिल्ली भीतर न घुस सके। चींटियोंसे बचाव करनेके लिये पिंजड़ेके चारों ओर पर्याप्त गैमेक्सिन पाउडर छिड़का गया। कोई पिंजड़ा खोल न दे, इसके लिये पिंजड़ेके कुण्डा लगवाया गया और उसमें ताला लगाकर चाबी सुरक्षित स्थानपर रखी गयी। पिंजड़ेमें हवा आनेकी पूरी व्यवस्था थी। साथ ही इस बातकी भी व्यवस्था की गयी कि वर्षा आते ही उसे ढक दिया जाय और वर्षाका पानी पिंजड़ेमें न जाय, पर पर्याप्त हवा भीतरतक पहुँचती रहे। इतनी व्यवस्थामें लगभग तीन-चार घंटे बाबाको लग गये। इतनी व्यवस्था करनेके पश्चात् बाबा अपनी कुटियामें गये।

कई सेवकोंने जिम्मेदारी ली है उसकी बराबर सँभाल करनेकी। थोड़ी-थोड़ी देरमें सेवकगण सँभाल करते रहे। कौवा प्रसन्न था, पर बाबाको कहाँ चैन! वे भी जब-जब कुटियासे बाहर आते हैं, तब-तब स्वयं पिंजड़ेके पास जाते हैं और कौवेकी सँभाल करते हैं। कौवेकी परईकी रोटी बदली

गयी कि नहीं, पानी नया रखा गया कि नहीं, इसकी उन्हें बड़ी चिन्ता रहती। इस प्रकार लगभग दो दिन वह जीवित रहा। उसकी सार-सँभालको देखकर एक सज्जनने कहा – इतनी सँभाल तो कोई अपने सगे पिताकी भी न करता, पर बाबाके लिये वह कौवा साक्षात् भगवत्स्वरूप है। यह सेवा भगवानकी अर्चना है, अतएव इसकी तुलना लौकिक सेवासे कैसे हो सकती है?

कौवेके प्राण पखेरू उड़ जानेपर बाबाने उसकी अन्त्येष्टिकी व्यवस्था की। उन्होंने श्रीगोस्वामीजी महाराज, श्रीनन्दबाबा, श्रीमोतीजी, श्रीदूबेजी आदि वरिष्ठ सात्त्विक पण्डितोंको बुलाया, कौवेको स्वयं अपने हाथों गंगाजलसे स्नान कराया, अपनी धोतीका कपड़ा मँगवाकर उसे पोंछा, उसके मस्तकपर शरीरपर चन्दन लगाया, तुलसीदल एवं गंगाजल उसके मुँहमें डाला और तुलसीदल उसके शरीरपर चढ़ाया। फिर अपनी गैरिक धोतीके कपड़ेमें उसे लपेटकर बाबाने उसे अपनी गोदमें ले लिया। इतना करके उस कौवेको लिये-लिये उन्होंने गिरिराजजीकी पाँच प्रदक्षिणा की। इसके बाद उन्होंने पण्डित समाजके साथ कीर्तन करते हुए अपने शौचालयके सामने, जहाँ वे इससे पूर्व कई जीवोंको समाधि दे चुके थे, उस कौवा महाराजको समाधि दी। जमीनको गहरा खुदवा करके और चारों ओर ईंट लगा करके बीचमें उसके शवको रखा गया तथा पुष्प आदि रखकर उसे मिट्टिसे ढक दिया गया। इस प्रकार कीर्तनके साथ उसकी अन्त्येष्टि सम्पन्न हुई। अब सब पण्डितोंको सचैल स्नानका आदेश हुआ। ऐसी अन्त्येष्टिके द्वारा बाबाने प्यारका एक ऐसा अनुपम आदर्श उपस्थित कर दिया, जिसकी स्मृति मात्रसे हृदय पवित्र हो जाता है। भगवदीय प्यार क्या वस्तु है, उसकी कुछ झलक इस प्रसंगसे मिलती है।

* * * * *

बाबूजी का 'लीला-प्रवेश'

कैंसर रोग ही बाबूजीकी जीवन लीलाके लिये विघातक सिद्ध हुआ। सन् १९६९ के अप्रैल मासमें झटका आया उदर-शूलके रूपमें। तब किसीको भी यह अनुमान नहीं हो पाया कि इस उदर-शूलके रूपमें कैंसर ही अपना जाल फैला रहा है। अनुमान तो एक-डेढ़ साल बाद हो पाया।

बाबूजीकी रुग्णताको देखकर स्वास्थ्य-लाभके लिये बाबाने, परिवारके निज जनोंने तथा सभी आत्मीय जनोंने चिकित्सा-परिचर्याके रूपमें क्या नहीं किया, पर इस भीषण व्याधिके समक्ष सारे प्रयास असफल ही रहे।

बाबूजीने २२ मार्चको महाप्रयाण किया था। निधनके ७ दिन पहले बाबूजीकी स्थिति नाजुक हो गयी थी और ऐसा लगने लगा कि शायद वे अपने पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग कर दें। इस सम्भावनासे सभी पारिवारिक जन अत्यधिक विकल हो उठे। भावी कुपरिणामकी कल्पनासे सभी बेचैन थे।

बाबूजीके महाप्रस्थानसे दो दिन पहले अर्थात् २० मार्चकी बात है। शौच-स्नान आदिसे निवृत्त होनेके लिये बाबा उनके कमरेसे, जिसे आजकल पावन-कक्ष कहा जाता है, उस कमरेसे बाहर निकले। भवनकी सीढ़ियोंसे उतरकर बाबा अपनी कुटियाकी ओर चले जा रहे थे। अपनी कुटियाके बाड़ेका दरवाजा खोलकर जब बाबाने कुटियामें प्रवेश किया तो उन्हें बाबूजीका अत्यन्त मीठा स्वर सुनाई दिया। बाबूजीने कहा – अब मेरे 'जानेका' समय हो गया है।

यह सुनकर बाबाने कहा – आपको जिसमें अधिकसे अधिक सुख हो, आप वही करें। आपके सुखमें ही मुझे सुख है।

बाबूजीने २० मार्चके प्रातःकाल अपने 'जानेका' संकेत बाबाको दे दिया था और अपने 'जाने' के लिये अनुमति भी ले ली थी।

अब २२ मार्चके प्रातःकालकी बात है। बाबाने मन-ही-मन उनसे कहा – देखिये, मैं परिक्रमा करने जा रहा हूँ। यदि आपको यही अभीष्ट हो कि मेरी अनुपस्थितिमें आप जायें तो चले जाइयेगा।

यह कहकर बाबा जल्दीसे कुटियापर आये और शौचसे निवृत्त हुए। फिर बिना स्नान किये ही बाबा तुरन्त श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करने लगे। जल्दी-जल्दी परिक्रमा पूरी करके बाबा तुरन्त बाबूजीके पास गये। उनका कमरा बन्द था। अन्दर परिवारके लोग बैठे थे। बाबाने दरवाजेपर बड़ी हल्की थाप दी, पर दरवाजा नहीं खुला। तब बाबाने फिर उनसे मन-ही-मन कहा – देखिये, मैं अपनी कुटियापर स्नान करने जा रहा हूँ। यदि आपको मेरी अनुपस्थितिमें ही जाना अभीष्ट हो तो आपकी जैसी इच्छा।

इतना कहकर बाबा अपनी कुटियापर आये। जल्दीसे स्नान करके

तुरन्त बाबूजीके कमरेमें गये। बाबा बाबूजीके सिरहाने बैठ गये। बैठनेके पाँच-छः मिनट बाद ही उनको रक्तका वमन हुआ। फिर चेहरेकी आकृति और श्वासकी गति ऐसी लगने लगी मानो वे अब जानेवाले हैं। बाबा तुरन्त उठ खड़े हुए और बोले – जल्दीसे नीचे उतारो।

बिस्तरका छोर पकड़कर बिस्तर सहित बाबूजीको उठाया गया और उन्हें नीचे उतार लिया गया। उतारते ही ७ बजकर ५५ मिनटपर उन्होंने 'प्रस्थान' कर दिया।

हजारोंकी संख्यामें जन समूह गीतावाटिकामें एकत्रित था। सबके नेत्र बरस रहे थे। स्नानादि विविध कृत्योंकी सम्पन्नताके उपरान्त पार्थिव देहको अर्थीपर विराजित किया गया और अन्त्येष्टि-क्रिया गीतावाटिकाके गिरिराज परिसरमें पूर्ण हुई।

* * * * *

गीतावाटिका में समाधि

एक बार बाबासे बड़ी ही भावभरी रसमयी चर्चा चल रही थी। चर्चा करते-करते और अपने भावोंको सुनाते-सुनाते बाबा बहुत अधिक भाव-विह्वल हो रहे थे। गीतावाटिकामें जहाँ समाधि है, वहीं बाबूजीका अन्तिम अग्नि-संस्कार हुआ था। गीतावाटिकामें चिता-निर्माणकी कथा भावराज्यकी एक रसमयी और रहस्यमयी गाथा है।

११ मई १९३९ को बाबाने बाबूजीके साथ नित्य रहनेका संकल्प लिया था तो उसी संकल्पका यह भी एक उप-संकल्प था कि यदि बाबाके पहले उनका शरीर चला गया तो जहाँ उनकी चिता सजेगी, वहीं बाबा रहेंगे। यदि गोरखपुरमें राप्ती नदीके किनारे राजघाटपर चिता सजती तो बाबा वहीं रहते, पर श्रद्धालुओंको यह स्वीकार ही नहीं था कि श्रद्धेय बाबा उस मरघटके बीरानेमें भीषण प्रतिकूल परिस्थितियोंसे संघर्ष करते हुए अपने शेष जीवनको व्यतीत करें। फिर प्रश्न हुआ कि क्या किया जाय। लोगोंने सुझाव दिया कि श्रीकृष्ण निकेतनमें रहनेकी सुविधा है, अतः श्रीकृष्ण निकेतनमें चिता सजायी जाय। यह बात ठीक थी, पर श्रीकृष्ण निकेतन तो था बाई (श्रीसावित्री बाई फोगला)का, जो है बाबूजीकी सुपुत्री। बेटीकी जमीनपर पिताका शव-दाह नहीं हो सकता। इस बाधाका निवारण

करनेके लिये यह सोचा गया कि बाई अपना श्रीकृष्ण निकेतन श्रीराधामाधव संस्थानको दान कर दे और फिर श्रीकृष्ण-निकेतनकी भूमिपर अग्नि-संस्कार करनेमें कोई आपत्ति नहीं रहेगी। बाई एवं जीजाजी, दोनों तत्काल दान कर देनेके लिये प्रस्तुत हो गये। उसी क्षण चाचाजी श्रीजयदयालजी डालमियाके मनमें एक विचार अचानक कौंध गया कि यदि चिता राजघाटके मरघटपर न होकर श्रीकृष्ण निकेतनमें सजायी जा सकती है तो फिर उसका सजाना गीतावाटिकामें ही क्यों न हो? उनके मनमें उभरा हुआ यह विचार क्रमशः प्रबल होता चला गया। उन्होंने अपना विचार बाबाके सामने रखकर पूछा – यहाँ गीतावाटिकामें चिता सजानेमें आपको कोई आपत्ति है क्या?

बाबाने कहा – गीतावाटिका गीताप्रेसकी है। इस सम्बन्धमें मैं अपना कोई अभिमत नहीं दे सकता।

फिर श्रीडालमियाजीने गीताप्रेसके ट्रस्टियोंसे बात की। वे लोग वहाँ गीतावाटिकामें उपस्थित थे। उनकी सहमति मिलते ही फिर सरकारसे भी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये प्रयास होने लगा। सरकारसे भी आज्ञा मिल गयी। फिर प्रश्न उठा कि चिता गीतावाटिकामें कहाँ सजायी जाय। कोई कहीं और कोई कहीं बता रहा था। अन्तमें तय हुआ कि चिता बाबाकी कुटियाके द्वारपर ही सजायी जाय और वैसा ही हुआ। बहुत लोगोंके मध्य बहुत अधिक चिन्तन-मन्थन होनेके उपरान्त यही तथ्य उभरकर इतिहासका एक प्रसंग बन गया कि बाबूजीका अन्तिम अग्निसंस्कार गीतावाटिकामें बाबाकी कुटियाके सामने हुआ। कुटियाके द्वारपर जो चिता सजायी गयी, इसे देखकर बाबाके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी।

इसके बारेमें बाबाने भावभरे उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था – श्रीपोद्दार महाराजकी चिता सजी गीतावाटिकामें मेरी कुटियाके एकदम सामने, एकदम समीप और गिरिराज परिसरमें। जगत इसे एक मात्र संयोग कह सकता है, पर जगतके लोग जान नहीं सकते और जानकर भी विश्वास नहीं कर सकते कि भावराज्यकी भावमयी प्रक्रियाएँ कैसी अनोखी होती हैं और उन प्रक्रियाओंका प्रतिफलन कैसा अद्‌भुत होता है? गीतावाटिकामें चिताका सजना भावराज्यकी अति सुगुप्त एवं अति समर्थ प्रक्रियाओंका एक अति सबल प्रमाण है और आस्थावानके लिये एक अति अद्‌भुत उदाहरण है। यह रहस्यमयी प्रक्रिया जगतके लोगोंके लिये अगम्य

ही रहेगी। श्रीपोद्दार महाराजका सम्पूर्ण जीवन तत्सुख-सुखी-भावका मूर्तिमान स्वरूप था। वे कहा करते थे – 'एक तुम्हारे मनकी हो, बस, स्वार्थ यही परमार्थ यही'। श्रीपोद्दार महाराजने महाप्रस्थानके उपरान्त मन-ही-मन यही सोचा और यही कहा कि बाबा! क्यों आप मेरे लिये कष्ट उठायें और क्यों आप राजघाटके मरघटपर जायें। आपको कहीं जानेकी जरूरत नहीं है। मैं ही आपके पास आ जाता हूँ। ऐसा निश्चय करके श्रीपोद्दार महाराजने सबसे पहले इस विचारको स्फुरित किया अपने अत्यन्त अभिन्न जन श्रीडालमियाजीके मनमें, जिनका विचार सभीके लिये आदरणीय होता था। फिर लोगोंके मध्य विचारोंका मन्थन और सुझावोंका प्रवाह ऐसा चला कि सर्वान्तमें होनेवाले निर्णयके अनुसार चिता मेरी कुटियाके सामने श्रीगिरिराज परिसरमें सजायी गयी। इन सारे विचारोंको और सुझावोंको परोक्ष रूपसे प्रेरित और नियन्त्रित करते हुए श्रीपोद्दार महाराजने घटनाओंका संचालन-सूत्र अपने हाथमें ले रखा था।

एक बात और है। मेरा निश्चय था कि मुझे आजीवन श्रीगिरिराजकी तरहटीमें रहना है। अतः श्रीपोद्दार महाराजने गीतावाटिकामें कहीं अन्यत्र चिता सजने ही नहीं दी। उनका सशक्त संचालन-सूत्र इतना प्रभावशाली था कि उनकी परोक्ष प्रेरणासे लोगोंने यही निर्णय लिया कि गिरिराज परिसरमें चिता सजायी जाय और इस निर्णयसे मेरे नियमके निर्वाहका सुन्दर ढंग बन गया। मैं न तो अपना विचार प्रकट कर रहा था और न किसीके चिन्तनका समर्थन अथवा प्रतिवाद कर रहा था। बस, घटनाके प्रवाहको देख-देख करके विस्मयमें डूब रहा था और रह-रह करके श्रीपोद्दार महाराजके तत्सुख-सुखी-भावकी और उनकी सुगुप्त-सशक्त प्रक्रियाकी मन-ही-मन जय-जयकार बोल रहा था।

इसी प्रसंगको देखनेका एक पक्ष और है। श्रीपोद्दार महाराजको सदा यही प्रिय था कि उनके द्वारा जो कार्य हो, वह सुगुप्त रूपसे हो। इस चिताको यहाँ सजवानेका कार्य भी उन्होंने सम्पन्न किया, पर आदिसे अन्ततक स्वयंको सर्वथा-सर्वथा छिपाये रखकर, सर्वांशमें स्वयंको अव्यक्त रखकर। श्रीपोद्दार महाराजकी इस संगोपन-प्रियताकी और तत्सुख-सुखी-भावकी बार-बार बलिहारी।

* * * * *

पूजा-पाठ का विसर्जन

पूर्व पृष्ठोंमें यह बतलाया जा चुका है और प्रसंगानुरोधसे पुनः लिखना पड़ रहा है कि २२ मार्चके प्रातःकाल बाबूजीकी स्थिति अति गम्भीर थी। बाबूजीके कमरेसे बाबा अपनी कुटियापर आये और श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाको शीघ्रतासे करके तुरन्त बाबूजीके पास गये। उनका कमरा बन्द था। अन्दर कुछ लोग बैठे हुए थे। उन लोगोंने किसी विशेष उद्देश्यसे कमरेका दरवाजा बन्द कर रखा था। बाबाने दरवाजेपर बहुत हल्की रीतिसे एक-दो थाप दी, पर दरवाजा नहीं खुला। फिर बाबाने उनसे मन-ही-मन कहा– देखिये, मैं अपनी कुटियापर स्नान करनेके लिये जा रहा हूँ। यदि आपको मेरी अनुपस्थितिमें ही जाना अभीष्ट हो तो आपकी जैसी इच्छा।

इस प्रकार निवेदन करके बाबा अपनी कुटियाकी ओर जाने लगे। कमरेके द्वारसे चले आनेके बाद सीढ़ियोंपर उतरते समय उन्होंने श्रीठाकुरजी (श्रीघनश्यामदासजी ठाकुर) को अपने साथ ले लिया, जो वहींपर खड़े हुए थे। उनको साथ लेकर बाबा अपनी कुटियापर आये और कुटियाके बाहर उनको खड़ा करके कहा– तुम यहीं रहो, मैं अभी तुरन्त आता हूँ।

इतना कहकर बाबा अपनी कुटियाके भीतर गये और पूजावाली चौकीपर बैठ गये। बाहर खड़े हुए श्रीठाकुरजी बाबाकी हर चेष्टाको एकटक देख रहे थे। खिड़कीसे सारा दिखलायी दे रहा था। ठाकुरजीने देखा कि बाबाने अपने दोनों कर-पल्लव इस ढंगसे जोड़ लिये हैं मानो अञ्जलिमें पुष्प हों और फिर उन्होंने ऐसी चेष्टा की कि मानो पुष्पार्पण कर रहे हों। फिर बाबाने जल्दीसे स्नान किया और वस्त्र धारण करके बाबूजीके पास चले आये। बाबाके पहुँचनेके कुछ मिनट बाद ही बाबूजी नित्य लीलामें सदाके लिये लीन हो गये।

बाबूजीके महाप्रस्थान करते ही सभी करुणार्द्र हो उठे। वातावरणमें गम्भीर रूपसे शोक परिव्याप्त हो गया। थोड़ी देर बाद बाबा वहाँसे श्रीगिरिराजजीके पास आये और उनके समक्ष खड़े हो गये। बाबा पुनः कर-पल्लवको जोड़कर ऐसा करने लगे मानो श्रीगिरिराज भगवानके श्रीचरणोंमें पुष्पार्पण कर रहे हों।

अपनी कुटियामें और फिर श्रीगिरिराज भगवानके श्रीचरणोंमें बाबाने जो पुष्पाञ्जलि समर्पित की, उस समय तो कोई आभास भी नहीं लगा पाया कि उनके द्वारा क्या हो रहा है, पर बादमें ज्ञात हुआ कि इस प्रक्रियाके द्वारा उन्होंने अपनी सम्पूर्ण पूजा और सभी पाठका विसर्जन कर दिया है।

छलछलाये हुए नेत्रोंसे बाबा कहा करते थे– अब मैं पूर्णतः खाली हो गया हूँ। श्रीपोद्दार महाराजके जाते ही मेरे पास एक मात्र रिक्तता ही रह गयी है।

उन दिनों ऐसा कई बार देखनेमें आया कि नेत्रोंकी सजलतासे भीगे हुए शब्दोंमें ये भावोद्गार जब-जब बाबाके श्रीमुखसे सुननेको मिलते थे, तब-तब उनका अन्तर आकुलताका आगार बन जाया करता था।

* * * * *

प्रीति की वेदी पर

बाबूजीके नित्य-लीलामें लीन होनेके बादसे बाबाने अपनी उस पुरानी कुटियाका सर्वथा परित्याग कर दिया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब उस कुटियाकी चार दिवालके भीतर नहीं रहना है। अब शीत-वर्षासे कुछ बचाव हो सके, एतदर्थ एक छोटा-सा टिन शेड गीतावाटिकाकी उत्तरी चहारदिवारीके पास बनवा दिया गया। यह टिन शेड उत्तर-पूर्व-दक्षिण, इन तीन दिशाओंकी ओरसे सर्वथा खुला हुआ था। केवल पश्चिमकी ओर साधारण स्तरकी एक छोटी दिवाल थी। टिन शेडके दक्षिणकी ओर ठीक सामने बाबूजीकी चिता-स्थली थी। टिन शेडके नीचे बैठे रहनेसे चिता-समाधिका दर्शन सहज ही होता रहता था।

मैं जो कहना चाहता हूँ, उसको लिखनेके पूर्व एक अन्य प्रसंगका उल्लेख करना आवश्यक लग रहा है। जब मैं कालेजमें पढ़ता था, तब मैंने किसी मासिक पत्रिकामें एक कहानी पढ़ी थी। वह कहानी पूर्ण रूपसे याद नहीं है, परन्तु उसका कथानक संक्षेपमें इस प्रकार है। एक प्रेमी युगल था। प्रेमी-प्रेमिकाका परस्परमें बड़ा प्यार था। प्यार इतना अधिक था कि कुछ समयके लिये एकसे दूसरेका अलगाव भी असह्य लगने लगता था। दुर्भाग्यसे प्रेमिकाका निधन हो गया। प्रेमिकाके शोकमें डूबे हुए प्रेमीके आँसू

सूखते ही नहीं थे। उस प्रेमिकाने अपने प्रेमीको एक बार आम खिलाया था। खिलानेके बाद उस प्रेमिकाने आमकी गुठलीको बगीचेमें बो दिया था। उस गुठलीसे एक आमका पौधा उग आया और धीरे-धीरे बहुत बड़ा हो गया। अब प्रेमिकाके निधनके बाद प्रेमकी पीरसे पीड़ित वह विरही प्रेमी अपने नयनोंके नीरसे उस वृक्षको सींचता रहा और उसने अपनी सारी जिन्दगी उस आमके पेड़के नीचे बिता दी। उसने उसकी छायामें अपना जीवन बिता दिया, इसीलिये कि इस पेड़के बीजको उसकी प्रेमिकाने बोया था और आमका वह पेड़ उस प्रेमिकाकी याद दिलाता रहता था।

यह कहानीका स्थूल कथानक है। इस कहानीको पत्रिकाके पाठकोंके लिये मनोरञ्जनार्थ लिखा गया था। यह कहानी पूर्णतः कल्पना-प्रसूत है और सर्वथा लौकिक है। अब थोड़ी देरके लिये विचारकी धाराको दूसरी दिशा दे दीजिये और चिन्तनके स्वरूपमें किञ्चित् निखार लाइये। इस कहानीके कथानकमें जो काल्पनिकता और लौकिकता है, एक बार उसकी उपेक्षा कर दीजिये। कहानीमें मनोरञ्जनात्मकता, काल्पनिकता और लौकिकताका जो अंश है, यदि उस धरातलसे ऊपर उठकर तनिक विवेचन किया जाय तो यह बात स्पष्ट रूपसे दिखलायी देती है कि इस कथानकके माध्यमसे प्रेमराज्यके एक महान आदर्शका चित्रण हुआ है। मुक्त स्वरसे स्वीकार करना पड़ता है कि उस प्रेमीने प्रेमकी टेकका निर्वाह किया है। मेरी दृष्टि इसी प्रेमादर्शपर है। कहानीमें उस प्रेमादर्शका वर्णन भले वह लोकरञ्जनार्थ हुआ हो, पर वह प्रेमादर्श है प्रेमराज्यका एक महान सत्य।

कहानीके इस महान मर्मको समझ लेनेके बाद गीतावाटिकाके उस महान मार्मिक सत्यको सहज रूपसे हृदयंगम किया जा सकता है, जो इस वाटिकाकी महान भावात्मक निधि है। इस कहानीमें जिस प्रेमादर्शका वर्णन हुआ है, वह गीतावाटिकाका एक यथार्थ सत्य है। वह ऐसा गौरवशाली सत्य है, जिसमें काल्पनिकता और लौकिकता है ही नहीं, उसका कणांश भी नहीं है, अपितु काल्पनिकता-लौकिकता-शून्य उस प्रीति-प्रसंगमें एकमात्र आध्यात्मिकता है। प्रेमकी इस टेकके निर्वाहमें आरम्भसे अन्ततक आध्यात्मिकता-ही-आध्यात्मिकता है। गीतावाटिकाकी यह विशिष्ट घटना प्रीतिकी रीतिका एक सदैव स्मरणीय एवं वन्दनीय प्रसंग है और इस घटनाको एक वाक्यमें इस प्रकार कहा जा सकता है कि बाबाने अपने प्रेमास्पदकी चिता-स्थलीपर अपना सारा जीवन बिता दिया और बिता दिया

भीगे नेत्रोंसे उस चिताको निहारते हुए। बाबा अपनी अन्तिम साँसतक उस चिता-स्थलीपर ही रहे।

* * * * *

अधिकारकी सार्थकता

बाबा अपनी कुटियाके समीप पनियालेके वृक्षके नीचे बैठे हुए समागत लोगोंसे भगवच्च्चर्चा कर रहे थे। वृक्षपर पनियालेके फल पके हुए थे। संयोग ऐसा बना कि पनियालेके वृक्षसे टपककर दो फल सहज ही उनके हाथमें आ गये। लोगोंके मध्य बैठा हुआ तीन-चार वर्षका एक बालक बाबाके हाथमें रखे उन फलोंको ललचायी दृष्टिसे देखने लगा। पूज्य बाबा उस बच्चेके मनोभावोंको सहज समझ गये। उन्होंने श्रीजगदीशप्रसादजी शर्माको कहा – जरा दौड़कर जावो और माँजीसे (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सहधर्मिणीसे) पूछकर आवो कि बाबा पनियालेके दो फल एक बच्चेको देना चाहते हैं, उनकी अनुमति हो तो वे दे दें।

वे दौड़कर गये। वात्सल्यमयी माँजी भला अनुमति कैसे नहीं देती! उन्होंने बहुत ही स्नेहसे कहा – बाबो तो खेल कर ह, बई तो मालिक है (बाबा तो खेल करते हैं, वे ही तो मालिक हैं)।

श्रीजगदीशजीने लौटकर बाबाको बताया – पूजनीया माँजीने अनुमति दे दी है।

अब बाबाने बहुत ही स्नेहसे वे फल उस बालकको दे दिये।

थोड़ी देर बाद वहाँ उपस्थित सभी लोग विदा हो गये। श्रीजगदीशजीने सहज जिज्ञासावशात् बाबासे पूछा – बाबा! आप तो जानते हैं कि इतनी छोटी-सी चीजकी तो बात ही क्या, बड़ी-से-बड़ी चीजके लिये भी आपको कोई मना नहीं करता। इतना ही नहीं, यदि किसीसे कुछ आप कह देते हैं तो वह निहाल हो जाता है और अपना सौभाग्य समझता है। फिर भी आपने उस बच्चेको पनियालेके दो फलोंके लिये, भले दो मिनटके लिये ही सही, प्रतीक्षा करवायी।

बाबा गम्भीर हो गये और बोले – भैया! मैं इसे छोटी-सी बात नहीं मानता। इतने वर्षोंसे मैं यहाँ हूँ, मैं यहाँके सूखे पत्तोंपर भी अपना अधिकार नहीं मानता। जबतक गीतावाटिका गीताप्रेसकी सम्पत्ति थी,

तबतक वहाँके अधिकारियोंसे और अब, जब गीतावाटिका 'समिति' की सम्पत्ति हो गयी है, पूजनीया माँजी (हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिकी तत्कालीन अध्यक्षा) की बिना पूर्वानुमतिके मैंने किसी वस्तुका प्रयोग नहीं किया है।

श्रीजगदीशजीकी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई, पर वे चुप बैठे रहे। तभी बाबा स्वयं बोल पड़े – देखो, संन्यासी समाजके नियमोंके नियामक होते हैं। इस गैरिक वस्त्रकी अपनी कुछ मर्यादाएँ हैं। आज मैं इन फलोंपर अपना अधिकार मानूँगा तो तुम्हारे लिये इस वृक्षपर अधिकार माननेका मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। मेरी भावनाओंकी यह पवित्रता इस गैरिक परिवेशमें रहनेवाले साधुओं- साधकोंके लिये आवश्यक 'अधिकार-शून्यता' वाले भावको अवश्य बल देगी।

फिर बाबाने एक कथा सुनाई – दो स्मृतिकार भाई-भाई थे। एकने दूसरेकी अनुमति लिये बिना ही दूसरेके बागसे भगवानको अर्पित करनेके लिये कुछ पुष्प ले लिये। पुष्प तो चुन लिये, पर तुरन्त यह बात मनमें आयी कि यह तो चोरी है। वे राजाके पास गये और उन्होंने राजासे अपने हाथको कटवा देनेका दण्ड विधान माँगा। हाथको काट देनेकी राजाज्ञा हो गयी और वह काट भी दिया गया। सायंकाल वे गंगाके तटपर संध्या करने बैठे। उस समय गंगा माँकी कृपासे संध्या करते समय पुनः उनके हाथ पूर्ववत् हो गये।

यह कथा सुनाकर बाबा बड़े ही स्नेहसे श्रीजगदीशजीके कंधेपर हाथ रखकर कहने लगे – पूर्वाश्रमके स्वजनोंपर एवं वहाँकी घर-सम्पत्तिपर अधिकार छोड़कर इस वाटिकाके पत्तों और फलोंपर अधिकार जमाना तो घाटेका सौदा है रे! अधिकारकी सार्थकता तो साक्षात नन्द-नन्दनपर अधिकार माननेसे होती है। यदि मेरा कहीं अधिकार है तो एक मात्र उन्हींपर।

* * * * *

लिखित अक्षरों का समादर

बाबूजीके महाप्रस्थानके बाद उनकी आलमारीमें कुछ ऐसे कागज मिले, जिसमें सांकेतिक रूपसे यह लिखा था कि किससे कितना धन कब मिला और वह धन कहाँ दिया गया? बाबाको यह सब दिखलाया गया। देखते ही बाबाने कहा– सेवा-सहायता सम्बन्धी विवरण जिन-जिन कागजोंमें हैं, उनको सर्वथा नहीं रखना चाहिये।

यह विवरण था ही ऐसा कि वस्तुतः कई कारणोंसे इनको रखना पूर्णतः उचित नहीं था। तब बाबासे पूछा गया– क्या इन कागजोंको जलाकर अथवा फाड़कर नष्ट कर दिया जाये?

जलाने अथवा फाड़नेकी बात बाबाको बिल्कुल पसन्द नहीं आयी। बाबाने उन सब कागजोंको अपने पास मँगवा लिया। इन कागजोंके अक्षर एक महासिद्ध संतकी अँगुलियोंसे लिखे गये थे। महासिद्ध संत और प्राणोंसे भी बढ़कर परमात्मीय, उन श्रीपोद्दार महाराजकी लेखनीसे लिखे गये अक्षरोंका रंच मात्र भी अनादर हो, यह भला कैसे सम्भव था! अनादरका तो प्रश्न ही नहीं, परम समादर हो, एतदर्थ बाबाने उन कागजोंके सभी अक्षरोंको गंगाजलसे धो-धोकर साफ किया। उस घुले हुए काजल-सम जलको बाबा अपने मस्तकपर लगाते जाते थे। जब सारे अक्षर गंगाजलसे धोकर मिटा दिये गये, तब उन कागजोंकी लुगदी (अर्थात् सने हुए आटेके समान) बनाकर उस लुगदीको अपनी कुटियाके पास एक बहुत गहरे गड्ढेमें गड़वा दिया। बाबूजीके प्रति परम आत्मीयता और परम श्रद्धाका यह अनोखा उदाहरण है। इस श्रद्धा-प्रेरित प्रीति-पूर्ण कार्यके लिये बाबाने पाइपका स्वच्छ जल अथवा कुएँका शुद्ध जल नहीं, गंगाजीका पवित्र जल प्रयोगमें लिया।

* * * * *

कलाईमें चोट

सन् १९७१ के अगस्त मासकी बात है। सूर्यास्त होनेवाला था। लगभग छः बजे बाबा पैरके फिसल जानेसे गिर पड़े। उनके बायें हाथकी कलाईमें गहरी चोट आयी। भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी तथा श्रीरामसनेहीजी घरमें

ही पानी से जमायी हुई बर्फ ले आये। वह बर्फ एक बहुत बड़े टोपियेमें डाल दी गयी। बाबा उस बर्फ भरे टोपियेमें अपना हाथ डालकर बैठ गये।

पूज्या माँको जब बाबाके चोट लगनेकी सूचना मिली तो वे बहुत अधीर हो उठीं। वे तुरन्त बाबाको देखने पहुँच गयीं। उनको पूर्ण सम्मान देते हुए बाबाने उनसे कहा – मैया! जितनी चोट लगनी चाहिये थी, उसका बीसवाँ अंश भी नहीं लगा। आजसे चार दिन पूर्व मेरे सामने एक दृश्य उपस्थित किया गया था। उसमें मेरे दोनों हाथोंकी कलाइयोंमें कपड़ेकी पट्टी बँधी हुई थी। मैं तो इसके लिये तैयार बैठा था। मैया! कितना ही कष्ट क्यों न हो और कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो, मेरे मनमें यह भाव उदय ही नहीं होता कि यह कष्ट क्यों आया और उसका परिवर्तन होना चाहिये। मेरे मनमें यह चाह ही नहीं होती कि इसका शमन होना चाहिये। मैया! तुम्हारी कृपासे श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यकी सत्ताका भान ही अब नहीं होता। जब सर्वत्र सब कुछ वे-ही-वे हैं, तब दर्द कहाँसे आवे। यह बात मैं कहना नहीं चाहता था, किन्तु तुम्हारे प्यारने मुझसे बुलवा लिया।

इस भीषण कष्टमें भी बाबाके इन उद्‌गारोंको सुनकर और उनके मुख-मण्डलको प्रसन्न देखकर पूज्या माँकी दोनों आँखोंमें आश्चर्य भरा हुआ था।

* * * * *

कथन सहैतुक था

सन् १९७१ ई.को गीतावाटिकाके लिये अशुभ वर्ष कहा जाय तो सम्भवतः अत्युक्ति नहीं होगी। इस वर्ष चैत्र मासमें बाबूजीने अपनी इह-लीलाका संवरण किया और इसी वर्ष आश्विन मासमें बाबाके पैरकी हड्डी टूट गयी थी। हड्डीके टूटनेके बाद भी बाबाने श्रीगिरिराज-परिक्रमा स्थगित नहीं की। वे अपने नियम-पालनमें बड़े कट्टर थे। उनका निश्चय था कि किसी भी दशामें श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करनी ही है। बाबा अपने नियम-पालनमें अत्यधिक तत्पर थे, परन्तु पैरकी हड्डी टूट जानेके कारण परिक्रमा कर सकना बड़ा कठिन पड़ रहा था। परिक्रमा करते समय एक सहायककी आवश्यकता थी। एतदर्थ वृन्दावनसे श्रीठाकुरजी (सम्मान्य

श्रीघनश्यामदासजी शर्मा) को बुला लिया गया।

श्रीठाकुरजीके आ जानेसे बाबाको बड़ा सहारा मिला। उनका सहारा मिलनेसे परिक्रमाके नियम-निर्वाहमें पर्याप्त सुविधा मिली। ज्यों-ज्यों पैरकी हड्डी जुड़ने लगी, त्यों-त्यों कठिनाई कम होने लगी। धीरे-धीरे स्थिति ऐसी हो गयी थी कि अब बाबा बिना सहाराके भी परिक्रमा कर सकते थे। २९ सितम्बर १९७१ के दिन मातृ-नौमी थी। इस दिन सबेरे बाबाने श्रीठाकुरजीसे कहा – अब पैरकी स्थिति ऐसी हो गयी है कि मैं अकेले परिक्रमा कर ले सकता हूँ। आजके बादसे तुम्हारी आवश्यकता नहीं रहेगी।

बाबाके अधरोंसे निकले हुए इन शब्दोंको सुनकर श्रीठाकुरजी थोड़ा चिन्तित हुए और वे सोचने लगे – क्या मेरी सेवा छूट जायेगी? क्या बाबाकी सेवासे वंचित होना पड़ेगा?

श्रीठाकुरजीके मनमें उथल-पुथल ज्यादा थी, परन्तु उनके मनमें एक समाधान भी था – मैं बाबाको मना लूँगा। कम-से-कम आज तो परिक्रमामें बाबाके साथ रहूँगा ही। कलकी बात कल देखी जायेगी।

सबेरे बाबाने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगाते समय श्रीठाकुरजीको अपने साथ रखा। परिक्रमाके पूर्ण होनेके थोड़ी देर बाद ही श्रीठाकुरजीके लिये अलीगढ़से बड़े भाई श्रीश्रीरामजी शर्माका फोन आ गया – माँकी स्थिति नाजुक है और पता नहीं, कब 'विदा' हो जाय। तुरन्त तुम वापस चले आवो।

बाबाको ज्यों ही यह समाचार मिला कि उन्होंने श्रीठाकुरजीके घर वापस जानेकी व्यवस्था तत्काल कर दी। गीतावाटिकासे प्रस्थान करते समय श्रीठाकुरजीने बतलाया – ज्यों ही सबेरे बाबाने कहा कि अब परिक्रमामें तुम्हारी आवश्यकता नहीं रहेगी, तभी मेरा माथा ठनक गया था। उस समय मुझे भला क्या पता था कि वस्तुतः किसी एक विशेष हेतुसे यह सेवा बन्द होनी ही है। बाबाने जो कहा था, वह घटित हो ही गया। इतना तो सत्य है ही कि भले हमें जानकारी नहीं हो, परन्तु बाबाके कथन सहैतुक हुआ करते हैं।

* * * * *

कैंसर अस्पताल

बाबूजीको अपने लिये कुछ भी अपेक्षित नहीं था, अतः उनको अपने लिये किसी स्मारककी अपेक्षा क्यों हो, परन्तु हमें अपेक्षा थी कि उनकी पावन स्मृतिका कोई केन्द्र-बिन्दु हमारे सामने सतत रहे, जिससे हम अपनी श्रद्धाके सुमन उनके प्रति समर्पित कर सकें। इस दृष्टिकोणको सामने रखकर विनीत भावसे सन् १९७४ ई. में हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिका गठन हुआ। बाबूजीका पार्थिव शरीर कैंसर रोगसे ग्रस्त होकर ही पञ्च तत्त्वमें विलीन हुआ था, अतः बाबाकी प्रेरणासे प्रेरित होकर हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिने वसंत पंचमी (१६ फरवरी १९७५) को बाबूजीकी पुनीत स्मृतिमें एक विराट कैंसर अस्पतालके निर्माणका संकल्प किया।

इस निर्णयको सभी दिशाओंसे समर्थन और सहयोग मिला। उत्तर प्रदेशके पूर्वाञ्चलकी जनता आर्थिक दृष्टिसे विपन्न है और कैंसर जैसे सर्वाधिक व्ययसाध्य रोगकी चिकित्सा अभाव-ग्रस्त रोगियोंको भी सुलभ हो सके, इस भावसे भावित होकर नगरके प्रमुख चिकित्सकोंने, प्रशासनिक पदाधिकारियोंने, गोरखपुर विश्वविद्यालयके विद्वान प्राध्यापकोंने, समाजके जन-सेवा-व्रती महज्जनोंने और भारतके धनपतियोंने मुक्त मनसे सहयोग दिया। सन् १९८३ ई. में व्यासनन्दन श्रीशुकदेव स्वरूप पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजने कैंसर अस्पतालके सहायतार्थ श्रीमद्भागवत पुराणकी कथा मुम्बई शहरमें कही थी।

इसीका परिणाम है कि गोरखपुर नगरका हनुमानप्रसाद पोद्दार कैंसर अस्पताल आज भारतका एक प्रमुख चिकित्सालय है। इस कैंसर अस्पतालके निदान-विभाग, विकिरण चिकित्सा विभाग, शल्य चिकित्सा विभाग, एक्स-रे विभाग आदि मुख्य अंग हैं।

* * * * *

सरकारी धनकी वापसी

श्रीधर्मेन्द्र मोहनजी सिन्हा, आई.ए.एस, उस समय उत्तर प्रदेश सरकारके नियुक्ति-विभागके आयुक्त एवं सचिव थे। उत्तर प्रदेश सरकारकी ओरसे विभिन्न स्थानोंपर दौरा करनेके लिये उनको कार मिली हुई थी। वे किसी सरकारी दौरेपर गोरखपुर आये थे। समय मिलनेपर वे अपनी सरकारी कारसे बाबाका दर्शन करनेके लिये गीतावाटिका पधारे। जैसे ही वे कुटियापर पहुँचे, भीषण वर्षा एवं अन्धड़ शुरू हो गया। बाबा उस समय एक भक्तके स्वास्थ्यके बारेमें जाननेके लिये उत्सुक थे। वे भक्त काफी अस्वस्थ थे। बाबाने श्रीजगदीशजीको निर्देश दिया — तुम जाकर उस भक्तके स्वास्थ्यके समाचारकी जानकारी प्राप्त करो और फिर सोनेसे पहले मुझे सूचित करो।

बाबाने आदेश तो दे दिया, पर प्रश्न यह था कि श्रीजगदीशजी जायें कैसे? मौसम एकदम खराब हो चुका था। इस उलझनको सुनकर श्रीसिन्हा साहबने निवेदन किया — मैं कारसे आया हूँ। मैं डाक बँगले पहुँचकर कार श्रीजगदीशजीको दे दूँगा। श्रीजगदीशजी उस भक्तके घर जाकर उनके स्वास्थ्यकी जानकारी प्राप्त कर लेंगे।

बाबाने यह निवेदन सहज स्वीकार कर लिया। जब श्रीजगदीशजी लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि बाबाका मुख म्लान है। उस भक्तके सारे समाचार जाननेके बाद बाबा कहने लगे — आज असावधानीसे एक अपराध घटित हो गया। श्रीसिन्हा साहबके प्रति मेरे मनमें आदर है। उनके निवेदनको मैंने स्वीकार कर लिया और इसके फलस्वरूप मेरे द्वारा सरकारी वाहनके दुरुपयोगका अपराध घटित हो गया। सरकारी वाहनको निजी कार्यमें प्रयोग करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। अब समस्या यह है कि इस अपराधका मार्जन कैसे हो?

समस्याका हल ढूढनेके लिये पंचायत जुटायी गयी। वाटिकाके कई प्रमुख व्यक्ति बाबाके सामने बैठे हुए थे। सभी अपना-अपना सुझाव दे रहे थे। सभीके बीच पंचायतमें बैठे हुए श्रीलखपतरायजीने पंचके रूपमें एक उपाय बताया — यदि सरकारी स्टाम्प खरीदकर उसे बिना उपयोग किये नष्ट कर दिया जाय तो यह धन उत्तर प्रदेश सरकारके खजानेमें वापस

चला जायेगा।

बाबाको यह सुझाव मान्य हो गया। पैसेका स्पर्श न करनेवाले बाबाने भिक्षा माँगकर धन इकट्ठा करना आरम्भ किया। भक्तका हाल-चाल जाननेके लिये उपयोगमें ले ली गयी कारमें जितने रुपयोंका पेट्रोल लगा, उससे चार गुना अधिक मूल्यकी धनराशि एकत्रित की गयी तथा रैवेन्यू स्टाम्प खरीदकर उन धनराशिको वापस उत्तर प्रदेश सरकारको लौटा दिया गया। वे खरीदे गये स्टाम्प तो नष्ट कर ही दिये गये।

* * * * *

पाँच पदों का गायन

दिनांक २५ जनवरी १९७५ के दिन अपराह्न कालकी बात है। बाबा टिन शेडके नीचे चौकीपर बैठे हुए थे। पासमें ठाकुरजी और कीर्तनिया हरिवल्लभजी भी थे। इसी समय रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजी शर्मा बम्बईसे आये। वे बम्बईसे अपने साथ हारमोनियमकी नयी पेटी लाये थे। वे लाये थे बाबाके निर्देशानुसार और वह पेटी बाबा हरिवल्लभजीको भेंट स्वरूप प्रदान करनेवाले थे। गोरखपुर स्टेशनसे आकर श्रीरामजीने गीतावाटिकामें ज्यों ही प्रवेश किया, त्यों ही वे बाबाको प्रणाम करनेके लिये बाबाके पास सीधे चले आये। वे अपने साथ वह नयी पेटी भी लेते आये। इसे मात्र संयोग कहना चाहिये कि उस समय ठाकुरजी और हरिवल्लभजी बाबाके पास बैठे हुए थे। नयी पेटीको देखकर बाबाने उसी समय अपने सामने ही उसको देखना-जाँचना और उसका परीक्षण करवाना चाहा।

बाबाके संकेतके अनुसार श्रीरामजीने हारमोनियमकी वह नयी पेटी बक्सेसे बाहर निकाली। पेटीको देखकर बाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर श्रीश्रीरामजीने बाबाको प्रिय लगनेवाले पाँच पद गाकर सुनाये। वे पद थे –

(१)

राधिका आज आनंद में डोले!
साँवरे चंद गोविंद के रस भरी,
दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोलै।।
पहिर तन नील पट कनक हारावली,

हाथ लै आरसी रूप को तोलै।।
कहत श्रीभट्ट ब्रजनारि नागरि बनी,
कृष्ण के सील की ग्रंथिका खोलै।।

(२)

आजु नीकी बनी राधिका नागरी।
ब्रज-जुवति जूथ में रूप अरु चतुरई,
सील सिंगार गुन सबन ते आगरी।।
कमल दक्षिण भुजा बाम भुज अंस सखि,
गावति सरस मिलि मधुर स्वर राग री।।
सकल विद्या विदित रहसि हरिवंस हित,
मिलत नव कुंज वर श्याम बड़ भाग री।।

(३)

भाग्यवान वृषभानु सुता सी को तिय त्रिभुवन माहीं।
जाको पति त्रिभुवन मन मोहन दिए रहत गलबाहीं।।
ह्वै अधीन सँग ही सँग डोलत जहाँ कुँवरि चलि जाहीं।
रसिक लख्यौ जो सुख वृंदाबन सो त्रिभुवन में नाहीं।।

(४)

बैठे हरि राधा संग कुंज भवन अपने रंग
कर मुरली अधर धरे सारँग मुख गाई।
मोहन अति ही सुजान परम चतुर गुन निधान
जान बूझि एक तान चूक कै बजाई।।
प्यारी जब गह्यौ बीन सकल कला गुन प्रबीन
अति नवीन रूप सहित तान वह सुनाई।
बल्लभ गिरिधरन लाल रीझि दई अंक माल
कहत भले भले लाल सुंदर सुखदाई।।

(५)

आज इन दोउन पै बलि जैयै।
रोम रोम सों छबि बरसति है निरखत नैन सिरैयै।।
रूप रास मृदु हास ललित मुख उपमा देत लजैयै।
नारायण या गौर स्याम को हिये निकुंज बसैयै।।

इन पदोंको श्रीरामजीने बड़े भावपूर्ण ढंगसे गाया। गायनमें हरिवल्लभजी और ठाकुरजी आलापचारी करते हुए बीच-बीचमें सहयोग दे रहे थे। एक अनोखा समाँ बँध गया। वहाँका वातावरण कुछसे कुछ और ही हो गया। इन पदोंमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी हृदयस्पर्शी लीलाओंका सुन्दर वर्णन है। इन पाँच पदोंके गायनने बाबाके कोमल भावोंको स्पर्श कर लिया और वे पूर्णतः अन्तर्मुख हो गये। यह अन्तर्मुखता मध्य रात्रितक प्रशमित नहीं हो पायी। मध्य रात्रिके समय बाबाको भिक्षा बड़ी कठिनाईसे करवायी जा सकी।

अगले दिन २६ जनवरी १९७५ की बात है। प्रातःकालके समय बाबा स्नान करके अपनी चौकीपर बैठे हुए थे। पासमें ही श्रीरामजी, ठाकुरजी, हरिवल्लभजी आदि-आदि कई व्यक्ति बैठे हुए थे। कल अपराह्नकालके समय श्रीरामजी द्वारा जिन रसमय लीला-पदोंका गायन हुआ, उसकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा – शराबीको शराब पीनेकी आदत होती है। आदत होनेके कारण थोड़ी-थोड़ी शराब पीते रहनेके बाद भी शराबीका होश-हवास बना रहता है और उसका सांसारिक व्यवहार कुछ-कुछ ठीक प्रकारसे चलता रहता है, किन्तु जिस क्षण शराब अधिक ढल जाती है, तब उसके द्वारा सांसारिक व्यवहारका निर्वाह ठीक प्रकारसे नहीं हो पाता। शराबीका तो मैंने उदाहरण अपनी बातको समझानेके लिये कहा है। जब तुम लोग वृन्दावनसे यहाँ आते हो, तब व्रजभावके सुन्दर पद सुनाते हो। उससे भाव-विभोरता होती है और उस विभोरावस्थामें भी व्यवहार कुछ-कुछ निभता रहता है, किन्तु उन लीला-पदोंमें जब घने सरस और गहरे मार्मिक प्रसंग आते हैं, उस समय चित्तकी वृत्ति बाह्य जगतको छोड़ देती है। श्रीपोद्दार महाराजके महाप्रयाणके पहले मैं उस कुटियामें रहता था, जो उनकी समाधिके पास है। जब कभी ऐसी भावमयी स्थिति होती थी, तब उस स्थितिमें मैं अपनी कुटियाके भीतर पड़ा रहता था और उस गम्भीर स्थितिका शमन अपने-आप धीरे-धीरे सहज रीतिसे हो जाता था। जब उस गम्भीर भावमयी स्थितिसे उत्पन्न पागलपन बहुत अधिक बढ़ जाता था, तब मैं कुटियाके बाहर आकर खड़ा हो जाता था। खड़ा होता था इसलिये कि वृक्षोंको-लताओंको-पक्षियोंको अर्थात् बाह्य जगतके दृश्योंको देखकर किसी प्रकार इस भावमयी स्थितिका परिशमन हो। बात यह है कि वह दिव्य भावधारा है चिन्मय राज्यकी दिव्य वस्तु और यह देह है पाञ्चभौतिक जगतकी जड़ वस्तु। यह पाञ्चभौतिक देह उस चिन्मय भावकी धाराके वेगको सहन नहीं कर पाती।

जब-जब ऐसी दशा होती है, तब-तब सिरमें भयंकर पीड़ा होती है। उस पीड़ाकी आपलोग कल्पना नहीं कर सकते।

भाव-विभोरताकी बात कहते-कहते चर्चाका प्रवाह कुछ बदला और बाबा श्रीरामचरितमानसकी कथाके अनुभव सुनाने लगे। कथावाचकोंकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा— श्रीदीनजी नामक एक रामायणी थे, जो श्रीरामचरितमानसकी बड़ी सुन्दर कथा कहा करते थे। उनकी कथा इतनी भावपूर्ण होती थी कि कथा कहते-कहते स्वयं उनमें ही भावोदयकी ओर संकेत करनेवाले सात्त्विक विकार व्यक्त हो उठते थे। उनकी कथाको सुनकर मेरा मन जागतिक धरातलको छोड़ देता था। रामायणी श्रीदीनजीकी मानस-कथा सुनकर जैसा प्रभाव मुझपर पड़ता था, उससे भी अधिक गहरा प्रभाव श्रीकृपाशंकरजीकी मानस-कथा सुननेसे होता है। लोगोंकी मान्यताके अनुसार श्रीकृपाशंकरजी हैं तो साधारण स्तरके कथावाचक, परन्तु न जाने क्यों उनके मुखसे मानस-कथाको सुनकर मुझे बहुत अधिक भावोद्दीपन होता है और मन उस चिन्मय भावराज्यकी ओर भाग चलता है।

जब ऐसी अन्तर्मुखी भावमयी स्थिति हो, तब छूना-छेड़ना नहीं चाहिये। तब यदि किसी व्यक्तिकी ओरसे कुछ छेडछाड़की किञ्चित् भी क्रियाके द्वारा मुझे बहिर्मुखी बनाये जानेकी कोई चेष्टा होती है, अर्थात् कोई मुझसे मिलना चाहता है अथवा कुछ कहना चाहता है तो उस समय मनकी धाराको बलात् मोड़नेके कारण शरीरपर बड़ी बुरी प्रतिक्रिया होती है। जिस तरह पूर्णिमाके दिन चन्द्रमाको देखकर सागर उद्वेलित हो उठता है, इसी प्रकार पदोंके गायनसे अन्तरके भावोंको उद्दीपन मिलता है। भाव-सागरके उद्वेलित हो उठनेपर चित्तकी वृत्ति अत्यधिक अन्तर्मुखी हो जाती है। उस समय यदि कोई व्यक्ति मिलकर चित्तकी वृत्तिको बहिर्मुख बनानेका प्रयास करता है, तब बहुत आन्तरिक संघर्ष होता है। उस अन्तर्मुखताकी स्थितिमें मिलने-कहने-सुननेकी बात तो अलग रही, यदि कोई केवल प्रणाम ही करना चाहता है तो उस समय भी बड़े संघर्षका अनुभव होता है।

इस प्रकारकी भावमयी चर्चा करते-करते बाबाने श्रीरामजीके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा— भैया श्रीराम! कल वे पाँच पद

सुनाकर तुमने जो लोकोत्तर सुख प्रदान किया, उसका प्रतिदान करनेके लिये मुझ अकिञ्चनके पास कुछ भी नहीं है।

* * * * *

सिखावनकी अनोखी रीति

संत अपने पासमें आनेवाले व्यक्तियोंको सुन्दर शिक्षा दिया करते हैं, पर शिक्षा देनेकी पद्धति हर संतकी एक-सी नहीं होती और सदा मधुर नहीं होती। संत यही चाहते हैं कि सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्ति अपनी मर्यादामें रहते हुए भगवदुन्मुखी जीवन व्यतीत करें। करनीसे, कथनीसे और रहनीसे प्रत्येक संतकी सिखावन यही होती है कि जीवन आस्तिक-सात्त्विक-संयमित-मर्यादित हो, पर हर संतकी सिखावन देनेकी रीति भिन्न-भिन्न प्रकारकी हुआ करती हैं। एक प्रसंग बाबाकी एक अटपटी पद्धतिका एक अनोखा उदाहरण हैं।

यह प्रसंग उस समयका है, जब समाधिपर स्मारक नहीं बना था। खुले अकाशके नीचे समाधि थी। समाधिपर स्मारक तो बहुत बादमें बना। समाधिके पास बैठे हुए बाबा किसी साधकसे कोई आवश्यक बात कर रहे थे तथा साधना सम्बन्धी ऐकान्तिक परामर्श दे रहे थे, तभी कलकत्तेके कुछ धनिक व्यक्ति बाबाके पास आकर बैठ गये। उन धनिक व्यक्तियोंके आ जानेसे पहलेसे चल रही बातचीतका क्रम खण्डित हो गया तथा ऐकान्तिक परामर्शका कार्य अधूरा रह गया। अब नये विषयपर बात चल पड़ी।

इन दिनों श्रीरामचन्दजी दम्माणी कलकत्तेसे आये हुए थे। श्रीदम्माणीजीके मनमें बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा तथा अमाप्य आत्मीयता थी। बाबाकेपास कई व्यक्तियोंको बैठे हुए देखकर उनके मनमें आया कि यह कोई प्राइवेट मिटिंग तो है नहीं। कई व्यक्ति बाबाके पास बैठे हुए हैं, ऐसी परिस्थितिमें क्यों न पूज्य श्रीबाबाके सान्निध्यका लाभ उठाया जाय। ऐसा सोचकर श्रीदम्माणीजी बड़ी श्रद्धा, बड़े उल्लासके साथ बाबाके पास गये तथा उन व्यक्तियोंके साथ बैठ गये, पर यह क्या हुआ? श्रीदम्माणीजीके सारे उल्लासपर वज्रपात हो गया। बाबाने श्रीदम्माणीजीको

डाँटना आरम्भ कर दिया – आप यहाँ इस समय क्यों आये? क्या इस समय मैंने आपको आनेके लिये कह रखा था? क्या यह समय आपसे बातचीत करनेके लिये निश्चित था? क्या आपको अपने वैभवका, अपने धनका, अपनी प्रतिष्ठाका, अपनी योग्यताका इतना घमण्ड हो गया है कि आप जब चाहें तब और जहाँ चाहे वहाँ चले जाते हैं? क्या आपको बड़प्पनका इतना मद हो गया है कि आप दूसरोंकी ओर देखना ही नहीं चाहते? कोई दूसरा बात कर रहा हो और अपनी कुछ व्यक्तिगत बातें पूछ रहा हो, पर उसका भी अभिमानमें डूबे हुए आप ख्याल नहीं करते?

उस समय श्रीदम्माणीजीकी हालत बड़ी नाजुक थी। बार-बार स्वयंको कोस रहे थे कि हाय, मैं क्यों आया? इस समय यदि हटूँ भी तो कैसे हटूँ? मन- ही-मन कह रहे थे कि अब बाबाके पास भूलकर भी बिना बुलाये नहीं आऊँगा। यदि आऊँगा तो तभी आऊँगा, जब मिलनका समय पूर्व निश्चित रहेगा। जितना ही पूज्य श्रीबाबा डाँटते जा रहे थे, उतना ही, अपितु उससे भी अधिक श्रीदम्माणीजी आत्म-भर्त्सना कर रहे थे। किसी प्रकार बाबाका बोलना बन्द हुआ और फिर वह बैठक विसर्जित हो गयी।

यह प्रसंग दिनमें पूर्वाह्नके समयका था। वहाँसे हटते ही खिन्न मन श्रीदम्माणीजी अपने कमरेमें आ गये। दिन भर रहा मन बहुत खिन्न, चेहरा बेहद उदास, भावनाएँ एकदम घायल। बाबाके डाँटनेका इतना अधिक असर हुआ कि सारा दिन मृतवत् व्यतीत हुआ। शामके समय किसी कामसे श्रीदम्माणीजी समाधिके पास गये। बाबाकी कुटियाकी ओर जायें अथवा बाबाकी कुटियाकी ओर झाँकें, इसका तो प्रश्न ही नहीं था। बाबाने भी उस डाँटनेके बादसे दिन भर श्रीदम्माणीजीको नहीं देखा था। बाबा भी टोहमें थे कि श्रीदम्माणीजी दिखें तो बुलाकर पूछूँ कि क्या हाल-चाल है, कैसी मनस्थिति है। श्रीदम्माणीजी ज्यों ही समाधिके पास आये, त्यों ही बाबाने उनको देख लिया तथा अपने पास बुलाया। श्रीदम्माणीजीके मनमें बाबाके पास जानेके लिये उल्लास नहीं था, पर अब न चाहते हुए भी जाना था। निकट बैठाकर बाबाने किञ्चित् वक्रता पूर्वक पूछा – क्यों, श्रद्धा डिग गयी क्या? आज दिन भर आप दिखलायी नहीं दिये, इधर झाँकने भी नहीं आये। आप भी क्या सोचते होंगे कि यह कैसा संन्यासी है, जो अकारण डाँटता है और आवश्यकतासे अधिक, अधिक नहीं, अत्यधिक डाँटता है?

श्रीदम्माणीजीने विनम्र स्वरमें कहा – बाबा! सचमुच गलती मेरी ही थी। बिना बुलाये मेरा आना सर्वथा अनुचित था। मेरी भूलोंको आप ही तो बतायेंगे। मुझे अपनी भूलके लिये दुःख है।

बाबाने कहा – आप जो कह रहे हैं, इसे मैं मान रहा हूँ, पर आपके स्वरमें वह प्रेम, वह उल्लास नहीं है, जो होना चाहिये। क्या एक ही डाँटमें उस सारेपर पानी फिर गया? हो सकता आप न कहें, पर आप मन-ही-मन कह रहें होंगे कि भले गलती तो थी, पर बाबाको इस प्रकारसे सबके सामने नहीं डाँटना चाहिये था और यदि डाँटना ही था तो इतना अधिक डाँटना नहीं चाहिये था।

इतना कहकर बाबा एक-दो मिनट चुप रहे तथा श्रीदम्माणीजीके चेहरेको देखते रहे, चेहरेके ऊपर उभरते भावोंकी रेखाओंको पढ़ते रहे। फिर स्वरमें नितान्त मिठास भरकर बाबाने तथ्यको बतलाना आरम्भ किया – पर अब आपको एक बात बताऊँ! क्या आप मेरी बातपर विश्वास कर सकेंगे? आप जानते हैं कि उस समय कलकत्तेके कुछ सेठ मेरे पास बैठे थे और जिस प्रकार आप आकर बैठ गये थे, उसी प्रकार वे भी आपसे पहले आकर बैठ गये। वे आकर बैठ गये थे अपने धनिकपनेके अहंकारमें डूबे-डूबे। उनके आनेसे वह ऐकान्तिक साधनात्मक चर्चा बन्द हो गयी, जो पहले हो रही थी। मुझे डाँटना उनको था, पर सीधे उनको डाँट नहीं सकता था। तभी आप आकर बैठे। आपके रूपमें भगवानने मुझे एक अवसर दिया। आप तो मेरे-से-मेरे हैं। आप मेरे हैं अतः आपको डाँट सकता था, पर उनको नहीं। अब आपको डाँट बतानेके बहाने उन धनिकोंको मैं डाँट रहा था। शिक्षा उनको देनी थी, पर माध्यम आपको बनाया।

बाबाकी यह बात सुनकर श्रीदम्माणीजीके भीतरकी सारी खिन्नता, सारी उदासी, सारी मलिनता तिरोहित हो गयी। बाबाकी यह आत्मीयता देखकर श्रीदम्माणीजीकी आँखें सजल हो गयीं। आँसुओंकी धारा कपोलोंपर बह चली। कहा नहीं जा सकता कि संत किसी व्यक्तिको या किसी परिस्थतिको अनुशासित करनेके लिये कौन-सी रीति अंगीकार कर लेगा।

* * * * *

स्मारक का निर्माण

बाबाकी भावनाके अनुसार चिता-स्थलीपर स्मारकके निर्माणके कार्यका शुभारम्भ सं. २०३२ वि. की श्रीराधाजन्माष्टमीके परम पावन दिवसपर हुआ। इस वर्ष १३ सितम्बर १९७५ के दिन श्रीराधा- जन्माष्टमी थी। प्रातः काल साढ़े आठ बजे श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा हो गयी। इसके बाद माँ बाबाके पास गयीं और कहा – आजसे स्मारकके बननेका काम शुरू होगा। आप उसकी नींवमें अपने हाथसे थोड़ी गिट्टी रख दीजिये। यदि गिट्टी रखनेमें कोई अड़चन मनके भीतर उमड़-घुमड़ रही हो तो पूजाके रूपमें गुलाबके दो फूल रख दीजिये।

बाबाने भरी-भरी आँखोंसे माँको देखते हुए भरे-भरे स्वरसे कहा – मैया! मैं अपनी ओरसे अन्तिम अर्चना उसी दिन कर चुका, जिस दिन उन्होंने 'विदाई' ली थी।

इसके आगे बाबा स्वर रुद्ध होनेसे कुछ बोल नहीं पाये। सभी बाबाके स्वरकी विस्वरताको और मुखाकृतिकी विवर्णताको एकटक निहार रहे थे।

सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की।

इसके बाद माँ जब स्मारकका शिलान्यास करनेके लिये चलने लगी तो उसने बाबासे साथ चलनेके लिये आग्रह करते हुए कहा – आप कुछ मत करियेगा। बस, आप वहाँ नींवके किनारे खड़े रहियेगा।

माँके आग्रहको स्वीकार करके बाबा साथ-साथ चले आये। बड़ी भव्यताके साथ शिलान्यासका कार्य सम्पन्न हुआ। सर्वप्रथम पूज्या माँने गिट्टी डाली। इसके बाद अनेकों भाई-बहिनोंने अपने-अपने हाथोंसे स्मारककी नींवमें गिट्टी डाली।

स्मारकके निर्माणमें एक वर्षका समय लग गया। निर्माणका अन्तिमांश था स्मारकके ऊपर शिखरका लगाया जाना। शिखरका निर्माण संगमरमरके पत्थरसे राजस्थानमें हुआ। यह शिखर पाँच खण्डोंमें निर्मित हुआ है और इसका कुल वजन लगभग चार टन है। बाबाके निज जन श्रीरामचन्द्र सिंहजी खीची रहे। खीचीसाहब रेलवेमें इंजीनियर थे।

खीचीसाहबके प्रयाससे रेलवेके पुल विभागके कुशल और कर्मठ कर्मचारियोंने पञ्च खण्डीय शिखरको चढ़ाने और ठीकसे बैठाकर लगानेका कार्य किया। जिस समय अन्तिम पाँचवाँ खण्ड चढ़ाया जा रहा था, उसे देखकर बाबाकी आँखें रह-रह करके भर आती थीं। बाबूजीकी संनिधिकी-साहचर्यकी-प्रीतिकी एक-एक झाँकी और एक-एक छवि उभर-उभर करके उनके अन्तरको आप्लावित-आलोलित-आन्दोलित-आनन्दित कर रही थी। शिखरके चढ़ाये जानेका सारा कार्य सं. २०३३ वि. भाद्र शुक्ल १, गुरुवार, २६ अगस्त १९७६ के दिन पूर्ण हुआ।

आज बाबाके हर्षोल्लासकी सीमा नहीं थी। कार्यके पूर्ण होते ही बाबाका भावोन्मादी हर्षोल्लास जन-जनमें कण-कणमें परिव्याप्त हो गया। 'श्रीगिरिराज महाराजकी जय', 'श्रीगिरिराज धरणकी जय', 'श्रीराधामाधवकी जय', 'पूज्य बाबूजीकी जय', 'पूज्य भाईजीकी जय' के तुमुल नादसे सारा वातावरण गूँज उठा।

इन दिनों गीतावाटिकामें लगभग दो सौ मजदूर काम कर रहे थे। सब मजदूरोंके लिये हलुआ-पूड़ी-साग बनवाया गया। बाबा स्वयं खड़े रहे और बाबूजीकी एक मात्र सुपुत्री परमादरणीया बाईके हाथसे सब मजदूरोंको हलुआ-पूड़ी-सागसे भरी पत्तल दी गयी। पत्तलोंको परोस-परोस करके सभी मजदूरोंको एवं अन्य जनोंको देनेमें लगभग पाँच घंटे लग गये और बाबा पाँच घंटेतक लगातार खड़े रहे।

शिखर सहित सारे स्मारककी ऊँचाई ४९ फीट है। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकिशोरीकी आठ सखियाँ हैं और प्रत्येक सखीके भावके छः स्तर हैं। इसके अतिरिक्त एक सामान्य स्तर है। इस प्रकार कुल हुए ८ × ६ = ४८ + १ = ४९। इसी संख्याकी प्रतीक है स्मारककी ऊँचाई। इसी स्मारकपर पञ्च देवोंके पाँच प्रतीक भी प्रतिष्ठित हैं। भगवान श्रीगणेश, भगवती श्रीशक्ति, भगवान श्रीशिव, भगवान श्रीसूर्यदेव एवं भगवान श्रीविष्णु, इन पञ्च देवताओंके पञ्च प्रतीक स्मारकके ऊपर पश्चिमकी ओर अंकित किये गये हैं। अपने प्रेमास्पदकी चिता-स्थलीपर स्मारकके निर्माण कार्यको भली प्रकारसे पूर्ण देखकर बाबाका अन्तर कितना अधिक आनन्दित हुआ, यह हमारे अनुमानसे परेका स्तर है और इसके बाद बाबाका जीवन था इस चिताके स्मारकको देखते रहना और प्रेमास्पदकी

मीठी यादमें डूबे रहना। वे चिताको एवं चितापर निर्मित स्मारकको भीगी निगाहोंसे देख-देख करके विभोर होते रहते थे तथा भावाधिक्यमें यदा-कदा बाबूजीकी अगाध-अपार प्रीतिकी सच्चर्चा अपने निज जनोंके मध्य करते रहते थे।

* * * * *

तरु-लताओंके प्रति आत्मभाव

सृष्टिके सम्पूर्ण प्राणियोंमें ही नहीं, अपितु तरु-लता-वल्लरियोंके प्रति भी बाबाकी अत्यधिक आत्मीयता थी। पेड़-पौधोंके प्रति उनका जो आत्मभाव था, उसके अनेक भावपूर्ण प्रसंग तब देखनेमें आये हैं, जब बाबूजीकी समाधिपर संगमरमरके विशाल स्मारकका निर्माण हो रहा था। स्मारक निर्माणके समय बाबाने सावधान किया था कि हरे-भरे वृक्षोंको नष्ट न किया जाय। समाधिके पास यत्र-तत्र अनेक पेड़-पौधे लगे हुए थे। जो पौधे जड़ सहित उखाड़कर दूसरी जगह लगाये जा सकते थे, केवल वे ही पौधे उखाड़े गये, सारे वृक्ष ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। जो पौधे उखाड़कर यहाँसे कहीं अन्यत्र लगाये गये, इस स्थानान्तरणकी प्रक्रियामें पौधोंको जो आघात पहुँचता, उसके लिये बाबाने उपवासके रूपमें कई बार प्रायश्चित किया है। हरे वृक्षकी डाल काटना, भले उसकी प्रेरणा सुन्दरीकरण-योजना हो, यह बाबाको सह्य था ही नहीं। बाबाके द्वारा सावधान किये जानेपर भी एक व्यक्तिने एक वृक्षकी डाल कटवा दी। जब बाबाकी दृष्टिमें यह बात आयी, तब उनका हृदय पीड़ासे भर गया। उस पीड़ाकी गहरी रेखाएँ उनके खिन्न चेहरेपर उतर आयी थीं। वे बार-बार कह रहे थे – पता नहीं, क्यों मेरे निर्देशकी उपेक्षा हो रही है। कार्य करनेवाले लोगोंको कैसे समझाऊँ कि यहाँकी सभी लताओं और पौधोंके साथ दिव्य केलिकी कुछ भावनाएँ जुड़ी हुई हैं।

बाबाने इसके लिये कठोर प्रायश्चित इस रूपमें किया कि वे निर्जल-निराहार रहकर सूर्योदयसे सूर्यास्ततक लगातार खड़े रहे। 'घायलकी गति घायल जाने'।

ऐसा ही एक मार्मिक प्रसंग और है। बाबूजीके महाप्रयाणके पश्चात्

बाबा पनियालेके वृक्षके नीचे उस कुटियामें रहने लगे थे, जो तीन ओरसे खुली है। वे कुटियामें अपनी चौकीपर बैठे हुए थे। अचानक वे अपनी चौकीपरसे उठे और आकाशकी ओर शून्यमें ध्यान पूर्वक देखते हुए कुछ सुननेका वे प्रयास भी कर रहे थे। वे देख भी रहे थे, कुछ सुन भी रहे थे और धीरे-धीरे आगे बढ़ भी रहे थे। कुटियाके पास जितने वृक्ष थे, एक-एक वृक्षके पास जाते, उसपर आँख गड़ाते और फिर आगे बढ़ जाते। भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी तथा और भी एक-दो लोग उनके साथ थे। साथके सभी लोग केवल साथ-साथ चल रहे थे, पर वे लोग समझ नहीं पा रहे थे कि बाबा क्या चाहते हैं और क्यों एक-एक वृक्षके पास जा रहे हैं। मौन व्रत होनेके कारण बाबाने कुछ भी नहीं बतलाया, किन्तु उनके चलनेके, उनके देखनेके और उनके खोजनेके ढंगसे क्रमशः ऐसा समझमें आने लगा कि किसीकी कराहटका स्वर उनके कानमें पड़ रहा है और वही स्वर ही उनका अनुसन्धान-सूत्र है, जिसके सहारे वे किसी विशिष्ट बातका पता लगाना चाह रहे थे।

अन्ततः सफलता मिल ही गयी। कुछ देरतक खोजते-खोजते बाबा एक बहुत बड़े वृक्षके पास आकर ठहर गये। वह विशाल वृक्ष उनकी कुटियाके पास ही था। वृक्षके चारों ओर चक्कर लगाकर देखते हुए उनको दिखलायी दे गया कि उसके तनेमें एक बड़ी मोटी लोहेकी कील धँसी पड़ी है। बाबा उसे पकड़कर निकालनेका प्रयत्न करने लगे। एक ओर बाबा थे अत्यन्त कृशकाय और दूसरी ओर वह कील थी बहुत धँसी हुई, अतः बाबाके प्रयत्नसे यह कील हिलनेका नाम ही नहीं ले रही थी। भाई कृष्णचन्द्रजीको बाबाका मन्तव्य समझमें आ गया। उन्होंने कोई बढ़ई बुलवाया और उसने तनेमेंसे लोहेकी मोटी कीलको बाहर निकाला।

कीलके धँसनेसे तनेका वह भाग सड़कर काला हो गया था। बाबाने उसे स्वयं साफ किया और उसे स्वच्छ जलसे धोया। फिर उसमें गोबर भर दिया। यह गोबर ही उस घावका मलहम था। ऐसा लग रहा था मानो वृक्षके उस भागका ऑपरेशन व बैंडेज किया गया हो।

यह सारी बात हो जानेके बाद लोगोंके समझमें आ गया कि हमलोग वृक्षकी उस कराहटको नहीं सुन पा रहे थे, जिसको बाबाने अपनी चौकीपर बैठे-बैठे सुन लिया था और वे चौकीसे उठकर अचानक चल पड़े

थे। संत- जगतकी सूक्ष्म बातें बड़ी विचित्र होती हैं, जो स्थूल-स्तरपर स्थित साधारण मानवके लिये सहज बोधगम्य नहीं हो पातीं। गोबरकी मलहम लग जानेके बाद बाबाके नेत्रोंमें अमृतवर्षिणी शान्ति और चित्ताकर्षिणी कान्ति परिव्याप्त थी। इसके अनन्तर बाबा अपने आसनपर आकर बैठ गये और नेत्र बन्द करके ध्यान मग्न हो गये। बाबाके साथमें जो लोग थे, वे सभी ही वृक्षोंके प्रति होनेवाले उनके आत्मभावको देखकर चकित थे। संत मलूकदासने संत-स्वरूपका बखान करते हुए कहा था –

मलुका सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानहीं, ते काफिर बेपीर।।

* * * * *

हरिनाम कीर्तन माधुरी

परम बाबूजीका तिरोभाव चैत्र कृष्ण दशमीके दिन हुआ था, अतः प्रत्येक दशमी तिथिको उनकी पावन समाधिके पास श्रीरामचरितमानसका अखण्ड पाठ हुआ करता है। २४ फरवरी १९७६ के दिन फाल्गुन मासके कृष्ण पक्षकी दशमी तिथि थी। सबेरे बारह बजे दशमीके कार्यक्रमके लिये श्रीरामचरितमानसके अखण्ड पाठकी तैयारी हुई। पूज्य श्रीमोतीजी महाराज पूजा करवानेके लिये आनेवाले थे। अभी उनके आनेमें कुछ देर थी। खाली समय देखकर भाई श्रीमुकुन्दजी गोस्वामीके सुपुत्र प्रिय संजीवने महामन्त्रका कीर्तन आरम्भ कर दिया।

हरे राम रहे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

इस महामन्त्रके कीर्तनकी सुमधुर ध्वनि श्रीनारायणचन्द्रजी गोस्वामीके कानमें पड़ी, जो उन दिनों गीतावाटिकाके अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तनके सर्व प्रधान कीर्तनिया थे। आप उधरसे निकल रहे थे। ज्यों ही कानमें कीर्तनकी सुमधुर ध्वनि पड़ी, त्यों ही वे वहाँ बैठ गये और वे अपने हाथमें हारमोनियमकी पेटी लेकर महामन्त्रका कीर्तन करने लगे। प्रिय संजीव ढोलक बजाकर उनका साथ देने लगा।

भगवानकी कृपासे वह कीर्तन खूब जमा। कीर्तनका मधुमय स्वर

चारों ओर फैलकर वातावरणमें छा गया। बाबा अपनी कुटियापर गहरी नींदमें सोये हुए थे। वे उस मधुर स्वरको सुनकर जग गये। इतना ही नहीं, जैसे ही बाबाने वह मधुर ध्वनि सुनी, वे उठकर खिचें हुए चले आये। वे आकर श्रीगिरिराज परिसरमें खड़े हो गये और तल्लीन होकर कीर्तन सुनते रहे। श्रीनारायणचन्द्रजी गोस्वामी और प्रिय संजीव, इन दोनोंको पता ही न चला कि बाबा खड़े-खड़े कीर्तन सुन रहे हैं। वे दोनों बड़े भावके साथ कीर्तन करते रहे और बाबा कीतर्नको सुनकर अपनी मस्तीमें डूबे रहे। जिन भक्तोंको पता चला, वे भी खिचें-खिचें चले आये और दूर खड़े होकर बाबाकी भाव-विमुग्ध-दशाका दर्शन करते रहे। लगभग एक घण्टेतक रसकी मधुर सरिता बहती रही।

श्रीरामचरितमानसके अखण्ड पाठमें विलम्ब होता हुआ देखकर उस मधुर कीर्तनको विराम देना पड़ा। सायंकाल भिक्षाके समय बाबाने कहा – आज दोपहरके समय महामन्त्रका संकीर्तन अत्यधिक मधुर और भावपूर्ण था। जीवनमें ऐसा कीर्तन कभी-कभी ही सुननेको मिलता है।

* * * * *

दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोले

२५ अप्रैल १९७७ के प्रातः कालका समय है। श्रीगिरिराज परिसरमें बैठे हुए भक्तजन प्रतीक्षा कर रहे हैं श्रीबाबाकी। कई व्यक्तियोंकी दृष्टि बार-बार बाबाके कुटीरकी ओर उठ जाती है, यह देखनेके लिये कि बाबा आ रहे हैं अथवा नहीं। बाबा यदि परिक्रमा स्थलीमें आ जाते तो परिक्रमा आरम्भ हो जाती। इस भक्त समुदायमें विश्वविद्यालयके प्राध्यापक तथा सरकारी कार्यालयोंके कर्मचारी आदि को विशेष उतावली और उत्सुकता है। इन लोगोंको अपने कार्यपर जाना है और इन सबकी इच्छा है कि कार्यपर जानेसे पूर्व कम-से-कम परिक्रमा करते हुए बाबाके दर्शन ही मिल जायें, भले परिक्रमामें पूरे समयतक बैठनेका अवसर नहीं मिले।

थोड़ी देर बाद इस प्रतीक्षा-रत भक्त समुदायको यह सूचना मिली कि बाबाकी तबीयत ज्यादा खराब है, अतः वे अभी विश्राम कर रहे हैं। परिक्रमा कब होगी, यह अनिश्चित है। इस सूचनाके मिलते ही वह

समुदाय बिखर गया। दूकानदार, अध्यापक, कर्मचारी, चिकित्सक आदि लोग अपने-अपने कार्यपर चले गये। अन्य लोग भी अपने-अपने कार्यमें लग गये, परन्तु परिक्रमामें नित्य बैठनेका जिनका नियम था, वे सभी विराजे रहे।

तबीयतके कुछ ठीक होनेपर लगभग मध्याह्नके समय बाबा परिक्रमा करने हेतु गिरिराज परिसरमें पधारे। भक्त समुदाय भी एकत्रित हो गया। बाबाने अपनी गुदड़ी रखकर अर्चना की और उसके बाद उन्होंने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगानी आरम्भ कर दी।

अब नित्यके क्रमके अनुसार सरस-हृदय कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजीने पद-गान आरम्भ किया। आज उपस्थित भक्तोंकी संख्या भी कम ही है और वातावरण अत्यधिक शांत है। ऐसा अनुकूल अवसर देखकर श्रीहरिवल्लभजीने गम्भीर भावोंके पदोंका गायन आरम्भ किया। आरम्भ किया रसिक शेखर स्वामी श्रीहरिदासजीके भावभरे पदसे –

सौंधे न्हाय बैठी पहिरि पट सुंदरी जहँ फुलवारी तहँ सुखवति अलकैं।
कर नख सोभा कल केस सँवारति मानो नवघन में उडगन झलकैं।।
बिबिध सिंगार लिये आगै ठाढ़ी प्रिय सखी भयौ भरु आनि रतिपति दल दलकैं।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी छबि निरखत लागत नाहीं पलकैं।।

श्रीहरिवल्लभजी आज बड़े चावके साथ गा रहे हैं। कभी पदकी पूरी पंक्तिको, कभी पंक्तिके अर्धांशको, कभी कतिपय शब्द समूहको दुहरा-दुहरा करके, कई बार आवृत्ति कर-करके गा रहे हैं। वे इतने ललित स्वरमें, ललित रीतिसे गा रहे हैं कि पदमें वर्णित छवि मनकी आँखोंके सामने स्वतः नृत्य करने लगती है। श्रीहरिवल्लभजीके अन्तरका अनुराग और कण्ठका राग क्रमशः प्रस्तुत करता जा रहा है उस दिव्य भावराज्यकी एक-एक उमंगको, एक-एक भंगिमाको, एक-एक छविको। स्नानार्थ प्रस्तुत है सुवास-पूर्ण जल। वह सुवास है नेहमयी सखियोंके हृदयका साक्षात् प्रतीक। ऐसे सुवासित जलसे प्रातः स्नान करके और स्नानोपरान्त परिधान धारण करके शृंगारोत्सुका नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीश्यामाजीकी चिन्मय छवि अद्‌भुत है। नख-शिख रूपवती श्रीश्यामाजी विराजमान हैं पुष्पवाटिकामें। जिन पुष्पोंकी समस्त सुषमा उन अद्वितीय शोभामयीकी नख-कान्तिपर प्रणत है और जिन पुष्पोंकी समस्त सुगन्ध

उन अद्वितीय सुसौरभाके पद-पद्मोंपर समर्पित है, ऐसी अद्वितीय सुन्दरी श्रीश्यामाजी उस सदा सुन्दर पुष्पवाटिकामें बैठी अपने सिलसिले केशोंको फैलाये हुए सुखा रही हैं। उनके काले और कुञ्चित केश, उनके चिकने व चमकदार केश, उनके सुदीर्घ एवं सघन केश, उन सुन्दर केशोंका फैलाव ऐसा है, जिसपर श्याम मेघोंकी सघनता-श्यामलता बलि-बलि जाती है। उन विस्तृत केशोंके मध्य सुखाने और सुलझानेके लिये संचरण हो रहा है कोमल-कोमल, पतली-पतली, गोरी-गोरी अँगुलियोंका। उसीके साथ सर्वाकर्षिका छवि शोभित है ग्रीवाकी लटकनकी। उन काले-काले केशोंके मध्य कर-नखकी कान्तिकी झलकनकी छवि ऐसी अनोखी है मानो बादलोंकी ओटसे तारागण झाँक रहे हों। इस प्रकार छवि-पर-छवि, अनेक छवियोंके दृश्य, ज्यों-ज्यों श्रीहरिवल्लभजी भावसहित गाते जा रहे थे, त्यों-त्यों उस चिन्मय छविके अनेक दृश्य मानसिक नेत्रोंके सामने मूर्तिमान होते जा रहे थे। और इस गायनका अनोखा प्रभाव था बाबापर। तन कहीं और, मन कहीं और। तनसे दूर मन, बहुत दूर, बहुत-बहुत दूर उस चिन्मय भावराज्यमें। आज तो 'बाहर' और 'भीतर'में मेल नहीं। बाहर यही दीख रहा है कि बाबा परिक्रमा लगा रहे हैं, पर शरीरके अंगोंपर छायी हुई मस्ती संकेत कर रही है, संकेत नहीं, स्पष्ट रूपसे कह रही है कि बाबा परिक्रमा नहीं लगा रहे हैं, अपितु भावसागरमें लहरा रहे हैं। बाबाकी यह मस्ती श्रीहरिवल्लभजीको और भी मस्तानी रीतिसे गायनकी प्रेरणा दे रही है।

वातावरणमें रसमयता-मदमयता बढ़ती जा रही थी कि अचानक रंगमें भंग हो गया। सारा मजा किरकिरा हो गया। बाबाका जी मिचलाने लगा। प्रातः तबीयत तो खराब थी ही। बाबा परिक्रमा पथसे एक ओर दूर हटकर वमन करने लगे। बाबाको वमन करते देखकर श्रीगुरुचरणजी दौड़े, धूपसे बचाव करनेके लिये छाता लेकर श्रीचोपड़ाजी दौड़े, मुख-प्रक्षालनेके लिये जल भरा कमण्डलु लेकर श्रीभगतजी दौड़े। बाबाको काफी वमन हुआ। कुल्ला करके तथा मुँह धो करके बाबा परिक्रमा करनेके लिये पुनः उपस्थित हुए। उनके मुखकी श्रान्ति देखकर वातावरणमें खिन्नता छा गयी। वमन-जनित क्लान्ति उनके

मुख-मण्डलपर व्याप्त थी।

भले शरीरपर कुछ भी आ पड़े, भले इस शरीरको किसी भी प्रकारका कष्ट-क्लेश भोगना पड़े, पर परिक्रमा तो करनी ही है। इस प्रकारके दृढ़ निश्चयी बाबाने अपनी परिक्रमा पूर्ववत् आरम्भ कर दी। परिक्रमाके आरम्भ होते ही पद-गान भी आरम्भ हो गया। भले वही पद है, वही राग है, वही स्थान है और वे ही गायक हैं, पर उपस्थित लोगोंका मन यही सोच रहा था कि अब वह रंग नहीं आयेगा, जो पहले था। ऐसा सोचना स्वाभाविक था। प्रथम तो वमन-जनित क्लान्ति, द्वितीय वैशाखके मध्याह्नकी तप्त बेला और तृतीय गर्मीमें परिक्रमा करनेका श्रम, अतः ऐसा लगता था कि वह रंग नहीं जम पायेगा। वह रंग तो तिरोहित हो चुका। बाबाके कष्टको देखकर सब यही सोच रहे थे कि वह रस, वह रंग अब उमड़ेगा ही नहीं, पर हुआ इस सम्भावनाके विपरीत। कुछ क्षणके बाद ही बाबाके मुख-मण्डलकी सारी क्लान्ति, सारी श्रान्ति न जाने कहाँ तिरोहित हो गयी। ऐसी तिरोहित हो गयी, मानो कुछ हुआ ही नहीं था। बाबाके मुख-मण्डलपर अब क्लान्ति नहीं, कान्तिका राज्य था। उनके अंग-अंगमें अब श्रान्ति नहीं, स्फूर्ति थी। बाबाके शरीरकी स्फूर्ति, उनके नेत्रोंकी दमक, उनके मुखकी आभा, उनके अधरोंकी मुस्कान रह-रह करके बता रही थी कि बाबा शरीर नहीं, शरीरसे बहुत ऊपर हैं। उनके तनका अनुगामी मन नहीं, बल्कि उनके मनका अनुगामी तन है। उनके मनकी सरसता, उनके भीतरकी उमंग उनके तनके अंग-अंगसे झाँक रही थी, पोर-पोरसे झर रही थी। श्रीहरिवल्लभजीके भावमय गायनसे बाबाके भीतर भाव-सागर लहराने लगा था। उसकी रसमयी तरंगें भीतरकी सीमाको पार करके बाहर आ-आ करके तनको छू रही थीं और रससिक्त तनकी रसमयी-चेष्टाएँ-भंगिमाएँ बना रही थीं गिरिराज परिसरके सम्पूर्ण वातावरणको अत्यधिक रसमय।

वातावरणकी ऐसी रसमयता श्रीहरिवल्लभजीको अधिकाधिक प्रभावित करती जा रही थी। उन्होंने नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीश्यामाजीकी रूप-माधुरीका जो पहला पद गाया था, उसके बाद तो रूप-माधुरीके और भी पद प्रस्तुत किये। इन पदोंमें था सौन्दर्य-लावण्य-माधुर्य-सदना

श्रीश्यामाजीके दिव्य रूपका अनोखा वर्णन; अरुणिम कपोलोंपर अंकित चित्रावलीका वर्णन, विविध वर्णके पुष्पोंसे मण्डित वेणीका वर्णन, सुकुमार गौर वदनपर नील परिधानका वर्णन, मणिमुक्तामय स्वर्णिम आभरणोंसे भूषित अंगांगोंका वर्णन – इस प्रकार अनोखे वर्णनोंकी सुदीर्घ श्रृंखलाका आरोह-अवरोह-लसित राग-रागिनिओंके ललित माध्यमसे मधुमय प्रस्तुतीकरण; यह सारा कुछ बड़ी विचित्र रीतिसे होता जा रहा था। इस सरस वातावरणको देखकर मनमें यही प्रश्न उठ रहा था कि आश्चर्यमें डूबें अथवा आनन्दमें?

बाबाकी तन्मयता भी अनोखी थी। वे कभी तो हाथसे ताली बजाते, कभी फुदकते हुए चलते, कभी भुजा-वल्लरियोंका प्रसारण-संकुचन करते, कभी श्रीहरिवल्लभजीके सामने खड़े होकर स्वरमें स्वर मिलाते, कभी आलाप भरते, कभी चलते-चलते कमर लचकाते। उनकी अदाएँ विचित्र-विचित्र थीं। इतना सारा कह करके भी यह सर्वांशमें सत्य है कि बाबाकी उस भावमयी, नहीं-नहीं महाभावमयी स्थितिकी क्षीणतम झाँकी भी प्रस्तुत नहीं हो पा रही है। संसारसे दूर, बहुत दूर, शरीरके सुख-दुःखसे कल्पनातीत दूर, जहाँ न शरीर है, न जगत है, न जगतके मम-परात्मक द्वन्द्व हैं; जहाँ है एक मात्र दिव्य रूपका चिन्मय आकर्षण, जहाँ है एकमात्र दिव्य लीलाका चिन्मय विलास, जहाँ है एकमात्र दिव्य महाभावोदधिका चिन्मय उद्वेलन, जहाँ है एकमात्र दिव्य आनन्दका चिन्मय उच्छलन; ऐसे लोकातीत-शब्दातीत महाभावमें निमग्न बाबाकी चेष्टाओंका चित्र यह लौकिक लेखनी शब्दोंमें भला कैसे अंकित कर पायेगी? एकदम स्पष्ट लग रहा था कि बाबा अपने उस वास्तविक स्वरूपमें (महाभाव स्वरूपमें) स्थित होकर इस पद-लालित्यका रसास्वादन कर रहे हैं। इतना ही नहीं, यह भी साफ-साफ भान हो रहा था कि वह उमड़ता हुआ आनन्द, भीतरका वह असीम-अगाध आनन्द बाहर बह पड़नेके लिये अकुला रहा है।

पद-गानकी सम्पन्नताके उपरान्त नित्य नियमके अनुसार 'कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल' का कीर्तन प्रारम्भ हुआ, पर बाबाका भावोद्वेलन अभी वैसा ही है, इस टिप्पणीके स्थानपर अपितु यह कहना अधिक समीचीन होगा कि वह मस्ती बढ़ती ही जा रही है। बाबाका

फुदक-फुदक करके परिक्रमा लगाना, नृत्यमयी गतिसे थिरक-थिरक करके चलना, नेत्रोंकी पुतलियोंको नचाना, अधरोंका कभी मुस्कुराना कभी विहसना, हथेलीको कभी खोलना कभी बंद करना, गर्दनको कभी इधर कभी उधर लचकाना, कभी श्रीहरिवललभजीके स्वरमें स्वर मिलाना, कभी अलाप भरना, इस प्रकार आज सब भंगिमाएँ विचित्र-विचित्र हैं। आज एक-से-एक अनोखी-से-अनोखी चेष्टाएँ हो रही थीं।

बाबाकी ऐसी रसमयी, ऐसी महाभावमयी स्थिति देखकर श्रीहरिवल्लभजीसे नहीं रहा गया। भाव-विभोर श्रीहरिवल्लभजीका ललित कण्ठ गाने लगा पद, नाम-संकीर्तनके स्थानपर एक चिर-परिचित पद। इस समय नाम-संकीर्तन हो रहा था और पदगानका क्रम कभीका पूरा हो चुका था, फिर भी भाव-विभोर श्रीहरिवल्लभजी बाबाकी ओर लक्ष्य करके सत्यको अनावृत्त करते हुए गाने लगे। उनसे गाये बिना नहीं रहा गया और वे गाने लगे –

''साँवरे चंद गोबिन्द के रसभरी दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोले''

इस पंक्तिका गाया जाना क्या था, पूज्य बाबाका रहा-सहा बन्धन भी छिन्न-भिन्न हो गया। बाबा झूम उठे। उनके भीतरका महाभावसागर, उनकी बाह्य चेष्टाओंमें भी खुलकर लहराने लगा। बाबाके रसप्लावित तनकी मुखर चेष्टाएँ उद्घोषित कर रही थीं, उनकी पुतलियोंका लास्य श्रीहरिवल्लभजीकी सांकेतिक उक्तिको अनुमोदित कर रही थीं – वस्तुतः साँवरे चन्द गोविन्दके रससे भरी दूसरी कोकिला, महाभाव-स्वरूपा श्यामा ही मधुर स्वर भरती हुई प्रत्यक्ष विलसित हो रही हैं।

आज बाबाका अंग-अंग झूम रहा था, भक्तोंका तन-मन झूम रहा था, परिसरका कण-कण झूम रहा था और वृक्षोंका पत्ता-पत्ता झूम रहा था। इस पावन प्रसंगको और इस पावन परिसरको पुनः पुनः प्रणाम।

अब ४ मई १९७७ के दिन किसे पता था कि दस दिन पूर्व वाले सरस प्रसंगका दिव्य दर्शन पुनः उसी पावन परिसरमें शीघ्र ही प्राप्त हो जायेगा? यह परम सौभाग्यकी बात है कि २५-४-७७ के दस दिन बाद ही ४-५-७७ को बाबाकी वैसी ही रसमयी मस्तीके

दर्शनका अवसर फिरसे सुलभ हुआ।

आज आकाशमें बादल छाये हुए हैं। बादल सघन हैं। समीर तीव्र नहीं है, पर मन्द भी नहीं है। कहीं वर्षा हो चुकी है, अतः पवनमें पर्याप्त शीतलता है। ठण्डी-ठण्डी पुरवैयाके झोंकोंमें वाटिकाके वृक्ष झूम रहे हैं और लताएँ नृत्य कर रही हैं। कोयलकी कूक, मधुर कूक इस सुहावने मौसमको और भी अधिक लुभावनी बना रही है। भले ये दिन गर्मीके हैं और मास ज्येष्ठका है, पर इस जेठ मासमें ही सावनका समा बँधा हुआ है। उद्दीपनकी ऐसी सामग्री प्रस्तुत हो, ऐसा लुभावना वातावरण उपस्थित हो और श्रीहरिवल्लभजी इससे असंपृक्त- अप्रभावित रह जायें, यह कैसे सम्भव है? ज्यों ही बाबाने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा प्रारम्भ की, श्रीहरिवल्लभजीने मल्हारकी तान छेड़ दी। उन्होंने मल्हार रागमें मौसमके अनुकूल ही पद उठाया। उस दिनकी तरह आज भी श्रीहरिवल्लभजीने सर्व प्रथम गाया रसिक-शेखर स्वामी श्रीहरिदासजीका भावभरा पद, जिसमें वर्षा ऋतुका मनोहर वर्णन है –

ऐसी रितु सदा सर्वदा जो रहै बोलत मोरनि।
नीके बादर नीके धनुष चहुँ दिस नीकौ श्रीवृन्दाबन आछी
नीकी मेघनि की घोरनि।।
आछी नीकी भूमि हरी हरी आछी नीकी बूढ़निकी
रेंगनि काम किरोरनि।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामाके मिलि गावत राग
मलार जम्यौ किसोर किसोरनि।।

क्या ही सुन्दर हो, यदि ऐसी सुन्दर और सुहावनी ऋतु सदा-सर्वदा बनी रहें, जहाँ मयूर मेघको देख-देख करके नृत्य कर रहे हों और मेघोंकी गर्जनसे स्वर मिलाकर वे कुहक रहे हों। एक ओर ऊपर नभमें सघन श्यामल मेघोंके मध्य सतरंगी धनुषकी वह मनभावनी शोभा है तो दूसरी ओर नीचे पृथ्वीपर हरी-हरी दूब और हरे-हरे पत्तोंसे आच्छादित भूमिकी यह नयनाकर्षिणी सुषमा है। अम्बरकी मनभावनी शोभा और अवनीकी नयनाकर्षिणी सुषमा उन नित्य किशोरी-किशोरमें किलोलकी कामना उद्दीप्त कर देती है और वे नित्य युगल उमंगमें भरकर मल्हार राग अलापने लगते हैं।

श्रीहरिवल्लभजीके पदगायनसे रंग जमता गया, अपितु रंग गहरा होता गया। कभी-कभी यह भ्रम होता कि हम लोग इस वाटिकामें हैं अथवा उस वृन्दावनमें हैं? ज्यों-ज्यों श्रीहरिवल्लभजी इस पदको ललित स्वरमें गाते, त्यों-त्यों ऐसा लगता मानो वृन्दावनके श्रावण मासकी वह मनोहारिणी हरीतिमा और हरीतिमा-विहारी वे नित्य युगल इस वाटिकाके परिसरमें ही अवतरित हो गये हैं। यह असम्भव-सी बात आज सम्भव कैसे लग रही है? क्या इस अवतरणका श्रेय स्वामी श्रीहरिदासजीके भावमय पदको दें? अथवा इस अवतरणका हेतु श्रीहरिवल्लभजीका ललित गायन ही है? ये बातें कुछ अंशतक सत्य कही जा सकती हैं, पर असली हेतु तो कुछ और ही है और वह है बाबाके भीतरका 'दिव्य वृन्दावन'। बाबाका वह 'दिव्य वृन्दावन' ही परिसरके वातावरणको दिव्यता प्रदान कर रहा है और इस दिव्यतासे प्रभावित परिसर-वातावरण उपस्थित भक्त-समुदायको दिव्य भावोंसे भावित कर रहा है।

श्रीहरिवल्लभजीके गायनके संग-संग बाबा अपनी भावमयी भंगिमाओंके साथ परिक्रमा भी करते चले जा रहे हैं। परिक्रमा करते-करते कभी हाथका फैलाना, कभी हथेलीसे ताली बजाना, कभी मृंदगको बजानेकी-सी चेष्टा करना, कभी स्वरमें स्वर मिलाकर आलाप लेना, कभी अँगुलियोंको नचाना, ये सभी चेष्टाएँ बाबाकी रसमयताकी झाँकी प्रस्तुत कर रही हैं और उनकी रसमयता सारे परिसरको रसमय बना रही है।

अवसरके अनुकूल श्रीहरिवल्लभजीने तीन-चार पद गाये, पर अन्तिम पद गाया —

कदम तर ठाढ़े हैं पिय प्यारी।
मोहन के सिर मुकुट बिराजत इत लहरिया की सारी।।
मंद मंद बरसत चहुँ दिसि ते चमकत बीजु छटा री।
मुरली बजावत श्रीनँदनंदन गावत राग मल्हारी।।
लेत तान हरि के सँग राधा रंग होत अति भारी।
श्री विठ्ठल गिरिधर को रिझवत श्रीवृषभानु दुलारी।।

इस पदके गायनसे इतना भावोद्रेक हुआ कि पूज्य बाबाको

अपनी सुधिकी विस्मृति-सी हो गयी। प्रथम तो पदमें वर्णित भावोंका लालित्य और फिर गायनमें स्वरके आरोहावरोहका लालित्य, इन दोनों लालित्यने परिक्रमामें बाबाकी गतिको, उनके चरणोंके उत्थापन-संस्थापनको लास्यमय बना दिया। ऐसा भान हो रहा था, मानो यह परिक्रमा-स्थली नहीं, रास-स्थली है। इस पदको गाते-गाते जब श्रीहरिवल्लभजीने पाँचवीं पंक्ति *'लेत तान हरि के संग राधा, रंग होत अति भारी'* यह पंक्ति गायी, उस समय बाबा देखते-देखते, इशारे-ही-इशारेमें एक बड़ा गम्भीर और भावपूर्ण संकेत ढुलका गये। जब श्रीहरिवल्लभजी आलाप लेते तो संग-संग बाबा भी आलाप लेते ही थे। बाबा श्रीहरिवल्लभजीके साथ रह-रह करके तानमें तान मिलाते ही थे। ज्यों ही श्रीहरिवल्लभजीने पाँचवीं पंक्ति *'लेत तान हरि के संग राधा'* गायी, त्यों ही बाबाने अपने चितवनकी कोरसे आभास दे दिया कि समक्ष स्थित 'हरि'के संग यह 'महाभाव-स्वरूपा राधा' तान ले रही है। बाबाके महाभावमय नयनोंके रसमय कगारोंसे इस संकेतके ढुलकते ही, जो अति भारी रंगका प्रवाह बह चला, रंगके उस उमड़नका आस्वादन वे ही कर पाये, जो उस क्षण उस भारी रंगमें लहरा रहे थे। नयनोंका वह नर्तन, संकेतकी वह ढुलकन, रंगकी वह उमड़न, भावुकोंका वह आस्वादन, यह सब एक-से-एक बढ़कर था, एक-से-एक अनोखा था। कौन कहेगा कि बाबा संन्यासी हैं? अथवा यों कहना अधिक उपयुक्त होगा कि बाबाने संन्यासके प्रतीक स्वरूप गेरुए रंगका गैरिक वस्त्र इसलिये धारणकर रखा है कि उनके जीवनके अन्तरंग रंगपर एक आवरण पड़ा रहे और उनके जीवनका वास्तविक स्वरूप जगतकी दृष्टिसे ओझल रहे।

जब इस पदके गायनको विराम देनेका क्षण आया, उस समय तो और भी गजब हो गया। सारे पदको गा चुकनेपर श्रीहरिवल्लभजीने पदकी आरम्भिक दो पंक्तियाँ समाप्तिके रूपमें गाया। वे (श्रीहरिवल्लभजी) भी इस रंगके प्रबल प्रवाहमें लहरा रहे थे और लहर-लहर करके गा रहे थे। इस पदकी *'मोहन के सिर मुकुट बिराजत, इत लहरिया की सारी'* पंक्तिको श्रीहरिवल्लभजीने ज्यों ही गाया और 'इत लहरिया की सारी' यह पंक्ति कर्ण-कुहरोंको गुञ्जित

करती हुई ज्यों ही बाबाके दिव्य मानसमें ध्वनित हुई; उस ध्वनिकी प्रतिध्वनि बाबाकी दोनों अँगुलियोंपर छा गयी। बाबाने अपने बायें हाथकी अँगुलियोंसे अपने गैरिक वस्त्रके अंचलका एक छोर पकड़ा और दूसरा छोर पकड़ा अपने दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे। दोनों हाथोंकी अँगुलियोंमें आँचलके दोनों छोरको पकड़ना, अँगुलियोंसे आँचलका तानना, तने आँचलमें अपने आप कुछ लहरियोंका पड़ जाना, इसके बाद आँचलको कुछ हिला करके, ग्रीवाको कुछ लटका करके, नेत्रोंको कुछ बन्द करके और कुछ मन्द मुस्कुरा करके देखना – कितना भावपूर्ण वह दृश्य था, कितनी रसमयी वह झाँकी थी? 'इत लहरिया की सारी' का भाव आँखोंके सामने एकदम साकार हो उठा था। 'लहरिया की सारी' से सुशोभित महाभावमयी श्यामाजीकी रसमयी झाँकी 'इत' परिसरमें प्रत्यक्ष थी। श्रीहरिवल्लभजीसे नहीं रहा गया और 'इत लहरिया की सारी' के स्थानपर वे गा बैठे, बिके-बिके हृदयसे, बहके-बहके नयनोंसे, बलि-बलि स्वरसे वे गा बैठे – 'इत अरुन रँग की सारी'।

हे विधाता! तुमसे यही याचना है, 'ए हो बिधिना तो सौं अँचरा पसार माँगौ', बस, तू यही कामना पूर्ण कर दे – 'इत अरुन रँग की सारी' की अनोखी-अद्‌भुत छवि सदैव तन-मन-नयनमें रमी रहे।

* * * * *

भावुक-भक्त श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तव

१४-७-१९७६ के दिन भावुक भक्त श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तवके दर्शनका सौभाग्य मिला। श्रीवास्तवजीके जीवनकी एक भाव-भरित फलक प्रस्तुत करनेके पूर्व उनके परम श्रद्धेय संत श्रीरघुजीका संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक लग रहा है। संत श्रीरघुजीका नाम था श्रीठाकुरदासजी उदेशी। जन्म संवत् १९६४ माघ मासमें रानीपुर, सिन्धमें हुआ था। इनकी जाति भाटिया थी। इनके पूर्वज दस-बारह पीढ़ी पहले जैसलमेरसे उठकर सिन्धमें आ बसे थे। आपके पिताका नाम श्रीवल्लभदासजी उदेशी है, जो कराचीमें रहते थे। स्त्रीका देहान्त पचीस वर्षकी आयुमें हो गया था। माता-पिताके बहुत आग्रह करनेपर भी आपने पुनः विवाह नहीं किया। कराचीमें इण्टरमीडियेट तक पढ़नेके बाद तीन वर्षतक बम्बईमें पढ़े और वहाँ

बी.कॉम. की परीक्षा देकर कराची लौट गये। बम्बईमें किसी महापुरुषके संगसे आप भगवान श्रीरामकी उपासना करने लगे। उपासनाकी बड़ी लगन लग गयी। भगवान श्रीरामके ध्यान और नाम स्मरणका अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ता गया। बोलना-चालना कम हो गया, धीरे-धीरे भगवानके नाम और गुण सुनकर हृदय द्रवित होने लगा। तदनन्तर किसी मित्रसे कुछ सुनकर आप गोरखपुर आ गये। यहाँ कुछ दिन रहकर फिर कराची लौटे। पिताजीने काम-धंधेकी बात की, पर इनका मन दूसरी ओर जाता ही न था। इसलिये उन्होंने अखण्ड मौन धारण कर लिया, जो जीवनके अन्ततक रहा। इसके बाद फिर वे गोरखपुर चले आये। यहाँसे बीचमें कुछ दिनोंमें लिये क्रमशः अयोध्या, चित्रकूट और प्रयाग गये थे। फिर अन्ततक यहीं रहे और निरन्तर विरह भावसे भावित रहे।

श्रीरघुजीकी विरह-दशा तो अति विचित्र थी। स्तम्भ, कम्प, अश्रु, स्वरभंग, वैवर्ण्य, पुलक आदि प्रेम-लक्षणोंका मानो श्रीरघुजीसे स्थायी सम्बन्ध हो गया था। आँसू तो उनके सूखते ही नहीं थे। बाबूजीने किसी-किसी समय बीस-बीस घंटेतक उनको रोते ही देखा है। उनकी नासिकाके दोनों ओरके कपोलोंपर अश्रु-प्रवाहके निशान पड़ गये थे। अविरल अश्रु-प्रवाहके कारण प्रवाह-पथ लगभग गल-से गये थे। वे सदा भावावेशकी-सी अवस्थामें ही रहते थे। सत्संगकी बात तो वे सुनते थे, परंतु अन्य कोई भी चर्चा पास बैठे हुए भी नहीं सुनते थे। वे किसी अन्य ही राज्यमें विचरण करते थे।

वे भगवान श्रीरामके अनन्य उपासक थे और भगवान श्रीरामके एक चित्रपटकी पूजा करते थे। वह चित्र उनके लिये बहुमूल्य वस्तु था। वे इसमें साक्षात् भगवानको देखते थे। इनका दर्शन वे किसीको नहीं कराते थे। कङ्गालके धनकी भाँति सदा उन्हें छिपाये रखते थे। अनुनय-विनय करनेके बाद भी अपने श्रीविग्रहका दर्शन रघुजी नहीं कराते थे। कई बार बाबूजीद्वारा अनुरोध किये जानेपर एक बार उन्हें रघुजी अपने कमरेमें ले गये, अपने उपास्य चित्रपटकी केवल तनिक झाँकी करायी और तब इतना ही बोले – 'मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दर्द न जाने कोय'। दिन-रात 'रघु' नामका उच्चारण मन और वाणीसे करते थे, इसलिये उनका नाम 'रघुजी' पड़ गया।

उन्होंने रामनवमीका उत्सव मनाया, एकादशीका निर्जल व्रत किया। रातको नियमानुसार स्वाध्याय करते रहे। एक साधकको बुलाकर जटायुकृत अन्तकालकी स्तुति दो बार सुनी और द्वादशीके प्रातःकाल प्रयाण कर गये। शरीरत्यागके पहले दिनतक उन्होंने स्वयं कुँएसे जल निकालकर अपनी नित्य क्रिया की। न किसीसे सेवा करवायी, न प्रणाम कराया। बड़े ही सच्चे भक्त थे।

१४-७-१९७६ के दिन जिन भावुक-भक्तके दर्शन हुए, वे श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तव इन्हीं श्रीरघुजीके भक्त थे। श्रीरघुजीके प्रति वे गुरु-भाव रखते थे। बाबाने ऐसा बताया है कि जब श्रीरघुजीने अपनी देहका विसर्जन कर दिया तो कुछ समय बाद उन्होंने श्रीश्रीवास्तवजीको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि श्रीरघुनाथजीके जिस श्रीचित्रपटका मैं पूजन किया करता था, वह तुम श्रीभाईजीसे माँग लाओ। बाबूजीने उनको दे भी दिया।

श्रीश्रीवास्तवजीने अनेक जिलोंमें जिलान्यायाधीशके पद पर कार्य किया है। वहाँसे फिर वे दिल्ली स्थित सुप्रीमकोर्टमें चले गये। सुप्रीमकोर्टमें कार्य करते हुए आप रिटायर हो गये। काफी वृद्ध हो जानेसे वे गठिया और कुष्ठसे पीड़ित थे। उनके हाथोंकी सभी अँगुलियाँ टेढ़े-मेढ़े ढंगसे मुड़-मुड़ करके बड़ी बुरी रीतिसे विकृत हो गयी थीं। दोनो पैरोंकी सभी अँगुलियोंपर पट्टी बँधी थी, जो घाव-ग्रस्त होनेकी सूचना दे रही थी। आँखोंसे कम दीखता था, कानोंसे बहुत कम सुनता था। शरीरसे हिलना-डुलना-चलना-फिरना सम्भव नहीं। उनकी विकलाङ्गता और रुग्णताको देखकर कोई सोच भी नहीं सकता कि ऐसे आवरणके भीतर एक महान संतात्माका निवास है।

बाबूजीके पारिवारिक चिकित्सक थे डा० श्रीचक्रवर्ती। श्रीश्रीवास्तवजीने डा. चक्रवर्तीके सामने बाबाके दर्शनकी अभिलाषा व्यक्त की। बहुत पहले वे बाबूजीके साथ बाबाको देख चुके थे, मिल चुके थे। डा० श्रीचक्रवर्तीने बाबासे मिलकर दिन निश्चित कर लिया। बाबाने कार भिजवायी, साथमें दो व्यक्ति भेजे, जो उन्हें उठाकर कारमें बैठा सकें। उनके लड़केने श्रीश्रीवास्तवजीसे कहा – बाबाजीके व्यक्ति आपको लिवा लानेके लिये आये हैं।

इतना सुनते ही उनको रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे आँसू बह

चले, बाबाकी जय-जयकार करने लगे और अपने बेटेसे कहा —बेटा! इन भक्तोंकी चरण-रज मेरे मस्तकपर लगा दो।

श्रीश्रीवास्तवजीको कारमें बैठाकर गीतावाटिका लाया गया। कारसे उतार करके, फिर कुर्सी पर बैठाकरके उनको बाबातक ले जाया गया। बाबाके पास पहुँचनेके बाद उनसे कहा गया —बाबा आपके सामने हैं।

इतना सुनते ही 'बाबा, बाबा, बाबा, बाबा' जोर-जोरसे कहकर रोने लगे। फिर अपने उपास्य संतका नाम ले लेकर, 'रघु, रघु, रघु, रघु' कह-कहकर जिस प्रकारसे अपने कपोल गीले कर लिये, वह एक विचित्र दशा थी। बाबाने उनको अपने गलेसे चिपका लिया। वह परस्परालिङ्गन भी एक अनोखा दृश्य था। दोनों परस्पर आलिङ्गन किये बहुत देर तक खड़े रहे। भाव-सरिताका भाव-सिन्धुसे मिलन, इस सम्मिलनको देखकर कई लोगोंका मन द्रवित होने लग गया। 'मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सबु कोऊ।।' वे अपने साथ पुष्प-माला लाये थे। बाबाको उन्होंने पुष्प-माला पहनायी, फिर कपूरसे आरती उतारी, फिर भावभरे स्वरमें अनेक श्लोकोंके द्वारा बाबाकी स्तुति-वन्दना करते रहे। फिर उन्होंने अपने बेटेसे कहा —बेटा! बाबाकी चरणरज मेरे मस्तकपर लगा दो।

बाबा इस प्रसङ्गको टालते रहे। कई ढङ्गसे निवारण करते रहे, पर उनकी विह्वलता सीमातीत थी। बाबाको ही झुकना पड़ा और अब इतना झुक गये कि उन्होंने कहा —आपका बेटा क्या लगायेगा, मैं ही लगा देता हूँ।

बाबाने अपनी हथेली अपने तलवोंपर फेरकर उनके मस्तपर लगा दी। श्रीश्रीवास्तवजीकी बड़ी इच्छा थी कि बाबाके श्रीचरणोंका स्पर्श करूँ, पर वे लाचार थे। श्रीश्रीवास्तवजी द्वारा निवेदन किये जानेपर बाबाने अपने चरणोंको उठाकर स्वयं ही उनकी अँगुलियोंसे स्पर्श करा दिया। फिर भावभरी आध्यात्मिक चर्चा परस्परमें चलती रही। श्रीश्रीवास्तवजीका श्रीरघुजीके प्रति समर्पण-भाव वस्तुतः आदर्श है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिस श्रद्धेय संतके प्रति कोई साधक समर्पित होता है, उस श्रद्धेय संतके तिरोधानके बाद साधककी श्रद्धा शिथिल होने लगती है और कभी-कभी तो श्रद्धापर घना आवरण आ जाता है। श्रीरघुजीको गये लगभग चालीस वर्ष हो गये, पर उन श्रीरघुजीके प्रति श्रीश्रीवास्तवजीकी श्रद्धा,

उनका समर्पण अनोखा था। वे रह-रहकरके श्रीरघुजीको स्मरण करते थे और रोते थे। बाबाने उनको आश्वासन दिया – आप विश्वास करें, आपको अवध-वास अवश्य मिलेगा। आपको लिवा जानेके लिये श्रीरघुजी और उनके आराध्य श्रीरघुनाथजी आयेंगे।

बाबाने उनकी आर्थिक स्थितिके बारेमें उनसे पूछा। हालत तो गड़बड़ थी ही। कभी पापपूर्ण पैसा तो कमाया नहीं। इसका उन्हें न कोई खेद था और न कोई कष्ट। वे कह रहे थे – बाबा! अब तो मैं हर दृष्टिसे लाचार हूँ। तनसे लाचार, धनसे लाचार और अब जगतके लिये बेकार, सर्वथा बेकार। यह भगवान्‌की बहुत बड़ी कृपा। अब भजन खूब होता है। आँख-कान-हाथ-पैर, शरीरके सभी अङ्ग बेकार हो चले हैं, अतः कौन मेरे पास आये? यह विकलाङ्गता तो मेरे लिये वरदान बन गयी है। इस विकलाङ्गताको मैं प्रभुकी बड़ी कृपा मानता हूँ। किसीके नहीं आनेसे पूर्ण एकान्त मिलता है और उस एकान्तमें अब खूब भजन होता है।

उनके उद्‌गारोंको सुन-सुनकर सभीके मस्तक नत हो गये। उनका प्रभु- विश्वास, उनका भजन-उत्साह, उनकी संत-परायणता, उनकी आस्तिक मति आदिकी कितनी सराहना की जाये? 'जो कुछ कहिअ थोर सबु तासू।'

गीता वाटिकासे जाते समय तो उनका हृदय बह चला। करुण कण्ठसे भर्राये स्वरमें अपने बेटेसे कहा – बेटा! पहले तो तू इनके चरणोंमें प्रणाम कर, फिर इनकी चरणरज मेरे मस्तकपर लगा दे।

श्रीश्रीवास्तवजीकी भावमयताने सबको भावमें डुबा दिया। बाबाने बड़ी भावभीनी बिदाई दी। जानेके पूर्व श्रीश्रीवास्तवजीने समाधिको प्रणाम किया, फिर वही भाव-विभोरता उनके मुखपर वाणीमें उभर आयी और उन्होंने कहा – समाधिको मेरा बार-बार प्रणाम।

अब उन्होंने रोदनभरे स्वरमें रट लगा दी – बगीचेके आदमी-आदमीको प्रणाम। बगीचेके पेड़-पेड़को प्रणाम। बगीचेके एक-एक कणको प्रणाम। बगीचेकी एक-एक ईंटको प्रणाम। बगीचेके एक-एक जीवको प्रणाम। बार-बार प्रणाम। बार-बार प्रणाम।

उनके जानेके बाद बाबा अपने भावमें डूबे रहे। शहरके कुछ लोग उनके पास कुछ बात करने आये थे, परन्तु उनकी जागतिक चर्चाको

बाबाका मन- मस्तिष्क पकड़ नहीं पा रहा था। अन्तमें बात हो ही नहीं पायी। जो लोग श्रीश्रीवास्तवजीको लानेके लिये तथा पहुँचानेके लिये गये थे, बाबा उनके सौभाग्यकी बार-बार सराहना कर रहे थे। श्रीश्रीवास्तवजीके बारेमें बाबाने कहा – ऐसे संत-निष्ठ भक्तके दर्शन आजकल कहाँ हो पाते हैं? मैं तो इनकी संत- निष्ठाके समक्ष बार-बार विनत हूँ।

वस्तुतः जहाँ संत निवास करते हैं, वहाँ उनकी उपस्थितिसे एक ऐसी सुवास परिव्याप्त हो जाती है, जो तन-मनको अनिर्वचनीय सुख एवं अलौकिक शीतलता प्रदान करती है।

दिनांक १४-७-७६ को जब वे आये थे, तब वे स्वयंकी प्रेरणासे बाबाके दर्शनकी उत्कट लालसा लिये हुए आये थे, इस बार तो बाबाने ही उनको बुलाया था। पिछली बार बाबाने उनकी आर्थिक स्थितिके बारेमें जिज्ञासा व्यक्त की थी। वे ऋण-ग्रस्त थे और वे रुपया चुकाना चाहते थे। वे गोरखपुरमें लगभग पाँच-छः माससे थे। उनका घर इलाहाबादमें था। गोरखपुरमें उनकी कुछ पैतृक सम्पत्ति थी, उसीको बेचकर वे अपना देय चुका देना चाहते थे, परन्तु कुछ लोग अड़चन डाल रहे थे। इन सब बातोंकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये बाबाने उनको बुलाया था, जिससे कि बाबा उनके कार्यमें कुछ सहयोग दिलवा दें।

श्रीश्रीवास्तवजीके आनेपर बाबाकी ओरसे श्रीजजसाहब (श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) ने बातचीत की। लगभग सात-आठ दिनसे बाबाकी तबीयत बहुत ही खराब चल रही थी। कंठके बगलमें कानके पास ऐसी तीक्ष्ण वेदना थी मानो रह-रहकर तीखी सुई चुभ रही हो। श्रीश्रीवास्तवजीको बहुत कम सुनता है और बाबा अपनी रुग्णता एवं दुर्बलताके कारण उच्च स्वरसे बोल नहीं सकते, अतः श्रीजजसाहबने आज बातचीत की।

ज्यों ही श्रीश्रीवास्तवजीको कुर्सीपर बैठा करके लाया गया, कुर्सीपर बैठे-बैठे ही उन्होंने बाबाको प्रणाम किया। फिर श्रीश्रीवास्तवजीने पूछा – यहाँ ये लोग क्यों इकट्ठे हैं? क्या कीर्तनका कार्यक्रम है? चलिये, कीर्तन किया जाये।

श्रीश्रीवास्तवजीको आज बुलानेका विशेष उद्देश्य था, अतः

विषयान्तरको बचानेके लिये श्रीजजसाहबने प्रयोजनकी बात आरम्भ कर दी। थोड़ी देर बात होनेके बाद श्रीश्रीवास्तवजीने अपने कई दिव्य अनुभव सुनाये। फिर वे श्रीजजसाहबसे कहने लगे – आप तो बाबासे मेरी ओरसे यही प्रार्थना कर दें कि मेरे द्वारा निरन्तर भजन हो। भगवान् श्रीसीतारामजीमें अविचल भक्ति हो। यह सांसारिक झंझट मेरे लिये कोई झंझट नहीं है। बस, किसी प्रकार श्रीरघुनाथजीमें रति हो जाये।

बाबा अपने बिस्तरपर आधे लेटे हुए श्रीश्रीवास्तवजीके वे सब अनुभव सुन रहे थे तथा श्रीजजसाहबके माध्यमसे किया गया निवेदन भी सुन रहे थे। उनकी प्रार्थनाकी सच्चाईने बाबाको अपनी ओर खींच लिया। भले वे सांसारिक परिस्थितिमें उलझे हैं, पर उस उलझनसे क्या? उस उलझनसे उनकी उपरामता तथा प्रार्थनाकी सच्चाईने बाबाको बोलनेके लिये बाध्य कर दिया। बाबाकी अस्वस्थता बाबाके लिये नगण्य हो गयी। श्रीश्रीवास्तवजीके पास आकर बाबाने कहा – बस, आप तो सदा यही कहते रहें, रटते रहें कि 'रामचंद्र चंद्र तू चकोर मोहिं कीजै'।

पंक्तिके शब्दोंको श्रीश्रीवास्तवजी ठीक प्रकारसे सुन नहीं पाये। अतः बाबाने जोर-जोरसे बोलकर एक-एक शब्द सुनाया तथा याद करवाया। श्रीश्रीवास्तवजीने कहा – बाबा! अब तो ऐसी कृपा करें कि मन जगतमें न जाये, सदा श्रीसीतारामजीमें लगा रहे।

जोरि पानि बर माँगहु एहू। सीय राम पद सहज सनेहू।।
बिषय बारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते बिपति सहौं अति दारुन जनमत जोनि अनेक।।
कृपा डोरि बंसी पद अंकुस परम प्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहुँ दुख मेरो, कौतुक राम तिहारो।।

बस, बाबा! अब आप ऐसी ही कृपा कर दें।

तब बाबा उनके कानके पास अपना मुँह लगाकर ऊँचे स्वरसे कहने लगे – क्या आपको विश्वास नहीं मेरी बातपर, जो आपको पिछली बार कही थी? उससे बड़ी कृपा और क्या हो सकती है? आप विश्वास करें, चाहे सूर्य अपने पथसे टल जाये, चाहे चन्द्रमा अपने पथसे टल जाये, कलके बजाय आज टल जाये, पर मेरी बात मिथ्या नहीं हो

सकती। आपकी मृत्युके समय भगवान श्रीरामचन्द्रजी आपको लेने अवश्य आयेंगे।

श्रीश्रीवास्तवजीके इस सौभाग्यको देखकर हम सभी आश्चर्य करने लगे। पर आश्चर्य भी क्या किया जाये? जिनने विरही संत श्रीरघुजी जैसे सच्चे भगवत्प्रेमीको अपने जीवनका सर्वस्व माना, जिनने भगवच्चरणारविन्दवत् संत-चरणोंकी आजीवन सेवा की, उन पूत आत्माको ऐसा आशीर्वाद मिले तो क्या आश्चर्य? यह आशीर्वाद तो पिछली बार ही मिल चुका था, अब तो उसपर और भी पक्की मोहर लग गयी। ऐसे आशीर्वादको पाकर श्रीश्रीवास्तवजीका हृदय गद्‌गद हो गया। उन्होंने भाव-भरे हृदयसे पूर्वकी भाँति ही बाबाको पुष्प माला पहनायी, आरती उतारी, धूप प्रदर्शित की तथा श्लोकोंसे वन्दना की। इसके बाद वे बाबाके चरणोदकके लिये आग्रह करने लगे। वे अपने साथ जल-पात्र लाये थे। बाबाने कहा — आप चरणोदक क्या लेंगे? पिछली बार ही आपके रोम-रोमको ऐसा अमृतोदक पिला दिया है कि फिर-फिर पीनेकी जरूरत ही नहीं।

श्रीश्रीवास्तवजीने अपने आग्रहको छोड़ दिया। अब वे घर वापस जानेवाले हैं। उन्होंने पूछा — जिस कटोरीसे कपूरकी आरती उतारी थी, वह कटोरी कहाँ है?

श्रीजजसाहबने प्रश्न किया — क्यों?

श्रीश्रीवास्तवजीने श्रद्धाभरे स्वरमें कहा — उसमें काजल है। बाबाको की गयी आरतीका काजल है। वह मैं लगाऊँगा।

उनकी इस संत-निष्ठाको देखकर हमलोग मन-ही-मन उनकी सराहना करने लगे। बाबा बोले तो धीरेसे, पर हमारे कानोंमें भनक पड़ गयी — इसे भावमयता कहते हैं।

श्रीश्रीवास्तवजीने वह काजल अपनी पंगु अँगुलीसे अपनी आँखोंमें आँजा और कहने लगे —

> जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
> कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान।।

फिर एक विनोदकी बात हुई। श्रीश्रीवास्तवजी श्रीजजसाहबसे

कहने लगे – देखिये, अब इस काजलकी एक बिंदी अपने ललाटपर भी लगा रहा हूँ। बाबासे इतनी बड़ी सम्पत्ति मिली है, कोई नजर न लगा दे।

इस पर सभी हँस पड़े। बाबाने उनसे फिर कहा – आप तो बार-बार यही कहें कि 'रामचंद्र चंद्र तू, चकोर मोहिं कीजै।' यह पंक्ति गोस्वामी तुलसीदासजीकी है।

श्रीश्रीवास्तवजीने इस पंक्तिको कई बार कहा। कहा ही नहीं, उच्च स्वरसे इस पंक्तिका कीर्तन करने लगे।

बाबाके पाससे विदा होकर उन्होंने समाधिके पास चलनेकी इच्छा व्यक्त की। कुर्सीपर बैठे-बैठे उनको समाधिके पास लाया गया। उन्होंने समाधिकी आरती उतारी, धूप खेया, पुष्प-माला अर्पित की तथा दो परिक्रमा दी। इसी प्रकार जिस कमरेमें विरही संत श्रीरघुजी रहा करते थे, उस कमरेका दर्शन किया, उसकी आरती उतारी, धूप खेया और उसे प्रणाम किया।

उनके जानेके पहले मैंने उनसे पूछा – आपको श्रीरघुजीके सर्व प्रथम दर्शन कब हुए थे?

उन्होंने बताया – मैं देवरिया शहरमें काम करता था। श्रीभाईजी (रस-घन-मूर्ति पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का संदेश मेरे पास पहुँचा कि श्रीरघुजी गोरखपुरसे चित्रकूट जा रहे हैं, रेलगाड़ी देवरिया होते हुए जायेगी, अतः आप चाहें तो रेलगाड़ीपर उनका दर्शन कर लें। मैं स्टेशन गया तथा आग्रह करके रेलगाड़ीसे उतार कर अपने घर ले आया। देवरिया उतरनेका कोई कार्यक्रम नहीं था, उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली, यह मेरा सौभाग्य था।

मैंनें फिर पूछा – श्रीरघुजी द्वारा पूजित श्रीचित्रपटकी पूजा आजकल कौन करता है?

उन्होंने कहा – अब तो घरपर बहू ही करती हैं। घरपर वही है। पूजा घरमें तो अनेक विग्रहोंकी पूजा होती है।

मैंने पूछा – यह चित्रपट आपको कैसे मिला?

उन्होंने बताया – मैं वाराणसीमें काम करता था। तब श्रीभाईजी राजस्थानके रतनगढ़ शहरमें रह रहे थे। उधर श्रीरघुजीने स्वप्नमें उनसे निवेदन किया कि श्रीरामचतुष्टयका चित्र मेरे पास पहुँच दिया जाये।

इधर मुझे स्वप्न हुआ कि वे कम्बलपर बैठे हुए हैं, आँखोंसे अविरल अश्रुधार बह रही है और कह रहे हैं कि श्रीरामचतुष्टयका श्रीचित्रपट श्रीभाईजीके पाससे मँगाकर अपनी पूजामें रख लो। ज्यों ही श्रीभाईजीको स्वप्न हुआ, उन्होंने एक विशेष व्यक्तिके हाथ वह चित्रपट तुरंत मेरे पास वाराणसी भेज दिया। हम दोनों पूजा किया करते थे, पर अब पत्नी तो रही नहीं तथा मैं पंगु हो गया। घरमें पूजा बच्चे सब किया करते हैं।

* * * * *

लकवा का झटका

सन् १९७७ की २० अगस्तको शनिवार था। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाको नियमके अनुसार शनिवारके दिन बाबाको जतीपुरासे राधाकुण्ड तककी पाँच मीलकी परिक्रमा करनी थी। इन दिनों शारीरिक दुर्बलताके कारण बाबाको पाँच मीलकी परिक्रमाके दो भाग करने पड़ते थे। तीन मील सबेरे तथा शेष दो मील सूर्यास्तके बाद, इस प्रकार बाबा पाँच मीलकी परिक्रमा पूरी करते थे।

२० अगस्त शनिवारकी रातमें बाबाने श्रीगिरिराजजीकी शेष दो मीलकी परिक्रमा लगानी आरम्भ की। तीन मीलकी परिक्रमा बाबा प्रातःकाल कर चुके थे। शेष दो मीलकी परिक्रमाको रात्रिके समय सम्पन्न कर रहे थे। परिक्रमा लगाते-लगाते बाबाको ऐसा लगा कि दाहिना पैर शून्यतासे ग्रस्त होता जा रहा है। शून्यताकी तीव्र अनुभूति होनेके बाद भी अपने आत्मबलके सहारे बाबा परिक्रमा पूर्ववत् देते रहे। दो फेरी और लगा चुकनेके बाद उनको ऐसा लगा मानो कमरसे नीचेका भाग शरीरसे अलग हो गया है और कमरसे ऊपरका भाग नीचे पृथ्वीकी ओर बलात् खिंचता चला जा रहा है। ठीक आगे दो कदमपर दीवाल थी। बाबाने सोचा कि दीवालका सहारा ले लूँ, पर तभी धम्मसे गिर पड़े। परिक्रमा-स्थलीमें उपस्थित लोगोंने सोचा कि सिरमें चक्कर आ गया है, अतः बाबा बैठ गये हैं, पर यह भ्रम कबतक बना रहता? ज्यों ही लोगोंको पता चला कि बाबाके दाहिने पैरको लकवा मार गया है, सभीका मन खिन्नतासे भर गया। परिक्रमा विसर्जित कर दी गयी। गम्भीर उदासीसे वाटिकाका सारा वातावरण ऐसा आच्छादित हो गया कि क्या

कहा जाये ?

उस परिस्थितिमें भी बाबाके मुखमण्डलपर वही सहज हास्य था, वही सहज उल्लास था, पर उनका वह उन्मुक्त उल्लास भी वातावरणमें व्याप्त उदासीकी सघनताको न हटा सका, न घटा सका। दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन, मिलनेवालोंका ताँता लगा रहा।

आत्मीय जनोंकी अत्यधिक क्लान्तिको देखकर बाबाने भिक्षाके अतिरिक्त थोड़ा दूध लेना आरम्भ कर दिया तथा मदार-धतूरा आदिके पत्तोंसे सेक करवा लेने लगे। आहारमें भी कुछ परिवर्तन कर देनेके लिये अनुमति प्रदान कर दी। बात-बातके बीचमें बाबा तो कई बार कह जाते थे – मेरा मन सर्वथा संकल्पशून्य है। न तो यही स्फुरणा है कि यह रोग क्यों हुआ और न यही कामना है कि रोगसे मुक्त होऊँ। रोगके रूपमें भगवान ही पधारे हैं।

बाबाके यतिधर्मको ध्यानमें रखते हुए विविध उपचार हो रहे थे, पर अपेक्षित सुधार दिखलायी नहीं दे रहा था। सभी स्वजनोंका चित्त बड़ा व्याकुल था, पर वह व्याकुलता विवशताके घेरेमें घुट-घुट करके चुपचाप आँसू बहाती रहती थी।

इस व्याकुलताको थोड़ी राहत मिली श्रीमहाराजजीके शुभागमनसे। स्वयं महाराजजीके मनमें बाबाके समीप पहुँचनेकी चटपटी लगी हुई थी। महाराजजी वृन्दावनसे गीतावाटिका १४ सितम्बरको पधारे और ऐसा उद्‌घोषित करनेके लिये मेरी भावना बार-बार उमड़ रही है कि महाराजजीके पदार्पणके रूपमें बाबाके स्वास्थ्यका शुभागमन हुआ। मैं नहीं जानता कि परोक्ष स्तरपर क्या तथ्य है और क्या सत्य है, पर प्रत्यक्ष रूपमें इतना तो सही ही है कि जिस दिन महाराजजी पधारे, उसी दिनसे बाबाके स्वास्थ्यमें आशातीत सुधार आरम्भ हो गया। इस सुधारका सारा श्रेय तो चल रही चिकित्सा-पद्धतिको मिल गया, पर प्रश्न उठता है कि यह श्रेय महाराजजीके आगमनसे पहले उसे क्यों नहीं मिल पाया ? बुद्धिका विलास तो इस प्रश्नका उत्तर नहीं दे पायेगा, परन्तु श्रद्धाकी निरीहता इस प्रश्नको प्रश्न मानती ही नहीं। संत-जगतमें लोकातीत स्तरवाली जो प्रक्रिया सक्रिय रहती है, उसकी गतिविधि बड़ी विचित्र होती है और वह मात्र अनुभव गम्य है। जो भी हो, बाबाके स्वास्थ्यमें सुधारसे सभीकी भावनाओंको बड़ा विश्राम मिला। बाबाके स्वास्थ्यकी

चिन्ताजनक स्थितिने सबके मनमें एक उलझन खड़ी कर दी थी कि आगामी श्रीराधाष्टमीमें भावपरिपोषक महोत्सवका स्वरूप न जाने कैसा रहेगा और न जाने कैसी खिन्नताके वातावरणमें महोत्सवके कार्यक्रम सम्पन्न होंगे, पर स्वास्थ्य-सुधारकी प्रगतिने सुगति दे दी सभीकी भावनाओंको। महाराजजीके शुभागमनके बाद बाबाके स्वास्थ्यमें जैसा सुधार आया, उससे गीतावाटिकामें क्रमशः अधिकाधिक प्रसन्नता परिव्याप्त होने लग गयी। बाबा तो अपनी कुटियामें ही विराजे रहे, पर महाराजजी उत्सव-पण्डालमें पधारे और श्रीराधाष्टमी-महोत्सव २०-९-१९७७ को सोत्साह मनाया गया था।

* * * * *

नियमानुवर्तन में सीमातीत तत्परता

संन्यास लेते ही बाबाने एक बड़ा ही कठोर व्रत ले लिया कि अब जीवनमें स्त्री-स्पर्श एवं द्रव्य-स्पर्श करना ही नहीं है। यदि स्पर्श हो गया तो प्रायश्चित रूपमें चौबीस घंटेका उपवास करना है। सन् १९५६ में तीनों धामोंकी पावन यात्रा ट्रेन द्वारा की गयी थी। ट्रेनमें लगभग छ या सात सौ तीर्थ-यात्री थे। तीर्थ-यात्रियोंमें स्त्री-पुरुष दोनों ही थे। देव-दर्शनके लिये यत्र-तत्र आना-जाना पड़ता ही था। बहुत सावधान रहनेके बाद भी वे अप्रिय प्रसंग घटित हो गये, जिससे बाबाको उपवास करना आवश्यक हो गया और क्रम-क्रमसे बाबापर नब्बे उपवास चढ़ गये। तीर्थ-यात्राकी भाग-दौड़में उपवास सम्भव नहीं हो पाया। तीर्थ-यात्रासे लौटनेके बाद उन सारे उपवासोंको एक-एक करके बाबाने चुकाया। कुछ दिनोंका अन्तर दे-दे करके बाबाने नब्बे दिन उपवास किया।

नियमानुर्वतनके प्रति बाबा सदैव तत्पर रहा करते थे। २२ नवम्बर १९७८ के दिनका एक प्रसंग है। प्रातःकाल बाबा अपनी चौकीपर बैठे हुए थे। बाबाके पास ठाकुरजी भी थे। तभी एक अनचाहा प्रसंग घटित हो गया। बिहार प्रदेशसे आये हुए एक साधुने श्रद्धावशात् बाबाके चरणोंपर पाँच रुपयेका एक नोट चढ़ा दिया। उन साधुको बाबाके कठोर नियमका पता नहीं था कि द्रव्यका या स्त्रीका स्पर्श होते ही चौबीस घंटेका उपवास करते हैं। उस नोटसे स्पर्श होते ही बाबाके लिये तो

उपवास हो गया। किसी कारणसे कल बाबाने भिक्षा नहीं की थी, इससे सभीका मन खिन्न था और अब द्रव्य-स्पर्शसे पुनः लगातार उपवास हो गया। इससे व्यक्ति-व्यक्तिके मनमें बड़ी व्यथा थी, पर इसका कोई निवारण नहीं था। कठोर-व्रती बाबा अपने निश्चयमें शिथिलता नहीं आने देते। सभी मूक दर्शक बने हुए थे। मैं बाबाके पास बैठा हुआ था। तभी जिज्ञासाके रूपमें मैंने बाबासे पूछा – बाबा! आप रुपया या सिक्का या कागजके नोटका स्पर्श नहीं करते। क्या इसी प्रकार ड्राफ्ट या चेकका भी स्पर्श नहीं करते?

बाबाने बताया – यदि चेक या ड्राफ्टका स्पर्श हो जाय तो उसके लिये भी मुझे चौबीस घंटेका उपवास करना पड़ेगा। साधारण कागज तथा चेक या ड्राफ्ट, ये सभी ही कागज हैं, पर चेक या ड्राफ्ट तो रुपयेके रूपमें सम्मानित है, स्वीकृत है, समकक्ष है, अतः वह एक प्रकारसे रुपया ही है।

पुनः एक और जिज्ञासा – पहले ताँबेके छोटे ढेलेके टुकड़े सिक्केके रूपमें व्यवहृत होते थे। उनको सरकारने अब अमान्य कर दिया है। अब वे रुपयेके रूपमें नहीं, धातु-खण्डके रूपमें समझे जाते हैं। क्या उनका भी स्पर्श हो जानेसे आप उपवास करेंगे?

बाबाने कहा – अरे, धातु होते हुए भी कभी तो वे रुपयेके रूपमें माने जाते थे। उनका स्पर्श भी मेरे लिये द्रव्य स्पर्शके समान है। भूलसे भी यदि द्रव्य या स्त्रीका स्पर्श हो जाय तो मुझे उपवास करना ही है।

बाबाकी उक्तिको सुनकर मैं मौन था, पर मैं मन-ही-मन कह रहा था कि बाबा कितने अधिक कठोर व्रती हैं। स्वयंकी बात तो अलग रही बाबा तो यहाँतक सोचते और चाहते थे कि मेरे निजजनोंके जीवनकी चादरपर भी कोई भी दाग न रहे और न लगे।

* * *

उपर्युक्त घटनासे लगभग दस मास पहले २६ जनवरी १९७८ का एक प्रसंग है –

गीतावाटिकाकी कोठीके बरामदेमें दो बहिनोंके बीच वाद-विवाद छिड़ गया। पारस्परिक विवाद जब बढ़ने लगा तो परिस्थितिको शान्त करनेके लिये श्रीरामसनेहीजीने एक बहिनका हाथ पकड़ करके किनारे

कर दिया। श्रीरामसनेहीजीके बीच-बचाव करनेसे वातावरण शान्त हो गया। फिर यह बात सरकते-सरकते बाबाके सामने आयी। बाबा गम्भीर हो गये। श्रीरामसनेहीजी बाबाके चरणाश्रित जन हैं। चरणाश्रित जनके द्वारा होनेवाली चूक मेरी चूक है, ऐसा मानकर बाबाने दिनभर निर्जल रहनेका संकल्प कर लिया और निर्जल-व्रतकी जानकारी निज जनोंको दे दी।

* * * * *

सुखद और दुखद क्षण

सन् १९७८ ई. में श्रीयमुनाजीमें भीषण बाढ़के कारण श्रीमहाराजजी चाह करके भी वृन्दावनसे गोरखपुरके लिये प्रस्थान नहीं कर पाये। भाद्र शुक्ल अष्टमी-नौमीको गीतावाटिकामें श्रीराधाष्टमी-महोत्सव भलीभाँति सम्पन्न हो गया और उत्सवके बारह-तेरह दिन बाद शनिवार २३-९-७८ को गोरखपुर पहुँचे श्रीमहाराजजी। साथमें ठाकुरजी आदि भी थे। श्रीमहाराजजीके पधारनेपर दो संतोंके सम्मिलनका वह दृश्य भी अद्भुत भावमय रहा। बाबाकी वासस्थलीके आस-पास कोलाहलशून्य जनशून्य प्रशान्त वातावरण है, यह वातावरण वृक्षों और पौधोंकी हरियालीसे बड़ा सुन्दर लग रहा था। बाबा हाथ जोड़े हुए खड़े थे स्वागत करनेके लिये। महाराजजीको समीप आते देखकर बाबाके नेत्रोंमें परम प्रसन्नता छा गयी। बाबा चाहते थे कि एक पद आगे बढ़कर अति पास आये हुए महाराजजीके हाथोंको अपने हाथोंमें ले लूँ, पर ज्यों ही महाराजजीने भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया, बाबाने भी भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया। दोनों संतोंके मस्तक भूमिपर टिके हुए थे और इस छविको हमलोग बड़ी देरतक देखते रहे। बादमें बाबाने ही महाराजजीको उठाया तथा उनका हाथ पकड़े-पकड़े अपने आसनतक ले गये। महाराजजीको एक ऊँचे आसनपर बैठाकर बाबा अपने आसनपर विराजे।

दो संतोंके आमने-सामने बैठनेका यह दृश्य भी कितना भावपूर्ण था! कोई कुछ भी नहीं बोल पा रहा था। महाराजजी कभी बाबाकी हथेलियोंको अपनी हथेलीमें ले लेते थे और कभी महाराजजीकी हथेलियाँ कर-बद्ध मुद्रामें हो जाती थीं। रह-रह करके महाराजजी अपने उत्तरीय छोरसे नेत्रोंकी-नासिकाकी आर्द्रताको पोंछ रहे थे। भावोद्रेकके कारण बाबाकी मुखाकृति भी कुछ और प्रकारकी हो गयी थी। चाह करके भी

परस्परमें संभाषण सम्भव नहीं हो पा रहा था। बहुत-बहुत देर बाद मन्द एवं अस्पष्ट स्वरमें बाबाने अपने पास ही बैठे हुए ठाकुरजीसे पूछा – महाराजजीका स्वास्थ्य कैसा है?

ठाकुरजीने यही कहा – इस समय कोई परेशानी नहीं है।

कुछ क्षणके बाद श्रीमहाराजजीकी ओर उन्मुख होकर बाबाने कहा – मेरी राधाष्टमी तो आज मनायी जा रही है।

कल्पनातीत आत्मीयतासे अति संसिक्त इन शब्दोंको सुनकर महाराजजीके भाव उमड़ चले। सभी उपस्थित लोग बह पड़े। आन्तरिक विह्वलताके किंचित् शमित होनेपर थोड़ी देर बाद बाबाने फिर कहा – आप जानते हैं, मैं श्रीराधाष्टमी पण्डालमें आठ वर्षोंसे नहीं जाता। इस वर्ष श्रीराधाष्टमीका उत्सव पण्डालमें मनाया जा रहा था, पर मैं तो अपने इसी एकान्त स्थानपर इसी आसनपर बैठे-बैठे आपका ध्यान कर रहा था।

इतना सुनकर गद्गद वाणीमें महाराजजीने कहा – हम अपनी बात भी क्या बतायें? तन तो अवश्य श्रीवृन्दावन धाममें था, पर मन तो इसी स्थानपर आपके पास था। रह-रह करके आपका ध्यान हो रहा था कि आप ऐसे विराज रहे होंगे, आप इस प्रकार बोल रहे होंगे, आप इस प्रकारसे लोगोंसे मिल रहे होंगे।

इस वर्णनने तो सभीकी विभोरता बढ़ा दी। चित्तके सुस्थिर होनेपर महाराजजीने बाबाको आजानुलम्बित माला पहनायी, प्रसादी फूलोंसे बाबाके मस्तकपर वर्षा की। श्रीबाँकेबिहारीजीकी प्रसादी माला तथा प्रसादी फूल महाराजजी अपने साथ लाये थे। फिर ठाकुरजीने प्रसादी माला पहनायी। उन्हीं अवशिष्ट प्रसादी फूलोंसे बाबाने महाराजजीका पुष्पार्चन किया। ठाकुरजीने बाबाको प्रसादी बीरी दी। थोड़ी देर बाद बाबाने महाराजजीसे निवास-कुटीरमें पधारनेके लिये अनुरोध किया। बाबा स्वयं ही निवास-कुटीरतक महाराजजीको पहुँचाने गये। हाथमें हाथ लिये मार्गमें श्रीराधाकिशोरीके दिव्य भावोंकी चर्चा भी करते जा रहे थे। निवास-कुटीरकी विश्रामशय्यातक पहुँचा करके ही बाबा वापस लौटे।

अपने स्थानपर वापस लौटकर आसनपर बैठते-बैठते बाबा कहने लगे – महाराजजी तो प्यारकी मूर्ति हैं। उनके पधारनेसे आनन्दका सागर उमड़ने लगा। जबतक महाराजजी यहाँ रहेंगे, तबतक यह सागर उमड़ता ही

रहेगा। तो क्या इसका अर्थ यह है कि अबतक मेरे आनन्दका सागर नहीं उमड़ रहा था? वह उमड़ रहा था भीतर-ही-भीतर, पर जिस प्रकार पूनोंके चन्दाका दर्शन सागरको उद्वेलित कर देता है, उसी प्रकार मेरे आनन्दका सागर अब केवल भीतर ही नहीं, व्यक्त स्तरपर भी लहराता रहेगा।

महाराजजी गीतावाटिका पधारे थे २३.९.१९७८ के दिन और एक अनचाहा प्रसंग घटित हो गया तीन दिन बाद। बाबा प्रातःकाल टहल रहे थे। लकवेके कारण दाहिना पैर पहलेसे ही पूरी तरह काम नहीं कर रहा था। टहलते-टहलते ऊँची-नीची जगहमें पैर पड़ जानेके कारण पैर लड़खड़ा गया, बाबा एकदमसे गिर पड़े और दाहिने कंधेके पासकी हड्डी टूट गयी। वेदना भीषण, पर मुखपर वही चिर-सुलभ मुस्कान, चिर-उन्मुक्त हास्य। सारा बगीचा उमड़ पड़ा। पूज्या मैया ऊपरसे नीचे आयीं। महाराजजी आकर पासमें बैठ गये। सबकी भावनाएँ विकल थीं, नेत्र सजल थे, पर बाबा उस वेदनामें भी सूरदासजीके पद (जाको मन लाग्यो गोपाल सौं, ताहि और क्यों भावै हो) और हरीचन्दजीके पद (अहो हरि वे हू दिन कब ऐहैं) गा-गाकर महाराजजीको, ठाकुरजीको, उपस्थित आत्मीय जनोंको सुना रहे थे। बीच-बीचमें कहते भी जा रहे थे — इस प्रतिकूलताके रूपमें भी श्रीहरि ही पधारे हैं, उनका हार्दिक उल्लासके साथ स्वागत है। यह प्रतिकूलता भी श्रीहरिका मधुमय विलास है।

बाबा चौबीस घंटेमें एक बार माँके दर्शनार्थ जाया करते थे, अब माँ ही प्रतिदिन ऊपरसे नीचे उतरकर बाबाके पास चली आया करती थीं। ४-१०-७८ बुधवारकी बात है। हड्डीके टूटे नौ दिन हो चुके। इतने दिनोंमें कष्टमें कमी आ जानी चाहिये थी, पर वेदना बहुत बढ़ी हुई थी। कष्टको देखकर सबका जी भीतर-ही-भीतर घुटता रहता था, पर क्या किया जाये? महाराजजी अपने निवास कुटीरके पास न जाने कितनी बार खड़े रह करके दूरसे बाबाको देखते रहा करते थे। बाबा कह रहे थे कि आज शरीरके पोर-पोरमें सीमातीत पीड़ा है और प्रातःसे ही यह पीड़ा बनी हुई है। संध्याके समय जब बाबा भिक्षा कर रहे थे, तीन-चार कौर ले पाये होंगे कि भिक्षा करते-करते बाबा समाधिस्थ हो गये। शरीरका कष्ट शरीरके साथ, पर बाबा अब कहीं अन्यत्र थे। एक बार वृत्ति कुछ नीचे उतरी तो आप पूछने लगे — यह भीड़ क्यों है? क्यों, कोई उत्सव है क्या?

इतना कष्ट होनेके बाद भी आनेवाले अतिथियोंसे बाबा हँसकर जब बात करते थे, निज जनोंको जब परामर्श देते थे, परिक्रमा देते समय श्रीहरिवल्लभजीके साथ प्रसन्न वदनसे जब आलापचारी करते थे, तब ऐसे क्षणोंमें उनकी मुखाकृतिको देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि बाबा भीषण कष्ट झेल रहे हैं। उनका उत्फुल्ल वदन और उन्मुक्त संलाप लोगोंको भ्रममें डाल देता, पर कष्ट तो कष्ट ही था।

* * *

हड्डी टूटनेके दूसरे दिन २७-९-७८ का एक प्रसंग है। बाबा शौचालय गये। शौचालयका द्वार बाहरसे ढाल दिया गया। बाबाने अपना कटिवस्त्र खोलना चाहा, पर वे खोल नहीं पाये। हड्डी टूटनेके कारण दाहिना हाथ तो बेकार था ही, पीड़ाकी अधिकताके कारण शरीर भी न पर्याप्त हिल सकता था और न अधिक झुक सकता था। बाँये हाथसे कटिवस्त्र खोलनेका प्रयास किया, पर सफलता नहीं मिली। ऐसा लगता है कि कटिवस्त्रका छोर कहीं किसी प्रकार अटक अथवा उलझ गया था। बाबाने खोलनेका प्रयास एक बार और किया, किंतु पुनः असफलता। पुनः प्रयास किया, पर प्रयासको व्यर्थ देखकर बाबा निराश मनसे खड़े हो गये, लगे देखने 'उनकी' ओर। 'वे' बाबाकी ओर देख रहे थे और बाबा 'उनकी' ओर। वे माने भगवान श्रीकृष्ण। कितनी देर तक परस्परावलोकन होता रहा, इसका निर्णय कठिन है, पर जब उधरसे ध्यान हटा तो बाबाने देखा कि कटिवस्त्र खुला पड़ा है। उनके प्रति बाबाका मन प्यारसे भर गया। बाबा कहने लगे – तुम्हारे अतिरिक्त मेरा है कौन? क्या तुम यह सब भी करते हो? सच है, तुमको कोई भी कार्य करनेमें संकोच नहीं होता।

हड्डी टूटनेपर बाबा एक और बात कहा करते थे – जब कभी कोई कष्ट शरीरपर आनेवाला होता था तो उसकी पूर्व-सूचना मिल जाया करती थी। हृदयाराध्य वे श्रीकृष्ण स्वयं आकर बता जाया करते थे, पर इस बार कोई पूर्व-सूचना नहीं मिली और यह तो उनके अतिशय प्यारका परिचायक है कि उन्होंने सूचना देनेकी आवश्यकता समझी ही नहीं।

* * * * *

तृतीय काष्ठ मौन व्रत

लगभग एक वर्ष पूर्व बाबाने कह दिया था कि ७ दिसम्बरको मैं मौन-व्रत धारण कर लूँगा। जिस समय यह बात हमलोगोंके कानमें पड़ी थी, उस समय तो कुछ ध्यान दिया नहीं गया। बस, यही सोचा जाता था कि ७ दिसम्बर १९७८ की तिथि, एक-दो माहकी तो बात ही क्या, अभी तो कई महीनोंके बाद है, अभीसे क्या सोचना-विचारना? पर सुखके ये क्षण पलक मारते-मारते बीत गये और उस तिथिमें अब केवल दो-अढ़ाई मास शेष रह गये थे। 'बाबा अब मौन ले रहे हैं और इस व्रतकी अवधि अनिश्चित है, अतः बाबासे अवश्य मिल लेना चाहिये' – इस प्रकारकी विकल भावनासे भावित लोगोंका गीतावाटिकामें आना आरम्भ हो गया। सितम्बर ७८ के अन्तिम सप्ताहमें बाबाके हाथके मूल भागकी हड्डी टूटी थी, तभीसे मिलनेवाले लोगोंके आनेका क्रम आरम्भ हो गया था। आनेवाले लोगोंकी यह शृंखला ६ दिसम्बरतक कभी खण्डित हुई ही नहीं। कहाँ-कहाँसे लोग नहीं आये? आनेवालोंकी संख्याको देखकर ऐसा भी कह सकते हैं कि भीड़की सँभाल और भोजनकी व्यवस्थाकी दृष्टिसे श्रीराधाष्टमी-महोत्सवका लघु-रूप ही उपस्थित हो गया था। जो लोग आते थे, उनसे मिलकर बाबा उन्हें वापस भेज देते थे। यदि सभी अन्तिम ६, ७ दिसम्बरतक टिकते, तब तो भीड़ बहुत ही अधिक हो जाती। जिन-जिनको भी बाबाने विदाई दी, उन सभीको अपने रोम-रोमके प्यारसे आप्यायित करके विदाई दी।

न जाने कितने सहस्र व्यक्ति बाबासे जुड़े हुए हैं, यह जुड़ना भी तो आध्यात्मिकताको लेकर ही है। भगवदीय जीवन, आध्यात्मिक प्रकाश, साधनात्मक पथप्रदर्शन, संत-चरणाश्रय, महदाश्वासनकी लालसा लिये हुए ही तो लोग दूर-दूरसे आये थे। जो जिस भावसे आया, उसको वही मिला। बाबाकी अहैतुकी कृपाका द्वार इस समय पूर्ण उन्मुक्त था, बाबाका करुणा-विगलित हृदय इस समय परम उदार था। जिनके अस्तित्वका आधार प्रीति ही है, जिनके व्यक्तित्वकी रचना प्रीतिसे हुई है, जिनमें शिखसे नखतक प्रीति-ही-प्रीति है, प्रीतिका दान ही जिनके जीवनका कार्य है, ऐसे प्रीतिरसावतार बाबासे मिलकर ऐसा कौन है जो सुतृप्त तथा संसिक्त नहीं

हुआ? जिस-जिसने अपनी जो-जो समस्या बाबाके सामने रखी, वह समस्या चाहे लौकिक हो, या पारलौकिक हो, या पारमार्थिक हो, सभी समस्याओंका समाधान बाबाने अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए दिया। मिलनेवाले लोगोंमें व्यक्ति सभी स्तरके थे। कोई संत तो कोई सांसारिक, कोई श्रेष्ठसाधक तो कोई साधारणसाधक, कोई आस्तिक तो कोई नास्तिक, कोई धनिक तो कोई निर्धन, कोई शिक्षित तो कोई अशिक्षित, कोई विनम्र तो कोई उद्धत, कोई शिष्ट तो कोई धृष्ट और इन सभी मिलनेवाले लोगोंके व्यवहार अपने-अपने स्तरके अनुरूप हुए, पर इससे बाबाको क्या? बाबा तो अपने स्वरूपसे अच्युत थे। बाबा अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही सभीसे प्यारपूर्वक मिलते रहे।

एक व्यक्ति, जिसने बातोंकी सही और पूरी जानकारीके अभावमें अनेक भ्रान्त धारणाएँ बना रखी थी, वह व्यक्ति तो बाबाको शारीरिक दृष्टिसे आघात पहुँचानेकी अभद्र भावना लिये हुए आया था, पर बाबा उससे भी मिले, कई बार मिले और आश्चर्यकी बात यह कि वह व्यक्ति भी वापस लौटा प्यारमें पगा हुआ। सांसारिक लोग अपनी संसारपरक समस्या लेकर, साधक लोग अपनी साधना-परक उलझन लेकर और संत लोग अपनी ईश्वरानुराग-परक चर्चा लेकर बाबाके पास आये। जो कोई भी आया, बाबाने सभीको पर्याप्त समय दिया, भले ही लोगोंसे मिलते-मिलते और बातें करते-करते बाबाके शरीर और वाणीकी स्थिति चिन्तनीय बन जाये। स्वास्थ्यको देखते हुए भिक्षा ग्रहण कर लेनेका कार्य सूर्यास्तके पूर्व हो जाना चहिये था, पर अब भिक्षा रातको प्रायः आठ-नौ बजे होने लग गयी।

बाबाको केवल ६ दिसम्बरतक बोलना था, अतः बाबाने अक्टूबर मासमें ही कह दिया था – आगन्तुक स्वजनोंसे जगत-सम्बन्धी चर्चा केवल ३० नवम्बरतक करूँगा, ३० नवम्बरतक ही किसीको उसके व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी सुझाव दे सकूँगा, इसके बाद मात्र शुद्ध पारमार्थिक भगवच्चर्चा होगी।

बाबाको अन्य कुछ भी स्वीकार नहीं था। वे मात्र पारमार्थिक चर्चा, साधन-साध्यचर्चा, भगवच्चर्चा करना चाहते थे। इस कारण एक विचित्र प्रकारका वातावरण सृष्ट हो गया था। लोगोंको मानो यही लग रहा था कि बाबाके मौन होनेकी तिथि ७ दिसम्बर नहीं, ३० नवम्बर ही है। लोगोंको

ऐसा लग रहा था मानो अब प्रकट स्तरपर ३० नवम्बरको ही बाबासे सम्पर्क विच्छिन्न हो रहा है। 'बाबा यदि बोलेंगे तो न जाने कब बोलेंगे, यह सब अंधकारमें है!' —इस प्रकारके भावके प्रवाहमें बहते हुए सब और अधिक करुणाविष्ट हो गये।

इसी ३० नवम्बरको रासमण्डलीके स्वामी श्रीफतेहकृष्णजीके अन्तरकी दर्द-भरी तानसे तो करुणाका सागर ऐसा उफन पड़ा कि सब उसमें बह गये, यहाँतक कि बाबाके लिये भी अश्रु-संगोपन कठिन हो गया। बाबाके भीतर एक विचित्र आकर्षण था, उनके व्यक्तित्वमें एक ऐसी अद्‌भुत सम्मोहिनी शक्ति थी कि कोई भी सहृदय अपने-आप खिंचा चला आता था। बाबाके इसी चुम्बकीय आकर्षणसे खिंचकर ही तो एक-दो दिन पहले प्रणाम निवेदन करनेके लिये श्रीफतेहकृष्णजी वृन्दावनसे अकेले चले आये थे, उसी तरह चले आये थे, जिस प्रकार ये अन्य भक्तगण आये थे। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा ३० नवम्बरको सूर्यास्तके समय हुई। सभी भक्तगण श्रीगिरिराज-परिसरमें बैठे थे। बाबा परिक्रमा लगा रहे थे, ठीक इसी समय बाबाके चुम्बकीय आकर्षणको मिससे व्यक्त करनेके लिये श्रीफतेहकृष्णजीने एक गजल गायी —

शमा जलती है तो परवाने चले आते हैं,
सर के बल इश्क के दिवाने चले आते हैं।
अब न रोके से रुकेगी ये दिल की लगी,
लोग बेकार में समझाने चले आते हैं।।

फतेहकृष्णजीने ठीक ही गाया कि इधर-उधरके अनेक जागतिक कार्योंमें फँसे रहनेके कारण मुझे फुरसत कहाँ कि मैं तुम्हारे पास आ सकूँ? इस पर भी यदि तुम मुझे अपने पास खींच लो तो मैं क्या करूँ? मैं आया नहीं हूँ, आकृष्ट किया गया हूँ। मैं सामान्य स्तरका अति साधारण प्राणी भला क्या जानूँ कि भगवत्प्रीति किसे कहते हैं और प्रीतिका प्रवाह और उसका प्रभाव कैसा होता है, पर यदि तुम ही अपनी अहैतुक आत्मीयतावशात् प्रीतिकी पाठशालामें मेरा नाम लिखा दो तो मैं क्या करूँ? प्रीतिका पाठ मैं पढ़ना नहीं चाहता, पर यदि तुम ही अपने सहज स्वभावसे परवश हुए मुझे पढ़ाओ तो मैं क्या करूँ?

श्रीफतेहकृष्णजीने दूसरी गजल गायी –

मुझे सब जानते हैं मैं शराबी नहीं,
एक कतरा भी पीने की आदत नहीं।
जाम से जो पीऊँ तो गुनहगार होऊँ,
वो नजर से पिलायें तो मैं क्या करूँ?

इतने लोगोंको आकृष्ट करके, सबको स्नेह-सूत्रमें बाँध करके और सभीसे आन्तरिक घनिष्ठता स्थापित करके अब अलग होनेका इरादा तुमने कर लिया, तुम्हीं सोचो, यह कहाँतक उचित है? इस स्थितिपर अब तुम ही विचार करो। तुम्हें अच्छी तरह पता है कि अनेकोंकी मति मूर्च्छित हो रही है, अनेकोंकी भावनाएँ बिलख रही हैं, अनेकोंका दिल दहल रहा है, फिर भी तुम मौन ले रहे हो? सब जान करके भी कठोर मौनका तुम इरादा कर रहे हो?

श्रीफतेहकृष्णजीने अपनी अन्तिम गजल गायी –

रुख से पर्दा हटा ले जरा साकिया,
रंग महफिल का एकदम बदल जायेगा।
जो कि बेहोश हैं होश में आयेंगे,
गिरनेवाला है वो भी सँभल जायेगा।।

अपने पर्दे का रखना है जो कुछ भरम,
सामने आना जाना मुनासिब नहीं।
एक बहशी से छेड़ अच्छी नहीं,
क्या करोगे अगर दिल मचल जायेगा।।

मेरा दामन तो जल ही चुका है मगर,
आँच तुम पै भी आये ये गवारा नहीं।
मेरे आँसू न पोंछो खुदा के लिये,
वरना दामन तुम्हारा भी जल जायेगा।।

बागवाँ! फूल तोड़े तो तोड़ इस कदर,
शाख हिलने न पाये ना आवाज हो।
वरना फिर ना चमन में बहार आयेगी,
हर कली का कलेजा दहल जायेगा।।

सिर्फ बैठे रहो, कुछ तसल्ली न दो,
वक्त मरने का कुछ मेरा टल जायेगा॥
ये क्या कम है मसीहा के रहने ही से,
मौत का भी इरादा बदल जायेगा॥

श्रीफतेहकृष्णजी गाते जा रहे थे और उनकी आँखोंसे आँसू झरते जा रहे थे। ये आँसू क्या केवल उन्हीं फतेहकृष्णजीके ही थे? नहीं, सर्वथा नहीं। न जाने कितने-कितने हृदयोंके प्रतिनिधि बने हुए वे अश्रु-कण सबकी मूक व्यथाको वाणी प्रदान कर रहे थे। उन आँसुओंमें एक गहरी व्यथा थी और एक सच्चा प्रतिनिधित्व था – इस तथ्यकी साक्षी बन रही थीं अनेकोंकी संतप्त भावनाएँ, अनेकोंकी विकल अश्रु-धारा, अनेकोंकी आकुल सिसकियाँ। और इस सिसकते वातावरणने परिक्रमा-स्थलीमें खड़े बाबाके नयनोंको भी सजल बना दिया। सिसकते वातावरणकी वह शाम भी ढल गयी, फिर वह रात भी बीत गयी और फिर सिसकते-सिसकते एक-एक करके शेष छः दिन भी व्यतीत होने लगे।

इन छः दिनोंमें बाबा लोगोंसे अकेलेमें मिलते तो थे, पर कहाँतक मिलें? जिन लोगोंको बाबाने विदाई दे दी थी, उनमेंसे कई दुबारा आ गये बाबाके प्यारमें खिंचे-खिंचे। बाबा तो एक और मिलनेवाले अनेक, अतः एक मध्यम मार्ग यह निकाला गया कि परिक्रमाके बाद बाबा सभी आगन्तुक लोगोंके सामने सामूहिक रूपसे अपना संदेश दें। दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठवें दिनांकोंको बाबाने अपनी अमृत वाणीद्वारा सभीको दिव्योपदेश दिया। उसका सार यही था –

मानव जीवन भगवानका अद्भुत वरदान है। इस मानव शरीरके कारण ही पशु-पक्षी-कीट-पतंग आदि-आदि योनियोंसे हमारी श्रेष्ठता है। इस अद्भुत वरदानकी हम उपेक्षा न करें। अब और अधिक भोग-परायण न बनें। कुछ तो भगवानकी ओर उन्मुख हों। भगवानके आश्रयसे सर्वसम्भव है। हम कैसे भी अपराधी-दीन-पतित क्यों न हों, भगवानका द्वार हमारे लिये सदा खुला हुआ है। भगवान कभी नाराज होते ही नहीं। उनके जितना सुहृद् भी कोई है ही नहीं। मैं अपने जीवनके अनुभवके आधारपर कह रहा हूँ कि भगवानपर निर्भर होनेवालेका कोई काम अटकता ही नहीं। वे लौकिक कार्य, जो प्रतिकूलताओंके जमघटके कारण सर्वथा असम्भव कहे जा सकते हैं, भगवत्कृपाका आश्रय लेते ही सभी पूर्ण रूपसे सम्भव हो जाते हैं। भगवानकी स्मृति सारे अमङ्गलोंको विनष्ट करती है, परम शान्ति प्रदान करती है,

जीवनको पवित्र बनाती है और अन्तमें भगवानकी प्राप्ति कराती है। भगवत्स्मरणका फल सद्यः मिलता है, एक बार भगवानकी ओर उन्मुख होकर तो देखें। भगवानपर निर्भर रहनेवाले आस्तिकके जीवनमें प्रभु-विश्वास एक ऐसी अनोखी वस्तु है, जो जीवनमें असम्भव-से लगनेवाले कार्योंको भी सम्भव कर देती है।

इन छः दिनोंमें प्रतिदिन बाबा लोगोंसे अकेलेमें अलग मिलकर भी परामर्श देते रहे, पर दो दिसम्बरसे पाँच दिसम्बरतक, इन चार दिनोंमें सामूहिक रूपसे जो बातें बाबाने बतायीं, उन सब बातोंसे भी परेकी कोई विशेष बात, अपने जीवनकी कोई लोकातीत विशेष बात बाबा अन्तिम दिवस ६ दिसम्बरको सबके समक्ष कहना चाहते थे, किन्तु प्रश्न यह था कि बतायें किस प्रकारसे? और पंजाबकी एक श्रेष्ठ विभूतिके बड़े ही दर्दीले प्रसङ्गके बहाने बाबाने अपनी वह अति विशेष लोकोत्तर बात संकेत रूपमें कह दी।

अपना दिव्य संदेश प्रदान करनेके लिये बाबाने जिन श्रेष्ठ विभूतिके जीवन-प्रसंगका उदाहरण दिया, प्रसंगानुरोधसे उनके एक पूर्वजका अति संक्षिप्त परिचय देना समुचित रहेगा। पंजाबके भाई श्रीपरमानन्दजीको प्रखर देशभक्ति, प्रबल धर्मभक्ति और प्रवर प्रभुभक्ति अपने पूर्वजोंसे मिली थी। गुरु श्रीगोविन्द सिंहजीके पिताश्री गुरु श्रीतेगबहादुर सिंहजीको धर्म-मदान्ध विदेशी-विधर्मी मुसलमान शासक औरंगजेबने आदेश दिया – आप अपना हिन्दू धर्म त्याग करके इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें, नहीं तो आपका सिर कत्ल कर दिया जायेगा।

जब इनके साथी भाई श्रीमतिदासजीने सुना तो उन्होंने बादशाह औरंगजेबसे कहा – यह कार्य आप मुझसे आरम्भ करें।

भाई श्रीमतिदासजीसे जब विदेशी मजहब स्वीकार करनेके लिये कहा गया तो उन्होंने अपने मुँहका थूक बाहर फेंकते हुए केवल इतना ही कहा – आप मेरे हिन्दू धर्मका अपमान नहीं कर सकते, भले ही आप और कुछ कर लें।

मजहबी जुनूनमें डूबे हुए मुगल बादशाहको बड़ा तिरस्कार-बोध हुआ। इसके फलस्वरूप बादशाहने यह आदेश दिया कि मतिदासको चाँदनी चौकमें खड़ा करके चीर दिया जाये। दिल्लीके चाँदनी चौकमें आरा सिरपर रखकर भाई श्रीमतिदासजीकी खोपड़ीके दो भाग कर दिये गये वैसे ही, जैसे

खरबूजेके दो टुकड़े बराबर-बराबर कर दिये जाते हैं। चीरे जाते समय आरा ज्यों-ज्यों देहमें बढ़ता जाता, त्यों-त्यों 'राम-राम' की ध्वनि ऊँची होती जाती।

वीर शिरोमणि भाई श्रीमतिदासजीके वंशज थे भाई श्रीपरमानन्दजी, जिन्हें राष्ट्रभक्तिके कारण अँगरेजी सरकारसे पहले फाँसीकी सजा मिली और बादमें उसे बदल करके काला पानी अर्थात् आजीवन कारावासके दण्डके रूपमें कर दिया गया। इन्हीं श्रीपरमानन्दजीके भाई श्रीबालमुकुन्दजी और उनकी धर्मपत्नीके जीवनका उदाहरण देते हुए ६ दिसम्बर १९७८ को बाबाने परिक्रमा-स्थलीमें उपस्थित सभी भक्तोंके सामने कहा –

पंजाबके विख्यात देशभक्त हो गये हैं भाई श्रीपरमानन्दजी। अपनी देशभक्तिके कारण श्रीपरमानन्दजीको कालेपानीकी कठोर जेल-यातना भी भुगतनी पड़ी। इन्हींके एक सहोदर भाई थे श्रीबालमुकुन्द। भाई श्रीबालमुकुन्दके हृदयमें बचपनसे ही देशप्रेमकी आग लगी हुई थी। वे बचपनसे ही बड़े विरक्त थे। मन-ही-मन वे अपने प्राणोंको देशकी बलिवेदीपर न्यौछावर कर चुके थे। वे चाहते थे कि भले मेरे प्राण चले जायें, पर मेरा देश भारत स्वतन्त्र हो जाये। प्रभु-प्रदत्त अपनी यत्किंचित् क्षमता और योग्यताके अनुसार इस दिशामें जितना प्रयास वे कर सकते थे, सतत करते रहते थे। बालमुकुन्दजीके इस रवैयेको देखकर घरवालोंने उनका विवाह कर दिया, जिससे कि बालमुकुन्दका ध्यान बँट जाये और मन संसारमें फँस जाये। उनकी पत्नीका नाम था रामरिक्खीबाई। रामरिक्खीबाई थी बड़ी सुन्दर, बड़ी सुशीला, बड़ी सद्गुणसम्पन्ना, बड़ी अनुगता, बड़ी पति-परायणा, इतना होकर भी वह रामरिक्खीबाई पति बालमुकुन्दको अपने मोह-पाशमें बाँध नहीं पायी। विवाह हो जानेके बाद भी श्रीबालमुकुन्दके हृदयमें देशभक्तिकी वह आग न घटी, न मिटी। अपनी धुनके पक्के बालमुकुन्दजी अपने ढंगसे देशसेवाके कार्यमें पूर्ववत् संलग्न रहे। बात शायद सन् १९११ की है। वह जमाना कठोर अँगरेजी शासनका था। किसी बम-काण्डमें अँगरेजी सरकारने बालमुकुन्दजीको पकड़ लिया और जेलमें डाल दिया। भाई श्रीपरमानन्दजी सतत प्रयत्नशील थे कि मेरा सहोदर भाई जेलसे छूट जाये। घरमें अकेली रामरिक्खीबाईको भी पता चल गया कि मेरे पति जेलमें हैं। उधर बालमुकुन्दजीको जेलकी चहारदिवारीमें बन्द कर दिया गया था और इधर रामरिक्खीबाईने कमरेकी चार दीवालके भीतर स्वयंको बन्द कर लिया। उसने जानना चाहा कि मेरे पतिको जेलमें कैसा भोजन मिलता है। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि उनको तो

धूलि-सनी आटेकी रोटियाँ और धूलि-मिली दाल खानेको मिलती है तो उनका कलेजा काँप उठा। अब जब भी रामरिक्खीबाई भोजन करती, अपनी रोटी-दालमें रेत मिला लिया करती। कोई पूछता कि तुम यह क्या करती हो तो वह रामरिक्खीबाई यही कहती – वे तो जेलमें धूलिभरा भोजन करते हैं और फिर क्या मैं यहाँ सुन्दर भोजन करूँ?

भाई श्रीपरमानन्दजीके अथक प्रयासके बाद भी श्रीबालमुकुन्दजी अपराधसे विमुक्त नहीं हो सके। अँगरेजी सरकारने बालमुकुन्दको प्राण-दण्डकी सजा सुना दी और उनको फाँसीके तख्तेपर लटका दिया गया। उन दिनों राष्ट्रवीरोंके शवको अँगरेजी सरकार नहीं दिया करती थी। शोक-निमग्न परमानन्दजी आये घरपर, पर किस प्रकार यह करुण समाचार अपनी अनुजवधू रामरिक्खीबाईको दिया जाय। उनको खिन्न देखकर रामरिक्खीबाईने पूछा – भइयाजी! आज आप इतने उदास, अत्यन्त उदास क्यों हैं? क्या बात है, सच-सच बता दीजिये।

भाई परमानन्दजी बड़ी कठिनाईके साथ इतना ही कह सके – भाई बालमुकुन्द इस संसारमें अब नहीं रहे।

इतना सुनना था कि रामरिक्खीबाई पागल-सी हो गयी। वह पलथी मार करके बैठी हुई थी, उसने अपने हाथ जोड़ लिये और पागलिनीकी तरह प्रलाप करती हुई बोलने लगी – 'प्रभो! क्षमा कर दो, थोड़ी देरी हो गयी। प्रभो! क्षमा कर दो, थोड़ी देर हो गयी' ऐसा उसने कई एक बार कहा और उसका शरीर काँपने लगा। कहते-कहते रामरिक्खीबाईने अपना मस्तक नीचे किया और फिर वह नत-मस्तक कभी उठा ही नहीं। उसकी आत्मा अपने परमात्माके पास थी और उसकी मिट्टी इस धरतीपर। इस धरतीवाले उस प्राणशून्य शरीरका संस्कार करते रहे।

भारत-भूमिके इतिहासके पृष्ठ इस प्रकारके प्राणोत्सर्गकी दिव्य गाथाओंसे भरे पड़े हैं। देशप्रेमकी, धर्मप्रेमकी, पतिप्रेमकी आग अनोखी होती है और इससे भी बढ़कर अनोखी होती है भगवत्प्रेमकी आग।

भगवत्प्रेमकी आग कैसी महदद्भुत होती है, इसे अनुभव कर पाता है कोई महाभाग्यशाली मानव ही। हमलोग कल्पना ही नहीं कर सकते कि भगवत्प्रेमकी आग जल जानेपर उस भाग्यशालीकी कैसी दशा हो जाती है। भगवानके प्रेमके आवेशमें जब कोई पागल हो उठता है तब उस प्राणोन्मादी पवित्र आगमें जलनेवालोंकी स्थिति बड़ी विचित्र होती है। मैं चाहता था कि

यदि आज भी एक-दो-चार लोग भगवत्प्रेमकी ओर अपना कदम बढ़ाते तो प्रत्यक्ष हो जाता कि यह कितनी श्रेष्ठ वस्तु है, पर अधिकांशका जीवन व्यर्थ जा रहा है। भगवत्प्रेमकी दिशाकी ओर चलनेपर तथा भगवत्प्रेमके राज्यमें पहुँचनेपर कितनी प्रसन्नता कितनी शान्ति कितनी शुचिता कितनी सरसता मिलती है, यह तो मात्र-अनुभवगम्य है, मात्र-स्वसंवेद्य है। जिसके जीवनमें भगवत्प्रेमकी आग प्रज्वलित है, उसपर भगवानकी अपार कृपा है। यह ऐसा विषय है, जिसे वाणीद्वारा समझाया ही नहीं जा सकता।

अब कुछ घंटोंके बाद ही मैं मौन हो जाऊँगा। किस कामके लिये मैं निमन्त्रित किया गया हूँ, मुझे पता नहीं है। इस मौनके लिये भगवानने निमन्त्रण क्यों दिया है, हो सकता है कि मौन लेनेके बाद एक-दो दिनमें ज्ञात हो जाये, पर मैं तो वापस आऊँगा नहीं हेतुको कहनेके लिये। इस विदाईकी वेलामें मैं सभीसे क्षमा-याचना करता हूँ। मेरा भरसक प्रयत्न रहा है कि मैं किसीका जी नहीं दुखाऊँ, पर यदि मेरेद्वारा कोई ऐसी क्रिया हो गयी हो तो उसके लिये बारम्बार क्षमा-याचना है। एक बात ऐसी है कि जिसपर शायद आप लोग विश्वास नहीं करेंगे। सच्ची बात यह है कि वह क्रिया मेरे द्वारा नहीं हुई है। कोई मेरे अन्दर है, वह मेरे अन्दर था, है और रहेगा भी, उसीने मेरे द्वारा वैसी क्रिया करवायी है। क्रियाका कर्ता कोई और है, पर हो रहा है मेरा नाम कि बाबाने ऐसा किया, बाबाने ऐसा कहा। अस्तु, ऐसी जो भी क्रिया मेरे द्वारा हुई हो, उसके लिये बार-बार क्षमा-प्रार्थना है। जीवनमें कभी भी किसी प्रकारसे भी यदि किसीका मेरे द्वारा जी दुखा हो तो मैं उस व्यक्तिसे, वह व्यक्ति चाहे दूर हो चाहे पास हो, हाथ जोड़कर, उसके चरणोंकी अनन्त वन्दना करते हुए मैं उससे क्षमा चाहता हूँ। बस, इतना ही मुझे कहना है।

* * *

परिक्रमाका वातावरण कितना सकरुण था, कितना गम्भीर था, यह बतलाना कठिन है। परिक्रमा-स्थलीसे बाबा अपनी कुटियापर आये। बाबूजीका निधन सन् १९७१ में हुआ था, तबसे लेकर अबतक इन साढ़े सात वर्षोंमें अनेक आवश्यक पत्र-पुस्तक-कागज आदि बाबाके पास इकट्ठे हो गये थे। पुस्तकें यथा-योग्य व्यक्तियोंको दे दी गयीं, अधिकांश कागज-पत्र जला दिये गये तथा अत्यन्त आवश्यक कागज-पत्र भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीको दे दिये गये। इस कार्यको अपनी उपस्थितिमें सम्पन्न करवाकर बाबा माँके पास

गये। वहाँ बहुत देर रहे। इसके बाद स्नान तथा भिक्षा की। यह करते-करते रात्रिके डेढ़ बज गये। भक्तोंका, अतिथियोंका, नगरके व्यक्तियोंका, वाटिकावासियोंका समुदाय ज्यों-का-त्यों बाबाकी कुटियाके सामने उपस्थित था और बाबाकी हर क्रियाको एकटक दृष्टिसे निहार रहा था। भिक्षाके बाद बाबा चार-पाँच व्यक्तियोंसे अन्तिम बार मिले। सबसे अन्तमें बाई तथा जीजाजी (परमादरणीया श्रीसावित्रीबाई फोगला और श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला) से मिले, फिर शौच गये।

शौचसे निवृत्त होते-होते सवा तीन बज गये। बाबा अब सबके सामने खड़े हैं और सबको अन्तिम प्रणाम कर रहे हैं। अपने कुटीरके पास खड़े हैं बाबा सिक्त-नेत्र, प्रीति-विह्वल, मूक-अधर, कर-बद्ध, नत-मस्तक और उनके सामने खड़ा है सारा समुदाय व्यथित-नेत्र, मथित-हृदय, रुद्ध-कण्ठ, शब्द-रहित, स्पन्दन-शून्य, प्रतिमा-समान। इस समयका वर्णनका न करना ही उत्तम है।

श्रीहरिवल्लभजीने सकरुण स्वरमें अन्तिम विनती की –

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्रीवल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माँहि अँधेरो।।
साधन और नहीं या कलि में, जासों होय निबेरो।
सूर कहा कहै, दुबिध आँधरो, बिना मोल को चेरो।।

और ७ दिसम्बर गुरुवारकी ब्राह्म-वेलामें बाबाने अपना मौन व्रत ले लिया।

* * * * *

श्रीगिरिराज-परिक्रमा के नियम

बाबाने जब दिसम्बर १९७८ में काष्ठ मौन लिया था, तब श्रीगिरिराज-परिक्रमाके नियमके निर्वाहके बारेमें कुछ व्यवस्था सम्बन्धी बातें उनसे पूछी गयी थीं। उस समय बाबाने अनेक तथ्योंकी चर्चा करते हुए कहा था – मैं तो नित्य श्रीगिरिराज परिसरमें निवास करता हूँ। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगानेके नियमका निर्वाह भी तबतक होता ही रहेगा, जबतक मेरी स्मृति ठीक है। इसका एक विशेष कारण है। जब मैंने यहाँ गीतावाटिकामें श्रीगिरिराजजीकी स्थापना करके परिक्रमा लगानी आरम्भ की थी, तब प्रियतम नीलसुन्दरने अत्यधिक ऐकान्तिक सम्बोधनसे सम्बोधित करते हुए

मुझसे कहा था कि तुम्हारे परिक्रमाके नियमसे अन्योंको लाभ होगा। जो भी इन श्रीगिरिराजजीका दर्शन-वन्दन-अर्चन करेंगे और परिक्रमा लगायेंगे, उनकी व्रजभावकी ओर गति होगी तथा उनके जीवनमें व्रजभावका उन्मेष होगा। प्रियतमके ये उद्‌गार मेरे लिये महत्त्व रखते हैं। जहाँतक परिक्रमाके नियम निर्वाहका प्रश्न है, परिक्रमाका करना या न करना, ये दोनों बातें मेरे लिये समान अर्थ रखती हैं। जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये लोग श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगाया करते हैं, वे नीलसुन्दर तो नित्य मेरे पास रहते हैं, अतः परिक्रमाके नियमका अनुशासन मुझपर नहीं है। ऐसा होकर भी नीलसुन्दरके वचनका अनुपालन करनेके लिये मुझे परिक्रमा सदैव करनी ही है।

इस नियमके निर्वाहमें बाधाएँ कम नहीं आयीं। कभी अत्यधिक अस्वस्थता, कभी घोर अन्तर्मुखता और कभी नितान्त व्यस्तता, इस प्रकार समय-समयपर कठिन प्रतिकूलताएँ सामने आयीं, परन्तु इन सारी विकट परिस्थितियोंके मध्य नियमका निर्वाह अखण्ड रूपसे होता रहा और इस अखण्ड निर्वाहने गीतावाटिकाके आध्यात्मिक वातावरणका कल्पनातीत रीतिसे परिपोषण किया है। श्रीगिरिराज-परिक्रमा बाबाके लिये 'भाव-वितरण' का एक सशक्त माध्यम बन गया था। बाबा परिक्रमा लगा चुकनेके बाद सभी उपस्थित भक्तोंपर दृष्टि-पात किया करते थे। इस दृष्टि-पातको वस्तुतः कहना चाहिये 'भाव-दान'। इस प्रक्रियासे बाबा सबको भावका दान किया करते थे।

* * * * *

परिवर्तन के प्रति अरुचि

बाबाने ७ दिसम्बर १९७८ को जब काष्ठ-मौन व्रत लिया, तब व्रत लेनेके पूर्व उन्होंने यही कहा था कि मेरी सेवामें केवल तीन व्यक्ति रहेंगे रामसनेहीजी, भगतजी और गुरुचरणजी। उनके इस आदेशको सुनकर कई लोगोंका मन बड़ा व्यथित हुआ कि उनके शरीरकी जैसी स्थिति है तथा जिस प्रकारका ऐकान्तिक जीवन वे व्यतीत करना चाहते हैं, उसको देखते हुए सबको यही लग रहा था कि केवल तीन व्यक्तियोंसे काम नहीं चल पायेगा। सेवा-कार्यकी आवश्यकताको देखते हुए सब चाह रहे थे कि कम-से-कम डा.लालदेव सिंह तथा भीमसेनजी चोपड़ाको सेवा करनेके लिये अनुमति मिलनी ही चाहिये। निकटवर्ती आत्मीय जनोंकी भावनाओंको वाणी दी

ठाकुरजी (घनश्यामजी शर्मा) ने। ठाकुरजीके काफी प्रयासके बाद बात बन गयी और डाक्टर साहब तथा चोपड़ाजीको सेवा-कार्य करनेके लिये अनुमति मिल गयी। अब बाबाकी सेवामें पाँच व्यक्ति रहने लगे।

मौन व्रत ले लेनेके कुछ दिन बादकी बात है। इन दिनों बाबाके शरीरको दबानेकी सेवा डाक्टर साहब और चोपड़ाजी किया करते थे। एक दिन किसी अन्य काममें लगे रहनेके कारण चोपड़ाजी पैर नहीं दबा पाये। चोपड़ाजीके स्थानपर रामसनेहीजी पैर दबाने लगे। मौन व्रतके पहले रामसनेहीजी बाबाके पैर दबाया ही करते थे, अतः वे दबाने लगे तो कोई बड़ी या नयी बात नहीं थी। बाबा यही समझ रहे थे कि चोपड़ाजी पैर दबा रहे हैं। ज्यों ही उनको यह पता चला कि रामसनेहीजी दबा रहे हैं, उन्होंने अपना पैर समेट लिया। इतना ही नहीं, अब शरीर दबवाना भी उन्होंने बन्द कर दिया। सबको बड़ा दुःख हुआ, पर विवशता थी। तनिकसे परिवर्तनके कारण शरीर दबवानेकी सेवा बन्द हो गयी। किसीने कोई प्रमाद नहीं किया और मर्यादाका अतिक्रमण नहीं किया, इसके बाद भी तथ्य यह था कि बाबाको कोई परिवर्तन रुचिकर नहीं। कुछ प्रयास किया गया, पर वह सफल न हो सका।

कई सप्ताह बीत गये। सन् १९७९ के मार्च मासमें टब-स्नान कराते समय डाक्टर साहबको और चोपड़ाजीको यह दिखलायी दिया कि बाबाका दाहिना पैर बायें पैरकी अपेक्षा दुबला हो गया है। इसी दाहिने पैरमें लकवेका झटका आया था। इन दिनों जब बाबा परिक्रमाके लिये आते थे तो इस ढंगसे चलते थे, मानो अब गिरे, तब गिरे। वे एक-एक कदम बहुत सँभाल-सँभालकर रखते थे। हम सभीको आश्चर्य होता था कि यह क्या हो गया। इस दुबलेपनको देखकर डाक्टर साहबने कहा – इस पैरकी नसें सूखती जा रही हैं और इसी कारण दाहिना पैर शरीरके भारको सँभाल नहीं पा रहा है, अतः बाबाको बहुत सँभल-सँभल करके कदम रखना पड़ता है।

अब प्रश्न यह था कि इसका इलाज क्या है? चोपड़ाजीने कहा – प्राकृतिक चिकित्सक डा. श्रीहीरालालजी जिस प्रकार मालिश किया करते थे, उस प्रकारसे मालिश हो तो शायद पैरोंकी नसोंमें सक्रियता बढ़े, पर अब तो बाबाने शरीर दबवाना ही बन्द कर दिया है।

बड़ी उलझन थी कि बात किस प्रकार बने। चोपड़ाजीने साहस करके बाबासे कहा – आपके दाहिने पैरकी स्थिति नाजुक है। पैरकी नसें सूखती

चली जा रही हैं। मालिश करनेसे सुधारकी आशा है। आप मालिश करनेके लिये आज्ञा प्रदान करें। मालिश केवल डाक्टर साहब किया करेंगे और कोई दूसरा मालिश नहीं करेगा। मालिश करनेसे सूखापन दूर होगा।

थोड़ी देर अनुनय-आग्रह करनेके बाद बाबाने अनुमति प्रदान कर दी, किन्तु अनुमति दी केवल पाँच मिनट मालिश करनेके लिये।

श्रीचोपड़ाजीको बड़ी प्रसन्नता हुई कि मालिश करनेके लिये अनुमति मिल गयी। उनको विश्वास था कि यदि स्वास्थ्यमें सुधार दिखलायी दिया तो बादमें कह-सुनकर मालिश करनेकी अवधि बढ़वायी जा सकती है।

* * * * *

ग्रन्थावलोकन में निमग्नता

बाबाने ७ दिसम्बर १९७८ को तीसरी बार जो काष्ठ-मौनका व्रत लिया, इसमें वैसी कठोरता नहीं थी, जैसी पहले लिये हुए व्रतोंमें थी। टिन-शेडके रूपमें तीन ओरसे सर्वथा खुली हुई यह नयी कुटिया ही बाबाकी निवास-स्थली थी। इस निवास-स्थलीके चारों ओर पर्याप्त खुला स्थान छोड़कर एक घेरा बना दिया गया, जिससे कोई व्यक्ति घेरेके भीतर अचानक जा न सके। घेरेके भीतर केवल वे ही जाते थे, जिनको समय-समयपर कोई सेवा करनी होती थी।

७ दिसम्बरके एक सप्ताह बादकी बात है। मैं बाबाकी कुटियाकी ओर गया। घेरेके बाहरसे ही मैंने उनको प्रणाम किया और खड़े-खड़े उनका दर्शन करता रहा। मैंने देखा कि कुटियामें चौकीके ऊपर जो गैरिक बिस्तर बिछा हुआ है, उसपर बाबा सहजासनसे बैठे हुए हैं और कोई पुस्तक हाथमें लेकर देख रहे हैं। भगतजीसे पूछनेपर पता चला कि वे श्रीकृष्णलीला चिन्तन ग्रन्थको पढ़ रहे हैं। बाबा ग्रन्थावलोकनमें निमग्न थे।

श्रीरामचरितमानसकी एक चौपाई है –

जीवन मुक्त महामुनि जेऊ।
हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥

इस चौपाईमें 'सुनहिं' शब्द आया है। 'सुनहिं' शब्दके स्थानपर थोड़ी देरके लिये 'पढ़हिं' शब्द कर दिया जाय तो भी इस चौपाईके भावार्थमें कोई अन्तर नहीं आयेगा। इस चौपाईका भावार्थ आज साकार रूपमें मेरे सामने

विद्यमान था।

काष्ठ मौनके उपरान्त यह एकान्त वातावरण और ये रसमय ग्रन्थ बाबाको और भी अधिक गहरे लीला सिन्धुमें उतार देते होंगे। ग्रन्थावलोकनमें निमग्न बाबाको भला क्या पता कि कोई भरी-भरी आँखोंसे मुझे निहार रहा है अपने हृदयमें भर लेनेके लिये। मैं बहुत देरतक खड़े-खड़े वह छवि निहारता रहा।

* * * * *

मधुराष्टक का गायन

काष्ठ मौनका व्रत लेनेके बाद बाबाके पास नितान्त एकान्त-ही-एकान्त था। व्रत लेनेके पहले उनके पास मिलनेवालोंकी भीड़ लगी रहती थी। वे लोग बाबाके सामने अपनी सांसारिक-पारिवारिक समस्याओंको रखा करते थे, जिससे कोई हल प्राप्त हो सके। इन सब तरहकी बातोंसे घिरे रहनेके कारण वे कई बार कहा करते थे कि मुझे एकान्त मिल पाता है एक मात्र शौचालयमें, पर अब स्थिति सर्वथा दूसरी थी। अब एकान्तमें वे अपने भावराज्यमें रहते थे और इसपर भी यदि तनिक-सा अनुकूल उद्दीपन मिल जाय तो उनके अन्तरका भाव-सागर तुरन्त लहराने लगता था। यही बात मंगलवार सन् १९७९ के २० मार्चको हुई।

इन दिनों परिक्रमाके समय श्रीहेमचन्द्रजी जोशी ही पदगान तथा नाम-कीर्तनकी सेवा करते थे। किसी कार्य-विशेषसे श्रीजोशीजी बाहर चले गये, अतः उपर्युक्त मंगलवारके दिन बहिन कमल और मुन्नीने परिक्रमाके समय पदगान और नाम-कीर्तन किया। उन्होंने पुष्टिमार्गके प्रवर्तक आद्याचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज द्वारा रचित मधुराष्टकको बड़े सुललित स्वरमें सुनाया। जब यह मधुराष्टक गाया जा रहा था, बाबाके लिये परिक्रमाके नियमको पूर्ण करना भी कठिन हो गया। उनकी आँखें रह-रह करके भर आती थीं और नासिका-द्वार अवरुद्ध हो जाते थे। वे बार-बार अपने उत्तरीयसे अपने नेत्र और अपनी नासिकाको पोंछ रहे थे। बाबाके नेत्रोंमें मोतियाबिन्द होनेसे उनकी नेत्र-दृष्टि कुछ धूमिल थी, किन्तु मधुराष्टकके गायनसे नेत्रोंमें जो सजलता परिव्याप्त हुई, इस सजलताने उस धूमिलताको और भी बढ़ा दिया। परिक्रमा लगाते समय पथका दिखलायी देना बन्द हो गया। बाबाको परिक्रमा पथपर आगे पैर रखनेमें बड़ी कठिनाई हो रही थी।

इस भावोद्वेलनकी सीमा केवल परिक्रमातक ही नहीं रही। मधुराष्टकका गायन पूरा होकर नाम-संकीर्तन भी हो गया और गिरिराज-परिक्रमाका नियम भी पूर्ण हो गया, परन्तु बाबाका भाव-सागर उसी प्रकार उमड़ता-छलकता रहा। परिक्रमाके बाद उन्होंने टब-बाथ लिया, उस समय भी उनके कपोल बार-बार गीले हो रहे थे और उनके हाथकी रुमाल बार-बार उस गीलेपनको पोंछ रही थी। कपोलोंका गीला होना और उस गीलेपनको पोंछते रहना, इसका क्रम आज दिनभर चलता रहा। सारे दिन वे 'बाह्य धरातल' पर रहे ही नहीं, गहन गम्भीरता बनी रही।

* * * * *

खाँसी और पोस्ता

सन् १९७९ के अप्रैल मासकी बात है। इन दिनों बाबाको बहुत ज्यादा खाँसी थी। खाँसी इतनी ज्यादा था कि न दिनको चैन और न रातको आराम। हमलोग समझ नहीं पाते थे कि क्या उपचार किया जाय। बाबाकी सेवामें श्रीभगतजी, श्रीचोपड़ाजी, श्रीअमीचन्दजी आदि लोग थे, इन सेवापरायण लोगोंको सारी रात बैठे-बैठे बीत जाती थी। खाँसीसे बाबाका सारा पञ्जर हिल उठता था और ऐसा लगता था मानो आँतें बाहर आ जायेंगी। बाबाके भीषण कष्टको देखकर श्रीचोपड़ाजीने उनसे अनुरोध किया – बाबा! आपको खाँसी बहुत ज्यादा है। यदि आप अपने भिक्षामें पोस्ताका सेवन करें तो काफी आराम मिल सकता है।

बाबाने कहा – चोपड़ा प्रभु! पोस्तासे अफीम बनता है। जिसने संन्यास ले रखा है, उसके लिये यही उचित है कि गैरिक वस्त्रोंकी लज्जाको बचाये रखनेके लिये कभी पोस्ता स्वीकार न करे।

श्रीचोपड़ाजीने विनम्र स्वरमें निवेदन किया – बाबा! आपका कष्ट देखा नहीं जाता। आपके कष्टको देखकर मनमें बड़ी पीड़ा होती है। मैं आपको अफीम लेनेके लिये नहीं कह रहा हूँ। अफीम तो मानव द्वारा निर्मित वस्तु है। भले ही पोस्तासे उसका निर्माण होता है, पर पोस्ता तो एक प्राकृतिक स्वरूपमें प्रकृति प्रदत्त सहज वस्तु है। पोस्ताको अफीम नहीं कहा जा सकता, अतः पोस्ता लेनेमें किसी प्रकारकी हानि नहीं है।

पास बैठे हुए सभी लोग श्रीचोपड़ाजीको मन-ही-मन साधुवाद दे रहे थे और मन-ही-मन कह रहे थे कि बड़ी सुन्दर रीतिसे इन्होंने बाबाको समझानेका प्रयास किया है।

श्रीचोपड़ाजीकी बात सुनकर बाबाने दृढ़ता भरे स्वरोंमें कहा – खाँसीके कारण चाहे शरीरका अन्त ही हो जाय, परन्तु पोस्ता तो नहीं ही लूँगा।

श्रीचोपड़ाजी मन मारकर चुपचाप बैठ गये।

* * * * *

श्रीजज साहब का निधन

परमादरणीय श्रीजजसाहब (सम्माननीय श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) का निधन १५ मई १९७९ को हो गया। उनके निधनसे गीतावाटिकाकी एक विभूति तिरोहित हो गयी।

जजसाहबका जीवन एक सच्चे साधकका जीवन रहा। उनका कोमल हृदय, उनका संत स्वभाव, उनकी श्रद्धा भावना, यह सब हम सभीके लिये प्रेरणाकी वस्तु रही। इतना ही नहीं, सरकारी नौकरी करते समय भी जजसाहबका निर्मल-निर्दोष-निःस्वार्थ-निष्कलंक-निष्पक्ष कार्य सरकारी अधिकारियों द्वारा सदैव ही स्तुत्य रहा। विगत तीस-पैंतीस वर्षोंमें जजसाहबकी जैसी कहनी-करनी-रहनी रही, उससे स्पष्ट है कि बाबा और बाबूजी, इन युगल संतके अतिरिक्त उन्होंने किसी अन्यको न जाना और न माना। इन्हीं जजसाहबको मलद्वारके पास कैंसरका रोग हो गया। बाबाने ७ दिसम्बरको मौन लिया और मौनके १८ दिन बाद जजसाहबके शरीरमें २५ दिसम्बरको आपरेशन करके नवीन मल-मार्गका निर्माण कर दिया गया। स्थिति दिन-प्रति-दिन गिरती ही गयी। अपने परिवारवालोंके दबावमें आकर इन्हें १६ जनवरीको अपने घर प्रयाग चला जाना पड़ा। उनका शरीर अब कंकाल मात्र रह गया था। शय्यापर पड़े-पड़े कुछ दिन और निकल रहे थे। किसी भी क्षण जीवन-लीलाकी समाप्ति हो सकती थी।

मेरा अनुमान है कि जजसाहब जैसे समर्पित भक्तकी इन बातोंने अवश्य ही बाबाके अन्तरको प्रभावित किया होगा और उन्मुख बनाया होगा यत्किंचित् बहिर्मुखताकी ओर, जिससे कि जजसाहबके समाचारोंकी जानकारी हो सके। बहिर्मुखतासे मेरा तात्पर्य है – घेरेके भीतर बाबा अपने मनोभावोंकी

अभिव्यक्ति करते थे कभी संकेतके द्वारा, कभी अँगुलियोंसे लिखकर, कभी मुद्राके द्वारा, कभी अस्पष्ट और कभी स्पष्ट शब्दोच्चारके द्वारा। जो हो, घेरेकी सीमित परिधिके भीतर बाबा द्वारा भावाभिव्यक्ति होनेसे उन लोगोंको बड़ी सुविधा हो गयी, जो उनकी सेवामें संलग्न रहे। वे अब समझ सकते थे कि बाबाको कब क्या तथा किस प्रकारकी सेवा या उपचारकी आवश्यकता है। इन दिनों बाबाके मौन व्रतमें जो थोड़ी-बहुत शिथिलता दिखलाई दी, वह क्रमशः अधिकाधिक बढ़ती ही चली गयी। उनका करुणा विगलित अन्तर अपने चरणाश्रित जनोंके लिये सदैव बहता ही रहता था।

बाबा-बाबूजीके प्रति समर्पित हो जानेके बाद जजसाहबने एक नियम ले रखा था – एक मासके भीतर एक बार अवश्य बाबा-बाबूजीका दर्शन करना। जबतक जजसाहब सरकारी नौकरीमें रहे, प्रत्येक मासमें एक बार बाबा-बाबूजीके दर्शनार्थ आते रहे, चाहे वे अथवा बाबा-बाबूजी भारतमें कहीं भी रहें। न्यायालयकी नौकरी करते हुए इस नियमके निर्वाहमें कभी भी व्यतिक्रम नहीं आया। बाबा-बाबूजीके दर्शनार्थ वे प्रत्येक मास पहुँच ही जाया करते थे।

न्यायाधीशके रूपमें एक बार उन्होंने एक हत्यापराधीको फाँसीकी सजा दे दी। बाबाको ज्यों ही पता चला, इसको बाबाने उचित नहीं बताया। किसीको हम जीवन नहीं दे सकते तो किसीका जीवन ले लेना कहाँतक उचित है? बाबाकी प्रेरणानुसार फिर भविष्यमें किसीको, हत्याके अभियुक्तको भी मृत्यु-दण्ड जजसाहबने दिया ही नहीं; हाँ, कानूनन ऐसे अभियुक्तको आजीवन कारावासका दण्ड देना अलग बात है।

* * *

जब जजसाहब मुजफ्फरनगरमें सन् १९५३ से १९५५ तक जिला न्यायाधीशके पदपर थे, इस अवधिके बीचका प्रसंग है। एक बार बाबा और बाबूजी दिल्लीसे ऋषिकेश जा रहे थे। मार्गमें मुजफ्फरनगर पड़ता था। बाबाको न जाने क्या सूझी, वे बाबूजीके सहित सीधे न्यायालयमें पहुँच गये जजसाहबसे मिलनेके लिये।

न्यायाधीशकी कुर्सीपर बैठे हुए जजसाहबने देखा कि बाबा-बाबूजी मेरे कमरेमें प्रवेश कर रहे हैं। उनको आते हुए देखकर जजसाहबको बड़ा आश्चर्य हुआ कि बिना किसी पूर्व सूचनाके अचानक इनका शुभागमन कैसे हो गया! जजसाहब उसी समय अपनी कुर्सीसे उठे। न्यायालयकी परम्पराके अनुसार

न्यायाधीशके आने-जानेका मार्ग न्यायालयमें पीछेकी ओरसे होता है, सामनेसे नहीं, पर इस परम्पराकी सर्वथा उपेक्षा करते हुए जजसाहब सामनेके मार्गसे नीचे उतरकर आये और न्यायाधीशका वेष धारण किये ही अभियुक्त-वकील आदि सबके सामने ही भूमिपर लोटकर बाबा-बाबूजीको साष्टांग प्रणिपात किया। यह देखकर बाबाका हृदय भर आया। बाबा कई बार जजसाहबकी श्रद्धा-भावनाकी सराहना करते थे।

२ मईके प्रातःकाल बाबाने यहाँ गीतावाटिकामें एक स्वप्न देखा कि भगवती गंगाका विस्तृत विशाल निर्मल प्रवाह मन्थर गतिसे बह रहा है। तट सुन्दर संगमरमरका बना हुआ है तथा उस सुन्दर तटपर कुछ दूर खड़े हुए जजसाहब बाबाकी ओर देख रहे हैं। जजसाहबके नेत्रोंमें समर्पणकी भावना है एवं कृपाकी याचना है। स्वप्न देखनेके बाद प्रातःकाल बाबाने कहा – जजसाहबका शरीर अब अधिक दिन नहीं रह पायेगा।

प्रयागसे टेलीफोनपर १५ मईको साढ़े नौ बजे बातचीत हुई ही थी। बातचीतके बाद जजसाहबकी मरणासन्न स्थितिका समाचार बाबाको तुरंत सुना दिया गया। सब हाल सुनकर बाबाने बहिन कमलके पास संदेश भिजवाया कि समाधिके पास बैठकर जजसाहबके लिये सवा घंटे श्रीहरिनामका संकीर्तन कर दो। उसी समय बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला)ने आकर बाबाको जजसाहबके निधनकी सूचना दी। जजसाहबका निधन दस बजे हुआ और निधन-सूचना टेलीफोन द्वारा गोरखपुर पाँच मिनटके भीतर-भीतर आ गयी थी। बाईके मुखसे इस शोक-संवादको सुनकर शोकार्त बाबाने कहा – जजसाहबके निधनसे मैं पंगु-सा हो गया।

थोड़ी देर मौन रहनेके बाद जजसाहबके सद्गुणोंकी चर्चा करते-करते बाबाने कहा – जजसाहबकी जैसी सुन्दर गति हुई है, उसे देखते हुए कुछ करने-करानेकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी उनके लिये सवा घंटा श्रीहरिनाम संकीर्तन समाधिपर हो ही रहा है।

* * * * *

रुग्ण होकर भी रुग्णातीत

बाबाके नियमोंकी मर्यादाओंको देखते हुए जितना संभव हो पाता था, बाह्योपचार किया जाता था। प्राकृतिक चिकित्सक श्रीहीरालालजी भी समय-समयपर गोरखपुर आ जाया करते थे और समयोचित परामर्श भी दे दिया करते थे। इससे लाभ ही होता था।

इस रुग्णताके बाद भी कभी-कभी कुछ ऐसे प्रसंग देखनेको मिल जाते थे कि जिनसे मन आह्लादित हो उठता था। नवम्बर १९७९ में एक दिन भाई भीमसेनजी चोपड़ाने 'विरहिणी राधा' नामक पुस्तिका पढ़कर बाबाको सुनायी। आदरणीय श्रीअवधविहारीलालजी कपूर द्वारा लिखित यह पुस्तिका श्रीकृष्ण-जन्म-भूमि, मथुरासे प्रकाशित है। अपनी कुटियाके एकान्त वातावरणमें इस पुस्तिकाको सुनते-सुनते बाबाकी तो विचित्र स्थिति हो गयी थी। कपोलोंपर बहती हुई अश्रु-धाराका विराम होता ही नहीं था। चोपड़ाजीने जब हमलोगोंको यह बताया तो हम सभी चकित रह गये।

अगला प्रसंग दिसम्बर १९७९ का है। नवद्वीपसे आयी हुई एक संकीर्तन मण्डलीने बाबाको 'पाला कीर्तन' सुनाया। पाला कीर्तन बंगालकी एक विशिष्ट गायन शैली है, जिसके द्वारा भगवान श्रीकृष्णकी और श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाओंको गा-गा करके सुनाया जाता है। लगभग एक सप्ताहतक यह कार्यक्रम चला और २१-१२-७९ को समाप्त हुआ। बाबा कीर्तनके समक्ष लगातार तीन घंटेतक बैठे रहते और कीर्तनके सम्पन्न होनेके बाद भी बाबा प्रायः 'अन्यलोक'में ही रहते।

बाबाकी रुग्णताको देखकर हमलोगोंको कष्ट होता था, पर उनकी विचित्र रुग्णातीतावस्थाको देखकर विस्मय भी होता था। जब-जब ऐसे भावपूर्ण प्रसंग आते थे, तब-तब यही देखनेको मिलता था कि बाबा शरीरसे कितने असंपृक्त रहे।

* * * * *

प्रिय विष्णुकी तीर्थ-यात्रा

सन् १९८० ई.के अगस्त-सितम्बर मासमें श्रीधाम अयोध्याके आचार्य श्रीकृपाशंकरजी रामायणी महाराजके नेतृत्वमें तीर्थ-यात्रा ट्रेन चली थी। श्रीजगन्नाथपुरी, श्रीरामेश्वरम्, श्रीद्वारका आदि मुख्य-मुख्य धामोंकी यात्रा

करनेमें लगभग दो मास लग गये थे। इस तीर्थ-यात्रा-ट्रेनमें गोरखपुरके प्रिय श्रीविष्णुप्रसादजी जालान भी अपनी धर्मपत्नीके साथ गये थे। सात्त्विकता-साधुता- सरलता-धार्मिकताकी दृष्टिसे प्रिय विष्णुका व्यक्तित्व सराहनीय हैं।

यात्रामें जानेके पहले प्रिय विष्णु बाबाके पास आशीर्वाद लेनेके लिये आया, जिससे तीर्थ-यात्रा सफलतापूर्वक सानन्द पूर्ण हो सके। बाबाने बड़े प्रसन्न मनसे अपनी अनुमति प्रदान की, परन्तु साथ ही यह भी कहा- क्या तुमने श्रीकृपाशंकरजी महाराजसे भी आज्ञा प्राप्त कर ली है ?

प्रिय विष्णुने विनम्र रीतिसे निवेदन किया- मैं तो सर्वप्रथम आपके पास ही आया हूँ।

बाबाने प्यारपूर्वक कहा – उनके पास जाना, उन्हें प्रणाम करना और उनसे आज्ञा लेना तथा आशीर्वादके लिये विनती करना।

यह संयोगकी ही बात है कि उस समय पूज्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज गोरखपुरमें ही विराज रहे थे। प्रिय विष्णु उनके पास गया और उन्हें प्रणाम करके वह सारा वृत्त सुना दिया, जो बाबाके साथ हुआ था। यह सुनते ही श्रीकृपाशंकरजी महाराज गद्‌गद हो गये। वे भरे-भरे मनसे कहने लगे- पूज्य बाबा तो सर्वप्रकारसे समर्थ हैं, किन्तु अपने छोटे जनोंको सम्मान देना उनका स्वभाव है, इसीलिये मुझ तुच्छ व्यक्तिके प्रति आदर व्यक्त करते हुए उन्होंने तुमको मेरे पास भेजा है। तुम मेरे साथ तीर्थ-यात्रा-ट्रेनमें अवश्य चलो।

ऐसा कहकर और प्यारमें भरकर वे प्रिय विष्णुकी पीठपर हाथ फेरने लगे। प्रिय विष्णु उनके साथ तीर्थ-यात्रामें गया। उसकी तीर्थ-यात्रा पूर्ण हुई २ अक्टूबर १९८० के दिन। अगले दिन ३ अक्टूबरको अपराह्णकालमें वह अपनी धर्मपत्नी सहित गीतावाटिका आया बाबाको प्रणाम करनेके लिये। श्रद्धापूरित मनसे बार-बार प्रणाम करते हुए प्रिय विष्णुने कहा – बाबा! आपका ही कृपा-प्रसाद था कि यात्रा सुन्दर रीतिसे पूर्ण हुई। यह सारी यात्रा बाधा-रहित रीतिसे इतनी सुन्दर रही कि उसका वर्णन सम्भव नहीं। न कहीं धूप-वर्षाका सामना करना पड़ा और न कहीं तबीयत खराब हुई। यात्रामें आगे-से-आगे ऐसी-ऐसी अनुकूलता मिलती चली गयी कि सभी स्थानोंपर दर्शन ठीक प्रकारसे मिलते गये। मुझे आशा नहीं थी कि ब्रज-यात्राके समय बरसानेमें श्रीराधाष्टमीका उत्सव देखनेको मिलेगा, पर वह भी सौभाग्य सुलभ हुआ।

बाबा उसकी यात्राका वर्णन सुनते भी जा रहे थे और बीच-बीचमें उसके स्वभावकी सात्त्विकता, हृदयकी निर्मलता, अन्तरकी आस्तिकता और भावोंकी उर्मिलताकी सराहना भी करते जा रहे थे। उसकी धर्मपत्नीको बार-बार बेटी कह-कह करके बाबा उसकी कोमलता और उसकी सरलताकी प्रशंसा कर रहे थे। बाबाने प्रिय विष्णुसे कहा – तुमने जगह-जगहसे जो पत्र पोष्ट किये थे, वे सारे पत्र मुझे मिल गये थे।

बात यह थी कि प्रिय विष्णुने इस यात्राके बीच मुख्य-मुख्य तीर्थ-स्थानोंसे बाबाके पास पत्र लिखे थे और उन पत्रोंका विषय था बाबाके प्रति प्रणामका निवेदन, कृपाकी याचना तथा कृतज्ञताकी अभिव्यक्ति। उन पत्रोंकी पंक्ति-पंक्तिमें उसका हृदय बोल रहा था कि इस सुखद और सफल यात्राका सारा श्रेय बाबाकी अहैतुकी कृपाको है। इन पत्रोंके सम्बन्धमें ही चर्चा करते हुए बाबा प्रिय श्रीविष्णुसे कहने लगे – जगह-जगहसे भेजे गये तुम्हारे जितने भी पत्र मेरे पास आये, उन सब पत्रोंको मैं अपने सिरहाने तकियेके नीचे रखता था। केवल कुछ क्षणोंके लिये नहीं, बल्कि तीन दिनतक रखता था। अपने महज्जनोंने तथा शास्त्रोंने तीर्थ-यात्रीके लिये एक विशेष निर्देश दे रखा है कि यात्रीको तीर्थमें तीन दिन और तीन राततक वास करना चाहिये। मैं जानता था कि तुम ट्रेनमें यात्रा कर रहे हो, अतः निर्दिष्ट विधानके अनुसार तीन दिन और तीन रातकी अवधिके लिये किसी तीर्थमें वास करना तुम्हारे लिये सम्भव नहीं है। तुम्हारे लिये यह एक विवशता थी। अब अपने तकियेके नीचे उन पत्रोंको तीन दिन और तीन रात रख करके मैं यह मान लेता था कि तुमने उस निर्दिष्ट विधानका पालन कर लिया और तीन दिनके वासके बाद तुमने अगले तीर्थके लिये प्रस्थान कर दिया है। यही कारण था कि तुम्हारे पत्रोंको मैं सिरहाने तीन दिनतक रखता था और फिर उनको विसर्जित कर दिया करता था।

बाबाकी प्यारसे सनी इन बातोंको सुनकर तथा जिस तरहसे बाबाने उन पत्रोंको सम्मान दिया, उनके इस प्रेमिल स्वभावको देखकर प्रिय विष्णुका अन्तर बड़ा विह्वल हो रहा था। बाबाके पास प्रिय विष्णु लगभग एक घण्टा रहा। बातचीतके मध्य बाबाने उसे यह भी बताया कि तीर्थ-यात्रासे लौटे हो, अतः ब्राह्मण-भोजन अवश्य करा देना। इस संकेतको तो प्रिय विष्णुने आदेशवत् ही स्वीकार किया।

* * * * *

श्रीगिरिराज परिक्रमा

प्रतिवर्षकी भाँति सन् १९८० ई. में भी भाद्र शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिसे लेकर त्रयोदशी तिथितक श्रीराधाष्टमी-महोत्सव उत्साहके साथ मनाया गया, जिसमें अष्टमी और नौमी तिथियाँ मुख्य थीं ही। हम लोगोंकी आँखोंके सामने उत्सवका आयोजन रहा षष्ठीसे लेकर त्रयोदशीतक और उस अवधिमें भी जितनी देरतक कोई कार्यक्रम चलता रहा, बस उतनी देरतकके लिये ही, किन्तु बाबाके भावराज्यकी तो बात ही दूसरी थी। उनके भावराज्यके अनुसार तो श्रीराधाष्टमी-महोत्सवका शुभारम्भ भाद्र मासके शुक्ल पक्षको प्रतिपदा तिथिसे ही पन्द्रह दिनके लिये हो जाता है, जब नन्दग्रामसे यशोदा मैया तथा नन्दबाबा बरसाने पधारते हैं श्रीवृषभानुनन्दिनीका जन्मोत्सव मनानेके लिये। भले ही हम लोगोंके चर्म-चक्षुओंको वह दिव्य उत्सवोल्लास दिखलायी न दे, पर बाबा तो प्रतिपदा तिथिसे उसी उत्सवमें संलग्न रहते हैं और उसी उल्लासमें निमग्न रहते हैं। अवश्य ही, बाबाकी उस संलग्नताको और उस निमग्नताको हम 'दृष्टि-विहीन' लोग देख नहीं पाते। देखना तो दूर रहा, उसका आभासतक हम लोगोंको नहीं मिल पाता। यदि कभी आत्मीयतावशात् बाबा हम लोगोंको कुछ बतलाते भी थे तो उसे हम लोग हृदयंगम नहीं कर पाते थे। बस, उत्सवायोजनके रूपमें षष्ठीसे त्रयोदशीतक जो दृश्य इन चर्म-चक्षुओंको दिखलायी देते थे तथा जो शब्द इन कर्ण-कुहरोंमें पड़ते थे, केवल उतना ही हम लोग देख-सुन-समझ पाते थे।

श्रीललिता षष्ठी १५ सितम्बर सोमवारको थी तथा श्रीराधाष्टमी १७ सितम्बर बुधवारको। जतीपुरासे श्रीहरिवल्लभजी १३ सितम्बर शनिवारकी शामको यहाँ पहुँचे तथा श्रीमहाराजजी अपने परिकर सहित १४ सितम्बर रविवारके प्रातःकाल गीतावाटिका पधारे। मोटरकारसे उतरकर महाराजजी सीधे बाबाकी कुटियाकी ओर शीघ्रतासे बढ़ने लगे। बाबाने उनको आते हुए देख लिया। बाबा भी अपनी शिथिल गतिसे उनकी ओर अग्रसर हुए। बाबा अब लकवा-ग्रस्त नहीं थे, पर वह रोग अपना प्रभाव शरीरपर किसी अंशमें छोड़ ही गया था। उस प्रभावके कारण बाबाकी गतिमें वह त्वरा नहीं रह गयी, जो कभी पहले थी, फिर भी जितना सम्भव

था, बाबा अपने पदोंको जल्दी-जल्दी उठाते-रखते हुए महाराजजीकी ओर अग्रसर हो रहे थे। मार्गके बीचमें ही हुआ सम्मिलन। इसे सम्मिलन कहा जाये अथवा स्नेह-द्वन्द्व? महाराजजी चाहते थे और उनकी चेष्टा थी कि बाबाके चरणोंको स्पर्श कर लूँ, पर यह भला क्या बाबा होने देते? महाराजजीके दोनों कर-पल्लवोंको बाबाने अपने कर-पल्लवोंसे पकड़ लिया और उनके हाथोंको अपने हाथोंमें थामे हुए ही वहीं भूमिपर बैठ गये। महाराजजीकी आँखें मुँद गयीं, पर हमलोग खुली आँखोंसे देख रहे थे कि महाराजजी न जाने कहाँसे कहाँ बहे चले जा रहे थे। सचमुच, वे अपने आँसुओंके साथ बहे चले जा रहे थे। यह तो अच्छा हुआ कि बाबाने उनका हाथ अपने हाथमें थाम रखा था, अन्यथा वे न जाने कहाँ डूब जाते। वातावरण गम्भीर रूपसे प्रशान्त था। महाराजजीको बहिर्मुख करनेके लिये बाबाने विविध प्रकारके कुशल-प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। महाराजजी जब कुछ प्रकृतिस्थ हुए तो उनसे बाबाने कहा – मैं एक अपराध कर रहा हूँ। मैं बार-बार इधर-उधरकी बातें कह-कह करके आपके भाव-प्रवाहमें बाधा डाल रहा हूँ। भावके गहरे आवर्त कहीं गम्भीर रूपसे उपस्थित न हो जावें, इसीलिये यह अपराध कर रहा हूँ, अन्यथा होता यह कि भावके गम्भीर प्रवाहमें आप मुझे देखते रहते और मैं आपको देखता रहता। हम दोनों न जाने किन-किन उर्मिल भाव-लहरियोंमें डूबते-उतराते रहते। फिर होता यह कि ये उपस्थित जन चुपचाप खड़े रहते तथा मौन नेत्रोंसे हमें निहारते रहते। इन उपस्थित जनोंके सुखके लिये ही आपके भाव-प्रवाहमें बाधा डालकर वातावरणको हलका बनाये हुए हूँ। आपको बहिर्मुख बनाये रखनेका अपराध मेरे द्वारा अवश्य हो रहा है, पर यह क्रिया सोद्देश्य ही है।

थोड़ी देर रुककर पुनः महाराजजीसे बाबाने कहा – ऐसा दिन कदाचित् ही हुआ हो, जब मैं आपको स्मरण नहीं करता होऊँ। व्रजके दो संतोंकी स्मृति मुझे सदा ही बनी रहती है, एक आपकी और दूसरे पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराजकी।

पासमें हरिवल्लभजी बैठे हुए थे। तुरन्त उनकी ओर उन्मुख होकर बाबाने कहा – दादा! तुमने यह तो बताया ही नहीं कि क्या यहाँ आनेसे पहले पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराजसे मिलकर आये हो या नहीं?

हरिवल्लभजी द्वारा 'हाँ' कहे जानेपर बाबाने फिर पूछा – क्यों, वे

सानन्द हैं न?

पुनः हरिवल्लभजीसे 'हाँ' का उत्तर मिलनेपर बाबाने हरिवल्लभजीसे कहा – दादा! तुम पण्डितजीसे मिलकर आये हो, अतः अपना हाथ मेरे मस्तकपर रख दो।

ऐसा कहकर बाबाने चाहा कि हरिवल्लभजीका हाथ अपने मस्तकपर रख लूँ, किन्तु विनयाधिक्यसे हरिवल्लभजीने अपना हाथ संकुचित कर लिया। फिर प्यारमें भरकर बाबा महाराजजीसे बोले – जब मेरा सौभाग्य, परम सौभाग्य उदित होता है, तब आपका यहाँ शुभागमन होता है। दो बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। हरिवल्लभजी जब यहाँ आते हैं तो व्रजभूमिके संगीताचार्यका पद यहाँ विराजित हो जाता है और जब आप यहाँ पधारते हैं तो व्रज-मण्डलका संत-समाज यहाँ मूर्तिमान हो उठता है।

भाव-मग्न महाराजजी रस-सिक्त स्वरमें इतना ही कह पाये – आपकी उपस्थितिसे दुर्लभ दर्शन भी सहज सुलभ हैं। बस, आप सदा-सर्वदा इसी प्रकारसे दर्शन देते रहें।

थोड़ी देर बाद ही बाबाकी परिक्रमाका समय हो गया। इन दिनों प्रतिदिन ही परिक्रमा-पथका तथा श्रीगिरिराजजीका पुष्पोंसे सुन्दर शृंगार होता। वाटिकाकी श्रद्धालु बहिनें ही परस्परमें हिल-मिल करके इस शृंगार-सेवाको सम्पन्न करती थीं। ऐसा लगता मानो उन बहिनोंका श्रद्धा-पूरित सुन्दर मन ही सुमनोंके रूपमें श्रीगिरिराजजीकी शोभा बढ़ा रहा है और परिक्रमा-पथका सुन्दर आच्छादन बना हुआ है। महाराजजीने पधार करके परिक्रमा-स्थलीमें अपना स्थान ग्रहण कर लिया। श्रीराधाष्टमी महोत्सवके कारण अनेक भक्तगण दूर-दूर स्थानोंसे आये हुए थे। समाधि-परिसर इन भक्तोंसे भरा हुआ था। भीड़ थी, पर साथ ही पूर्ण शान्ति भी थी। परिक्रमाके लिये बाबाने परिक्रमा-स्थलीमें प्रवेश किया। बाबाने खड़े-खड़े श्रीगिरिराजजीकी वन्दना की और तदुपरान्त आरम्भ कर दी उन्होंने परिक्रमा। हरिवल्लभजी महाराजजीके पार्श्वमें बैठे हुए अपने सुमधुर कण्ठसे पद-गान कर रहे थे। परिक्रमा लगाते-लगाते जब भी बाबा हरिवल्लभजीके पास आते, वे श्रीहरिवल्लभजीके साथ-साथ आलापचारी करते तथा उनके स्वरमें स्वर मिलाते। यह बात केवल एक बारकी नहीं, अपितु बार-बारकी बात थी कि परिक्रमा लगाते-लगाते बाबा ज्यों ही

हरिवल्लभजीके सामने आते, त्यों ही बाबा उनके साथ-साथ गायन करने लगते। पिछले दिनों बाबा प्रतिदिन ही मौन रहते हुए चुपचाप परिक्रमा लगाया करते थे, पर आज तो बहुत ही प्रसन्न वदन और बहुत ही बहिर्मुख हैं। आज बाबा बड़ी उमंगमें हैं, अपितु बहुत ही बह रहे हैं। वे गा रहे हैं श्रीहरिवल्लभजीके साथ-साथ, परंतु वस्तुतः सच बात यह है कि वे आमोदित-आह्लादित करना चाह रहे हैं समीपस्थ महाराजजीको। हरिवल्लभजीके साथ उमंग भरे मनसे बाबाको गाते हुए देखकर मुझे तो रसिक-शेखर स्वामी श्रीहरिदासजी महाराजका एक पद मन-ही-मन स्फुरित होने लगा – 'नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामाहिं रिझावत।' जो परिक्रमा प्रतिदिन आधा घण्टामें पूर्ण हुआ करती थी, आज उसमें डेढ़ घण्टेसे भी अधिक लग गया।

श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बाद भी, जबतक महाराजजी गीतावाटिकामें विराजित रहे, परिक्रमाका यह उमंगोल्लास सदा बना रहा। हरिवल्लभजीका समयोचित गायन परिक्रमाके राग-रंगको और भी गहरा बना देता। परिक्रमाके समय कई बार ऐसा होता कि महाराजजी बाबाको कभी पुष्प-माला पहनाते और कभी उनके कर-पल्लवपर पाटल-पुष्प रखते और कभी दोनों करते। एक बार महाराजजी जब पुष्प-माला पहना रहे थे, तभी गाये जाते हुए पदको रोककर, बीचमें ही हरिवल्लभजीने एक नवीन पद गाना आरम्भ कर दिया – 'ऐसे ही देखत रहौं, जनम सुफल करि मानौं'।

महाराजजी जिस पुष्प-मालाको पहनाते, उस पुष्प-मालासे लटकते सुमेरुको बाबा अपने वक्षःस्थलसे लगाते, अपने मस्तकसे लगाते और अपने नेत्रोंसे लगाते। इसके बाद बाबा उस पुष्प-मालाको अपने गलेमेंसे उतारकर अपने दाहिने हाथकी कलाईमें वलयाकार लपेट लेते। एक अन्य दिवसकी घटना है। अपने गलेसे पुष्प-मालाको उतारकर ज्यों ही बाबाने अपनी कलाईमें वलयाकार लपेटा, त्यों ही उनके शरीरातीत- लोकातीत-त्रिगुणातीत महाशुद्धसत्त्वमय दिव्य स्वरूपकी स्मृतिसे भावित हुए हरिवल्लभजी गा पड़े –

बनी री तेरे चारि चारि चूरी करनि।
कंठसिरी दुलरी हीरनि की नासा मुक्ता ढरनि।।

एक दिन महाराजजी बाबाको पाटल-पुष्प प्रदान कर रहे थे, उस समय उनकी भावमयी मुद्राको देखकर हरिवल्लभजी गाने लगे –

चतुर कछु नैननि में बतरात।
वृन्दावन हित रूप रसिक पिय यह छबि हिय न समात।।

हरिवल्लभजी जिन पंक्तियोंको गाते, प्रसंगानुरोधसे उनमें अर्थ-गाम्भीर्य रहता। पदकी पंक्तिका अर्थ कुछ और होता था और उस अर्थका भी अर्थ कुछ और ही होता था तथा इस और-ही-औरमें एक लोकोत्तर स्तरके भावोच्छलनकी अद्भुत सृष्टि हो जाती थी। इस प्रकारके रसमय प्रसंग नित्य ही देखने-सुननेको मिल जाते थे।

ऐसे तो कई मधुर प्रसंग ध्यानमें आ रहे हैं, उनमेंसे परिक्रमाके एक और प्रसंगको लिखनेकी भावना बार-बार उभर रही है। एक दिन, सम्भवतः आश्विन कृष्ण एकादशीको परिक्रमामें हरिवल्लभजीने दानलीलाका प्रसंग छेड़ दिया और श्रीरसिकरायजू द्वारा रचित 'गोबरधनकी सिखर तें मोहन दीनी है टेर', इस लम्बे पदको वे गाने लगे। इस पदमें वर्णित लीला बाबाके लिये बहुत अधिक भावोद्दीपनका कार्य करती थी। उद्दीप्त भावोंकी प्रबलताके कारण बाबा आज बहुत गम्भीर हैं। आज बाबा यन्त्रवत् परिक्रमा-पथपर चल रहे हैं। बाबाकी मुखाकृति बतला रही है कि आज वे गहरे रूपसे अन्तर्मुख हैं। परिक्रमा-नियमके पूर्ण होनेपर बाबा अपनी कुटियापर गये। साथमें थे ठाकुरजी भी।

भावके किञ्चित् शमित होनेपर ठाकुरजीसे बाबाने कहा – इस पदमें जो-जो वर्णित हुआ है, उसे श्रीरसिकरायजीने प्रत्यक्ष देखकर लिखा है। वे स्वयं ही पदके अन्तमें कहते हैं 'निरखत लीला रसिक जू जहाँ दान मानकी ठौर'। व्रजभूमिके इन प्रत्यक्ष-लीला-दर्शी संतोंकी कितनी कृपा है कि जो इन अचिन्त्य-अगम्य लीलाओंको सरल रीतिसे वर्णन करके हम लोगोंको सहज-सुलभ करा रहे हैं।

* * * * *

स्व-दृष्ट पूतनालीला का वर्णन

ठाकुरजीसे भगवल्लीलाकी अचिन्त्यता-अगम्यताकी बात चल रही थी। बाबा अपनी एक स्व-दृष्ट लीलाका वर्णन करते हुए कहने लगे – बड़ी सरस और बड़ी मधुर लीलाओंकी बात एक बार एक किनारे रख दो, पूतना-लीलाकी ही बात लो। पूतना-लीलाको लीला-चिन्तनकी दृष्टिसे प्रायः

कोई वरेण्य नहीं मानता, परंतु किसी अकारण कृपाके फलस्वरूप मेरे समक्ष पूतना-लीला जिस प्रकारसे आविर्भूत हुई, उसका वर्णन किस प्रकार करूँ? जब निशाचरी पूतना नीलसुन्दर शिशुको अपने वक्षःस्थलपर लिये-लिये उड़ चली, उस समय गोपियोंमें हाहाकार मच गया, सब एक साथ चीत्कार कर पड़ीं। यशोदा मैया तो तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। पूतनाके साथ-साथ गोपियाँ दौड़ पड़ीं। एक नहीं, दौड़ पड़ीं सब-की-सब। पूतना उड़ रही थी ऊपर आकाशमें और गोपियाँ दौड़ रही थीं नीचे पृथ्वीपर। गोपियोंकी दृष्टि पथपर नहीं, नभमें थी, नभमें पूतनाके वक्षःस्थलसे चिपके हुए नीलसुन्दर शिशुपर। क्या आकाशकी ओर दृष्टि होनेसे दौड़ती हुई गोपियाँ नन्दग्रामके भवनोंसे टकरा गयीं? क्या वनकी लताओंने-वृक्षोंने गोपियोंके मार्गमें अवरोध उपस्थित किया? नहीं, कदापि नहीं। वे भवन, वे विटप, वे वल्लरियाँ जड़ थोड़े ही हैं। श्रीकृष्ण-लीलामें सहयोग देनेके लिये उन सबने जड़ावरण वरण कर रखा है। वहाँके जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, वहाँकी सम्पूर्ण प्रकृति चिन्मय है। उन सबने स्वतः ही दौड़ती-भागती सभी गोपियोंको अवकाश दे दिया, मार्ग दे दिया। मार्गमें किसी प्रकारका अवरोध उपस्थित न होने पाये, एतदर्थ वे सभी यथावश्यकता सिमट गये, संकुचित हो गये, सीधे हो गये। यही बात कालको लेकर है। यह कभी सम्भव ही नहीं कि यातुधानी पूतनाके उड़नेकी गतिकी समान गतिसे गोपियाँ दौड़ सकें। तुरन्त काल भी संकुचित हो गया और पूतनाके गिरनेके साथ-साथ ही गोपियाँ वहाँ पहुँच गयीं। और वह सलोना शिशु भी कितना भाव-ग्राही है! सभी-की-सभी गोपियोंकी भीषण अन्तर्वेदनाको उसने अनुभव किया। किसी एकने नहीं, सारी गोपियोंने अलग-अलग यही अनुभव किया कि पूतनाके वक्षःस्थलसे लालाको मैंने ही उठाया है और मैंने ही लाकर मूर्च्छित यशोदाकी गोदमें दिया है, जिससे यशोदाके कण्ठगत प्राणोंकी रक्षा हो सकी। वहाँके चिन्मय भवनोंकी, वनोंकी, वीथियोंकी, वृक्षोंकी, वल्लरियोंकी, वामाङ्गनाओंकी मति-रति-गति हम साधारण जनोंके लिये अगम्य है, अचिन्त्य है, अकल्पनीय है।

* * * * *

सन्निपात का प्रकोप

बाबाको तो अपने शरीरका ध्यान रहता ही नहीं। पर-दुःखकातरता इतनी थी कि अपने शरीरका मूल्य देकर भी आगत जनोंके दुःख-दर्दको सुनना चाहते थे तथा उस दुःख-दर्दको दूर करना चाहते थे। शीत ऋतु होनेसे परिक्रमा प्रातःकाल साढ़े आठ बजेसे पौने नौ बजेतक हुआ करती थी। शुक्रवार ११-१-८० के प्रातः परिक्रमा लगाकर जब बाबा अपनी कुटियापर पहुँचे, उसके थोड़ी देर बाद ही लोग मिलनेके लिये पहुँच गये। कुटियाके चारों ओर पर्याप्त स्थान छोड़ करके एक घेरा बना हुआ था। उस घेरेके द्वारपर बाबा बैठ गये तथा लोगोंसे मिलने लगे। एकके बाद दूसरेसे, दूसरेके बाद तीसरेसे, इस प्रकार बाबा मिले, पर आजका यह मिलना प्राणघाती हो गया। पेड़के नीचे धूपका अभाव, घोर शीत तथा रह-रह करके बाबाके शरीरपरसे वस्त्रोंका सरक जाना; बस, बाबाको भीषण रूपसे सर्दी लग गयी। इसके बाद फिर नग्न शरीरसे शौच गये। वहाँ शरीरमें इतनी अधिक कँपकँपी थी कि प्रक्षालनार्थ शौचालयके पात्रको पकड़ सकना भी सम्भव नहीं हो सका। यह कल्पना किसीको भी नहीं थी कि उनके फेफड़े बहुत ही अधिक कफाक्रान्त हो चुके हैं। इसी क्रममें प्रतिदिनके अभ्यासके अनुसार बाबाने टब-बाथ ले लिया। टब-बाथ क्या लिया, रही-सही 'कमी' भी पूरी हो गयी और बाबा बेहोशीकी स्थितिमें हो गये। टब-बाथके बाद बाबा भिक्षा किया करते थे, पर अब भिक्षा क्या होती?

बाबाको तुरन्त लिटा दिया गया। रातको बाबा जब कुछ असम्बद्ध बोलने लगे, तब प्रातःकाल अनुमान हुआ कि सम्भवतः बाबाको सन्निपात हो गया है। तुरन्त डाक्टरको बुलाया गया। डाक्टरने देखते ही कहा – स्थिति सांघातिक है। मैं तुरन्त इंजेक्शन देना चाहता हूँ, अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि आप लोग बाबाको खो दें।

परस्परमें विचार-विनिमयके बाद यही तय किया गया कि ऐलोपैथिक दवा बाबाने कभी नहीं ली, अतः इंजेक्शन नहीं देना चाहिये। हाँ, आयुर्वेदिक औषधि अवश्य देनी चाहिये। नगरके श्रेष्ठ वैद्यराज श्रीश्रीपतिजीको बुलाकर आयुर्वेदिक चिकित्सा आरम्भ हो गयी। नगरके तथा मेडिकल कालेजके अनेक डाक्टर बिना बुलाये ही प्रीतिवशात् आ-आ करके बाबाको देखने लग गये। सभी बार-बार स्थितिकी गम्भीरताकी ओर संकेत कर रहे थे। डा.एल.डी.सिंह

तथा डा.एम.एन.शर्मा तो निरन्तर बाबाकी सेवामें लगे रहे। इनकी सेवाकी सराहनाके लिये शब्द नहीं।

११-१-८० शुक्रवारके अपराह्न कालसे शनिवारके सूर्यास्ततक स्थिति बड़ी गम्भीर रही। एक बार तो बाबाकी नेत्र-पुतली स्थिर हो गयी थी। यह देखकर हम सभी लोग काँप उठे। शनिवारकी संध्याके समय लगभग सात बजे बाबाको थोड़ी चेतनता हुई। इससे हम सभी लोगोंको कुछ धीरज बँधा। रातमें बाबाको थोड़ी नींद आयी। प्रातः बाबा बड़े प्रसन्न रहे। पहले जो ज्वर १०५ डिग्री था, वह रविवारको १०२ डिग्री और सोमवारको प्रातः १०० डिग्री रहा। औषधिने काम किया। स्थिति अब पूर्णतः सुधारकी ओर थी।

११-१-८० शुक्रवारको तो प्रातः परिक्रमा हो गयी थी। शनिवारको तथा रविवारको अपराह्न कालमें आराम कुर्सीपर लिटाकर बाबाको परिक्रमा हेतु गिरिराज-परिसरमें लाया गया। उनके चरणोंका भूमिसे स्पर्श करा दिया गया। इसके बाद कुर्सीपर लिटाये-लिटाये एक परिक्रमा करा करके बाबाको वापस कुटियापर ले जाया गया।

* * * * *

श्रीरामचरितमानस का प्रतिपाद्य

सन् १९८० के मध्यकी बात होनी चाहिये। सूर्यास्त हो चुका था। बाबा स्नान करके भिक्षा करनेके लिये अपने आसनपर विराज चुके थे। पत्तलमें भिक्षाके परोसनेकी तैयारी हो रही थी। उस समय लगभग दस-पन्द्रह व्यक्ति बाबाके पास बैठे हुए थे। उनके शान्त और प्रसन्न मुख मण्डलको देखकर एक व्यक्तिने हाथ जोड़कर निवेदन किया – बाबा! मेरे मनमें एक जिज्ञासा है।

बाबाने कहा – पूछिये, क्या जानना चाहते हैं?

उन सज्जनने कहा – बाबा! तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसका प्रतिपाद्य तथ्य क्या है?

इस प्रश्नको सुनकर बाबा थोड़े चौंके। प्रश्न तो जटिल अवश्य था, किन्तु था बहुत सुन्दर। प्रश्नकर्ताका परिचय प्राप्त करनेकी भावनासे बाबाने पूछा – आपका परिचय क्या है, आप क्या करते हैं?

उन सज्जनने हाथ जोड़े हुए विनम्रता पूर्वक कहा – मैं इलाहाबादका रहनेवाला हूँ और श्रीरामचरितमानसकी कथा कहा करता हूँ।

वे आगे कुछ बोलें, उनको रोककर बीचमें ही बाबा बोल पड़े – यह तो बड़ी अटपटी बात है। श्रीरामचरितमानसकी कथा कहनेवाले पण्डितजीको मानसके प्रतिपाद्यका ज्ञान नहीं हो, यह बात समझमें नहीं आती!

उन कथावाचकजीने कहा – यह बात आपकी या किसीकी समझमें भले न आये, पर सचमुच मेरे मनमें यह प्रश्न बहुत दिनोंसे बना हुआ है।

बाबाने एकदम सीधा प्रश्न किया – जैसे अन्य कई कथावाचक अपने पाण्डित्यका प्रदर्शन करनेके लिये कुछ प्रश्न करते हैं, कुछ कुरेदते हैं, कुछ कहते हैं, क्या आप भी वही कर रहे हैं?

कथावाचकजीने पुनः कहा – बाबा! सचमुच मैं वह प्रतिपाद्य जानना चाहता हूँ, इसीलिये ऐसा प्रश्न किया है।

बाबा तो उनके मनकी भीतरी बात जानना चाहते थे, अतः उन्होंने फिर पूछा – क्या आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं?

कथावाचकजीने कहा – परीक्षा नहीं, शिक्षा लेने आया हूँ।

बाबाने पुनः उलटकर तीखे स्वरमें प्रश्न किया – क्या आप मेरी वंचना कर रहे हैं?

उन कथावाचकजीने विनम्रता पूर्वक कहा – मैं एक साधारण ब्राह्मण हूँ। मानसकी कथा कहकर अपने परिवारका भरण-पोषण करता हूँ। अब आप सोचें कि क्या कथा कहनेवाला एक साधारण ब्राह्मण किसी तपस्वी संन्यासीकी वंचना करनेका साहस कर सकता है? यदि मुझे वंचना ही करनी थी तो मैं किसी अन्यकी करता। आपकी वंचना करके मुझे कहाँ ठहरनेकी ठौर मिल पायेगी? क्या मैं आपकी वंचना करनेकी बात कभी सोच सकता हूँ? मैंने आपकी कीर्ति सुनी है। आपके संतत्वपर मेरा पूरा विश्वास है। मुझे मेरी जिज्ञासाका सही-सही समाधान मिलेगा, यह आशा लेकर मैं आपके श्रीचरणोंके समीप आया हूँ। आप विश्वास करें, मैं आपकी न वंचना करने आया हूँ और न परीक्षा लेने आया हूँ, अपितु मैं अपना वह प्रश्न आपके समक्ष रख रहा हूँ, जिसका उत्तर मुझे कहीं मिल नहीं पाया है। मेरे साथ तो दीपक तले अँधेरावाली उक्ति चरितार्थ हो रही है।

उन कथावाचकजीके सरल और सत्य निवेदनसे बाबा द्रवित हो उठे। सच्चे और सरल प्रश्नका संत सदैव स्वागत किया करते हैं। बाबाने कहा – सर्वप्रथम, आपकी सच्चाईकी मैं हृदयसे जय-जयकार मनाता हूँ। अब जो भी समझमें आ रहा है, उसे बतलानेका प्रयास कर रहा हूँ। यह बात सिद्धान्ततः सही है कि मरते समय व्यक्ति झूठ नहीं बोलता। अन्तिम क्षणोंमें उसके भीतर

सत्यके लिये आग्रह रहता है। अब गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके श्रीरामचरितमानसके अन्तिम काण्ड अर्थात् उत्तरकाण्डके एकदम अन्तिम अंशको देखें। उत्तरकाण्डके एकदम अन्तमें गोस्वामीजीने तीन कवित्त लिखे हैं। इन तीन कवित्तोंके बाद उन्होंने दो दोहे लिखे हैं –

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु विषम भव भीर।।
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।

इन दो दोहोंमें श्रीगोस्वामीजीने अपने जीवनाराध्य भगवान श्रीसीतारामजीसे अपनी आन्तरिक प्रार्थना और वास्तविक कामनाका निवेदन किया है। वह आराध्य और आराधकके मध्य होनेवाले व्यक्तिगत और आन्तरिक सम्बन्धकी बात है। इन दो दोहोंमें गोस्वामीजीने अपनी निजी भावनाका उल्लेख किया है। इन दो दोहोंसे पहले जो तीन कवित्त लिखे गये हैं, उनमें तीन बातें कही गयी हैं।

प्रथम कवित्त है –

पाई न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।।
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते।।

इस प्रथम कवित्तमें भगवानके नामकी महिमा बतलायी गयी है। जिसने भी भगवन्नामका आश्रय लिया, चाहे वह कोई हो और कैसा भी हो, उसकी सारी बात बन गयी और उसके लोक-परलोक-परमार्थ सभी सुधर गये। भगवन्नामके आश्रयसे नितान्त पतित भी परम पावन हो जाता है।

अब दूसरा कवित्त है –

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं।।
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरै।।

इस दूसरे कवित्तमें भगवानके चरित्रकी महिमा बतलायी गयी

है। जो मनुष्य भगवानकी लीलाका कथन-श्रवण-गायन करते हैं, उनके मनकी सारी मलिनता दूर हो जाती है, पाँचों प्रकारकी अविद्याके विकार नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें उसे भगवानके परम धामकी प्राप्ति होती है। तीसरा कवित्त है –

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को।।
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

इस तीसरे कवित्तमें भगवानकी कृपाकी महिमा बतलायी गयी है। दयासिंधु भगवानकी अनाथोंपर बड़ी प्रीति होती है। उन कृपा-मूर्ति भगवानकी कृपाके बिंदु मात्रसे संसार-सिंधु ही सूख जाता है और मुक्ति सहज सुलभ हो जाती है। उन सदा निष्काम और पूर्ण कृपाधामकी कृपाका आश्रय लेनेसे परम विश्राम मिलता है।

बाबा बड़े प्यार भरे शब्दोंमें उन कथावाचकजी महाराजको मानसका मर्म बतलाते जा रहे थे। बाबाने कहा – प्रथम कवित्तमें भगवन्नाम, दूसरे कवित्तमें भगवल्लीला और तीसरे कवित्तमें भगवत्कृपाकी महिमाका वर्णन है। बस, यही भगवन्नाम, भगवल्लीला और भगवत्कृपा ही श्रीरामचरितमानसका प्रतिपाद्य है और विभिन्न रीतिसे इन तीनोंकी महिमाका बखान करते हुए मानसमें यही कहा गया है कि इनका आश्रय लेनेसे मानव-जीवनको पूर्ण सफल और पूर्ण सुन्दर बनाया जा सकता है। मानसके सभी पात्र, चाहे वे सुन्दर हों या असुन्दर, निकृष्ट हों या उत्कृष्ट, सभी इसी तथ्यका अपनी क्रियाओंसे परिपोषण करते हैं। श्रीरामचरितमानसके सारे पात्रोंका, सभी संवादोंका और आद्यन्त कथाप्रवाहका एक मात्र यही संदेश है कि भगवन्नाम-भगवल्लीला-भगवत्कृपा, इन तीनोंके आश्रयसे जीवनमें ऊँची-से-ऊँची वस्तुकी प्राप्ति सहज सम्भव है और श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ आध्यात्मिक स्थितिकी भी उपलब्धि हो सकती है।

इस सारे निवेदनको हाथ जोड़े हुए वे कथावाचकजी दत्त-चित्त होकर सुन रहे थे। उनके दोनों कपोलोंपर उभरती हुई भाव-रेखाएँ तथा उनके दोनों नेत्रोंकी भीगती हुई स्थिर-पुतलियाँ उनके परम संतोष,

उनके परम आनन्द और उनकी परम तृप्तिको व्यक्त कर रही थीं।

ये तीनों कवित्त हमारे मानस-पाठके मध्य नित्य आते हैं और सदा सभीके सामने रहते हैं, पर सदा सामने रहकर भी उनका मर्म अव्यक्त ही रहता था। व्यक्त रह करके भी अव्यक्त रहना, ऐसे रहस्यात्मक भ्रमको दूर कर पाता है कोई मर्मी ही। उस अव्यक्त रहस्यका मर्मोद्घाटन हो पाता है उसके द्वारा, जिसे उस मर्मकी पहचान हो और जिसकी उस रहस्यतक पहुँच हो। बाबाके श्रीमुखसे श्रीरामचरितमानसके प्रतिपाद्यको सुनकर सभी विस्मित थे, पुलकित थे और आनन्दित थे।

* * * * *

चातकी निष्ठा

जनवरी मासकी बात है। बाबा प्रतिदिन प्रातःकाल नवद्वीपके श्रीबड़ेबाबाजी (पूज्य श्रीराधारमणचरणदासजी महाशय) का जीवन वृत्त सुना करते थे। यह जीवन वृत्त 'चरित सुधा'के नामसे छः भागोंमें प्रकाशित है। वृत्त सुननेका यह क्रम बहुत दिनोंसे चल रहा था। २५ जनवरीके प्रातःकाल कुछ ऐसा प्रसंग आया, जिसका प्रतिपाद्य यही था कि भक्त सर्वदा संसारसे विमुख रहकर सर्वथा ईश्वरोन्मुखी रहता है। बाबा इसी भावमें बह रहे थे। बहते-बहते ऐसा लगने लगा कि उनकी वृत्ति कहीं अन्यत्र डूब जाना चाहती है। तभी बाबाने ये श्लोक कहे —

ऐहिकामुष्मिकी चिन्ता नैव कार्या कदाचन।
ऐहिक तु सदा भाव्यं पूर्वाचरितकर्मणा॥
आमुष्मिकं प्रियः/प्रभुः कृष्णः स्वयमेव करिष्यति।
सरःसमुद्रनद्यादीन्विहाय चातको यथा॥
तृषितो म्रियते चापि याचते वै पयोधरम्।
एवमेव प्रयत्नेन साधनानि विचिन्तयेत्॥

ये श्लोक पद्मपुराणके हैं। बाबाको ये अत्यन्त प्रिय रहे। कभी-कभी इन श्लोकोंके बारेमें बाबा कहते थे — इन श्लोकोंकी रचना करते समय भगवान् श्रीवेदव्यासजी महाराजकी न जाने कैसी भावमयी

स्थिति रही होगी। जब-जब इन श्लोकोंकी स्मृति होती है, तब-तब भावका स्रोत केवल बहता नहीं, उसका प्रबल प्रवाह उमड़ पड़ता है।

चातककी निष्ठा बाबाके लिये सदा ही भावोद्दीपक रही है। जब भी चातककी एक-निष्ठताका प्रसंग आता, बाबाकी गति-मति-स्थिति कुछ और ही हो जाया करती थी। वही बात आज हुई। भगवान वेदव्यासजी द्वारा रचित इन तीनों श्लोकोंको कहनेके बाद बाबाने मन्द स्वरमें कहा – 'पी कहाँ? पी कहाँ? कुछ देर मौन रहकर फिर बाबाने करुण स्वरमें कहा – 'पी कहाँ? पी कहाँ?' थोड़ी देर बाद फिर इसी प्रकारसे कहा और कहकर फिर मौन ही नहीं हुए, सर्वथा अन्तर्मुख हो गये। बाबा तो अपने आसनपर बैठे हुए थे, पर अपने ही कन्धेका सहारा लेनेके लिये उनकी गर्दन एक ओर लटक गयी। पास बैठे हुए लोग एकटक उनकी निःस्पन्द-निश्चेष्ट मुखाकृतिकी ओर देखने लगे।

बहुत देरतक ऐसी स्थिति बनी रही। परिक्रमाका समय हो रहा था। बाबाको प्रकृतिस्थ करनेके लिये उनसे अनुरोध किया गया – बाबा! अभी मंजन करना है न?

यह अनुरोध अनसुना रह गया। थोड़ी देर बाद पुनः अनुरोध किया गया। यह अनुरोध भी निष्फल रहा। बाबाकी यह स्थिति याद दिला देती है पहले कभी सुनी हुई एक बातकी। पहले कई बार ऐसा हुआ है कि प्रबल भावावेगके कारण बाबाको शरीरकी सुधि नहीं रहती थी। पूज्या माँ बाबाको भिक्षा कराने बैठी हैं। बाबाके सामने पत्तल है तथा पत्तलमें माँने रोटी-शाक-दाल परोस दिया है, पर भिक्षा करनेकी सुधि बाबाको नहीं। तब माँ कहती – बाबा! रोटीका टुकड़ा तोड़िये। टुकड़ेके साथ शाक भी लें।

कई बार मुखका ग्रास मुखमें और हाथका ग्रास हाथमें ही रह जाता। बार-बार स्मरण कराना पड़ता कि ग्रास खा लें। जिस प्रकार एक बालकको भोजन कराया जाता है, पूर्णतः उसी भाँति भिक्षा करानी पड़ती।

आज भी बाबाकी अन्तर्मुखता कम नहीं थी। किंचित् प्रयासके बाद बाबा थोड़े बहिर्मुख हुए। आसनपरसे उठाकर बाबाको धीरे-धीरे लाया गया। शारीरिक अशक्तताके कारण उठने-बैठने-चलनेके समय बाबाको थोड़े सहारेकी आवश्यकता पड़ा करती थी, पर इस समय तो

केवल अशक्तता नहीं, भाव-निमग्नताके कारण शरीरमें शिथिलता भी पर्याप्त थी। कुछ दूरीपर स्थित पाटेपर जब बाबाको मंजन करनेके लिये बैठाया गया, वहाँ बैठते ही बाबा पुनः अन्तर्मुख हो गये। रह-रह करके बाबाको स्मरण दिलाना पड़ रहा था कि आप मंजन कर लें। मंजन-स्नानादिसे निवृत्त होकर बाबा परिक्रमाके लिये पधारे अवश्य, पर शरीरमें शिथिलता होनेके कारण चलनेकी क्रिया प्रयास और सावधानीके उपरान्त सम्पन्न हो पा रही थी।

कुछ दिनों पहलेकी एक बात है। बाबासे सहज रूपसे बातचीत हो रही थी। बातचीतके प्रवाहमें प्रसंगानुरोधसे मैं बाबाको विभिन्न संतों-भक्तोंके भिन्न-भिन्न आदर्श सुनाने लगा। केरलके एक संत हैं, जिनके जीवनका आदर्श है वृक्षसे टूटकर नीचे गिरा हुआ सूखा पत्ता। उस सूखे पत्तेको पवन जहाँ चाहे, वहाँ ले जाये। इसी प्रकार भगवत्कृपा मुझे जहाँ चाहे, वहाँ ले जाये; जैसे चाहे, वैसे रखे। अपना कोई आग्रह अथवा अनुरोध नहीं।

व्रजमण्डलके एक संत थे, जिनका आदर्श था कन्दुक। क्रीड़ारत प्रिया जब कन्दुक उछालती हैं तो प्रियतम अपने हाथमें थाम लेते हैं और जब प्रियतम उस कन्दुकको उछालते हैं तो श्रीप्रिया अपने आँचलमें रोक लेती हैं। मैं उनके विलास और विनोदका उपकरण बना रहूँ।

श्रीकृष्णप्रेमजी भिखारी (अँगरेज महात्मा श्रीनिक्सन साहब) का आदर्श था धनुषसे छूटा हुआ तीर, जो बीचमें कहीं रुकता नहीं, ठहरता नहीं। बस, सर्व-प्रथम लक्ष्यतक पहुँचना है। लक्ष्य-प्राप्ति ही तीरकी तीव्र गतिकी सीमा है।

परम भक्त श्रीसूरदासजीका आदर्श था चकोर, निरन्तर चकोरवत् अपने प्राणाराध्यके मुख-चन्द्रकी सुन्दर सलोनी छविका दर्शन करना।

संत कबीरका आदर्श रहा है चितापर चढ़ी हुई सती। प्रज्वलित चिताकी ज्वालासे घिरे रहनेपर भी जिसके अधरोंपर आहकी कराह नहीं, लपटोंसे लिपटी देहके दग्ध होते रहनेपर भी देहकी ओर जिसका ध्यान नहीं, बस, उस सतीका है एक ही स्वर, एक ही चाह – 'कब देखौं मुख पीव, कबरु मिलहुगे राम'।

विभिन्न संतों-भक्तोंके भिन्न-भिन्न आदर्शोंको मैं कह ही रहा था

कि बाबा तुरन्त बोल उठे – भइया रे! मेरा आदर्श तो चातक है, जो निरन्तर 'पी-कहाँ', 'पी-कहाँ' रटता ही रहता है।

जिनकी राधाके जीवनमें क्रन्दन-ही-क्रन्दन है, उन बाबाके जीवनका आदर्श 'पी-कहाँ', 'पी-कहाँ' की सदा-सर्वदा रट लगानेवाला चातक हो तो क्या आश्चर्य? बाबाके समक्ष जब-जब चातक-निष्ठाकी चर्चा होती और चातकी-निष्ठा भी जहाँ फीकी पड़ जाये, उस राधा-हृदयस्थ-श्याम-निष्ठाकी, श्यामानुरागिणी राधाकी अचिन्त्य निष्ठाकी जब-जब चर्चा आती, तब-तब बाबाकी चेष्टाओंका रूप, उनकी मुखाकृतिका रंग, उनके स्वरोच्चारका ढंग कुछ और ही हो जाया करता था। न जाने कैसे बाबा इन सबको अपने भीतर सँजोये रहते थे और छिपाये रह पाते थे।

* * * * *

परमार्थ और प्रपंच

सन् १९८१ के फरवरी मासमें एक दिन भाई श्रीभीमसेनजी चोपड़ाका मन बहुत खिन्न हो गया। यह खिन्नता हुई बाबाके पास आनेवाले लोगोंकी जागतिकताको देखकर। बाबाके पास लोग आते हैं, शहरके लोग आते हैं, दूर-दूरसे लोग आते हैं और वे लोग अपनी जागतिक समस्याएँ बाबाके सामने रखते हैं। किसीको नौकरी चाहिये, किसीके परिवारमें झगड़ा है, किसीको चिकित्साके लिये सहायता चाहिये, कोई पढ़ाईकी फीसके लिये व्यवस्था चाहता है और विधवा बहिनोंका प्रश्न सबसे जटिल होता है। सभी लोगोंके मनमें अपनी-अपनी समस्याके लिये अत्यधिक महत्त्व है और उन-उन समस्याओंको समझनेमें और सलटानेमें बाबाका काफी समय निकल जाया करता है। भाई श्रीचोपड़ाजीके शब्दोंमें वह समय व्यर्थ ही जाता है। जितने लोग बाबाके पास आते हैं, उनमें लगभग अस्सी-नब्बे प्रतिशत लोग अपनी पारिवारिक- शारीरिक-सांसारिक समस्या लेकर ही आते हैं। बाबा यदि केवल भक्ति सम्बन्धी चर्चा करते तो न जाने कितने लोगोंको प्रेरणा मिलती, परन्तु इस सांसारिक चर्चामें बाबाका बहुत-सा समय खप जाता है। इसे देखकर श्रीचोपड़ाजीने बाबासे कहा – बाबा! व्रजभूमिके एक

संत हैं। वे जगतके प्रपंचसे सम्बन्धित बात न सुनते हैं और न करते हैं। उनसे कोई बात होती है तो केवल भगवद्विषयक। इसका परिणाम यह है कि उनके चारों ओरका वातावरण आध्यात्मिकताके सुवाससे सदा परिपूर्ण रहता है। उस आध्यात्मिक वातावरणके फलस्वरूप उनके पास आनेवाले हर व्यक्तिको लोकोत्तर सुख-शान्ति-शीतलताकी प्राप्ति होती है। क्या आप भी ऐसा नहीं कर सकते कि आपके पास आनेवाले आपके सामने एकमात्र आध्यात्मिक और साधनात्मक समस्या रखा करें।

बाबाने श्रीचोपड़ाजीसे कहा— आपने व्रजभूमिके जिन संतकी बात बतलायी, उनकी वह रहनी और करनी सब प्रकारसे अनुमोदनीय और अभिनन्दनीय है। क्या आप वही मुझसे भी चाह रहे हैं? अरे चोपड़ाजी! मेरी दृष्टि सर्वथा दूसरी है। यह पारमार्थिक है और वह प्रापंचिक है, यह भेद मेरे लिये नहीं रह गया है। पारमार्थिक और प्रांपचिक कहकर कोई वर्गीकरण करना चाहे तो भले कर ले। कोई वर्गीकरण करके मात्र पारमार्थिक और आध्यात्मिकको ग्राह्य तथा प्रापंचिक और सांसारिकको त्याज्य भले समझे और तदनुसार आचरण भले करे, परन्तु मेरा स्तर सर्वथा अलग है। मेरी दृष्टिमें तो क्या परमार्थ और क्या प्रपंच सर्वत्र और सदैव भगवल्लीलाका नित्य विलास है। मेरे लिये दिन और रात, यह और वह, यह सारा भेद समाप्त हो गया। 'जित देखूँ तित स्याममयी है'। भगवानके चिद्विलासके अतिरिक्त और है क्या? अतः मैं क्यों एकको वरेण्य और दूसरेको निन्दनीय मानूँ? मैं तो भगवद्भावकी रसमयी लहरोंपर लहराता रहता हूँ और जब जैसा सामने आता है, सबमें भगवद्दर्शन करते हुए तदनुसार कार्य करता रहता हूँ।

इस उत्तरसे श्रीचोपड़ाजीकी सारी खिन्नता दूर हो गयी। केवल खिन्नता दूर नहीं हुई, अपितु परम प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता हुई इसलिये कि भगवत्प्राप्त संतकी भागवती दृष्टिका प्रकर्ष उदाहरण देखने-समझनेका अवसर मिला। 'सियराम मय सब जग जानी' अबतक पढ़ते थे, सुनते थे और कहते थे, परन्तु आज उसका प्रत्यक्ष जीवन्त रूप देखनेको मिला।

* * * * *

श्रीगिरिराज-परिक्रमा की एक झाँकी

सन् १९८१ के वर्ष श्रीराधाष्टमी-महोत्सव रविवार ६ सितम्बरको था। महाराजजी (पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज) गीतावाटिका ३ सितम्बर, ८१ के दिन पधारे। साथमें श्रीठाकुरजी तथा अन्य लोग थे। बाबा प्रातःकालसे ही महाराजजीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्यों ही महाराजजीके आनेका संवाद मिला, बाबाने आगे बढ़कर महाराजजीका स्वागत किया। हाथ पकड़े-पकड़े महाराजजीको बाबा अपनी कुटियातक ले आये तथा विराजित होनेके लिये एक उच्चासन दिया। महाराजजी तो बाबासे मिलकर विह्वल हो रहे थे। नेत्र तो उनके बन्द थे, पर महाराजजी अपने नेत्रोंके प्रेमाश्रुओंको बार-बार पोंछ रहे थे। भावके शमित होनेपर महाराजजीको पुष्पमाला स्मरण हो आयी। श्रीबिहारीजीकी प्रसादी-माला महाराजजी अपने साथ वृन्दावनसे ले आये थे। ज्यों ही महाराजजीने अपने हाथमें पुष्पमाला ली और बाबाको पहनानी चाही, त्यों ही बाबाने वह पुष्पमाला अपने हाथमें ले ली और वह पुष्पमाला महाराजजीको ही पहना दी। ऐसा तो पहले कभी नहीं होता था। बाबाद्वारा माला पहनाये जानेके नवीन प्रसंगको देखकर सभी बड़े आनन्दित हुए। फिर महाराजजीने दूसरी माला बाबाको पहनायी। कुशल समाचार पूछनेके बाद बाबा कहने लगे – आपके शुभागमनसे ही इस वर्ष राधाष्टमी-महोत्सवका शुभारम्भ हो गया। आपकी उपस्थितिसे ही इस महोत्सवकी शोभा है। इतना ही नहीं, आपकी उपस्थितिमें ही महोत्सवकी सम्पन्नता निहित है।

जब महाराजजी बाबाके पाससे विश्राम करने तथा प्रातःकालीन स्नानादि नित्य-क्रियासे निवृत्त होनेके लिये चले गये, इसके बाद भी बाबाने वह माला नहीं उतारी। वह प्रसादी-माला महाराजजीके सांनिध्यका सुख प्रदान कर रही थी। महाराजजी अपनी शय्यापर किंचित् विश्राम करनेके लिये लेट चुके हैं, इस संवादके मिलनेके बाद ही बाबाने माला उतारी और उतारकर उसे अपने बिस्तरके सिरहाने रख ली।

दिनांक ५ सितम्बर अर्थात् सप्तमी तिथिको तो परिक्रमाके समय बड़ा ही सुन्दर दृश्य देखनेको मिला। बाबा तो अपने नित्य-नियमके अनुसार श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा कर रहे हैं, पर उनके साथमें श्रीप्रिया-प्रियतम भी हैं। कल अपराह्णकालमें वृन्दावनसे श्रीश्रीरामजी श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली आ गयी थी। श्रीश्रीजी तथा श्रीठाकुरजी शृङ्गार धारण करके बाबाके साथ-साथ परिक्रमामें चल रहे हैं। बाबाका हाथ कभी श्रीश्रीजी अपने हाथमें ले लेती हैं और कभी श्रीप्रियतम अपने हाथमें। इधर तो श्रीहरिवल्लभजी और श्रीफतेहकृष्णजी सुन्दर-सुन्दर पद गा रहे थे और उधर श्रीप्रिया-प्रियतमसे हँसते-बतराते हुए बाबा मन्द गतिसे परिक्रमा लगा रहे थे। उस समयका दृश्य बड़ा चित्ताकर्षक था। श्रीप्रिया-प्रियतमके साथ बाबा परिक्रमा दे रहे थे कि रासमण्डलीके स्वामी श्रीफतेहकृष्णजीने रासके पदोंका गायन आरम्भ कर दिया। फिर क्या कहना था? परिक्रमा-पथमें श्रीप्रिया-प्रियतमने रास-नृत्य आरम्भ कर दिया। एक बार परिक्रमा करनेका क्रम ठहर गया। श्रीप्रिया-प्रियतमका नृत्य तो, बस, देखने योग्य ही था। बार-बार यही लग रहा था कि श्रीसूरदासजीकी पंक्तियाँ यहाँ यथार्थ रूपसे घटित हो रही हैं। 'नृत्यत स्याम स्यामा हेत'।

एक बड़ी विचित्र बात और। नृत्य करते-करते एक-दो बार ऐसा हुआ कि ज्यों ही नृत्यके बीच समकी ताल आयी, श्रीप्रियतमने बाबाके चिबुकका स्पर्श किया— श्रीप्रियतमका ऊपर उठा हुआ दाहिना हाथ बाबाके चिबुकका स्पर्श कर रहा है तथा बाँया हाथ पीछेकी ओर फैला हुआ है। इस छविको देखकर हम सभीको आनन्द तो हुआ ही, आनन्दसे अधिक आश्चर्य हुआ। कोई सोच ही नहीं सकता था कि अत्यधिक मर्यादावादी और अत्यधिक संगोपनप्रिय बाबाके प्रति ऐसी चेष्टा भरी सभाके बीच हो सके। बाबाकी अप्रसन्नताको मोल लेनेका साहस भला कौन करेगा? पर इस ठाकुरको तो न तनिक संकोच और न किंचित् संभ्रम! ऐसी उन्मुक्त चेष्टाको देखकर हम सभीको बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

श्रीप्रियतमकी इस सर्वथा सहज चेष्टाके बारेमें महाराजजी तो बादमें

हमलोगोंसे स्पष्ट रूपसे कहने लगे कि इस ठाकुरस्वरूप पर बाबाके 'आन्तरिक भाव-स्वरूप'की छाया अवश्य पड़ी है। यदि बाबाके 'आन्तरिक भाव-स्वरूप'की स्फूर्ति इन ठाकुरजीके अन्दर नहीं हुई होती तो यह सम्भव ही नहीं था कि रास-नृत्य करते-करते ऐसा हो सके।

जिस पदको तो समाजी गा रहे थे, उसी पदको अपनी मौजमें श्रीप्रियतम नृत्य करते-करते, नृत्यमयी चालसे चलते-चलते दूर बैठे हुए बाबाके पास आये और बाबाके कानमें धीरेसे कहा – तुव मुख चंद चकोर मेरे नैना राधे!

मैं बाबाके पास, एकदम समीप बैठा हुआ था, अतः श्रीप्रियतमकी यह परम ऐकान्तिक उक्ति मुझे भी सुनायी पड़ गयी। इसे सुनकर बाबा श्रीप्रियतमकी ओर चकित दृष्टिसे देख रहे थे और हम एक-दो व्यक्ति बाबा और श्रीप्रियतमकी ओर अवाक् बने हुए देख रहे थे। सचमुच, महाराजजीने जो कहा था, वह सही कहा था। एक अन्य प्रसंगने तो महाराजजीके कथनकी और भी अधिक पुष्टि कर दी। जब श्रीप्रिया-प्रियतमके साथ बाबा परिक्रमा लगा रहे थे तो श्रीहरिवल्लभजीने एक-दो पदोंके गानेके बाद अगले पदका गायन आरम्भ किया –

'यह बन आप ही सौं सुहात'।

परिक्रमाके बीचमें ही बाबाके चिबुकका अँगुलियोंसे स्पर्श करके श्रीप्रियतम कहने लगे – हे किसोरीजू! हे राधेजू!! आपसौं ही या वनकी सोभा है।

* * *

निर्माणाधीन श्रीराधाकृष्णमन्दिरकी नींवकी खुदवायीके कामका आरम्भ षष्ठी तिथिको हो चुका था। नींवकी दीवालको खड़ी करनेका शुभ मुहूर्त राधाष्टमीको ही था। प्रातःकालीन प्रभातफेरीके बाद यह कार्य सम्पन्न हुआ। सन् १९७१ ई. में बाबूजी नित्य लीलामें लीन हुए थे। तबसे लेकर अबतक बाबाने किसी भी उत्सव-पण्डालमें प्रवेश नहीं किया था, पर आज बाबाकी प्रेमाधीनता देखने योग्य थी। नींव भरनेका कार्य आरम्भ हो, इसके पहले श्रीगणेशजी-श्रीवास्तुदेवता आदिके पूजनका कार्यक्रम एक छोटे-से पण्डालमें सम्पन्न होनेवाला था। सबके मनपर

यही संस्कार था कि बाबा तो पण्डालमें जायेंगे नहीं, अतः हम लोगोंने इतनेपर ही सन्तोष कर लिया था कि बाबा खुले आकाशके नीचे दूर बैठे हुए इस कार्यक्रमको देखते रहें। बाबाके बैठनेके लिये एक समुचित स्थान निश्चित भी कर लिया गया था।

शृङ्गार धारण किये हुए श्रीप्रिया-प्रियतम बाबासे अनुरोध करने लगे; अनुरोध नहीं, उन्होंने आग्रह करना आरम्भ कर दिया — बाबा! आप तो हमारे साथ-साथ चलें। बस, चले चलें।

और इस आग्रहका वह सुन्दर परिणाम देखनेको मिला, जो विगत दस वर्षोंमें नहीं हुआ था। श्रीप्रिया-प्रियतमके स्नेह-सने वचनोंको बाबा टाल नहीं सके। बाबाकी दृष्टिमें रासलीलाके ये स्वरूप वस्तुतः श्रीप्रिया-प्रियतम ही हैं। मेरा ऐसा अनुमान है कि बाबाको कुछ संकोच अवश्य हो रहा होगा, पर बाबा उनके अनुरोधको टाल नहीं पा रहे थे। श्रीप्रिया-प्रियतमके स्नेहानुरोधको सम्मान देते हुए और उनके हाथोंका सहारा लिये हुए बाबा पूजन-पण्डालमें आये। श्रीप्रिया-प्रियतम एक उच्च सिंहासनपर विराजित हुए और बाबाको अपने मध्यमें ही उसी सिंहासनपर विराजित कर लिया। पूजनके उपरान्त सर्वप्रथम महाराजजीने सिमेंट-कंकड़का गारा नींवमें डाला, इसके बाद पूज्या माँने डाला, तदुपरान्त बाईने और इस प्रकार नींवकी दीवालको खड़ा करनेके कार्यका शुभारम्भ हुआ।

इस बार रास-लीलाका रस ऐसा बहा कि बाबातक बहुत प्रभावित हुए। अन्योंकी क्या कही जाये, गीतावाटिकासे रासमण्डलीके चले जानेके बाद स्वयं बाबाने कहा कि वाटिका उदास लग रही है।

* * * * *

भगवद्रुचि और कार्यचुनाव

आदरणीया बहिन विमला देवी भारद्वाजका भतीजा प्रिय श्रीराकेश शर्मा २० मार्च १९८१ को गोरखपुर आया। वह लखनऊके मेडिकल कालेजमें पढ़ता था। होलीकी छुट्टियोंमें पूज्य बाबाका दर्शन करनेके लिये चला आया। उसकी चार वर्षकी पढ़ाई पूरी हो चुकनेमें, केवल एक वर्ष और रह गया था। जब वह प्रणाम करके पूज्य बाबाके पास बैठा हुआ

था, तब उससे पूज्य बाबाने पूछा – अध्ययन पूरा कर चुकनेके बाद क्या विचार है? नौकरी करोगे अथवा स्वतन्त्र रूपसे चिकित्सा-कार्य करोगे?

श्रीराकेशने बतलाया – बाबा! अभी मैंने कुछ सोचा नहीं है। एम.बी. बी.एस. की डिग्री मिलनेके बाद पिताजीसे पूछकर ही कोई निर्णय लूँगा।

पूज्य बाबाने प्रिय श्रीराकेशकी मातृ-पितृ-परायणताकी उन्मुक्त सराहना की। फिर उससे पूज्य बाबाने कहा – कार्यके चुनावके बारेमें यदि भगवानकी इच्छाकी जानकारी हो जाय तो और भी सुन्दर बात होगी। यदि भगवानकी रुचिके अनुसार कदम उठाया और बढ़ाया जाय तो फिर सारी जिम्मेदारी भगवानके ऊपर आ जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि भगवानकी रुचिकी जानकारी कैसे हो। जानकारी प्राप्त करनेकी जो सात्त्विक प्रक्रिया है, उसके बारेमें मैं तुमको कुछ बतलाऊँ, इसके पहले तुम यह बतलाओ कि तुम किनकी आराधना करते हो?

श्रीराकेश – भगवान शिवकी।

पूज्य बाबा – क्या तुमने यज्ञोपवीत ले रखा है?

श्रीराकेश – अभी नहीं। हमारे यहाँ आजकल ऐसी प्रथा हो गयी है कि जनेऊ विवाहके अवसरपर कुछ दिन पहले दिया जाता है।

पूज्य बाबा – कोई बात नहीं। क्या तुम तीन दिनतक केवल फल खाकर रह सकते हो?

श्रीराकेश – आसानीसे रह सकता हूँ।

पूज्य बाबा – तीन दिनतक अन्नका एक कण भी नहीं खाना है। अन्नसे स्पर्शित वस्तु भी नहीं लेनी है। जब तुम अध्ययन पूर्ण कर चुको और तुम्हारे सामने प्रश्न खड़ा हो कि मुझे द्रव्यार्जनके लिये कौन-सा मार्ग चुनना चाहिये, उस समय तुम एक काम करना। यह तो मेरा मात्र परामर्श है, किन्तु यदि इस परामर्शके अनुसार कार्य करोगे तो तुमको बहुत लाभ होगा। उस समय तुम तीन दिनतक केवल फलके आहारपर रहना। इस तीन दिनकी अवधिमें अधिक-से-अधिक 'नमः शिवाय' का जप करना। आवश्यक निद्रा अवश्य लेना। शौच-स्नान आदिसे निवृत्त होनेके बाद जपमें लग

जाना। भगवान शिवसे मार्ग-प्रदर्शनके लिये प्रार्थना करना। उनसे अनुनय करना कि मैं किस मार्गका अनुसरण करूँ। जो उचित हो, वह आप बतलानेकी कृपा करें। इस प्रकार यदि तुम यह प्रार्थना संयम-सदाचार पूर्ण रहते हुए ईमानदारीसे श्रद्धा-सहित तत्परतापूर्वक करोगे तो दो बातमेंसे एक बात अवश्य होगी। भगवान शिव स्वप्नमें पधारकर निर्देश दे देंगे कि क्या करना चाहिये। जो निर्देश होगा, वही उनकी रुचि माननी चाहिये। यह होगा अथवा दूसरी बात यह होगी कि भगवान शिव तुम्हारी बुद्धि ही बदल देंगे। तुम्हारी बुद्धि भगवान शिवकी कृपासे इतनी बदल जायेगी और ऐसी निर्मल हो जायेगी कि तुम उसी बातका निर्णय करोगे, जो भगवान शिवको अभीष्ट होगा। भगवानकी रुचिके अनुसार कार्य करनेपर सारी जिम्मेदारी भगवानपर आ जाती है।

यह सब सुनकर प्रिय श्रीराकेशको बड़ी प्रसन्नता हुई।

* * * * *

सरस कथा का आकस्मिक आयोजन

सर्वप्रथम मैं पूज्य श्रीकृपाशकंरजी महाराजको सादर प्रणाम करता हूँ। आप श्रीरामचरितमानसकी सुधा-वर्षिणी और भक्ति-पोषिणी कथा बड़ी रोचक रीतिसे कहा करते हैं। आपका मानस और भागवतपर समान रूपसे अधिकार है। आपका श्रीअयोध्याधाममें स्थायी रूपसे निवास है और आप प्रतिदिन श्रीमद्भागवत पुराणकी कथा कहा करते हैं। जब-जब आप कथा कहते हैं, तब-तब गीतावाटिकाकी दोनों विभूतियों अर्थात् बाबूजी एवं बाबाके सम्बन्धमें कोई-न-कोई चर्चा आपकी कथाके बीचमें प्रायः आ ही जाया करती है। आपका गीतावाटिकासे बहुत पुराना सम्बन्ध है। आपने यहाँ सबसे पहले सन् १९५२ में श्रीरामचरितमानसकी कथा कही थी और उस मानस कथाके प्रधान श्रोता थे पूज्य श्रीसेठजी, बाबूजी तथा बाबा। गीतावाटिकाके आध्यात्मिक वातावरण और इन युगल भाव-विभूतियोंसे आपको सदा प्रश्रय और पोषण मिलता रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि वे यहाँसे प्रेरणा लेते रहे हैं और प्रेरणा देते भी

रहे हैं।

बाबाने कई बार कहा है कि मैंने मानस प्रवचन अनेक कथावाचकोंसे सुना है, किन्तु उल्लेखनीय तीन ही व्यक्ति हैं, जिनकी कथा सुनकर बहुत भावोद्दीपन होता है। एक थे श्रीदीनजी रामायणी, दूसरे हैं श्रीकृपाशंकरजी और तीसरे व्यक्तिका नाम बाबाने बतलाया था, पर मुझे इस समय याद नहीं आ रहा है।

सन् १९८१ के आस-पासकी बात होनी चाहिये। एक बार श्रीकृपाशंकरजी महाराज श्रीअयोध्यासे श्रीजनकपुर जा रहे थे और मार्गके बीचमें गोरखपुर पड़ता है, अतः आप यहाँ गीतावाटिकामें बाबाके दर्शनार्थ एक दिनके लिये ठहर गये। दूसरे दिन श्रीजनकपुरके लिये प्रस्थान करनेसे पूर्व बाबूजीकी समाधिके पास श्रीमहाराजजीकी कथाका कार्यक्रम रखा गया। 'रखा गया' के स्थानपर कहना यह चाहिये कि 'स्वान्तः सुखाय', आकस्मिक आयोजन हो गया। यह कोई प्रचारित या विज्ञापित आयोजन नहीं था। मुख्य श्रोता थे बाबा और थे गीतावाटिकाके बीस-तीस लोग।

बाबा जब अपने आसनपर आकर विराज गये, तब श्रीकृपाशंकरजी महाराजने भगवत्कथाका ललित स्वरसे शुभारम्भ किया। वन्दनाके श्लोक कह चुकनेके उपरान्त उन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराणका एक श्लोक उठाया। वह श्लोक था —

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
(श्रीमद्भागवत — ६/११/२६)

अपने जीवनके अन्तिम क्षणोंमें वृत्रासुर भगवानसे प्रार्थना कर रहा है कि जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे चारेके लिये अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पतिव्रता पत्नी अपने प्रवासी पतिसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही हे कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है।

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए और कतिपय भक्तोंके जीवनसे दृष्टान्त देते हुए श्रीकृपाशंकरजी महाराजने बतलाया कि जिस प्रकार नवजात पक्षीशावक, क्षुधार्त बछड़ा और वियोगिनी पत्नीके हृदयमें अपने-अपने अभीष्टके लिये जो आकुलता होती है, उससे सम्भवतः कई गुना अधिक आकुलता भक्तके हृदयमें अभीष्ट भगवद्दर्शनके लिये होती है। भगवान और भक्तके मध्य भक्त-हृदयका जो पक्ष है, वही इस श्लोकमें वर्णित है। इस श्लोकमें पक्षी-शावक, गै-वत्स और पतिव्रताकी भावनाका वर्णन तो है, परन्तु इस वर्णनके साथ दूसरे पक्षका अर्थात् पक्षी-गाय-प्रियतमकी भावनाका वर्णन उन्मुक्त रूपसे उभर नहीं पाया है और उसीको उभारते हुए उन्होंने भगवत्पक्षका वर्णन किया। भगवानके हृदयमें भक्तसे मिलनेके लिये जो ललक होती है, उसका वर्णन इतना मार्मिक था कि उसे सुनकर बाबाके नेत्रोंसे अश्रु झर-झर बहने लगे।

श्रीकृपाशंकरजी महाराजने कहा — यदि भगवद्दर्शनके लिये भक्तके हृदयमें अत्युत्सुकता है तो भक्त-मिलनके लिये भगवानके हृदयमें तीव्रोत्कण्ठा है और यह तीव्रोत्कण्ठा उस अत्युत्सुकतासे अनन्त गुना होती है। 'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'। वस्तुतः जीव भगवानका अविनाशी अंश है और वे प्रतीक्षा करते रहते हैं कि मेरा अंश जीव, जो भवाटवीमें भटक रहा है, वह मुझसे कब मिलेगा। यदि सरिता सागरसे मिलनेके लिये अत्युत्सुक है तो सागर भी सरिताका स्वागत करनेके लिये तीव्रोत्कण्ठित है।

भक्तके हृदयमें होनेवाली भगवद्दर्शन-लालसाका वर्णन तो सुन्दर था ही, उसीके साथ-साथ भगवानके अन्तरमें जीवसे मिलन हेतु ललकका वर्णन इतना सरस था कि उस वर्णनका एक-एक वाक्य मानो एक-एक सोपान था और सोपान-प्रति-सोपान क्षण-प्रति-क्षण बाबा भाव-सागरमें गहरे-से-गहरे उतरते चले जा रहे थे। इस कथामें श्रोता बाबाके दोनों नयन निमीलित थे ही, वक्ता श्रीमहाराजजीके भी दोनों नयन निमीलित थे। वक्ता और श्रोता दोनोंके निमीलित नयनोंसे अश्रु-बिन्दु अविरल झर रहे थे; बस, अन्तर

इतना ही था कि यदि निमीलित नयन और संसिक्त कपोल बाबा मूर्तिवत् निस्स्पन्द बैठे थे तो भावभरित और प्रीतिविह्वल महाराजजीके अंगोंमें कभी-कभी कोई चेष्टा होती थी। उनके हाथोंमें और हाथोंकी अँगुलियोंमें प्रसंग-वर्णन करते समय भावाभिव्यक्तिके लिये कभी-कभी किसी चेष्टाका हो जाना स्वाभाविक था। सारे वातावरणमें एक मात्र व्याप्त थी श्रीमहाराजजीकी वाणी। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ था ही नहीं। हाँ, कभी-कभी सुन पड़ता था पक्षियोंका कूजन। समाधि परिसरमें जो पेड़-पौधे हैं, उनपर बैठे हुए ये पक्षी भी शायद कथा सुननेके लिये आये होंगे और कूजनके मिस शायद कथाकी सराहना ही कर रहे होंगे। सराहना-परायण यह खगकुल-कलरव भी सुन पड़ता था केवल हम अन्य साधारण लोगोंको, पर उनको नहीं, जो कथाके विभोर वक्ता थे और निमग्न श्रोता थे।

यह कथा सम्भवतः एक घण्टा हुई होगी। कथाके पूर्ण होनेके बाद श्रीमहाराजजी अपने विश्राम कक्षमें चले आये और बाबा अपनी कुटियाकी चौकीपर गुम-सुम लेट गये। भगतजीने बाबाकी चौकीपर मच्छरदानी लगा दी, जिससे मक्खी-मच्छरकी बाधा न हो। बाबा दिनभर अपने बिस्तरपर लेटे रहे। मिलने और दर्शन करनेके लिये अनेक लोग दिनभर आते रहे, परन्तु सबको यही लगता था कि आज सम्भाषणकी सम्भावना है ही नहीं। सभी लोग बाड़ेके द्वारसे ही बाबाको प्रणाम करके चले जाया करते थे।

* * * * *

श्रीआनन्दमयी माँ

बाबाके प्रति वन्दनीया माँकी बड़ी महत्त्व-बुद्धि थी। केन्द्रीय सरकारके भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री डा. श्रीत्रिगुण सेनके सामने एक बार माँने कहा था – 'राधा बाबा प्रेम, भक्ति और सत्यका प्रतीक। भक्ति मार्गका जीवन्त मूर्ति।'

एक बार और माँने अपने उद्‌गार व्यक्त किये थे 'एक स्थिति है, जहाँ ब्रह्म सिवाय और कुछ नहीं। द्वैत अद्वैत ज्ञान भक्ति सब एक ही है। वही है, जो स्थिति राधा बाबाकी है।'

एक बार माँके एक भक्तके हाथमें बाबाद्वारा लिखित 'जगज्जननी श्रीराधा' नामक पुस्तिका थी। वह पुस्तिका माँकी दृष्टि-पथपर आ

गयी। माँने वह पुस्तिका माँग ली और उनसे कहा – तुम अपने लिये और मँगवा लो।

* * *

माँ योग्य साधकको भी बाबाके पास भेज दिया करती थीं। सन् १९८१ के जूनके मध्यमें माँने एक बंगाली युवक साधकको बाबाके पास भेज दिया। उनका नाम था श्रीनिर्मल ब्रह्मचारी। श्रीनिर्मलजी उच्च घरानेके व्यक्ति थे। वे एक फर्ममें मैनेजर थे। भगवान श्रीकृष्णके दर्शनकी चाह मनमें जगते ही एक कम्बल ले करके तथा अपनी माँको प्रणाम करके घरसे बाहर निकल पड़े। कम्बलके अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं था। वे चले आये आनन्दमयी माँके पास। वन्दनीया माँने इनके वस्त्र तथा आवासकी व्यवस्था की। इनकी श्रीकृष्ण-भक्ति देख करके माँने यही उचित समझा कि श्रीनिर्मल ब्रह्मचारीको गीतावाटिकाके राधा बाबाके पास भेज दिया जाये। माँने अपने निजी व्यक्तिसे कहा – आप निर्मलको राधा बाबाके पास छोड़ आइये। फिर राधा बाबा जानें। जबतक राधा बाबा चाहें, अपने पास रखें और जबतक निर्मल चाहे, वहाँ रहे।

वे सज्जन अपने साथ श्रीनिर्मलजीको तो लाये ही थे, इसके अतिरिक्त माँ द्वारा प्रदत्त चन्दन-पुष्पमाला और पुष्कल प्रसाद लाये थे, जिसको बाबाने बड़े ही सम्मानके सहित स्वीकार किया। माँके द्वारा भेजे गये श्रीनिर्मलजीको बाबा एकान्त वार्ताके लिये अधिक-से-अधिक समय देते। श्रीनिर्मलजीके खान-पानके स्पर्शास्पर्श सम्बन्धी नियम बड़े ही कठोर थे। उन नियमोंके निर्वाहमें कभी भी तनिक बाधा उपस्थित न हो, एतदर्थ बाबाका अत्यधिक ध्यान रहता। श्रीनिर्मलजीके भोजनकी व्यवस्था बहिन विमलाको सौंपकर बाबा निश्चिन्त थे और बहिन विमलाने बाबाके उस विश्वासमें कभी भी खरोंच लगने ही नहीं दी। श्रीनिर्मलजी बहुत दिनोंतक गीतावाटिकामें रहे। फिर वन्दनीया माँके पास वापस चले गये।

* * *

एक विचित्र संयोगकी बात लिख रहा हूँ। बाबा तथा माँ दोनों ही लकवासे ग्रस्त हुए। दोनोंके शरीरपर २० तारीखको लकवाका झटका आया और दोनोंके शरीरके दक्षिण अंग लकवासे प्रभावित हुए। ज्यों ही माँको बाबाके लकवा-ग्रस्त होनेकी सूचना मिली, त्यों ही एकदम चैतन्य होकर

'हरी-हरी-हरी' उच्चारण करने लगीं। फिर माँने आदेश दिया कि आज ही गीतावाटिका पत्र लिख दो – बाबाका शरीर खराब हो गया है। यह माँको ठीक नहीं लगा।

राधा बाबा, राधा बाबा, राधा बाबा, नमो नारायण, नमो नारायण, नमो नारायण।

* * *

बाबा कई बार कहा करते थे कि माँ भारतकी परमोच्च कोटिकी आध्यात्मिक विभूति हैं। बाबाको माँके दर्शन तीन बार हुए। इसके बारेमें बाबाने बताया – जब-जब माँके दर्शन हुए, तब-तब यही अनुभव हुआ कि मेरे सम्मुख साक्षात् भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजी विराजित होकर अपना पावन दर्शन दे रही हैं। तीनों बार एक ही जैसा दर्शन होना स्वयंमें एक बहुत बड़ी बात है। जिस दिव्य रूपमें दर्शन मिले, वह छवि आजतक हृदय-पटलपर ज्यों-की-त्यों अंकित है।

* * *

गीतावाटिकामें २६ अगस्त १९८२ को श्रीराधाष्टमी महोत्सव सोत्साह मनाया गया और २८ अगस्त १९८२ को शोक समाचार मिला कि पूज्या श्रीआनन्दमयी माँ नहीं रहीं। ज्यों ही माँके निधनका समाचार मिला, बाबा एकदम अवसन्न हो गये। राधाष्टमी-महोत्सवका उल्लास बड़ा संकुचित-स्तंभित हो गया। सबके मनमें खिन्नताने घर कर लिया। बाबाने जब जल ही ग्रहण नहीं किया, तब भिक्षाका तो प्रश्न ही नहीं। २८ अगस्तके सारे दिन सारी रात बाबा निर्जल-निराहार रहे। दूसरे दिन २९ अगस्तके प्रातःकाल गंगाजल तो स्वीकार किया, पर ४४ घंटा निराहार रहनेके उपरान्त बाबा भिक्षाके आसनपर तब ही बैठे, जब वन्दनीया माँके पार्थिव शरीरका अन्तिम संस्कार कनखलमें हो गया।

बाबा तो श्रीआनन्दमयी माँकी गरिमाका वर्णन करते थकते ही नहीं थे। बाबाने एक बात और कही। माँका निधन हुआ था २८ अगस्तको। निधनके बारह दिन बाद ९ सितम्बरको माँ अपने दिव्य स्वरूपसे बाबाके पास पधारीं तथा परस्परमें संलाप भी हुआ।

* * * * *

विरहिणी बहिन कुमुद

एक पंजाबी बहिनका इतिवृत्त सुनकर बाबा बड़े द्रवित हुए थे। इस बहिनका नाम था कुमुद। इसका जन्म पंजाबके मुलतान शहरमें हुआ था। जब इसके माता-पिता मुलतानमें रहते थे, तब तो पंजाबका दौरा करते समय पं.श्रीजवाहरलालजी नेहरू इनकी कोठीपर ठहरे थे। जब कुमुदकी आयु छोटी थी, तभी वह अपने माता-पिताके साथ बम्बई आ गयी थी। जब यह सात वर्षकी थी, तभी इसके पिताजीका देहान्त हो गया था। इसके एक भाई था, जो इससे दो वर्ष बड़ा था। भाईकी धार्मिक पुस्तकोंमें बड़ी रुचि थी। वह प्रायः गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंको तथा धार्मिक पत्रिका 'कल्याण'के अंकोंको बड़े मनोयोगपूर्वक पढ़ा करता था। उन्हीं पुस्तकोंको तथा कल्याण-पत्रिकाको कुमुद भी चावपूर्वक पढ़ा करती थी। जब कुमुदकी आयु लगभग पन्द्रह वर्षकी थी, तब वृन्दावनसे श्रीहरगोविन्दजीकी रास-मण्डली बम्बई गयी हुई थी। उस रासलीलाको देखनेके लिये ये दोनों भाई-बहिन जाया करते थे। उस रासलीलाका कुमुदके कोमल मनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। भगवान श्रीकृष्णकी भक्ति-भावनामें उसका मन बहने लगा। यह भाव-धारा और भी वेगवती हो गयी अपने भाईके वियोगसे। एक दिन समुद्र-स्नान करते समय समुद्रकी लहरें उसके भाईको बहा ले गयीं। भाईके आकस्मिक वियोगने कुमुदके अन्तरमें संसारके प्रति आत्यन्तिक विरक्ति भर दी। घोर उदासी और प्रबल निराशाकी स्थितिमें उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। उसे कहीं कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। संसारकी असारताको देखकर वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्णके श्रीचरणोंपर सर्व समर्पित कर देनेका लौल्य उसके मनमें जाग उठा। महावियोगिनी प्रेमयोगिनी मतवाली मीराके भावोंके अनुसार, बस, एक ही बात कुमुदके मनमें रह गयी थी –

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।

इस समय बहिन कुमुदकी आयु लगभग उन्नीस वर्षकी होगी। इन दिनों कुमुदके मनकी केवल एक ही पुकार थी कि मैं वृन्दावन कब पहुँचूँगी। एक दिन कुमुदने अपनी माँसे कहा – माँ! तू मुझे वृन्दावन ले चल।

माँके सामने अनेक सांसारिक विवशताएँ थीं। जब माँने अपनी कुछ पारिवारिक उलझनों तथा कुछ जागतिक रुकावटोंका बयान किया तो कुमुदने अति खिन्न मनसे अपनी माँसे कहा – क्या तू यही चाहती है कि मैं अपना जीवन समाप्त कर लूँ?

विवश होकर माँ कुमुदको लेकर वृन्दावन आयी। वृन्दावन आकर माँ-बेटी पहले एक धर्मशालामें ठहरीं। फिर एक पंजाबी सद्गृहस्थके घरमें कमरा किरायेपर लेकर रहने लग गयीं। किसी कारणसे माँको वापस बम्बई जाना पड़ा तो माँ कुमुदकी सँभालका भार उन सद्गृहस्थ पंजाबीजनपर छोड़ गयी।

उधर माँ तो बम्बई गयी और इधर श्रीकृष्ण-विरहसे व्यथिता भक्तिमती कुमुदकी दशा कुछ और ही थी। व्यथाके अतिरेकमें कुमुद क्या-क्या करती थी, यह तो कुमुद ही जाने, पर उसके परिचितोंने इतना अवश्य देखा कि वह एक बड़ी मटकी लेकर यमुना-स्नानके लिये जाती, स्नान करनेके बाद मटकीको यमुना-जलसे भरकर अपने सिरपर रख लेती और घरकी ओर वापस आते समय रास्तेभर यही कहती – क्या नन्दलाल! मेरी मटकी फोड़ने नहीं आओगे?

किसीको सुनानेके लिये नहीं, प्रबल भावोंका वेग जब सीमाका अतिक्रमण करने लगता था, तब वह गाने लगती थी –

जन्म जन्म के बिछड़े साथी साथ निभाओ।
जीवन के अँधियारे पथ पर दीप जलाओ।।
जैसे तैसे भूले भटके ही आ जाओ।
अंत समय है और मुझे अब मत तरसाओ।।

उसको भोजन करनेकी फुरसत भला कहाँ? कच्चे आटेको पानीमें घोलकर वह पी लेती। एक बार उस कमरेमें रहते समय कुमुद बहुत बीमार हो गयी तो एक दूसरी संतसेवी श्रद्धालु बहिन उसका उपचार करनेके लिये उसे अपने घरपर ले आयी। इन्हीं दिनों 'कल्याण' पत्रिकामें बाबा द्वारा लिखित 'श्रीकृष्ण- लीला-चिन्तन' क्रमशः धारावाहिक रूपसे प्रकाशित होता था। कल्याण-पत्रिकामें वह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन'को पढ़ते-पढ़ते अघाती नहीं थी। इसके वाचनसे उसकी भक्ति-भावना अत्यन्त उद्दीप्त हो उठती थी। इसके अतिरिक्त बाबूजीके पत्रोंको पढ़नेमें उसकी रुचि थी। 'कामके पत्र' शीर्षक

स्तम्भके अन्तर्गत बाबूजीके पत्र 'कल्याण' पत्रिकामें प्रायः छपा करते थे। इससे उसको बड़ा अवलम्ब मिलता था। यह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' और ये पत्र कुमुदके प्राणोंकी निधि थे। दिनके समय कुमुद लाल स्याहीसे कॉपीमें 'राधा-राधा' लिखा करती थी। सन्ध्याके समय वह लहँगा पहिनकर अपने ठाकुरजीके सामने नाचा करती थी। वह नाच-नाच करके अपने ठाकुरको रिझाया करती थी। उसका कण्ठ बड़ा मधुर और ललित था। वह पदोंको गा-गा करके अपने ठाकुरको सुनाया करती, केवल अपने ठाकुरको। उसके जीवनका सारा माधुर्य और सारा लालित्य अब एक मात्र जीवनधन प्राण-प्रियतम श्यामसुन्दरके लिये था। अन्य अवसरपर वह कभी गीत गाती नहीं थी, मनुहार करनेपर भी वह मौन ही रहती। उसका व्रत था कि यदि सुनाना है तो केवल अपने ठाकुरको ही। जब वह भावभरे मनसे अपने ठाकुरजीको पद सुनाया करती थी तो उसके निकटवर्ती जन भी छिप-छिप करके उसके पदोंको सुना करते थे। उसका सबसे प्रिय पद था –

गोबरधनवासी साँमरे तुम बिन रह्यौ न जाय हो।
ब्रजराज लड़ैते लाड़िले।।
बंक चितै मुसिकाय के लाल सुंदर बदन दिखाय हो।
लोचन तलफें मीन ज्यों पल छिन कल्प बिहाय हो।।

श्रीचतुर्भुजदासजीद्वारा रचित इस पदमें छब्बीस पंक्तियाँ हैं और इस एक पदको वह तीन-चार घंटेमें पूरा कर पाती थी। कई बार मकानकी छतपर खड़ी होकर वह पगली कुमुद निर्लज्ज होकर पुकारने लगती थी – प्रियतम! तुम कब आओगे?

इस पागल पुकारकी कोई सीमा तो थी नहीं। मतवाली मीराके समान उसकी एक ही अकुलाहट थी, एक ही छटपटाहट थी, एक ही अनुरोध था, एक ही अभिलाषा थी –

प्यारे दरसन दीज्यो आय।
तुम बिन रह्यो न जाय।।
जल बिन कमल चंद बिन रजनी,
ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी,
आकुल ब्याकुल फिरूँ रैन दिन,

बिरह कलेजौ खाय।
प्यारे दरसन दीज्यो आय।।

प्रीतम बोलो कब आवोगे?
कब वीणाकी झंकारों पर बन अमर गीत छा जावोगे?

यह एक ऐसी आग है, जो बुझाये बुझती नहीं; एक ऐसा रोग है, जो मिटाये मिटता नहीं और उस रोगीको कितना ही समझाओ, वह समझाये समझता नहीं। उस विरहिणी कुमुदकी, बस, एक ही आह थी और एक ही आवाज थी —

कब होगा हमसे प्यार सखी।
मेरी वीणा है मूक पड़ी, सोये हैं इसके तार सखी,
पर कभी झनक ही उठती है, ले बजनेका अधिकार सखी,
मेरी इस नीरव वीणाकी, है यही मूक झंकार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी।।

क्या शान्त कभी होगी मेरी, दुख दर्द भरी हुंकार सखी,
क्या शीतल फिर हो पायेंगे, मेरे मनके अंगार सखी,
क्या लुप्त शून्यमें ही होंगे, आकुल उरके उद्‌गार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी।।

आ दीन दशा देखे मेरी, वह प्रीतम प्राणाधार सखी,
आ स्वयं आप वह कर जाये, इस पीड़ाका उपचार सखी,
दुखिया प्राणोंका सम्बल वह, है जीवनका शृंगार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी।।

रोदन ही बहिन कुमुदका जीवन था, विकल अश्रुधारा ही उसकी सहेली थी और 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' का सदा वाचन ही उसके लिये सान्त्वनाका स्रोत था। इन्हीं आँसुओंसे भीगे-भीगे उसके दिन कट रहे थे कि एक दिन उसकी माँ बम्बईसे आयी उसे बम्बई लिवा जानेके लिये। माँने कहींपर कुमुदके सम्बन्धकी बात तय कर ली थी। लड़की सयानी हो गयी है, अतः विवाह कर देना उचित है। कन्याके दायित्वसे मुक्त होनेके लिये ही वह कुमुदको अपने साथ बम्बई ले गयी। न चाहते हुए भी माँके अनुशासनपर कुमुदको बम्बई जाना पड़ा। बम्बई जानेसे पहले कुमुदने उस संतसेवी श्रद्धालु बहिनसे कहा — जिस तरह

तुमने मेरी इतनी सँभाल की, बस, वैसे ही तुम मेरा एक काम और कर देना। कल्याण-पत्रिकामें क्रमशः छपनेवाला यह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब कभी भी भविष्यमें पुस्तकाकार छपे, तब उसकी एक प्रति मेरे पास अवश्य भेज देना। अवश्य-अवश्य भेज देना।

कुमुदने जाते-जाते इस अनुरोधको दो बार या चार बार नहीं, आठ-दस बार नहीं, कम-से-कम बीच-पच्चीस बार दोहराया होगा। बम्बई पहुँचनेपर कुमुदकी चाहके विरुद्ध उसकी माँने उसका विवाह कर दिया। जिस नये घरमें कुमुदने बहूके रूपमें प्रवेश किया, वहाँका वातावरण सर्वथा अनुकूल नहीं था। उस प्रतिकूल वातावरणमें उसका दम अत्यधिक घुटने लगा और क्या ही दुर्भाग्यकी बात! उस विकट प्रतिकूलताकी भीषण ज्वालामें एक दिन अति विकला कुमुदका जीवन आहुति बन गया। विवाहके बाद वह ससुरालमें अधिक दिन नहीं जी पायी। थोड़े दिनोंके बाद ही वह संसारसे विदा हो गयी। इस दारुण शोक समाचारको सुनकर कुमुदकी माँ तो चीख मारकर रो पड़ी। माँके मनमें बड़ी कसक थी कि मैं उसको वृन्दावनसे वापस क्यों लायी? कुमुदके निधनके बाद उसकी माँ पागलिनीकी भाँति उस श्रद्धालु बहिनके पास वृन्दावन आयी और रो-रो करके कहने लगी – कुमुद गयी, कुमुद चली गयी, कुमुद सदाके लिये संसारसे चली गयी।

वह श्रद्धालु बहिन तो सुनकर अवाक् रह गयी। कुमुदके दिव्य भविष्यके बारेमें उसने कितनी सुहावनी कल्पनाएँ सजा रखी थीं, इसे सुनते ही वे सब-की-सब ढह गयीं। 'बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।' कुछ भी कहा नहीं जा सकता कि कब क्या हो जायेगा।

बहिन कुमुदके विदा हो जानेके कुछ वर्ष बाद 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब पुस्तकाकार छपकर तैयार हुआ तो वह श्रद्धालु बहिन उस ग्रन्थको पढ़कर सुनाती और कुमुदकी दिवंगत आत्मासे कहती – तू जहाँ भी हो, इसे सुन ले।

उन श्रद्धालु संतसेवी बहिनसे वृन्दावनमें मैंने जब बहिन कुमुदका यह करुण वृत्त सुना तो सचमुच मेरा तन-मन सिहर उठा। मैं अपने भावोंका संवरण नहीं कर पाया और यह वृत्त मैंने बाबाको सुनाया। मैंने सन् १९८३ ई. के मई मासमें बाबाको सुनाया था। बहिन

कुमुदके संक्षिप्त परिचयको सुनते समय बाबाके नेत्र कई बार सजल हुए। वे कई बार पुलकित हुए। बाबाका मन रह-रह करके द्रवित हो रहा था। कुमुदकी भक्ति-भावनाको देखकर बाबाको आह्लाद हो रहा था, पर असमयमें ही उसके चले जानेसे बाबाको खिन्नता भी कम नहीं हो रही थी। बाबाके अन्तरमें हर्ष और विषाद, दोनों ही हो रहे थे। इस सारे वृत्तको सुनकर बहिन कुमुदके बारेमें बाबा कहने लगे – निश्चित ही वह भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हो गयी होगी। अब प्रश्न है यह कि उसकी इच्छाकी पूर्ति कैसे हो? अब उसको पुस्तक कैसे दी जाये?

मैं बाबाके भावोंको अपनी मूर्खताको कारण समझ नहीं पाया और एक अनाड़ीकी भाँति मैं बोल उठा – जब वह चली गयी, तब भला उसे कैसे दी जा सकती है?

फिर बाबाने कहा – उसके निमित्तसे किसीको मैं दे दूँ तो कैसी बात रहे?

मैंने तुरंत इसका अनुमोदन किया और तभी यह निश्चित हो गया कि आगामी १५ मईको अक्षय तीज है, इसी अक्षय तीजके दिन 'श्रीकृष्ण-लीला- चिन्तन'की एक प्रति विमला बहिनको दे दी जाये। बहिन विमला विप्र-कुलोद्भवा है और इसके अतिरिक्त परम भक्त-हृदया है।

अक्षय तीजके प्रातःकालकी बात है। परिक्रमा होनेमें अभी कुछ विलम्ब था। बाबाने भगतजीसे 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' की एक प्रति मँगवायी। संयोगकी बात, यह वही प्रति थी, जो बाबाके उपयोगमें आया करती थी। बाबाने बहिन विमलाको बुलवाया। बहिन विमलाको तनिक भी पूर्व-जानकारी नहीं थी कि बाबा मुझे क्यों बुला रहे हैं। उस समय बाबाके पास कुल चार-पाँच व्यक्ति खड़े थे। बाबाने वह प्रति अपने हाथमें लेकर दिवंगत कुमुदका अत्यधिक संक्षिप्त परिचय दिया – एक बहिन थी। उसका मन श्रीकृष्ण-भक्तिसे परिपूर्ण था। उसकी इच्छा थी कि जब 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' पुस्तकके रूपमें छप जाये तो उस पुस्तकको प्राप्त करूँ। पहले यह कल्याण-पत्रिकामें क्रमशः छपा करता था। इसके पुस्तकाकार छपनेके बहुत पहले ही वह बहिन कुमुद इस भूतलसे विदा हो गयी। उसीके निमित्तसे यह पुस्तक मैं तुमको दे रहा हूँ।

बहिन विमलाने अपना आँचल फैला दिया। अपने हाथसे बाबाने उसके आँचलमें दे दिया। देते समय बाबा बड़े विभोर हो रहे थे। बाबाने विभोर स्वरमें कहा – इस पुस्तकसे तेरा अशेष मंगल होगा और तेरे माध्यमसे उस बहिन कुमुदका भी अशेष मंगल होगा।

बाबाके नेत्र तो सजल थे ही, बहिन विमलाकी आँखें तो और भी अधिक भरी हुई थीं। उस पुस्तकको अपने आँचलमें सँभालते-समेटते हुए बहिन विमलाने याचना की – बाबा! आप आशीर्वाद दें कि भगवान् श्रीकृष्णमें अहैतुकी प्रीति हो।

ऐसा कहते-कहते बहिन विमला अत्यधिक विह्वल हो रही थी। जिसके निमित्तसे ग्रन्थ दिया जा रहा था, उसके कारण बाबा विभोर थे ही, निर्मल हृदया विमलाकी निश्छल विह्वलताने बाबाके भावोंको और भी उद्वेलित कर दिया। बाबाने प्रसन्न वाणीमें कहा – होगी, अवश्य होगी। बेटी! मुझको तुमपर गौरव है। तुम्हारा हृदय जैसा सुन्दर है और तुम्हारा जीवन जैसा सात्त्विक है, वह मेरे लिये गौरवकी वस्तु है।

जिस समय बाबाने पुस्तक प्रदान की, उस समय सारा वातावरण इतना गम्भीर, इतना भावपूर्ण, इतना संवेदनशील हो गया कि क्या कहा जाये? मैं तो वहीं था, खड़े-खड़े सब देख रहा था। देखते-ही-देखते वातावरणका रंग-ढंग कुछ लोकोत्तर हो गया था। उस भाव-भीने वातावरणमें बहिन विमलाने भूमिपर माथा टेककर बाबाको प्रणाम किया। सबने मन-ही-मन बहिन विमलाके भाग्यकी सराहना की कि इसे अक्षय तीजके दिन बाबाने ऐसा अमोघ आशीर्वाद दिया तथा अक्षय तीजके दिन बाबाके हाथसे 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' पुस्तक मिली। 'एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं'।

* * * * *

मन्दिर की मूर्तियों का चयन

गीतावाटिकामें श्रीराधा-कृष्ण-मन्दिरके निर्माणका कार्य चल रहा था। हम सभी लोगोंकी चाह ऐसी रही कि सन् १९८४ ई.की श्रीराधाष्टमीके अवसरपर मन्दिरमें श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठा हो जाये। अब प्रश्न था श्रेष्ठ और सुन्दर श्रीविग्रहोंके चयनका। मूर्तियोंकी शिल्पकलाकी दृष्टिसे जयपुरकी ख्याति बहुत अधिक है। बाबाकी ऐसी अभिलाषा थी कि मन्दिरमें जो श्रीविग्रह प्रतिष्ठित हों, वे कैशोर्य-लावण्यकी आभासे मण्डित हों और ऐसी मूर्तियोंके चयनके लिये यदि श्रीमहाराजजी वृन्दावनसे जयपुरकी यात्राका कष्ट उठा सकें तो अति सुन्दर हो।

बाबाने वृन्दावन पत्र भेजनेके स्थानपर मुझे ही वृन्दावन भेजा और श्रीमहाराजजीके लिये संदेश दिया – पत्रके रूपमें स्वयं बंकाजीको ही भेज रहा हूँ। यदि आप अस्वस्थ हों तब तो मुझे कुछ भी कहना ही नहीं है, पर यदि आपका स्वास्थ्य आपको अनुमति दे तो एक अनुरोध है। यदि आप जयपुर पधारनेका कष्ट कर सकें तो बड़ी कृपा होगी, जिससे श्रीराधाकृष्णकी किशोर आभायुक्त मूर्तिका सुन्दर चयन हो सके। मुझे आपकी 'आँखों' पर विश्वास है, इसीलिये ऐसा अनुरोध है। उनकी किशोर-कान्तिकी ओर संकेत करते हुए श्रीविल्वमंगलजीने श्रीकृष्णकर्णामृतमें कहा है –

> तत्कैशोरं तच्च वक्त्रारविन्दं तत्कारुण्यं ते च लीलाकटाक्षाः।
> तत्सौन्दर्यं सा च सान्द्रस्मितश्रीः सत्यं सत्यं दुर्लभं दैवतेऽपि।।

मूर्ति ऐसी हो, जिसमें इस प्रकारकी किशोर-कान्तिकी भावनाका प्राबल्य हो।

मैं ११ नवम्बरको वृन्दावन पहुँचा। प्रणाम करनेके पश्चात् महाराजजीके समक्ष बाबाका संदेश मैंने निवेदित कर दिया। एक ओर मैं संदेशका निवेदन कर रहा था, पर दूसरी ओर मैं संदेहसे ग्रस्त भी हो रहा था। महाराजजी सर्दी-ज्वरादिसे पीड़ित थे, अतः मेरे मनमें दुविधाका उत्पन्न होना स्वाभाविक था कि पता नहीं महाराजजी जयपुर जायेंगे अथवा नहीं। अगले दिन १२ नवम्बरको महाराजजीने जयपुर जानेके लिये अपनी सहमति प्रदान कर दी कि वे १५ नवम्बरको

चलेंगे। इसे सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

महाराजजी १५ नवम्बरको जयपुर पधारे तथा श्रीराधाकृष्णकी किशोर-आभायुक्त मूर्तिके निर्माणके लिये आवश्यक निर्देश शिल्पकारको देकर १६ नवम्बरको वृन्दावन वापस आ गये। वृन्दावनसे लौटकर जब मैं गोरखपुर आया तो बाबाने सारा विवरण सुना। जब बाबाको यह ज्ञात हुआ कि महाराजजी अपनी अस्वस्थताके बाद भी यात्राका कष्ट उठाकर जयपुर गये तो बाबाका मन भर आया तथा उच्च स्वरसे पुकारते हुए उनका अभिनन्दन-अभिवन्दन करने लगे।

शिल्पकारको मूर्तिकी सम्यक् कल्पना प्रदान करनेके लिये महाराजजीने भगवान् श्रीकृष्णका एक चित्र स्वयं बनाया था। वे तो भगवती श्रीराधाका भी चित्र अङ्कित करना चाहते थे, परंतु समयाभावके कारण कर नहीं पाये। वह चित्र बाबाको दिखलानेके लिये मैं अपने साथ ले आया था।

महाराजजी द्वारा चित्रित भगवान् श्रीकृष्णकी छवि बाबाको दिखलानेके लिये मैं जब चित्रको खोलने लगा तो बाबाको आश्चर्य हुआ कि क्या महाराजजी चित्र बनाना भी जानते हैं। बाबाने उस चित्रको खोलनेसे पहले अपने मस्तकपर धारण किया। लगभग साढ़े-पाँच फीट लम्बे और तीन फीट चौड़े चित्रको खोलकर जब मैंने दिखलाया तो बाबा चित्रांकनकी सराहना करने लगे और उन्होंने उस छविको प्रणाम किया। बाबा बार-बार महाराजजीकी अँगुलियोंकी कलाकी सराहना कर रहे थे।

मैंने बाबासे कहा— आपका संदेश मिलनेके बाद महाराजजी मूर्तियोंकी मुद्राओंके बारेमें चिन्तन करने लगे। महाराजजी यही चाह रहे थे कि बाबाकी कोमल एवं कान्त भावनाओंके अनुरूप ही मूर्तियोंका निर्माण हो। महाराजजी तो यहाँतक सोचने लग गये कि मूर्तियोंकी मुद्राओंके बारेमें बाबासे विचार-विनिमय करनेके लिये मैं हवाईजहाजसे गोरखपुर चला जाऊँ और फिर तुरंत हवाईजहाजसे जयपुर पहुँच जाऊँ।

यह सुनकर विभोर वाणीमें बाबा कहने लगे— किसीकी रुचिके साँचेमें इस प्रकार स्वयंको ढाल देना, बस, महाराजजी जानते हैं। महाराजजी तो महाराजजी ही हैं। गीतावाटिकाके अन्दर जो मन्दिर बन रहा है, उस मन्दिरके इतिहासमें महाराजजीका यह भावात्मक योगदान

और जयपुर पधारकर प्रत्यक्ष योगदान, यह सभी कुछ अप्रतिम है। निर्मित होनेवाले मन्दिरका एवं गीतावाटिकाका यह सौभाग्य है कि महाराजजीका ऐसा सहयोग मिला।

मैंने बाबासे फिर निवेदन किया – चिन्तन एवं पारस्परिक विचार- विनिमयके बाद महाराजजीने यही निश्चित किया कि जिन बाबूजीकी गरिमामयी सिद्धस्थलीपर यह मन्दिर बन रहा है, उनकी रसमयी भावनाओंको ध्यानमें रखते हुए यही उचित होगा कि वंशीवादन-रत श्रीकृष्णके पार्श्वमें प्रसन्न-वदना महाभावमयी श्रीराधा विराजित रहें। यही छवि जयपुरके शिल्पकारको बतला दी गयी।

बाबा कहने लगे – श्रीमहाराजजीकी 'आँख' पर, उनके 'मापदण्ड'पर मेरा विश्वास है। मेरे प्रतिनिधिके रूपमें श्रीमहाराजजी जयपुर पधारे थे। उन्होंने जो निर्णय दिया है, वह मेरा ही है।

* * * * *

अस्वस्थता

श्रीहलधर षष्ठी, २९-८-१९८३ के बादसे ही बाबाके स्वास्थ्यकी स्थिति गिरने लगी थी। जुकाम बिगड़ गया और ज्वर रहने लगा। शरीरमें दुर्बलता तो थी ही, इस विषम परिस्थितिमें प्राकृतिक-चिकित्सकके परामर्शके अनुसार बाबाने कई दिनोंका उपवास कर डाला। दुर्बलतामें और भी दुर्बलता बढ़ गयी और स्थिति गम्भीरतर हो उठी। फेफड़ोंमें बहुत कफ जमा हुआ था, कफके साथ-साथ वात और पित्त भी प्रकुपित हो उठे। तीव्र उदर शूल तथा खाँसीसे एक क्षण चैन नहीं मिल पाता था। रात बैठे-बैठे निकलती थी, कभी बैठना और कभी लेटना।

बाबाने ऐसा स्पष्ट कहा भी कि यह कष्ट किसी अन्यका है, जो मैंने अपने ऊपर ले लिया है। भले ही लिया हुआ कष्ट हो, पर उनकी अति रुग्ण स्थितिको देखना भी तो सह्य नहीं होता। व्यथित हृदयसे एक सज्जनने एक बार बाबासे कुछ निवेदन करनेका साहस किया तो बाबा कहने लगे – मेरे लिये जीवन और मृत्युका भेद

समाप्त हो चुका है। मैं तो जानेके लिये प्रत्येक क्षण प्रस्तुत रहता हूँ। स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य, ये दोनों मेरे लिये समान अर्थ रखते हैं। 'उनकी' रुचि ही मेरे लिये महत्त्वपूर्ण है।

ऐसी स्थितिमें भी प्रतिदिन श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करनेके नियमका निर्वाह केवल इस रूपमें हो पाता था कि बाबाको कुर्सीपर बैठा करके कभी एक अथवा कभी तीन परिक्रमा करवा दी जाती। बहुत दिनोंसे ऐसा क्रम चल रहा था। इतना कष्ट होनेके बाद भी कुर्सीपर बैठे हुए बाबा जब परिक्रमामें आते थे तो पद-गायन-रत हरिवल्लभजीके साथ एक-दो बार आलापचारी करते ही थे। कई बार बाबा निर्देश भी करते थे कि अमुक लीला-पदका गायन करें। हरिवल्लभजी जब उस लीला-पदका गायन करते तो उस समय बाबाकी वह सरसता-सजलता-विवर्णता दर्शनीय होती।

इस भाव-दशाको देखकर महाराजजी तो विभोर हो उठते थे। एक ओर तो शरीरसे अतीत यह भाव-दशा और दूसरी ओर शरीरकी वह रुग्णावस्था, एक विचित्र विरोधाभास देखनेको मिलता। महाराजजी तो अनेक बार कहते – यदि कोई अन्य साधारण प्राणी होता तो वह रुग्णावस्थामें शय्यापरसे उठ ही नहीं पाता।

क्रमशः रुग्णताने और अधिक भीषण रूप धारण किया। अधिक ज्वर हो जानेसे दो-तीन दिन बेहोशी-सी रही। सन्निपातके भी लक्षण कुछ-कुछ दिखलायी देने लग गये। जब हृदय और नाड़ीकी गतिमें कुछ अधिक अनियमितता परिलक्षित होने लग गयी तो डाक्टरोंने निराशाभरे स्वरमें कह दिया कि किसी भी क्षण कुछ भी घटित हो सकता है।

इस वर्ष श्रीराधाष्टमी-महोत्सव १४ सितम्बरको था। सदाकी भाँति इस वर्ष भी श्रीराधाष्टमी-महोत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया। उत्सवके समय भी बाबा एवं माँ, दोनों ही अस्वस्थ थे। बाबाकी अस्वस्थताने तो अति भीषण रूप उत्सवके बाद धारण किया। उनकी अस्वस्थतासे सारी गीतावाटिका विकल थी। महाराजजी, जो उत्सवके निमित्तसे यहाँ पधारे थे, वे भी आतुर मनसे क्षण-क्षणपर बाबाके बारेमें पूछते रहते थे।

एक श्रद्धालु बहिनने विकलताभरी वाणीमें बाबासे अवसर पाकर कहा – आप अपना यह कष्ट मुझको दे दीजिये।

बाबाने कहा – हर एकके बसकी बात यह नहीं होती। किसी दूसरेका कष्ट एक सिद्ध संत ही ले सकता है।

२१ सितम्बरकी शामको मेडिकल कालेजके डाक्टर गुप्ताजी बाबाको देखनेके लिये आये। प्रणाम करके गुप्ताजी बाबाके पास बैठ गये। पासमें और भी कई लोग बैठे हुए थे। डा. गुप्ताजीको देखकर बाबाने सच्चर्चा आरम्भ कर दी।

बाबाने कहा – जब जीव भगवानकी ओर उन्मुख होता है, उसी क्षण उसके दिव्य जीवनकी यात्राका शुभारम्भ होता है। यदि वह भगवद्भजनमें निष्ठापूर्वक लगा रहे तो वह निष्ठा उसके जीवनमें उतरने लगती है। इसके बाद उस भजन-निष्ठ जीवनमें भगवत्कृपाके ऐसे-ऐसे अद्भुत चमत्कार उपस्थित होने लगते हैं कि वे मात्र अनुभवकी वस्तु रह जाते हैं। जीवनकी संध्या आनेके पहले जीवको किसी प्रकार भगवानसे प्रगाढ़ परिचय कर लेना चाहिये। फिर तो इस जीवनमें और जीवनके उस पार भी मंगल-ही-मंगल है।

बाबा कुछ और कहना चाहते थे कि डा. श्रीगुप्ताजीने पूछा – आपकी तबीयत कैसी है?

बाबाने ओजस्वी वाणीमें कहा – मेरी तबीयत? मेरी तबीयतकी बात तो मेरे हाथमें है। मैं जिस साँचेमें उसे ढालना चाहूँगा, उसी साँचेमें मेरी इच्छाके अनुसार तबीयतको ढल जाना पड़ेगा। तबीयत तो मेरी इच्छाकी अनुगामिनी है।

यह सुनकर सभी आश्चर्यमें डूब गये। एक ओर शारीरिक स्थिति चिन्ताजनक है और दूसरी ओर शरीरसे अतीत मनका धरातल कुछ और ही है। यह तो ठीक है कि बाबाने किसीका कष्ट अपने ऊपर ले लिया है और वे शरीरसे परे हैं, पर हम साधारण प्राणी उस कष्टको देखकर व्यथित हो उठते थे।

बाबाका अखण्ड नियम था माँका प्रतिदिन दर्शन करनेका। अपनी अस्वस्थताके कारण माँके पास बाबा नहीं जा पाते तो माँ ही कुर्सीपर बैठकर बाबाके पास चली आतीं।

सन् १९८४ का श्रीराधाष्टमी महोत्सव

इस वर्ष श्रीराधाष्टमी ३ सितम्बरको थी। इस महोत्सवमें भाग लेनेके लिये पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराजका गीतावाटिकामें शुभागमन ३० अगस्त ८४ को हुआ। यद्यपि यह सूचना मिल चुकी थी कि महाराजजी अपराह्न कालमें पधारेंगे, इसके बाद भी बाबा तो प्रातःकालसे ही महाराजजीकी प्रतीक्षा करने लग गये। बाबाकी दृष्टि अनेक बार घड़ीपर गयी कि कब अढ़ाई बजेंगे। इतना ही नहीं, बाबाने अपने समीपस्थ लोगोंसे कई बार पूछा – महाराजजी आ गये क्या?

बाबाके निजी सेवक भगतजीने कहा – बाबा! अभी अढ़ाई कहाँ बजा है?

इस उत्सुकता-भरी प्रतीक्षाका एक विशेष हेतु था। इस बार दिल्लीमें महाराजजीके पेटमें पौरुष-ग्रन्थि (प्रोस्टेट ग्लैंड) का आपरेशन दिनांक २१ मई ८४ को हुआ था। आपरेशनकी तिथिकी जानकारी होते ही बाबाने अपने निजी परिकर चोपड़ाजीको अपने प्रतिनिधिके रूपमें दिल्ली भेजा था। इस आपरेशनमें महाराजजीको अपार कष्ट हुआ। उस आपरेशनके बाद महाराजजीका बाबासे यह प्रथम मिलन था, अतः प्रतीक्षामें इस प्रकारकी उत्कटताका होना स्वाभाविक था। अपराह्न कालमें महाराजजी गीतावाटिका पधारे। महाराजजी ज्यों ही बाबाकी कुटियाकी ओर बढ़ने लगे, बाबाने उनको देख लिया। बाबा अपने आसनसे उठे और आगे बढ़कर महाराजजीका स्वागत किया। महाराजजीका हाथ अपने हाथमें लेकर बाबा गाने लगे – 'चरन कमल बन्दौं हरि राई'।

बाबाने यह पूरा पद गाया। रिमझिम वर्षा हो रही थी, इसके बाद भी महाराजजीका हाथ अपने हाथमें लिये हुए बाबा वहीं खड़े रहे। वर्षाको देखकर महाराजजीने बाबासे विनम्र आग्रह किया कुटियामें आसनपर विराजनेके लिये। बाबा अपने आसनपर बैठे, परंतु महाराजजीको एक उच्चासनपर बैठा चुकनेके बाद। बैठते ही बाबाने कहा – बड़ी आतुरतापूर्वक मैं आपकी राह देख रहा हूँ। प्रातःकालसे अबतक न जाने कितनी बार मुझे आपकी मधुर स्मृति हो आयी। आप कह सकते हैं कि यह संन्यासी अतिशयोक्ति कर रहा है, पर आप सच मानें, आपका शुभागमन होते ही इस गीतावाटिकाकी शोभा कुछ और ही हो जाती है।



अल्पना स्थली के पूजन के लिए अग्रसर श्रीराधाबाबा एवं श्रीमहाराजजी



राधाष्टमी के अवसर पर शोभायात्रा की शोभा बढाते : श्रीराधाबाबा एवं श्रीमहाराजजी

बाबाने महाराजजीसे स्वास्थ्यका समाचार पूछा। ठाकुर श्रीघनश्यामजीने संक्षेपमें बतलाया। सुनकर बाबा कहने लगे – इस बार तो आपको एक प्रकारसे नवीन जीवन ही मिला है। आपके आपरेशनके निश्चय और तिथिका समाचार मिलते ही मैंने चोपड़ाजीको आपके पास दिल्ली भेज दिया था।

ठाकुरजीने कहा – चोपड़ाजी नहीं, चोपड़ाजीके आवरणमें आप ही पधारे थे।

बाबा कहने लगे – विगत डेढ़ माससे मेरा शरीर विशेष रूपसे अस्वस्थ चल रहा है। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा भी केवल पाँच ही लगा पाता हूँ और वह भी कुर्सीपर बैठकर। इन दिनों आत्यन्तिक दुर्बलताकी अनुभूति होती रहती है, पर अब दुर्बलता कहाँ? आपके पधारते ही उल्लास और उत्साह लहराने लगा है।

बाबा तथा महाराजजीके बीच और भी बातें होती रहीं। बातचीतके बीचमें बाबाने कहा – जब कभी रातके एक-दो बजे मेरी नींद टूट जाती है और श्रीपोद्दार महाराजकी सामनेवाली समाधिको एकटक देखता हूँ तो उस समय विचित्र प्रकारकी अनुभूतियोंका द्वार खुल जाता है। उस समय निपट एकान्त होता है। मेरे पास कोई नहीं रहता, जिससे किसी प्रकारका व्यवधान उत्पन्न हो। उन एकान्त एवं शान्त क्षणोंमें समाधिका और उसके आस-पासके स्थानका जो दिव्य स्वरूप मेरे 'दृष्टिपथ' पर आता है, उसके बारेमें क्या बतलाऊँ? वह दृश्य जागतिक स्तरका होता ही नहीं। वह तो होता है सर्वथा दिव्य, सर्वथा अनुपम।

बातचीतके बाद बाबा स्वयं महाराजजीके साथ-साथ गये उस कुटियातक, जहाँ महाराजजीके निवासकी व्यवस्था है। वर्षाके कारण राहमें फिसलन बहुत ज्यादा थी, अतः बड़ा सँभल-सँभल कर चलना पड़ रहा था। कुटियामें पहुँचकर बाबाने उस पलंगको प्रणाम किया, जिसपर महाराजजी विश्राम करते थे। उस आसनपर महाराजजीको बैठा करके ही बाबा अपनी कुटियापर वापस आये।

३० अगस्तको चतुर्थी तिथिके दिन श्रीगणपति-पूजन, १ सितम्बरको षष्ठी तिथिके दिन श्रीललिता-जन्मोत्सव, ३ सितम्बरको अष्टमी तिथिके दिन श्रीराधा-जन्मोत्सव, ४ सितम्बरको नवमी तिथिके दिन

दधिकर्दमोत्सव, ५ सितम्बरको दशमी तिथिके दिन श्रीपोद्दारजी-भावार्चन-दिवस और ८ सितम्बरको त्रयोदशी तिथिके दिन षष्ठी-दिवसोत्सव यहाँ सोत्साह एवं सानन्द मनाया गया। वृन्दावनसे श्रीश्रीरामजी-श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली ३० अगस्तको यहाँ आ गयी थी, अतः पंडालमें रासलीला ३१ अगस्तसे आरम्भ हो गयी थी।

इस वर्ष यहाँ जो श्रीराधा-जन्मोत्सव मनाया गया, उसकी सबसे विशेष एवं सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि बाबा इस वर्ष उत्सवके पंडालमें भी पधारे थे। बाबूजीने सन् १९७१ के मार्च मासमें महाप्रस्थान किया था। इसके पहले सन् १९७० ई. में बाबूजीके साथ-साथ बाबा श्रीराधाष्टमी-उत्सवके पंडालमें आये थे। सन् १९७० के बाद सन् १९८४ में यह पहला अवसर था, जब बाबा पंडालमें आये हों।

अष्टमी तिथिके प्रातःकाल सूर्योदयके समय रासमण्डलीके द्वारा श्रीनिमाई-निताई-मिलन लीला प्रस्तुत की जा रही थी। महाराजजीके साथ-साथ बाबा पंडालमें पधारे तथा जबतक लीला होती रही, वे लीलाका दर्शन करते रहे। लीला सम्पन्न हो जानेके बाद बाबाने 'प्रसूति-गृह'का दर्शन किया। यह वही प्रसूति-गृह है, जहाँ मध्याह्नके समय भगवती श्रीराधाके प्रादुर्भावके उपरान्त नीराजन-अर्चन-सम्बन्धी विस्तृत पूजन-कृत्य सम्पन्न होते हैं। तदुपरान्त बाबाने मंचपर सजायी गयी झाँकीका दर्शन किया। इसके बाद प्रभातफेरी प्रारम्भ हुई। प्रभातफेरीमें बाबा और महाराजजी साथ-साथ चल रहे थे। बाबाको अपने बीचमें देखकर प्रभातफेरीमें भाग लेनेवाले भक्तोंके हृदयमें इतना अधिक उल्लास था, 'जनु उमगत आनँद अनुरागा'। सभीके हृदयमें अनुराग और आनन्द इतना अधिक उमड़ रहा था कि 'भए मगन सब देखनिहारे'। इस समय प्रत्येक भक्त अपनी उल्लासमयताके कारण दूसरोंके लिये एक दृश्य बन रहा था और वही भक्त द्रष्टा भी बना हुआ था दूसरोंकी उल्लासमयी छविका दर्शन करनेके लिये। इस उमंगभरी प्रभातफेरीमें आज जन-जन द्रष्टा और दृश्य युगपत् बना हुआ था। बाबा और महाराजजीको साथ लिये-लिये प्रभातफेरी हो रही थी।

राधिकारमण अम्बुजनयन नन्दनन्दन नाथ हे!
गोपिकाप्राण मन्मथमथन विश्वरञ्जन कृष्ण हे!!

उपर्युक्त दो पंक्तियोंके कीर्तनका गगनव्यापी तुमुल नाद जन-जनके आनन्दको अधिकाधिक संवर्धित कर रहा था। प्रेम और प्रमोदसे परिपूर्ण नर-नारी समुदाय आज 'परमानंद हरष उर भरहीं'। पुष्पवर्षाकी सीमा नहीं थी। तुमुल नाद और अतुल मोदमें निमग्न इस प्रभातफेरीकी छटा अद्भुत थी।

'देखत बनइ न जाइ बखानी'।

प्रभातफेरीके बाद श्रीगिरिराज परिक्रमाका कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और इसके बाद सम्पन्न हुए सम्पूर्ण दिवसके अन्य कार्यक्रम। इस बार जो भी कार्यक्रम हुए, वे सभी इतने भावोद्दीपक तथा प्रभावोत्पादक थे कि उसका वर्णन सम्भव नहीं। ऐसा लगता था मानो बीजमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके सभी कार्यक्रमोंको 'जगा' दिया गया हो। भाव जगा देनेमें समर्थ इन चैतन्य कार्यक्रमोंका प्रभाव ऐसा था कि मन जागतिक धरातलसे सर्वथा दूर जाकर रस-सिन्धुकी लहरोंपर लहराने लगता था।

मध्याह्नके समय ११ बजकर ५६ मिनटपर भगवती श्रीराधाका आविर्भाव होते ही माँने नीराजन किया। माँके कर-पल्लवपर सुशोभित हो रहा था आरतीका थाल और उस आरतीके थालमें प्रज्वलित थीं ग्यारह वर्तिकाएँ। माँके पास खड़ी हुई बाई (सावित्रीबाई फोगला) पुष्पोंकी वर्षा कर रही थी। विपुल पुष्पवर्षा और उच्च घंटा-शंख-नादके मध्य 'आरति श्रीवृषभानुलली की' का मधुर गायन हो रहा था। नीराजनकी मनहारी छवि ऐसी न्यारी और इतनी प्यारी थी कि भक्तगण 'पाइ नयन फल होहिं सुखारी'। नीराजनके बाद महाराजजीने श्रीराधासुधानिधिके श्लोकोंसे स्तुति-गान किया। इसके बाद ठाकुर घनश्यामजीने गाया 'महारस पूरन प्रगट्यौ आनि'। इस पदके बाद दूसरा पद गाया 'चलो वृषभान गोप के द्वार'। पदके गायनमें साथ दे रहे थे श्रीहरिवल्लभजी, श्रीश्रीरामजी और श्रीफतेहकृष्णजी। इन दोनों पदोंके गायनमें सम्भवतः पौन घंटा लग गया होगा। इन पदोंका गायन करते समय ठाकुरजी, वे ठाकुरजी नहीं थे, जो प्रतिदिन हमलोगोंके साथ उठते-बैठते और हिलते-मिलते थे। उनके कलेवरमें कोई रंगभरी रसमयी प्रीतिपगी व्रजांगना समा गयी थी और वह व्रजांगना बड़े भावसे उमंगपूर्वक रसार्द्र स्वरमें गा रही थी उन मांगलिक पदोंको उनके कण्ठके माध्यमसे। वह उमंग सारे वातावरणपर छायी हुई थी। वातावरणका मादक प्रभाव ऐसा था कि सभी भावोन्मत्त हो रहे थे।

मेरे द्वारा एक अपराध घटित हो जायेगा, यदि मैं ऐसा कहूँ कि विगत कतिपय वर्षोंमें मनाये गये उत्सवोंकी अपेक्षा इस वर्षका उत्सव बहुत भव्य और बड़ा भावपूर्ण रहा। भगवदीय भावके राज्यमें तारतम्यकी स्थापना करना एक अपराध है और ऐसा अनुचित कार्य भला, मेरे द्वारा क्यों हो! बस, मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इस वर्षका उत्सव रहा बड़ा सुन्दर, अतीव सुन्दर, सुन्दर-से-सुन्दर, सुन्दरातिसुन्दर!

* * * * *

बाबाके 'मिन्तर' श्रीठकुरीबाबू

सन् १९८४ में श्रीराधाष्टमी महोत्सव ३ सितम्बरको था। महोत्सवके कार्य कार्यक्रम सम्पन्न हो जानेके बाद महाराजजी गोरखपुरसे २४ सितम्बरको जाना चाहते थे, परंतु जा पाये २७ सितम्बरको। इसके पीछे भी एक अति सुन्दर एवं रोचक हेतु था। बाबूजीका जन्म-दिवसोत्सव २२ सितम्बरको था। जन्म-दिवसोत्सव मना लिये जानेके बाद महाराजजी चाहते थे २४ सितम्बरको वृन्दावनधामके लिये प्रस्थान करना। ठाकुर घनश्यामजीने इसके बारेमें बात चलायी १८ सितम्बरको। ठाकुरजीकी बात सुनकर बाबाने कहा – यदि तुम लोग नौ दिन और ठहर जाओ तो कैसा रहे? तुम लोग २४ सितम्बरको न जा करके २७ सितम्बरको वृन्दावनके लिये प्रस्थान करो। महाराजजीसे पूछ लो। यदि वे स्वीकार कर लें तो बड़ा अच्छा हो।

ठाकुरजीने बाबासे तुरंत कहा – तीन दिन और रुक जानेमें हमलोगोंको प्रसन्नता ही होगी। इससे आपका सांनिध्य तीन दिन और मिल जायेगा।

अब यह निश्चित हो गया कि महाराजजी २७ सितम्बरको वृन्दावनके लिये प्रस्थान करेंगे। २२ सितम्बरको बाबूजीका जन्म-दिवसोत्सव उत्साहपूर्वक मना लिया गया। इसके चार दिन बाद २६ सितम्बरको प्रातःकाल बाबाके पास नगरसे सूचना आयी कि भक्तहृदय वयोवृद्ध श्रीठकुरी बाबू जालानका देहान्त हो गया है।

श्रीठकुरी बाबूको बाबा प्यारकी भाषामें अपना लँगोटिया यार कहा करते थे। इतना ही नहीं, बहुत स्नेह उमड़नेपर अपना 'मिन्तर' (अर्थात् मित्र) कहा करते थे। वे रासलीलाके बड़े प्रेमी थे। सन् १९४९ के आस-पास जब श्रीघनश्यामजी रासमण्डलीमें ठाकुर स्वरूप बना करते थे, तब रासमण्डलीको श्रीठकुरी बाबूने अपने घरपर ठहराया था। उन्होंने रासमण्डलीको अपने यहाँ केवल ठहराया ही नहीं, अपितु बाबाकी इच्छाके अनुसार अपनी बगीचीमें रासलीला करवायी भी। श्रीठकुरी बाबूका ठाकुर घनश्यामजीके प्रति वात्सल्य-भाव था। वे ठाकुर घनश्यामजीको पुत्रवत् प्यार किया करते थे और लाड-चावमें उन्हें लाला कहा करते थे। जब-जब ठाकुरजी मिलते, तब-तब श्रीठकुरी बाबू उनसे कहा करते थे — लाला! जब मेरा शरीर पूरा हो तो तुम भी उपस्थित रहना और कन्धा देना।

श्रीठकुरी बाबूकी ऐसी अभिलाषा और श्रीठाकुरजीसे ऐसा अनुरोध, यह भला कैसे सम्भव है? श्रीठाकुरजीका निवास वृन्दावनमें और फिर स्थान-स्थानपर उनका आना-जाना होता रहता है। इस कठिनाईको सोचकर श्रीठाकुरजी अपने बचावके लिये श्रीठकुरी बाबूको उत्तर दिया करते थे— आपका कहना तो ठीक है, परन्तु इसके बारेमें आपके 'मिन्तरजी' (अर्थात पूज्य बाबा) जाने कि मैं उस समय आपके पास रह पाऊँगा या नहीं। वे चाहेंगे तो ऐसा होना भला कौन-सी बड़ी बात है?

ज्यों ही श्रीठकुरी बाबूके निधनका समाचार गीतावाटिकामें आया, त्यों ही एक विचित्र-सी बात हम सभीके मनमें कौंध गयी कि क्या अपने लँगोटिया यार श्रीठकुरी बाबूकी उस चाहको पूर्ण करनेके लिये पूज्य बाबाने मन-ही-मन योजना बना ली थी और उस योजनाके अनुसार श्रीठाकुरजीको २७ सितम्बर तकके लिये रोक लिया, जिससे वे ठकुरी बाबूकी अर्थीको अपना कन्धा दे सकें। इस तथ्यपर जितना अधिक चिन्तन होता, उतना ही अधिक विस्मय होता उनकी समर्थ योजनापर।

श्रीठकुरी बाबूके शवका अग्नि-संस्कार अयोध्या धाममें श्रीसरयूजीके तटपर होनेवाला था। अयोध्या जानेके पूर्व उनके विमानको गीतावाटिका लाया गया और पूज्य बाबूजीके समाधिके पास रखा गया। रुग्ण होते हुए भी बाबा विमानके पास आये और उसका पुष्प एवं पुष्पमालासे श्रृंगार किया। श्रृंगारोपरान्त अभिमन्त्रित गंगाजलसे अभिषिक्त करके उन्होंने विमानकी तीन परिक्रमा लगायी। फिर बाबाने कन्धा दिया और कन्धा दिया श्रीठाकुरजीने भी। फिर अन्य लोगोंने वह अर्थी अपने कन्धेपर ले ली। वे लोग अर्थी लेकर पचास-साठ कदम बढ़े ही होंगे कि बाबाने ठहरनेके लिये कहा। बाबाने पुनः कन्धा दिया। बाबा कन्धा दिये-दिये गीतावाटिकाके

प्रवेश द्वारतक आये और फिर दूसरोंको अर्थी सँभला करके उन्होंने सभीके सामने पुकार करके कहा– मिन्तर ! वाटिकाके अन्तिम छोरपर खड़े होकर मैं तुम्हें अन्तिम विदाई दे रहा हूँ।

राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्तने अपने काव्यमें एक स्थानपर भगवान श्रीकृष्णके लिये लिखा है– 'करते सभी हो कार्य, पर कारण कभी बनते नहीं' ।

बाबाने उस समय महाराजजी तथा ठाकुरजीको अकारण ही रोक लिया था, पर कंधा देनेका कार्य हो जानेके बाद लोगोंका चिन्तन सक्रिय होकर उस अकारणके प्रच्छन्न कारणका अनुमान लगाने लगा। कार्य सिद्ध हो गया और श्रीठकुरी बाबूकी इच्छा भी पूर्ण हो गयी, पर बाबाने आदिसे अन्ततक स्वयंको छिपाये रखा। स्वयंको सर्वथा अव्यक्त रखते हुए बाबाने दो स्नेही-जनोंके स्नेह-सम्बन्धका निर्वाह कितनी सुन्दर रीतिसे करवा दिया।

इन दिनों यह तथ्य हमलोगोंकी सरस चर्चाका विषय बना रहा। यदि मनमें धैर्य रहे तथा आँखें खुली रहें तो बहुतसे तथ्योंके रहस्य स्वतः सामने आ जाया करते हैं और तथ्योंका यह रहस्योद्घाटन हृदयको सद्भावसे परिपूरित कर दिया करता है। फिर महाराजजी, ठाकुरजी आदिने २७ सितम्बरको गोरखपुरसे प्रस्थान किया।

* * * * *

दो अष्टयाम-लीलाएँ

गीतावाटिकामें अष्टयाम लीला दो बार हुई, पहली लीला सन् १९८२ में और दूसरी लीला सन् १९८४ में हुई। प्रथम लीलाके दर्शनके लिये दिनांक १३ मार्च १९८२ को श्रीमहाराजजी गीतावाटिका पधारे। पूर्व-निश्चित योजनाके अनुसार गीतावाटिकामें १४ मार्चसे लेकर २१ मार्चतक अष्टयामलीला अभिनीत होनेवाली थी। इस अवसरपर पधारनेके लिये बाबाने आग्रहपूर्वक अनुरोध किया था, यही हेतु था महाराजजीके पधारनेका। महाराजजीके आनेपर बाबाने कहा था– आप मेरा अनुरोध स्वीकार कर लेते हैं, यह आपकी गरिमा है तथा इस वाटिकाका सौभाग्य है। अतिशयोक्तिपूर्वक नहीं, मैं वस्तुतः सत्य कह रहा हूँ कि आपका शुभागमन इस गीतावाटिकाको पवित्रता प्रदान करता है।

बाबाको सुख प्रदान करनेकी भावनासे ही यह अष्टयामलीला आयोजित हुई थी, किंतु कभी-कभी हमलोगोंके मनमें एक संदेह उठ जाया करता था कि बाबा इस लीलामें बैठ पायेंगे अथवा नहीं। उनके कठोर नियमोंके कारण ही यह संदेह उत्पन्न होता था, परंतु यह संदेह सर्वथा निराधार निकला। बाबा प्रतिदिन ठीक

समयसे पहुँचते। बाबा तो अपना संदेशवाहक भेजकर ठाकुरजीसे नित्य ही पुछवाया करते थे– ठाकुर! इस अष्टयामलीलाका एक दर्शक मैं भी हूँ। बताओ, आजकी लीला कितने बजे आरम्भ होगी?

बाबाका यह दैन्य ठाकुरजीको और भी विगलित कर दिया करता था। हम दर्शक लोग मंचपर निकुञ्ज-लीलाका दर्शन करते ही थे, इसके साथ ही देख लिया करते थे कभी-कभी आँखोंके कोनोंसे बाबाको, महाराजजीको और माँको। अस्वस्थ होते हुए भी माँ प्रतिदिन तीन-साढ़े-तीन घंटे बैठकर लीलाका दर्शन किया करती थीं।

माँने अपने आह्लादपर सघन गम्भीरताका आवरण डाल रखा था, अतः उनके आह्लादका परिज्ञान होता था लीला-दर्शनके समय नहीं, लीलाके उपरान्त, जब वे लीलाकी सुन्दरताकी चर्चा अपने कमरेमें समीपस्थ महिलाओंसे किया करती थीं।

महाराजजीकी भावमयताके दर्शन तो कई बार होते थे। नेत्रोंकी सजलताके कारण न जाने कितनी बार उन्हें अपनी श्वेत चादरका छोर अपने हाथोंमें लेना पड़ता था।

बाबा तो लीलामें बैठते थे एक आसनसे और आरम्भसे अन्ततक मौन रहते। जब भी मंचपर कोई भावपूर्ण दृश्य आता, उसे देखते ही बाबा ध्यानस्थ हो जाते। बहुत देरतक नेत्र बन्द किये हुए निस्स्पन्द बैठे रहते। लीलाके पूरी होनेके बाद भी बाबा बोलनेकी स्थितिमें नहीं रहते। ठाकुर घनश्यामजी, डॉ. एल.डी. सिंह, श्रीचोपड़ाजी आदि बाबाको सहारा देकर धीरे-धीरे ले जाते और उन्हें मच्छरदानीके अन्दर सुला देते। कभी-कभी तो बाबा इस भाव-निमग्नतामें घंटों पड़े रहते। इस समय किसीका भी बोलना, किसीके भी पद-चापका ध्वनित होना, किसी बर्तनका रंच मात्र टकराना, यह सब बाबाको तनिक भी सुहाता नहीं था। परिचर्या-रत परिकर-वर्ग इस दृष्टिसे सावधान भी रहता था।

अब मैं अपने विश्वासकी एक बात लिख रहा हूँ। इस अष्टयामलीलामें अभिनयकी सुन्दरता तो थी ही, परंतु लीलामें जो भावमयता थी, उसका प्रच्छन्न हेतु था माँ, बाबा तथा महाराजजीकी उपस्थिति और उनका भाव-राज्य। बाबाकी मान्यताके अनुसार बाबूजीके जीवनकी धर्मसंगिनी होनेके नाते पूज्या माँके रूपमें बाबूजी ही उपस्थित थे।

इन तीनों विभूतियोंकी भाव-गरिमा ही संक्रमित होकर पद-पदपर कण-कणको निकुञ्जकी भावमयतासे भावित कर रही थी। अष्टयामलीलाकी भावमयताके बारेमें मेरा जो विश्वास है, वह केवल मेरा ही नहीं, अपितु कई बहिनों और बन्धुओंका भी है। उन बहिनों एवं बन्धुओंके उद्गारोंने मेरी आस्थाकी परिपुष्टि की है।

अष्टयामलीलाके सम्पन्न हो जानेके बाद महाराजजीने एक बार स्वानुभव सुनाया। लीला-मंचके सामने बाबा तथा महाराजजीका आसन आस-पास लगा करता था। महाराजजीने बतलाया — लीलाके समय जबतक बाबा अपने आसनपर विराजे रहते, उनके गौर श्रीवपुसे तप्त कंचन-सी दिव्य आभा सतत विकीर्ण होती रहती। यह केवल एक दिन नहीं, आठों दिन ऐसा देखनेको मिला। लीलाके समय जिस परम दिव्य आभाके दर्शन हुआ करते थे, वह उनके किसी विलक्षण एवं विशिष्ट स्वरूपकी संकेतिका है।

यह सारी अष्टयामलीला स्वकीयाभावकी निकुञ्ज लीला थी। यथा-स्थान एवं यथा-अवसर कुछ अन्य पद एवं प्रसंग अवश्य ही इसमें समाविष्ट किये गये, किंतु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य द्वारा प्रणीत 'महावाणी' नामक ग्रन्थ ही आरम्भसे अन्ततक इस अष्टयामलीलाका आधार रहा। इस अष्टयामलीलाको प्रस्तुत करनेके लिये जिस प्रकारकी मंच-सुसज्जा होनी चाहिये थी, वैसी गीतावाटिकामें नहीं थी। इस न्यूनताके बाद भी गीतावाटिकाका वातावरण आठ दिनतक निकुञ्जमय बना रहा।

श्रीप्रिया-प्रियतमकी निकुञ्ज-लीला इतनी सुन्दर अभिनीत हुई कि गोरखपुरका उतना भूमि-खण्ड, जो गीतावाटिकाके नामसे विख्यात है, आठ दिनके लिये नित्य निकुञ्ज धाम बन गया था। इस सफलताका श्रेय रासमण्डलीकी अभिनय-कुशलताको तो था ही, इसके साथ ही ठाकुर श्रीघनश्यामजीका निर्देशन, श्रीश्रीरामजी तथा श्रीफतेहकृष्णजीका श्रम तथा रासमण्डलीके सदस्योंका परस्पर सहयोग, यह सब पद-पदपर श्लाघनीय है।

लीलाके बीचमें ऐसे मधुर प्रसंग सामने आते थे और ऐसी सुन्दर झाँकियाँ देखनेको मिलती थीं कि कई व्यक्तियोंको दिव्य अनुभूतियाँ हुई हैं।

भावुक साधकोंको तो एक संकेत प्राप्त हो रहा था कि किस प्रकारसे लीला-चिन्तन करना चाहिये। साधकोंके लिये तो यह अष्टयामलीला

जीवननिधिके समान थी ही, साधारण दर्शक-गण भी बड़े विमुग्ध थे। दर्शक-समुदायकी कौन कहे, स्वयं लीला करनेवाले पात्रोंपर तथा पद गानेवाले समाजियोंपर एक नशा-सा छाया हुआ था।

* * *

वर्ष १९८४ ई. में होलीके बाद गीतावाटिकामें दूसरी अष्टयाम लीलाका आयोजन पुनः हुआ। सन् १९८२ ई. में होलीके बाद ही अष्टयाम लीला हुई थी, इस बार भी होलीके बाद यह लीला हुई। उस बार श्रीश्रीरामजी श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डलीके द्वारा अष्टयाम लीला सम्पन्न हुई थी, इस बार भी उन्हींकी रासमण्डली थी। यह अष्टयाम लीला २१ मार्चसे २८ मार्चतक हुई।

श्रीमहाराजजीसे बाबाने विशेष रूपसे निवेदन किया था अष्टयाम लीलाके अवसरपर पधारनेके लिये। अतः १९ मार्चके दिन महाराजजी ठाकुर घनश्यामजी आदिके साथ वृन्दावनसे गीतावाटिका पधारे। महाराजजीके पधारनेसे गीतावाटिकामें एक विशेष प्रकारकी उमंग परिलक्षित हो रही थी। अष्टयाम लीलाके दर्शनके लिये बंगाल, बिहार, दिल्ली, राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश तथा उत्तरप्रदेशके अनेक नगरोंसे लोग पधारे। इन अतिथियोंके आगमनसे गीतावाटिकामें चहल-पहल बहुत बढ़ गयी।

२१ मार्च १९८४ के प्रातःकाल, ब्राह्मवेलामें अष्टयामलीला आरम्भ हुई। निभृत निकुञ्जमें श्रीप्रिया-प्रियतमके जागरणके पूर्व शयनकी सात झाँकियाँ दिखलायी गयीं। मच्छरदानीके अन्तरालसे झिलमिल दिखलायी देनेवाली प्रत्येक झाँकीकी भाव-गरिमा अपने ही ढंगकी थी। फिर श्रीललिता आदि सखियाँ श्रीप्रिया-प्रियतमको जगाती हैं। सखियाँ श्रीप्रिया-प्रियतमकी मंगला आरती उतारती हैं और फिर कलेवा कराती हैं। कलेवा करनेके उपरान्त श्रीप्रिया-प्रियतम वन-विहारके लिये पुष्प-शय्याका परित्याग करते हैं। वन-विहारके उपरान्त सखियाँ श्रीप्रियाजीको उबटन लगाती हैं तथा स्नान कराती हैं। स्नान करके श्रीप्रियाजी निकुञ्जमें अपने केशोंका स्वयं ही विन्यास करती हैं। केश-विन्यास-रत श्रीप्रियाजीकी छवि बड़ी मनोहारिणी थी।

इससे आगेकी और भी कई लीलाएँ मंचपर प्रस्तुत की गयीं। यह

लीला प्रातः काल चार बजे आरम्भ हुई थी और सात बजेतक होती रही। पूज्या माँकी अस्वस्थताको देखकर हम सभीको संदेह था कि न जाने माँ आ पायेंगी अथवा नहीं, परंतु माँ आयीं और लगातार तीन घंटेतक बैठी रहीं। इससे हम सभीको आश्चर्य हो रहा था कि माँ इतनी देर कैसे बैठी रहीं, परंतु लीला-दर्शनकी उत्कण्ठा क्या नहीं करवा लेती? अष्टयाम-लीलाके दर्शनके लिये दिल्लीसे परम सम्मान्य श्रीचाचाजी (श्रीजयदयालजी डालमिया) भी पधारे थे। वे भी वृद्ध हैं तथा उनका शरीर रुग्ण हैं। उनके बारेमें भी यही शंका थी कि वे लगातार बैठ नहीं पायेंगे, पर उनकी भी लीला-दर्शनोत्कण्ठाने हम सभीकी शंकाको निराधार सिद्ध कर दिया।

लीला-दर्शनके लिये बाबा तथा महाराजजीका आसन मंचके सामने पास-पास लगाया गया था। लीलाके दर्शनसे बाबाकी वृत्तियोंने बाह्य जगतको छोड़ दिया। जब लीला सात बजे सम्पन्न हुई, उस समय बाबा अत्यधिक अन्तर्मुख थे। बाबाको सँभालकर आसनसे उठाया गया। बाबा बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे। बाबा जब कुटियापर आये, तब उनको बिस्तरपर लिटा दिया गया और मच्छरदानी लगा दी गयी। लगभग एक बजे अर्थात् छः घंटेके बाद बाबा कुछ-कुछ प्रकृतिस्थ हुए। इसे पूर्ण प्रकृतिस्थ-स्थिति नहीं कहनी चाहिये। अन्तर्मुखताकी छाया अभी सभी चेष्टाओंको आच्छादित किये हुए थी। घंटा तो बज जाता है, पर बज जानेके बाद भी उसकी गूँज बहुत देरतक वातावरणमें व्याप्त रहती है। कुछ और अधिक प्रकृतिस्थ होनेपर बाबाने कहा— कई दिनके भूखेकी जो स्थिति अकस्मात् भोजन मिलनेपर होती है, वही बात यहाँ समझनी चाहिये। भोजन मिलनेपर तो उस भूखेकी भूख मिटती है, पर यह रासलीला तो लीला-दर्शनकी भूखको और बढ़ा देती है।

आठों दिन एक-से-एक सुन्दर प्रसंग मंचपर प्रस्तुत किये गये। इस अष्टयामलीलामें माधुर्य-वात्सल्य-सख्य-दास्य, सभी भावोंको समान स्थान प्रदान किया गया था और सभी भावोंकी भावभरी लीलाओंने दर्शकोंको आमोदित-आप्यायित किया। आठ दिवसोंकी लीलामें प्रभात-लीलाके अतिरिक्त कई लीलाएँ और कई झाँकियाँ अतीव सुन्दर थीं। तीसरे दिन माँ यशोदा द्वारा बुलाये जानेपर जब वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा वृषभानुभवनसे नन्दालयके लिये पधारती हैं, उस समय उनके आगमनकी छविका वर्णन

किन शब्दोंमें किया जाये! पथपर गुलाबी पावड़े बिछे हुए हैं। एक सखीने वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके शीशपर विशाल छत्र लगा रखा है। कोई सखी मोरछल और कोई सखी चँवर डुला रही है। इसी प्रकार अन्य सखियोंके हाथमें सेवाचर्याकी कोई-न-कोई वस्तु है। सब बड़ी मन्द-मन्थर गतिसे नन्दालयकी ओर अग्रसर हो रही हैं। इस दृश्यसे महाराजजीको बड़ा उद्दीपन हुआ। वे अन्तर्मुख हो गये। उनके नेत्रोंसे अश्रु झरने लगे, जिसे वे बार-बार अपने वस्त्रसे पोंछ रहे थे।

* * *

यहींपर रासलीलाके श्रीश्रीजीस्वरूपसे सम्बन्धित एक प्रसंगका उल्लेख कर रहा हूँ। २५ मार्चके दिन श्रीश्रीजीस्वरूप अपने सामान्य वेषके अन्दर अत्यधिक श्रद्धाभरे हृदयसे बाबाकी कुटियापर आये तब, जब बाबा अपनी कुटियापर नहीं थे। वे बाबाके बिस्तरपर एक पुड़िया रखकर चले गये। बाबा जब लौटकर आये तो यह बात बतलायी गयी। बाबाने कहा कि पुड़िया खोलो, देखो, क्या बात है? पुड़ियाको खोला गया। उसमें कुछ काजू-बादाम थे। मेरा अनुमान है कि वे प्रसादी मेवे होंगे।

बाबाने देखा कि जिस कागजमें मेवे रखे गये थे, उस कागजपर कुछ लिखा हुआ है। बाबाने पढ़नेके लिये कहा। चोपड़ाजीने पढ़कर सुनाया। वह इस प्रकार है —

श्रीराधा

बाबा मैं हूँ आपकी प्यारी लाड़भरी श्रीराधा।

इस वाक्यको सुनकर बाबाके नेत्र छलछला उठे।

* * *

अष्टयामलीलाकी सम्पन्नताके अगले दिन २९ मार्चके पूर्वाह्न कालमें बाबाकी कुटियापर ही रासमण्डलीके सभी व्यक्तियोंका भोजन था। बाबाके निर्देशके अनुसार रसोई परोसनेका कार्य वाटिकाकी माताओं-बहिनोंके द्वारा हुआ। बाबाका आसन ऐसे स्थानपर लगा हुआ था, जहाँसे वे सभीको देख सकें, पर श्रीप्रिया-प्रियतम तो बाबाके सामने बैठकर ही प्रसाद पा रहे थे।

श्रीप्रिया-प्रियतम जब भोजन कर चुके, तभी श्रीडालमियाजी (श्रीजयदयालजी डालमिया) ने उच्छिष्ट प्रसादकी कामनासे अपने दोनों

हाथ श्रीप्रिया-प्रियतमके समक्ष फैला दिये। जिसने अरबपति होनेके अहंकारकी चादरको उतारकर एक किनारे रख दी हो और जिसने आयुकी अधिकतासे उत्पन्न होनेवाली गरिमाको सर्वथा भुला दिया हो, ऐसे 'तृणादपि सुनीच' के मूर्तिमान स्वरूप बने हुए श्रीडालमियाजीके दैन्यको देखकर अनेकोंके नेत्र सजल हो उठे। श्रीप्रिया-प्रियतमने अपना उच्छिष्ट प्रसाद उनको दिया और उन्होंने उस प्रसादको वहीं ग्रहण कर लिया। यह दृश्य वस्तुतः बड़ा भावपूर्ण था। भोजनके बाद रासमण्डलीके सभी व्यक्ति माँके पास गये, सबने माँको प्रणाम किया और माँने सबको फल और विदाई दी। २९ मार्चकी दोपहरके समय रासमण्डलीको प्रस्थान करना था। बाबाके समीप दस दिनतक रहनेका अवसर मिला और बाबाके पाससे चले जानेकी व्यथा तो सभीको थी, पर सबसे अधिक पीड़ा थी श्रीश्रीजीस्वरूपको और श्रीप्रियतमस्वरूपको। उनके नेत्र बार-बार भर-भर आ रहे थे।

इस अष्टयामलीलाके व्यय-भारका वहन श्रीडालमियाजीके सुपुत्र श्रीविष्णुहरिजी डालमियाने किया। बाबाने विष्णुहरिजीकी सराहना करते हुए उनसे कहा – भैया, मैं तुमको कितना साधुवाद दूँ? मेरे कहनेपर तुमने न जाने कितनी कन्याओंके विवाहके लिये आर्थिक सहयोग दिया है। उस आर्थिक सहयोगसे न जाने कितनी अभावग्रस्त कन्याओंका विवाह हुआ है, उन कन्याओंके विवाहसे न जाने कितने अभिभावकों तथा माता-पिताओंको चिन्तासे विमुक्ति मिली है? उनकी कृतज्ञता-भावनाकी सीमा नहीं और तुम्हारे उपकार-परायणताकी सीमा नहीं, पर अब मेरी एक बातपर विचार करो। तुम्हारे द्वारा जो आर्थिक सहयोग कन्याओंके विवाहके लिये मिला, उस व्ययका अन्तिम रूप यही तो हुआ कि वे कन्याएँ गृहस्थ-जीवन स्वीकार करके सांसारिक बन गयीं। वे दम्पति 'सुत बित लोक ईषना तीनी' के वशीभूत होकर माया-जालमें फँस गये और कंचन-काम ही उनके जीवनका केन्द्र-बिन्दु बन गया, परंतु इस अष्टयामलीलाके आयोजनमें तुम्हारे द्वारा जो कुछ व्यय हुआ है, उसकी सार्थकताकी गरिमाकी सीमा नहीं। रासलीलाके दर्शनसे लोगोंमें भावका उद्दीपन हुआ है और लोगोंको श्रीराधा-माधवकी भक्ति-भावनाका दान मिला है, जो सांसारिक जंजालको उच्छिन्न करनेवाला है। जो व्यय दर्शकोंकी संसारासक्तिको मिटाकर उन्हें श्रीराधा-माधवकी भक्ति-भावनामें निमज्जित कर दे, उस व्ययकी जितनी भी सराहना की जाये, वह कम ही रहेगी। तुम्हारे द्वारा जो व्यय रासलीलापर हुआ है, वह सर्वथा साधुवादके योग्य है।

२५ मार्चके दिन बाबाकी गिरिराज-परिक्रमाका वातावरण अत्यन्त सुन्दर रहा। महाराजजी द्वारा रचित मधुराष्टकका गायन हुआ। गायनका आरम्भ तो किया था श्रीरामजीने, पर बादमें स्वयं महाराजजी ही गाने लगे। आगे-आगे महाराजजी गाते, पीछे-पीछे अन्य लोग। इससे वातावरण बड़ा भावमय हो गया। बाबा तो विभोर हो उठे। इस मधुर गानको सुनकर बाबाका मन तो थिरक ही रहा था, शरीर भी थिरकने लगा। मधुराष्टक गायनमें जब जैसा वर्णन आता, तदनुसार बाबा वैसी नृत्यमयी चेष्टा करने लगते। जब यमुनाजीका वर्णन आया तो बाबाकी अगुलियाँ इस प्रकार नृत्य करने लगीं, मानो जल-प्रवाहमें लहरियाँ उठ-गिर रही हों। जब नूपुरकी रुनझुनका वर्णन आया, तब बाबा अपने चरणोंको एक बार उसी प्रकारसे नचाने लगे, जिस प्रकारसे नृत्यके समय मंचपर श्रीप्रिया-प्रियतम नृत्य करते हैं। बाबा तो परिक्रमा करना ही भूल गये। बाबा बहुत देरतक महाराजजीके समक्ष ही खड़े रहे। एक बार परिक्रमा करनेकी बात ठाकुर घनश्यामजीने याद दिलायी, इसके बाद भी बाबा खड़े ही रहे।

वस्तुतः बाबाका मन रागाकुल हो रहा था। मधुराष्टकके गायनके बाद बाबाके संकेतपर 'चलो चलो री किसोरी वृन्दाबनमें' पद गाया गया। इस पदके गायनके समय श्रीरामजीने, हरिवल्लभजीने, फतेहकृष्णजीने, ठाकुर श्रीघनश्यामजीने तथा रासमण्डलीके अन्य व्यक्तियोंने जो आलापचारी की तथा जिस लालित्यके साथ पदका गायन किया, उससे सारा वातावरण रागसे रञ्जित और अनुरागसे आप्लावित हो उठा। इस पदकी समाप्तिके समय एक बड़ा ही भावपूर्ण दृश्य देखनेको मिला। रासमण्डलीके श्रीश्रीजीस्वरूप और श्रीठाकुरस्वरूप भी वहीं उपस्थित थे। पदके अन्तमें ज्यों ही यह पंक्ति गायी गयी कि 'मेरो जनम सुफल पग परसनमें', त्यों ही श्रीठाकुरस्वरूपजी अपने स्थानसे उठे और परिक्रमा-पथमें आकर बाबाके श्रीचरणोंमें अपना मस्तक रख दिया। यह दृश्य इतना भावपूर्ण था कि क्या कहा जाये? इसके बाद गाया गया 'आज बन्यो है प्यारो गिरवरधारी'। यह पद-गान भी बड़ा सुन्दर रहा। इन तीन पदोंके गायनमें लगभग डेढ घंटे लग गये। बाबा डेढ़ घंटेतक एक स्थानपर लगातार खड़े रहे। परिक्रमा करनेकी सुधि नहीं रही। महाराजजीने परिक्रमा आरम्भ होनेके समय जो पुष्पमाला बाबाको पहनायी थी, वह पुष्प-गजरा आजानुलम्बित नहीं, अपितु वह तो आ-चरण-लम्बित था। जिस समय बाबाका शरीर पदोंके भावोंके अनुरूप

हिलता-डुलता था, उस समय उस सुदीर्घ आ-चरण-लम्बित पुष्प-गजरेका हिलना-डुलना बड़ा ही सुन्दर लगता था। बाबाको खड़े-खड़े डेढ़ घंटे हो चुके थे और अभी परिक्रमा करना शेष था। यह देखकर रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजीका मन कुछ आशंकित हो उठा कि इससे तो अगले अष्टयामलीला-कार्यक्रमको आरम्भ करनेमें बड़ा विलम्ब हो जायेगा। बाबा तो अपने भावमें निमग्न थे। बाबाको तो कुछ सुध-बुध थी नहीं। भावी विलम्बकी आशंकासे चिन्तित होकर श्रीश्रीरामजीने तीसरा पद पूरा होते ही 'कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल' संकीर्तन आरम्भ कर दिया, जो नियमतः सदा परिक्रमाके अन्तिम क्षणोंमें गाया जाता रहा है। इस संकीर्तनके आरम्भ होते ही बाबाको चेत हुआ। परिस्थितिकी सुधि हो आयी और फिर तो बाबाने लगभग दौड़ते हुए ही सारी परिक्रमा की। परिक्रमामें उपस्थित आज सभी लोग अत्यधिक उमंगमें थे, अतः आज संकीर्तन भी बहुत तुमुल स्वरमें हो रहा था। बाबाके आनन्दकी तो सीमा नहीं थी।

* * * * *

बउआ का महाप्रयाण

बाबाकी चरणाश्रित बहिनें सरोज और मुन्नीकी पूजनीया माताजीने ५ फरवरी, १९८४ रविवारको जिस भावमय स्थितिमें महाप्रयाण किया, उसे विस्मृत किया ही नहीं जा सकता। बहिन सरोज और मुन्नीकी पूजनीया माताजीका नाम तो था अम्बादेवीजी माथुर, परंतु वे हमलोगोंके मध्य 'बउआ' के नामसे जानी जाती थीं। कई माथुर जातीय परिवारोंमें माँको बउआ ही कहते हैं। लगभग नब्बे वर्षकी आयुवाली वृद्धा बउआ दस-बारह दिनोंसे रुग्ण चल रही थी। उसकी रुग्णताको देखकर कई लोग संदेह भी करते थे कि यह पका आम अब कहीं डालसे चू जानेवाला तो नहीं है। लोगोंका संदेह सत्य निकला, पर उसके अन्तिम तीन-चार दिनोंकी भावमयी स्थितिको देखकर सब आश्चर्य करने लगे! वैसे बउआने अपने जीवनमें साधना कम नहीं की है, फिर भी महाप्रयाणके समय भला किसकी ऐसी सुन्दर प्रेममयी स्थिति बन पाती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें कहा भी है कि मुनि लोग जन्म-जन्मतक यत्नपूर्वक साधना करते हैं, फिर भी जीवनके अन्तिम क्षणमें मुखसे भगवानका नाम

'राम' उच्चरित नहीं हो पाता। 'जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।।', पर बउआकी अद्भुत भाव-दशाने सभी उपस्थित लोगोंके मनमें यह विश्वास दृढ़ दिया कि भगवान हैं, भगवानका दर्शन होता है और भगवान प्रेमके अधीन हैं।

बहिन सरोज और मुन्नीके पूज्य पिता श्रीमाथुरजी एक कुशल चित्रकार थे। यह प्रायः देखा जाता है कि सच्चा कलाकार अपनी कला-प्रियताके अतिरेकमें न अपने शरीरकी भली प्रकार चिन्ता कर पाता है और न अपने जगतके व्यवहारको ठीक प्रकारसे निभा पाता है। यह बात श्रीमाथुरजीके सम्बन्धमें भी सच्ची थी। ऐसी परिस्थितिमें बउआपर घर-गृहस्थीकी सँभालका उत्तरदायित्व और अधिक आ गया और बउआने एक पतिव्रता नारीकी भाँति इसका सम्यक् प्रकारसे निर्वाह किया।

यह पूरा परिवार पूज्य श्रीनारायण स्वामीजीको गुरु मानता था। ये श्रीनारायण स्वामीजी वे ही हैं, जो केवल टाट धारण किया करते थे और जिनकी एक लघु पुस्तिका 'एक संतका अनुभव' गीताप्रेससे प्रकाशित है। अखण्ड मौन रहकर भगवन्नामका जप करनेसे टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराजको भगवान नारायणके दर्शन हुए थे। इस पुस्तिकामें उन्होंने स्वयं लिखा है – 'परम दयालु नारायणने इस दासपर कृपा करके नर्मदाके किनारे चान्दोद नामक स्थानमें दर्शन दिये थे। पहले छम-छमकी आवाज आयी। फिर विमान आया, जिसको चार पार्षदोंने उठा रखा था। साधन करनेसे इस दासको तीन वर्ष छः मास चौबीस दिनमें भगवानके दर्शन हुए थे।'

टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराज मौन एवं नामजपको अत्यधिक महत्त्व दिया करते थे। अपने गुरुदेवकी इस शिक्षाके अनुसार श्रीमाथुरजी प्रायः मध्य रात्रिके समय अपने आसनपर बैठकर नामजप और ध्यानकी साधना किया करते थे। बउआ प्रायः अपराह्न कालतक मौन रहा करती थी। उसे बच्चोंके लिये भोजन बनाना पड़ता था। जब बच्चे स्कूल चले जाते, तब उसके बाद बउआ अपने पूजा-पाठके नियमको पूरा करनेमें संलग्न होती और नित्य-नियमके पूरा होनेके बाद ही मौनका विसर्जन होता।

अयोध्याके एक संतके मुखसे बउआने सुन लिया कि

श्रीरामचरितमानसके १०८ नवाह्न पाठका नियम लेकर जो अखण्ड रूपसे पाठ करता है, उसे भगवानके दर्शन होते हैं। बउआने यह बात पकड़ ली और उसने मानसका नवाह्न पाठ आरम्भ कर दिया। तीन वर्षमें बउआने मानसके १०८ नवाह्न पाठ पूरे किये। उसी दिन मध्य रात्रिके समय भगवान श्रीसीतारामजी विमानसे पधारे। साथमें श्रीलखनलालजी भी थे। बउआके पूजा-पाठ-नैवेद्यादिकी तैयारी बहिन सरोज किया करती थी और उस दिन वह किसी कार्यसे रीवाँ नगर गयी हुई थी। विमानको देखते ही बउआ जोर-जोरसे पुकारने लगी – अरे, रामजी तो आ गये। विमान आ गया। सरोज तो है नहीं, कौन सारी तैयारी करेगा? भगवान तो आ गये। इनका स्वागत-सत्कार कैसे हो?

एक बार बउआने एक स्थानपर श्रीमद्भागवतकी कथा सुनी और कथा बड़ी प्यारी लगी। बस, उसने श्रीमद्भागवतका पाठ आरम्भ कर दिया। बउआ केवल अर्थ पढ़ा करती थी, उसे संस्कृत तो आती नहीं थी। उसके मनमें कोई संकल्प नहीं था कि इतने दिनकी अवधिमें पाठ पूर्ण करना है। उसकी पर भागवतजीका पाठ अच्छा लगता था। दिनमें सूर्यके प्रकाशमें और रातमें लालटेनकी रोशनीमें भागवत पढ़ती रहती थी। चाव-चावमें बउआ सारे भागवतका पाठ कर गयी। यह भी क्या संयोगकी बात है कि जब दिनोंकी गणना की गयी तो पता चला कि सम्पूर्ण भागवतका पाठ सात दिनमें पूरा हो गया है। अनजानेमें ही उसके द्वारा श्रीमद्भागवत- सप्ताहका एक पारायण हो गया।

बउआने एक बार मानसके सुन्दरकाण्डका पाठ आरम्भ किया। उसने सुन रखा था कि भगवान श्रीरामकी कथाको सुननेके लिये श्रीहनुमानजी महाराज पधारा करते हैं। इस सुनी हुई बातके आधारपर बउआने पाठ आरम्भ करनेके पहले एक लाल आसन श्रीहनुमानजीके विराजनेके लिये बिछाया और श्रीहनुमानजीका आह्वान करते हुए उसने कहा –

तुलसी कृत रामायण कथा कहूँ अनुसार।
आसन लीजै परम हित आइये पवनकुमार।।

श्रीहनुमानजीके आह्वानका यह दोहा ज्यों ही पूरा हुआ, त्यों ही विशालकाय श्रीहनुमानजी आकर उस आसनपर विराज गये। श्रीहनुमानजीको देखकर बउआ अत्यधिक भयभीत हो गयी और उसके मुखसे चीख निकल

गयी। इस पाठके बादसे फिर कभी बउआने श्रीहनुमानजीका आह्वान नहीं किया। श्रीहनुमानजीके आह्वानकी बात आनेपर बउआ कहा करती थी कि मुझे तो उनसे बड़ा डर लगता है।

बउआने श्रीप्रयागराजमें कई कल्पवास किये हैं। कल्पवास करनेवालेको सम्पूर्ण माघ मासभर प्रयागराजमें गंगाजीके किनारे रहना पड़ता है तथा प्रतिदिन त्रिवेणीपर संगम-स्नान करना पड़ता है। माघ मासके घोर शीतमें यह कल्पवास एक कठोर तप ही है। जब बउआ अन्य-अन्य नगरोंमें रहती थी, तब वह कल्पवासके लिये उस-उस नगरसे कई बार प्रयाग आयी और प्रयागमें रहते समय तो वह अपने घरसे माघ मासमें प्रतिदिन सपरिवार संगम-स्नानके लिये त्रिवेणीपर जाया करती थी। प्रतिदिन सपरिवार आनेमें बड़ी परेशानी हुआ करती थी। एक दिन जब परेशानी सीमाको पार करने लगी तो बउआ झुँझला उठी और उलहना देती हुई भगवती गंगासे बोली – इतनी परेशानी झेलनी मेरे बसकी बात नहीं है। गंगा परमेश्वरी! अब तू मेरी बात सुन ले। अब कलसे मैं नहीं आऊँगी।

इस उपालम्भके तुरंत थोड़ी देर बाद ही किसी विचित्र विधानसे संगमके एकदम निकट एक बहुत सुन्दर स्वच्छ और विशाल तम्बूमें सपरिवार रहनेकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था अयाचित रूपसे हो गयी।

टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराजके महाप्रयाणके बाद बउआके मनमें बड़ी व्यथा हुई कि कोई सच्चा संत मिलना चाहिये, जिसके आश्रयमें रहा जा सके। सच्चे संतका आश्रय किलेकी दीवालके समान है। सच्चे संतकी प्राप्तिके लिये बउआ भगवानसे प्रार्थना करने लगी। फिर भगवत्कृपासे श्रीजजसाहब (परमादरणीय श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) के द्वारा बउआको गीतावाटिकाके बाबूजी तथा बाबाका परिचय मिला और क्रमशः सारा परिवार ही इन दो संतोंके अति निकट सम्पर्कमें आ गया। बाबूजीका परिचय तो बउआको पहलेसे ही था। सन् १९३६ ई. में जब परम पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीकी देख-रेखमें एक वर्षका अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन गीतावाटिकामें हुआ था, उस समय बउआ फैजाबादमें रहती थी। तब बउआके सहोदर भाई गोरखपुरमें डिप्टी कलक्टर थे। अपने सहोदर भाईसे अखण्ड हरिनाम संकीर्तनका समाचार पाकर बउआ फैजाबादसे गोरखपुर आयी थी और अपने भाईके पास ठहरी थी। बउआ प्रतिदिन अपने भाईके बँगलेसे पूर्वाह्न कालमें गीतावाटिका आती और अपराह्न कालमें लौट जाती। इस प्रकार बाबूजीके संत-जीवनकी जानकारी तो बउआको

थी ही, पर गीतावाटिकाके इन दोनों संतोंके प्रति श्रद्धा और समर्पणका भाव श्रीजजसाहबके माध्यमसे ही पुष्ट हुआ।

७ अप्रैल १९६७ को जब बाबाने मौन लिया था, तब बाबाके दर्शनार्थ बउआ सपरिवार प्रयागसे गोरखपुर आयी थी। उस दिन एक बड़ी अद्‌भुत और विशेष घटना घटित हुई। ७ अप्रैलको दोपहरके बाद जब बाबा श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगा रहे थे, उस समयकी बात है। परिक्रमाके समय बउआ भी उपस्थित थी। बउआको दिखलायी दिया कि बाबाने एक लहँगा पहन रखा है। उस लहँगेकी किनारी बड़ी चौड़ी और बहुत चमकीली है। उस चौड़ी-चमकीली किनारीसे दिव्य प्रकाशकी किरणें निकल रही हैं। प्रकाशकी किरणोंसे सारा परिक्रमा-पथ ज्योतित हो रहा है। लहँगेकी चमकीली किनारीसे निरन्तर निकलनेवाली सुनहरी किरणें चारों ओर फैली हुई हैं। वह लहँगा बड़ा लम्बा है। बउआको ऐसा लगा कि कहीं बाबा उलझकर गिर न जायें। बाबा तो अपने संन्यास धर्मके अनुसार सहज स्वाभाविक गैरिक वेषमें ही थे, पर किसी अचिन्त्य सौभाग्यके फलस्वरूप भावराज्यसे सम्बन्धित वास्तविकताकी किंचित् झाँकी सत्त्व-सम्पन्न-हृदयवाली बउआको हो गयी। जो भी हो, इस दिव्य लोकोत्तर अनुभूतिके कारण बउआने मन-ही-मन समाधान कर लिया कि ये बाबा लहँगा पहनते हैं, शायद इसीलिये लोग इन्हें राधा बाबा कहते हैं। राधा बाबा नामका रहस्य अपनी खुली आँखोंसे देखकर बउआका मन गहरी श्रद्धासे भर गया।

सन् १९७२ ई. में पतिदेव श्रीमाथुरजीके दिवंगत हो जानेके बाद बउआ गीतावाटिकामें रहने लगी। बाबाकी आज्ञा मिलनेके बाद सन् १९७२ ई. की अक्षयतीज तिथिके दिन बउआ गीतावाटिका आयी और अपने अन्तिम श्वासतक यहीं रही। सबसे छोटी सुपुत्री मुन्नी तो बहुत पहलेसे ही बाबाके चरणाश्रित होकर गीतावाटिकामें रह रही थी।

बउआका बाबापर बड़ा ही विश्वास था, इसे शुद्ध हृदयका सहज विश्वास कहना चाहिये। एक बार बउआके पैरके तलवेमें गोखरू (CORN) हो गया। गोखरूकी चुभनके कारण चलनेमें बड़ा कष्ट होता था। जब इसके बारेमें बउआने बाबाको बतलाया तो बाबाने विनोद करते हुए कहा कि मैं तुमको एक मन्त्र बतलाता हूँ। 'जन्तर मन्तर घोंघा सारी। बुढ़िया खइलस लोन सुपारी॥' बस, इस मन्त्रको तीन बार पढ़कर तीन अञ्जलि जल पी लिया करो। इसे सुनकर बउआ बड़ी प्रसन्न हुई। बाबाने तो विनोद किया था, परंतु बउआके मनने इसे एक सत्यके रूपमें स्वीकार कर लिया। अब बउआ

प्रतिदिन इस मन्त्रको पढ़कर जल पीने लगी और आश्चर्यकी बात है कि बउआके पैरका गोखरू कुछ दिन बाद समाप्त हो गया।

सबेरे उठते ही बउआका दैनिक लीला-चिन्तन-क्रम आरम्भ हो जाया करता था। लीला-चिन्तन निम्नलिखित पंक्तियोंसे आरम्भ होता था –

उठो मेरे लाल मदन गोपाल, आये तेरे ग्वाल बुलावन को।
चुटिया चुपड़ी दधि माखन सों, बंशी लो शंख बजावन को।
बृंदावन जाय आनंद करो, लकुटी ले गऊ चरावन को।

लीला-चिन्तनके कारण व्यस्त रहनेवाली बउआ कई बार मुन्नीसे कहा करती थी – अपने इन सब कामोंसे मुझे फुरसत कहाँ मिलती है?

बउआ ढोलक बजानेमें बड़ी माहिर थी। वह ढोलक ऐसा बजाती थी मानो तबलेपर ठेका दिया जा रहा हो। बउआको पान खानेका शौक था। वृन्दावनसे पूज्य महाराजजी जब गीतावाटिका पधारते थे, तब बउआ उनको पान बीड़ी अवश्य दिया करती थी। बाबाने भी बउआसे माँग करके पान बीड़ी कई बार आरोगी है। बउआ एक बड़ा सुन्दर तमोलिनवाला पद भावपूर्वक गाया करती थी। इस पदमें जनकपुरकी तमोलिन दूल्हा श्रीरामसे पान बीड़ी आरोगनेके लिये आग्रह कर रही है। इस पदको बाबा कई बार बउआसे परिक्रमाके समय सुना करते थे। बउआके मुखसे यह पद बड़ा अच्छा लगता था। तमोलिनवाला पद इस प्रकार है –

खाते जाना गिलोरी तमोलिन खड़ी।
पड़ा है केवड़ा कत्थेसे महक आती है,
गिलोरी मेरी बड़ी दूर दूर जाती है।
तमोलिन हूँ मैं जनकपुर की नाम मोती है,
तुम्हारी जानकी मेरा ही पान खाती है।
पड़ी दोनों इलायची छोटी बड़ी।
खाते जाना गिलोरी तमोलिन खड़ी॥

नब्बे वर्षकी आयु हो जानेसे अति वृद्धावस्थाके कारण बउआका शरीर काफी कमजोर हो गया था और दुर्बल बउआ प्रायः खाटपर चुपचाप पड़ी रहती थी। जीवनके अन्तिम दिनोंमें वह कुल पन्द्रह-सोलह दिन बीमार रही होगी। बुधवार पहली फरवरीके दिनसे बउआकी स्थितिमें परिवर्तन आया। इस दिन शामको रुग्ण बउआ खाटपर लेटी-लेटी गाने लगी और उसके गायनके

द्वारा ही उसकी भाव-दशाका परिचय मिलने लगा। बउआने एक गीत गाया –

जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।
मेरा दिल हो चुका है, जिगर हो चुका है।।

गाते समय लय-तालमें चूक नहीं होती थी। धीरे-धीरे बात फैलने लगी कि बउआ इतनी बीमार है कि सम्भवतः उसके चले जानेकी सम्भावना है, इसके बाद भी वह मस्त होकर लय-ताल सहित पद गाती है। ज्यों-ज्यों यह बात फैलने लगी, त्यों-त्यों लोग अधिकाधिक संख्यामें मिलने-देखनेके लिये बउआके पास आने लगे। बउआने अपने पदमें दो पंक्तियाँ और जोड़ दी

जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।
मेरा दिल हो चुका है, जिगर हो चुका है।।
मेरा मन हो चुका है, मेरा तन हो चुका है।
मेरा प्राण हो चुका है प्राण का प्राण हो चुका है।।

शुक्रवार, ३ फरवरीकी शामको कई लोग बउआके पास बैठे-बैठे उसके गायनको सुन रहे थे और उसकी मस्तीको देख रहे थे। बउआ तो अपनी मस्तीमें गा रही थी, तभी एकने पूछा – क्यों बउआ! वह तुमको दिखलायी देता है क्या?

बउआने चट कहा – वह मेरे सामने खड़ा है न!

फिर पूछा गया –वह अकेला है या श्रीराधाजी भी उसके साथमें हैं?

बउआने कहा – नहीं, राधाजी नहीं हैं। वह अकेला ही है।

पुनः जिज्ञासा हुई – वह तुमसे बात करता है या नहीं?

बउआने बताया – नहीं, बात नहीं करता। वह बात करते शर्माता है। उसे लाज लगती है।

बउआको छेड़नेकी दृष्टिसे फिर कहा गया – बउआ! वह तुमसे बात नहीं करता तो तुम उसके कान पकड़ो।

इतना कहते ही अपना हाथ फैलाकर अँगुलियोंको मटकीले ढंगसे घुमाते हुए बउआने कहा – अरे, वह तो बड़ा प्यारा है, अति ही प्यारा है। वह बारह वर्षका इतना प्यारा लगता है कि क्या कहूँ?

बउआ यह सब इतने सहज ढंगसे मस्तीभरे स्वरमें कह रही थी कि सबका मन रीझता चला जा रहा था। तभी एकने अनुरोध किया अथवा यों कह लीजिये कि बउआसे प्यारभरा आग्रह किया – बउआ! हमको भी दर्शन करा दो।

बउआने झिड़कनकी पुट देते हुए कहा – क्या तुमको दिखलायी नहीं देता कि वह सामने खड़ा है? वह सामने ही तो है। तुम देख लो।

इतना बउआ द्वारा कहा जाना था कि वह 'जसोदाका कुँवर' बउआके सामनेसे तिरोहित हो गया। उसका तिरोहित होना था कि बउआ चिल्ला पड़ी और उच्च स्वरमें कहने लगी – अरे, वह तो चला गया। प्यारे! प्यारे! तुम कहाँ चले गये? प्यारे! जल्दी आना।

स्वरका तीखापन तथा निर्लज्ज पुकार वस्तुतः इस बातको प्रमाणित कर रही थी कि उसके तिरोहित हो जानेसे कितनी व्यथा बउआके हृदयमें हो रही थी। पुकारकी कातरताने बाध्य कर दिया 'जसोदाके कुँवर' को पुनः सामने आ जानेके लिये।

बउआके सुपुत्र माथुरसाहबने एक बार बउआसे पूछा – तुम इस समय क्या सोच रही हो?

बउआने तुरंत कहा – भगवानको।

माथुरसाहब इसे सुनकर प्रसन्नतामें हँस पड़े। इन दो-तीन दिनोंमें बउआने कई बार पूज्य श्रीमहाराजजी (टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराज) को भी याद किया। बउआ जब-तब अपने पदको गाती ही रहती थी – 'जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।'

इसे सुनकर बहिन मुन्नीने बउआसे पूछा – यह भजन तो मैंने तुम्हारे मुँहसे कभी नहीं सुना। यह तुम्हारा पुराना भजन तो है नहीं। फिर यह भजन कहाँसे आया?

बउआने कहा – यह भजन मेरे दिलमेंसे निकला है, दिलके भीतरसे निकला है। वह मेरे दिलमें ही तो बैठा है। वह हर वक्त मेरे साथ ही रहता है और वही मेरी सँभाल हमेशा करता रहता है।

रविवार, ५ फरवरीके मध्याह्न कालमें बउआने महाप्रयाण किया। इसी दिन सबेरे चोपड़ाजी बउआको देखने और सँभालनेके लिये गये। बउआने अपने पदमें दो पंक्तियाँ और जोड़ दी थी और उसीको

गा रही थी –

जसोदा का कुँवर मुझे दरस दे गया है।
मुझे दरस दे गया है, मेरा दर्द ले गया है।
मेरा दर्द ले गया है, मेरा दुःख ले गया है।
जसोदा का कुँवर मुझे दरस दे गया है।

चोपड़ाजी बउआकी मस्तीपर बलिहारी जा रहे थे। तभी बउआने बड़े जोरसे पुकारा – राधा बाबा, राधा बाबा।

चोपड़ाजी इस विचित्र स्थितिको अवाक् हुए थोड़ी देरतक देखते रहे, फिर बउआसे पूछा – क्या बाबाको बुला लाऊँ?

बउआने कहा – जाओ। बाबासे कह देना कि बउआने बुलवाया है।

उधर चोपड़ाजी बाबाको बुलानेके लिये गये और इधर बउआने एक नया ही गीत गाना आरम्भ कर दिया–

मिलेगी जो रसिकोंकी जूठन प्रसादी
वही जीविका का सहारा करेंगे।

चोपड़ाजीसे सूचना पाकर बाबा बउआके पास आये। बाबाके पहुँचते ही बउआने कहा – बाबा! राम-राम, राम-राम, राम-राम।

बाबा बउआके सामने कुर्सीपर बैठ गये और बाबाके बैठते ही बउआने वही गीत गाना आरम्भ कर दिया, जो वह बाबाके आनेसे पहले गा रही थी –

सदा श्याम श्यामा पुकारा करेंगे
नवल रूप निश-दिन निहारा करेंगे।
मिलेगी जो रसिकों की जूठन प्रसादी
वही जीविका का सहारा करेंगे।।

अभीतक तीन-चार दिनसे बाबा तो दूसरोंके मुखसे बउआकी भाव-दशाके बारेमें विविध वृत्त सुना करते थे, पर अब वे स्वयं सुन रहे थे और इन पंक्तियोंको सुनते ही बाबाकी आँखें भर आयीं। फिर उन्मुक्त स्वरमें बाबाके मुखसे निकल गया – वाह! वाह! बउआ, तुम वस्तुतः दर्शनीय हो, वन्दनीय हो।

इसके बाद बाबाने बउआसे पूछा – बउआ! क्या हाल है?

बउआने कहा – बाबा! बड़ी कृपा है, बड़ी कृपा है, बहुत कृपा है।

बस, आनन्द ही आनन्द है। आनन्द बरस रहा है। अपार आनन्द है।

बाबाने फिर पूछा – क्यों बउआ! क्या कोई कष्ट है?

बउआने बताया – कोई कष्ट नहीं, कोई तकलीफ नहीं। तनिक भी कष्ट नहीं। बस, आनन्द ही आनन्द है।

तभी मुन्नीने बउआसे कहा – अपना पद बाबाको सुनाओगी क्या?

इतना कहते ही बउआ गाने लगी – 'जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।'

इन तीन-चार दिनोंमें उसने जितनी भी पंक्तियाँ जोड़ी थी, उन सबको गा-गाकर बउआने सुना दिया। बउआ अत्यधिक लय-ताल पूर्वक गा रही थी तथा अपने हाथके संचालन और भृकुटीके नर्तनद्वारा भाव भी बतलाती जा रही थी। वह हर पंक्ति बड़े ही लहजे और लटकके साथ गा रही थी। एक बार बउआने अपना हाथ ऐसा फैलाया मानो वह हाथ बाबाका स्पर्श कर लेगा। तुरंत बाबाने अपनी कुर्सी पीछे हटायी।

बाबाने पूछा – क्या ढोलक बजाओगी?

बउआने कहा – अब ढोलक बजानेमें क्या रखा है।

फिर बाबाने 'तमोलिन'वाले पदकी एक पंक्ति सुना दी। इसे सुनना था कि बउआने वह तमोलिनवाला पद गाना आरम्भ कर दिया।

बाबाने पूछा – क्या तुमको दर्शन हो रहे हैं?

बउआने कहा – हाँ, हाँ। वह मेरे सामने ही खड़ा है। बाबा वह इतना सुन्दर है, इतना सुन्दर है कि क्या बताऊँ? ऐसी सुन्दरता तो मैंने कहीं देखी ही नहीं। बड़ा ही सुन्दर है वह! और यह मौसम भी कितना सुहावना है?

इस समय तो सचमुच घोर शीत पड़ रहा था। बाबाने उपस्थित लोगोंको समझानेके लिये कहा – इस समय बउआ यहाँ तो है नहीं। इसे तो इस समय 'उसका' दर्शन, 'वहाँ'का दृश्य और 'वहाँ' का ही मौसम अनुभवमें आ रहा है।

बाबाको बैठे हुए लगभग एक घंटा हो गया था। बाबाने मुन्नीसे कहा – तुम बउआसे पूछो कि बाबा जायें क्या? बाबाको स्नानादिसे निवृत्त होना है।

मुन्नीके पूछते ही बउआने कहा – जाओ बाबा! जाओ। जरूर जाओ।

बाबाने मनुहारभरी वाणीमें कहा – तुम कहो तो मैं बैठा रहूँ। तुम मेरी माँ हो न!

बउआने प्यार सहित कहा – तुम जाओ। तुम थक जाओगे। तुम जरूर जाओ!

बाबा बउआके पाससे चले आये। आते-आते बहिन सरोज और मुन्नीसे कहा – बउआको कोई दवा मत देना। बउआको किसी प्रकारकी सांसारिक स्मृति भी मत दिलाना। अब बउआको सँभालनेकी आवश्यकता नहीं है। नन्दनन्दन स्वयं इसकी सँभाल कर रहे हैं।

बाबाके चले आनेके बाद बउआको सूजी तथा दूधका पतला आहार दिया गया। बउआने अच्छी प्रकारसे आहार ग्रहण किया। कुछ माताएँ-बहिनें बउआके पास बैठी थीं। बउआने उनसे हरिनाम संकीर्तन करवाया। इसके बाद फिर वह गाने लगी –

तुम्हें श्याम वंशी बजानी पड़ेगी।
लगी मेरे दिलकी बुझानी पड़ेगी।।

बउआके अधरोंका यह अन्तिम गीत था। उसी समय बउआके ऊर्ध्व श्वास चलने लगे। बाबाको तुरंत सूचना दी गयी। बाबा जल्दी-जल्दी आये। बउआको भूमिपर लिटा दिया गया था। बाबाके समक्ष अन्तिम बार हाथका कम्पन हुआ और बाबाके सामने ही बउआ अपने 'जसोदा के कुँवर'के पास चली गयी।

शव-यात्राके पूर्व कुछ बहिनें जब शवको भली प्रकारसे स्नान करा चुकीं तो अन्तमें बाबाने स्वयं स्नान करवाया। एक व्यक्ति शवको पकड़े रहा। बाबाने ऋषिकेशवाला गंगाजल शवके शीशपर डाला और अपने हाथसे मस्तक मला।

संन्यास लेनेके बाद बाबाके जीवनका यह दूसरा प्रसंग है, जब कि किसी स्त्रीके शवको उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे स्नान करवाया हो। प्रथम प्रसंग है कमली मैयाका, जब बाबाने अपने हाथसे उसके शवको स्नान करवाया था। उसके बाद यह द्वितीय प्रसंग है। स्नान कराते समय बैठे हुए शवको देखकर बाबाने कहा कि ऐसा लगता है मानो बउआ

समाधिस्थ हो। जब शवको अर्थीपर विराजित कर दिया गया तो बाबाने उसका फूलोंसे शृङ्गार किया, फिर अर्थीकी तीन परिक्रमा देकर अन्तिम प्रणाम किया और अन्तमें बाबाने अर्थीको कन्धा दिया।

बउआके निधनपर अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए बाबाने कहा – मृत्यु हो तो ऐसी हो। महाप्रस्थानके समय बउआ एक सिद्ध संतकी कोटिमें स्थित थी। उसने योगीन्द्र-मुनीन्द्रकी-सी गति पायी। वह सीधे श्रीकृष्णके धाम गयी। उसके लिये किसी प्रकारके श्राद्धादि कर्मकाण्डकी आवश्यकता है नहीं, फिर भी परम्पराके निर्वाहके लिये यह सब अवश्य करना चाहिये।

* * * * *

अटपटा उत्तर : अनोखी बात

गोरखपुरके भाई पुरुषोत्तमदासजी सिंहानियाका बाबूजीसे बड़ी निकटताका सम्बन्ध रहा है। पुरुषोत्तमजीके प्रति बाबूजीकी बड़ी आत्मीयता रही है। इनके सारे परिवारने बाबूजीको सदा गहरी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा है। इनके पूरे परिवारको एक साधु परिवार कहना चाहिये। श्रीपुरुषोत्तमजीके मनकी आन्तरिक माँग रही कि मुझे भगवद्दर्शन हो, एतदर्थ उनके भजन-परायण जीवनमें प्रायः जप-ध्यान पूजा-पाठका क्रम चलता ही रहता था। सत्संग और स्वाध्याय तो मानो इनका व्यसन था। मैंने न कभी देखा था और न कभी उन्होंने मुझसे बतलाया था, पर मैं ऐसा अनुमान करता हूँ कि एकान्तके क्षणोंमें भगवद्दर्शनके लिये इनके दो नेत्रोंसे गंगा-यमुनाकी धारा अवश्य बही होगी।

एक बार पुरुषोत्तमजी बाबाके पास बैठे हुए थे। भगवद्दर्शनोत्सुक भक्तके समर्पित जीवनका स्वरूप क्या हो, यही वार्तालापका विषय था। बात करते-करते पुरुषोत्तमजीने बड़ी उत्सुकता पूर्वक बाबासे एक प्रश्न पूछा – कभी तो आप भगवान श्रीकृष्णके लिये रोते ही होंगे?

उनका पूछना स्वाभाविक था। भगवद्दर्शनकी लालसा जिसके मनमें होती है, उसकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें चूती ही रहती हैं। गिरधर गोपालके दर्शनकी तीव्राभिलाषामें पगली मीराबाईके अगणित पदोंकी अगणित पंक्तियाँ आँसुओंसे भीगी हुई हैं। इसी प्रकार आँसुओंसे भीगे हुए शब्दोंके माध्यमसे श्रीपुरुषोत्तमजीने यह जिज्ञासा बाबाके सामने रखी थी।

बाबाने ज्यों ही इस जिज्ञासाको सुना, त्यों ही उन्होंने उत्तर दिया – अरे, मैं उनके लिये नहीं रोता, बल्कि वे ही मेरे लिये रोते हैं।

यह तो बड़ा अटपटा उत्तर था। ऐसे उत्तरको सुननेके लिये पुरुषोत्तमजीका मन बिल्कुल तैयार नहीं था। ऐसे उत्तरकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। बाबासे प्राप्त उत्तरमें जो तथ्य व्यक्त था, वह पुरुषोत्तमजीके गले उतर नहीं पाया। उनके मनने इस उत्तरको स्वीकार नहीं किया, पर अपने संदेहके निवारणके लिये उन्होंने उलटकर फिर कोई अन्य प्रश्न भी नहीं किया। अधिक बोलना वाचालता होगी, यही सोचकर पुरुषोत्तमजी चुप ही रहे।

थोड़ी देर बाद बाबासे पारस्परिक चर्चाका जब विश्राम हो गया, तब पुरुषोत्तमजी मेरे पास कमरेमें आये और बाबासे हुए प्रश्नोत्तरका विवरण मुझे सुनाने लगे। बाबाके उत्तरको सुनकर मेरा मन झूम उठा। ऐसे भावपूर्ण उत्तरकी सराहनाके लिये मेरे पास कोई शब्द नहीं था।

बाबाने उस उत्तरमें अपने जीवनके अति गम्भीर रहस्यको अति सरल शब्दोंमें कह दिया था। सचमुच, संतकी वाणीकी गहराईको समझना बड़ा कठिन है। संत अपने जीवनके रहस्योंको कुछ खोलना चाहें, तभी दूसरोंको कुछ आभास मिल पाता है।

बहुत समय पहले एक बार ऐकान्तिक चर्चाके मध्य बाबाने बतलाया था कि नित्य-निकुञ्जेश्वरी परमाह्लादिनी कृष्णप्रिया श्रीराधाके दिव्य रसराज्यमें मेरा सर्वप्रथम प्रवेश विशाखा भावसे हुआ था। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानीकी आठ सखियाँ हैं और इन अष्ट सखियोंके आठ भाव हैं। अष्ट सखियोंके मध्य श्रीविशाखाजी स्वाधीनभर्तृका भावकी मूर्तिमान स्वरूप हैं। जिस प्रियतमाके अधीन होकर प्रियतम निकुञ्जमें निवास करते हैं, उसे स्वाधीनभर्तृका प्रियतमा कहते हैं। जहाँ स्वाधीनभर्तृका भावका साबल्य हो, वहाँ प्रियतमाके प्रति प्रियतमके द्वारा होनेवाले अनुनय-विनयका आधिक्य रहता है। स्वाधीनभर्तृका भावका यही तथ्य तो एक वाक्यमें बाबा श्रीपुरुषोत्तमजीके समक्ष बोल गये थे। वे बोल अवश्य गये, पर उन्होंने अपने कथनका मर्मोद्घाटन नहीं किया और इसके फलस्वरूप उस समय वह गम्भीर तथ्य अव्यक्त ही रह गया।

इस समय एक प्रसंगकी स्मृति उभर रही है। इससे थोड़ा विषयान्तर

तो होगा, परन्तु यह प्रसंग मननीय है। श्रीरामचरितमानसके सुविख्यात कथा-वाचक पूज्य श्रीमोरारी बापूने यह बात अपने मानस-प्रवचनमें कही थी। पूज्य बापूने कहा कि विश्वके हर धर्मने एक-से-एक उत्तम साधु दिये हैं, पर संत एक मात्र हिन्दू धर्मने दिये हैं।

उनके इस कथनने सारे श्रोताओंको चौंका दिया कि पूज्य बापू कैसी अनोखी बात कह रहे हैं। पूज्य बापूने अपने कथनका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि भगवानके समक्ष जो अपने अभावके लिये रोये, जो अपने पापोंके लिये रोये, जो अपने अपराधोंको क्षमा करवानेके लिये रोये, जो अपने दैन्य-दुःखको दूर करनेके लिये रोये, इस या उस हेतुसे भगवानके सामने रोदन करनेवाले सच्चे साधु विश्वके प्रत्येक धर्ममें उत्पन्न हुए हैं और ऐसे सच्चे साधु हिन्दू धर्ममें भी हुए हैं, पर संत तो केवल हिन्दू धर्मने दिये हैं। 'श्रीहनुमान चालीसा' में आया है 'साधु संतके तुम रखवारे'। 'साधु संत' शब्दका प्रयोग करके गोस्वामी तुलसीदासजीने स्पष्ट संकेत दिया है कि इन दोनोंमें अन्तर है। यदि दोनों शब्द समानार्थक होते तो ऐसा प्रयोग गोस्वामीजी द्वारा नहीं होता। अब प्रश्न उठता है कि साधु और संतमें अन्तर क्या है। साधु है वह, जो भगवानके सामने रोये और संत है वह, जिसके लिये भगवान रोयें। जिसके लिये भगवान रोयें, ऐसा प्रेमी संत विश्व-वन्द्य होता है। श्रीरामचरितमानसमें आया है —

भरत सरिसको राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही।।

सारा विश्व भगवान रामका जप करता है और भगवान राम श्रीभरतजीका जप करते हैं। लोग भगवान श्रीकृष्णकी चरणरज चाहते हैं और भगवान श्रीकृष्ण व्रज-गोपियोंकी चरणरज चाहते हैं।

बाबासे हुए प्रश्नोत्तरका विवरण सुनाकर श्रीपुरुषोत्तमजी कहने लगे कि बाबाकी बात समझमें नहीं आयी। भले उनकी समझमें बात न आयी हो, बाबा द्वारा कथित उत्तरको सुनकर मेरा मन बह पड़ा। बाबाने श्रीपुरुषोत्तमजीको उत्तर स्वरूप यही कहा था कि 'अरे, मैं उनके लिये नहीं रोता, बल्कि वे ही मेरे लिये रोते हैं'। बाबा द्वारा दिये गये इस उत्तरको सुनकर मुझे पूज्य श्रीबापूके द्वारा कथित इस प्रसंगकी स्मृति हो आयी।

* * * * *

श्रीडोंगरे महाराजजी की श्रीभागवत-कथा

गीतावाटिकामें लाखों रुपयोंकी लागतसे एक विशाल मन्दिरका निर्माण हुआ है। यह सारा निर्माण भारतके विख्यात मन्दिर-निर्माण-कला-विशेषज्ञ श्रीसोमपुराजीकी देख-रेखमें नागर शैलीके अनुसार हुआ है। मन्दिरमें प्रतिष्ठित किये जानेवाले भगवद्विग्रह जयपुरसे आये हैं। श्रीराधाकृष्ण, श्रीसीताराम, श्रीपार्वतीशंकर आदिके अनेक विग्रहोंकी प्रतिष्ठा इसी वर्ष मन्दिरमें होगी। प्राण-प्रतिष्ठाके अवसरपर भागवत-कथा जैसा कोई सुन्दर एवं भावपूर्ण आयोजन अवश्य होना चाहिये, ऐसी भावना होनेके बाद भी अपनी विविध सीमाओंको देखते हुए आयोजनको बहुत विशाल रूपमें करने-करवानेकी कल्पना हमलोगोंके मनमें नहीं थी। सीमित सामर्थ्यको देखते हुए हमलोगोंकी भावना थी उत्सवको संक्षिप्त रूपमें मनानेकी, किन्तु सर्व-समर्थ प्रभुकी प्रेरणासे सीमातीत रूपवाले अति विशाल उत्सवका आयोजन निश्चित हो गया। भगवानने कितना सुन्दर संयोग संघटित कर दिया कि प्राण-प्रतिष्ठाके अवसरपर श्रीमद्भागवत-कथा कहनेके लिये भारतके महान संत पूज्यपाद श्रीडोंगरेजी महाराजका गीतावाटिकामें शुभागमन हुआ।

८ फरवरी१९८५, शुक्रवारसे १७ फरवरी, रविवारतक श्रीडोंगरेजी महाराजने गीतावाटिकाके प्रांगणमें श्रीमद्भागवतकी कथा कही। प्रभुकी कृपासे, संतोंके आशीर्वादसे, स्वजनोंके उत्साहसे, प्रशासनके सहयोगसे एवं कार्यकर्ताओंकी तत्परतासे यह विशद आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

कथाके आयोजनको पूर्व-निश्चित करनेमें बाधाएँ कम नहीं आयीं। कथा हेतु विशाल पंडालका निर्माण, आनेवाले अतिथियोंके आवास एवं भोजनका प्रबन्ध, व्यय-भारका आधिक्य आदि-आदि प्रश्नोंको लेकर हमलोग इधर सचिन्त हो उठते थे तो उधर श्रीडोंगरेजी महाराजकी विवशता थी प्रदत्त आश्वासनोंके कारण। कई मास पूर्व उनका कार्यक्रम निर्धारित हो चुका था कि कब-कब कहाँ-कहाँ भागवत-कथा होगी। जिन तिथियोंमें भागवत-कथा गीतावाटिकामें हुई, वे तिथियाँ गया-धामके लिये

निर्धारित की जा चुकी थीं। बाधाएँ जो भी हों, उन्हींके बीचमेंसे मार्ग निकला। प्रभु-कृपासे सारी बाधाएँ दूर हो गयीं और यह निश्चित हो गया कि गीतावाटिकामें भागवत-कथा ८ फरवरीसे १७ फरवरीतक होगी। सच पूछा जाये तो गीतावाटिकामें कथाके आयोजनको प्रमुखता प्रदान करनेका श्रेय श्रीडोंगरेजी महाराजको ही है।

श्रीडोंगरेजी महाराजके मनमें एक अभिलाषा थी, पर वह थी सुगुप्त। उनकी अभिलाषा थी एक बार गीतावाटिका पधारनेकी। जिन महान रस-सिद्ध संत श्रीपोद्दारजीकी निष्ठा एवं कर्मठताके फलस्वरूप वर्तमान युगकी घोर विषम परिस्थितिमें भगवद्भक्तिकी प्रबल प्रवाहिणी बह चली, भगवन्नामके जप एवं कीर्तनका चतुर्दिक् प्रचार हुआ और श्रेष्ठ भक्ति-साहित्यका विपुल प्रकाशन हुआ, उन परम भागवत श्रीपोद्दारजीकी सौम्य-स्वभावा जीवन-संगिनी, जो वत्सलताकी मूर्ति होनेके कारण पूज्या माँके रूपमें समादृत हैं तथा उनके नित्य सहचर बाबा, जो रसिकताके साक्षात् स्वरूप होनेके कारण राधा बाबाके रूपमें विख्यात हैं, ये दोनों विभूतियाँ गीतावाटिकामें अभी विराज रही हैं, क्यों न उनके दर्शनका लाभ प्राप्त किया जाये? बस, इसी भावनासे श्रीडोंगरेजी महाराजके मनमें एक प्रच्छन्न अभिलाषा थी गीतावाटिका पधारनेकी। पधारनेके लिये भागवत-कथाके आयोजनसे श्रेष्ठ निमित्त और क्या हो सकता था?

भागवत-कथाकी विशद व्यवस्थाके प्रश्नको लेकर हमलोग कुछ घबराये और कुछ हिचकिचाये भी। आयोजनकी विशालताको सोचकर हमलोग सफलताके बारेमें कुछ सशंकित हो रहे थे। व्यवस्थापकत्व और कर्तापनके अहंकारमें हमलोग भूल बैठे कि अपने जनका मन रखनेके लिये प्रभु क्या नहीं कर सकते! 'राम सदा सेवक रुचि राखी'। विविध प्रश्नोंको लेकर हमलोग प्रारम्भमें भले ही कुछ सशंकित संकुचित हो रहे हों, पर यह सब हमलोगोंकी अनास्था और अस्थिरताका ही परिचय देता है। हमलोगोंके अन्तरमें व्याप्त शंका और संकोच व्यर्थ ही दो संतोंके मिलनेमें बाधक तत्त्व बन रहा था। इस आयोजनके सारे सूत्र तो उन सर्व-सूत्रधार प्रभुने अपने परम समर्थ हाथोंमें सँभाल रखे थे और प्रभु-कृपासे असम्भव-सा लगनेवाला कार्य सर्वथा सम्भव हो गया।

सभी लोगोंने बड़ी सराहना की कि गीतावाटिकामें व्यवस्था बहुत

सुन्दर थी, पर उन प्रशंसकोंको क्या पता कि अपने जनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये उन अखिल सूत्रधार सर्वसमर्थ प्रभुने परोक्ष रूपसे हम क्षुद्र जनोंको कितनी और कैसी क्षमता प्रदान कर दी। कार्य तो किया प्रभुने और मिल गया सफलताका श्रेय हम अल्प-मति-गतिवालोंको अनायास-अकारण ही।

जब कथाकी तिथियाँ पूर्णतः निश्चित हो गयीं, तब श्रीडोंगरेजी महाराजने श्रीजयदयालजी डालमियाको बातचीतके बीच बतलाया – बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि बाबा और माँजीके दर्शन करूँ। कथा तो एक बहाना मात्र है। मैं उनको क्या कथा सुनाने लायक हूँ?

जब श्रीडालमियाजीका पत्र गीतावाटिका आया तो पत्रमें लिखित श्रीडोंगरेजी महाराजके ये उद्‌गार बाबाको सुनाये गये। श्रीडोंगरेजी महाराजके इस दैन्यपर बाबा रीझ उठे। इस दैन्यसे बाबाका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अभिभूत हो उठा और वे कहने लगे – इस दैन्यका कणांश भी हमलोगोंको स्पर्श कर ले तो सारा जीवन शीतल हो उठे।

७ फरवरीको श्रीडोंगरेजी महाराज वायुयानसे गोरखपुर पधारे। गीतावाटिका पहुँचते-पहुँचते संध्या हो आयी थी।

श्रीगिरिराजजी तथा समाधिका दर्शन करते हुए श्रीडोंगरेजी महाराजने भूमिपर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। तदुपरान्त बाबाके श्रीचरणोंमें फल भेंट किया। बाबा तो हाथ जोड़े हुए खड़े थे। हाथ जोड़े-जोड़े बाबाने कहा – करुणानिधानको मैं एक अकिञ्चन संन्यासी भला कौन-सी वस्तु प्रदान करूँ? आपकी अपार एवं अनन्त कृपा है, जो आपने गीतावाटिका पधारनेका कष्ट स्वीकार किया। आपके पावन चरणोंका स्पर्श पाकर गीतावाटिकाकी यह भूमि पवित्र हो गयी।

बाबाके इन शब्दोंको सुनकर श्रीडोंगरेजी महाराजकी आँखें भर आयीं। श्रीडोंगरेजी महाराज बाबाके पास पाँच-सात मिनट बैठे होंगे। फिर स्नानादिसे निवृत्त होनेके लिये अपने निवास-कुटीरमें चले आये।

निवास-कुटीरमें श्रीडोंगरेजी महाराजके चले जानेके बाद बाबाने भाव-भीने स्वरमें कहा था – श्रीडोंगरेजी महाराजका शुभागमन महान्-महान् सुयश एवं सुमंगलका विधायक है।

फाल्गुन कृष्ण तीज, शुक्रवार, ८ फरवरीके दिन पूर्वाह्न वेलामें श्रीडोंगरेजी महाराजकी भागवत-कथा आरम्भ हुई। कथाके श्रोताओंसे पंडाल

भरा हुआ था, पर इस कथाके मुख्य श्रोता थे बाबा एवं पूज्या माँ। माँ समयसे पहले ही पंडालमें आ गयीं। माँका आसन तो मंचके नीचे स्त्री-श्रोताओंके साथ लगाया गया था, पर श्रीमद्भागवतपुराणकी आरती करनेके लिये माँ मंचपर पधारीं। मंचपर एक ओर व्यासासनके समीप ही बाबाके विराजनेके लिये एक उच्चासन लगाया गया था। बाबा अपने आसनपर विराज रहे थे। ज्यों ही श्रीडोंगरेजी महाराज मंचपर पधारे, बाबा एवं माँ उनके स्वागतमें खड़े हो गये। श्रीडोंगरेजी महाराजने भूमिपर माथा टेककर माँको प्रणाम किया। माँने भी श्रीडोंगरेजी महाराजको प्रणाम किया। तदुपरान्त श्रीडोंगरेजी महाराजने बाबूजीके चित्रात्मक श्रीविग्रहको माल्यार्पण किया और अंतमें बाबाको साष्टांग प्रणाम करके पुष्पहार पहनाया। बाबा तो हाथ जोड़े-जोड़े झुके-झुके खड़े थे। बाबाने भी श्रीडोंगरेजी महाराजको पुष्पहार समर्पित किया। परस्पर प्रणामका यह अद्भुत भावपूर्ण दृश्य दस दिनोंतक प्रतिदिन देखनेको मिलता रहा। कई लोग तो इस दृश्यको देखनेके लोभमें आगे बैठा करते थे।

एक दिन माँको आनेमें कुछ विलम्ब हो गया तो श्रीडोंगरेजी महाराज व्यासासनपर बैठे-बैठे माँकी प्रतीक्षा करते रहे। माँ आयीं और ज्यों ही मंचपर पधारीं, त्यों ही व्यासासनसे उठकर-उतरकर श्रीडोंगरेजी महाराजने बड़े भक्ति-भाव-पूर्वक माँको प्रणाम किया। श्रीडोंगरेजी महाराज प्रणाम कर रहे थे माँको और हमलोग प्रणाम कर रहे थे श्रीडोंगरेजी महाराजकी भक्ति-भावनाको। अहंता-शून्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी श्रद्धा-भावनाकी वन्दना जितनी भी की जाये, वह कम ही रहेगी।

भागवत-कथाके तीन-चार दिन बीत जानेके बाद माँने अपने निजी परिकर कृष्णजीके द्वारा श्रीडोंगरेजी महाराजको कहलवाया – मैं सर्वथा अनपढ़ हूँ और एक अति साधारण वैश्य महिला हूँ। आप मुझे प्रणाम करते हैं, इससे मुझे बड़ा संकोच होता है। आप तो हर प्रकारसे वन्दनीय हैं।

श्रीडोंगरेजी महाराजने कृष्णजीको बड़े विनम्र स्वरमें उत्तर दिया – माँको मेरी ओरसे प्रणाम करना और फिर मेरी ओरसे निवेदन करना कि वे नहीं जानतीं कि वे वस्तुतः क्या हैं। उनकी महानताका थोड़ा आभास मुझे है। वे तो माँ हैं, जगदम्बा-स्वरूपा हैं, संकोच करनेके स्थानपर तो उन्हें मुझे आशीर्वाद देना चाहिये, मुझपर कृपा करनी चाहिये।

श्रीमद्भागवतपुराणका पूजन एवं नीराजन करनेके लिये जब माँ

मंचपर पधारतीं तो एक और भी सुन्दर दृश्य प्रायः देखनेको मिलता। जब माँ श्रीमद्भागवत पुराणपर पुष्प-वस्त्र-नैवेद्यादि चढ़ानेके लिये अपना हाथ पसारतीं तो कई बार ऐसा होता कि व्यासासनपर बैठे-बैठे ही श्रीडोंगरेजी महाराज अपना हाथ फैलाकर माँके हाथसे पुष्पादि ले लेते तथा श्रीमद्भागवतजीपर अर्पित कर देते। ऐसा इसलिये कि अति वृद्धा माँको अधिक झुकना न पड़े। यह सुन्दर दृश्य तो कई बार देखनेको मिलता और होता बड़ा ही भावपूर्ण। इस समय माँके अधरोंकी परम पावनी मुस्कानमें जादूका-सा प्रभाव रहा करता था। परस्पर प्रणाम करते समय, श्रीमद्भागवतकी पूजा करते समय तथा व्यासासनकी परिक्रमा लगाते समय माँके मुखकी मुस्कानसे प्रसन्नताके जो फूल झरते थे, उन फूलोंकी मधुरिमा मंचके सारे वातावरणपर छा जाया करती थी। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि उस समयका दृश्य मैं कैसे प्रस्तुत कर दूँ! माँके मुखश्रीकी दिव्य आभासे सारा मंच उद्भासित हो उठता था। एक अवर्णनीय स्तरकी दिव्यता, सचमुच सर्वथा अनुभवगम्य भव्यतासे कण-कण ओत-प्रोत हो उठता था।

माँ और बाबा जैसे श्रोताओंकी उपस्थितिसे भागवत-कथाके मण्डपकी शोभा अत्यधिक बढ़ गयी थी। वे इस मण्डपकी एक आध्यात्मिक भावमयी शोभा थे। केवल शोभा ही नहीं बढ़ी, उनकी उपस्थितिसे कथाका रस और कथाका प्रभाव अनन्त गुना अधिक बढ़ गया। भागवत-कथाका यह आयोजन तो त्रिवेणी संगमका साकार रूप था। भागवतकी कथा कही जा रही थी गीतावाटिकाकी स्थलीमें। गीतावाटिकाकी यही पुण्यस्थली है, जहाँ बाबूजीद्वारा हिन्दू धर्मके संरक्षणका, हिन्दू शास्त्रोंके प्रकाशनका, भगवन्नामके वितरणका, भगवद्भक्तिके प्रचारका, मानवीय सद्गुणोंकी प्रतिष्ठाका और आर्त जनोंकी सेवाका महान कार्य आजीवन होता रहा और हुआ उनकी वाणीके द्वारा, लेखनीके द्वारा और सबसे अधिक जीवन-शैलीके द्वारा। इन सभी महान कार्योंसे अलग बाबूजीका जीवन एक अनुपम एवं आदर्श उदाहरण था भगवल्लीला-सिंधुमें नित्य-निरन्तर निमग्न रहनेवाले एक प्रच्छन्न महान रसिक संतका। ऐसे प्रच्छन्न महारसिक बाबूजीकी महाकार्यस्थली गीतावाटिकामें यह भागवत-कथा कही जा रही थी और कही जा रही थी कथा-रस-रसिक सिद्ध संत पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजद्वारा, जो आजके युगके साक्षात् शुकदेव-स्वरूप थे। फिर इस कथाके मुख्य श्रोता थे बाबा एवं माँ। प्रभु-कृपासे यह कैसा दुर्लभ संयोग घटित हो गया कि सिद्ध

संतकी महाकार्यस्थलीमें सिद्ध संतद्वारा सिद्ध संतोंके समक्ष कथा कही गयी। यह कथा-आयोजन एक त्रिवेणी संगम ही था और गीतावाटिकामें अवतरित इस प्रत्यक्ष त्रिवेणी संगममें अवगाहन करनेके लिये अवश्य आगमन हुआ होगा ऋषि-मुनियोंके मण्डलका। श्रीडोंगरेजी महाराजने स्वयं ही भागवत-कथाके मध्य एक बार कहा था – भागवतकी कथाको सुननेके लिये श्रीगंगामहारानी, श्रीयमुनामहारानी, पवर्तराज, तीर्थराज, ऋषि-महर्षि आदि भी पधारते हैं। यदि वक्ता विवेकपूर्वक सावधान होकर कथा नहीं कहे, तो वह अपराधका भागी होता है।

व्यासासनपर श्रीडोंगरेजी महाराजके विराज जानेके बाद हमलोगोंको यही अनुभव होता था कि हमलोग एक दिव्य लोकमें बैठे हुए एक महान संतके श्रीमुखसे श्रीमद्भागवतकी कथाका श्रवण कर रहे हैं। श्रीडोंगरेजी महाराजकी कृति और प्रकृतिकी पूर्ण छाप उनकी आकृतिपर परिलक्षित होती रही। श्रीडोंगरेजी महाराजके श्रीमुखसे निःसृत एक-एक शब्दके पीछे उनका तपोनिष्ठ जीवन था। यही हेतु था कि उनके शब्द श्रोताओंके हृदयमें प्रवेश कर जाते थे तथा श्रोताके सम्पूर्ण अस्तित्वको प्रभावित करते थे। पंडालमें बैठे हुए श्रोतागण दत्तचित्त होकर कथा सुनते थे। कथा सुननेवालोंमें स्त्री-श्रोताओंकी संख्या अधिक थी। ऐसा होनेके बाद भी पंडालमें पूर्ण शान्ति रही, यह श्रीडोंगरेजी महाराजके व्यक्तित्व एवं वक्तृत्वका ही चमत्कार रहा। पंडालमें इतनी शान्ति थी कि वृक्षपर बैठे हुए कौएके बोलनेकी आवाज साफ-साफ सुनायी देती थी। सौ गजकी दूरीपर झाड़ू लगानेसे उत्पन्न होनेवाली आवाज भी विघ्न समान लगती थी। सड़कपर आने-जानेवाली ट्रक-बस-कार-स्कूटरके हॉर्नकी आवाज कानोंको चुभती थी। सूर्यास्तके बाद कथाके समय कई बार बिजली चली जाती। पंडालमें अंधकार छा जाता, इसके बाद भी सब श्रोता चुपचाप कथा सुनते रहते। कथाके पंडालमें ऐसी शान्ति क्वचित् ही देखनेको मिलती है। इस पूर्ण शान्तिका, मेरी दृष्टिमें, एक मात्र हेतु रहा श्रीडोंगरेजी महाराजका परमोज्ज्वल संतत्व और प्रभावकारी वक्तृत्व। श्रीडोंगरेजी महाराज भागवत-कथामें वही बोलते थे, जो उनके जीवनका सत्य था। जिन सिद्धान्तोंको चिन्तन-मननके द्वारा उन्होंने अपने मनसे स्वीकार किया और जिन सिद्धान्तोंको सतत साधनाके द्वारा उन्होंने अपने आचरणमें उतार लिया, उन श्रेष्ठ सिद्धान्तोंका आचरणसे एकीकरण, इस तथ्यने ही उनके

जीवनमें अचिन्त्य परमोज्ज्वलता भर दी थी और इस परमोज्ज्वलताकी प्रभावोत्पादकता और भी अधिक बढ़ गयी थी प्रसंगोंको प्रस्तुत करनेकी रोचक शैलीके कारण। हिन्दी भाषामें गुजराती अथवा मराठी भाषाका पुट बड़ा प्यारा लगता था। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवनमें आजकल जो अभद्रताएँ-अनैतिकताएँ-अनास्थाएँ प्रवेश कर गयी हैं, उनपर श्रीडोंगरेजी महाराज कभी-कभी तीखा व्यंग्य भी करनेसे नहीं चूकते थे। कथाके प्रवाहमें कभी-कभी विभिन्न संतोंके चरित्रोंको सुनानेके कारण श्रोताओंका आकर्षण बढ़ता ही जाता था और कथाके बीच-बीचमें वे कभी-कभी ऐसे सूत्र-वाक्य बोल जाया करते थे, जिनसे जीवनके संस्कारमें-शृंगारमें सहायता मिले। सबसे प्रधान बात यह थी कि श्रीडोंगरेजी महाराजके प्रवचनमें उनके आचरण-सिद्ध सिद्धान्तोंका ही प्रतिपादन होता था। इतना ही नहीं, हमलोगोंने भावपूर्ण प्रसंगोंका वर्णन करते समय उनको विह्वल होते देखा है, उनकी वाणीको अवरुद्ध होते देखा है, उनके हृदयको द्रवित होते देखा है, उनके नेत्रोंको सजल होते भी देखा है और अनेक बार उनके श्रीअंगोंमें दैवी आवेशको अवतरित होते भी देखा है। सचमुच, व्यासासनपर बैठनेके बाद श्रीडोंगरेजी महाराज नहीं बोलते थे, अपितु उनका वैष्णव हृदय बोलता था और उसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह था कि प्रत्येक श्रोताको वैष्णव जीवन अंगीकार करनेकी प्रेरणा मिलती थी। स्त्री-पुरुष, धनी-निर्धन, चतुर-मूर्ख, गृहस्थ-विरक्त, साधारण-असाधारण, चाहे कोई भी हो, कैसा भी श्रोता हो, उसको बाध्य होकर आत्म-निरीक्षण करना ही पड़ता था और इस निर्णयपर पहुँचना ही पड़ता था कि मानव जीवनकी सफलता श्रीकृष्ण-दर्शनमें ही है। श्रीडोंगरेजी महाराजकी स्पष्ट मान्यता थी और उन्होंने उच्च स्वरसे अपनी कथामें भी कहा – यदि श्रोता मन लगाकर कथा सुने तो कथा सुननेके बाद जीवनमें परिवर्तन आना ही चाहिये। भागवत-कथा सुननेके बाद राजर्षि परीक्षितको भगवान श्रीकृष्णकी प्राप्ति हुई थी। हमारे जीवनमें कम-से-कम इतना तो होना ही चाहिये कि भगवान श्रीकृष्णके दर्शनकी चाह जग जाये। भगवान श्रीकृष्णका साक्षात् दर्शन करनेके लिये ही मनुष्यका जन्म मिला है।

माँ जब कथा सुनकर आतीं तो भाव-भरे मनसे वे बस इतना ही कहतीं – आज तो महाराजजीने निहाल कर दिया।

कथा सुनकर जब बाबा अपनी कुटियापर आते तो हमलोगोंके समक्ष बोल उठते – यह भागवत-प्रवचन क्या है मानो उमड़ता हुआ भक्ति-सिन्धु है।

बाहरसे आये हुए भक्तगण अपने विह्वल उद्‌गारोंको व्यक्त करनेमें अघाते नहीं थे। कलकत्तेके एक भक्तने कहा — श्रीडोंगरेजी महाराजकी मैं यह पाँचवीं अथवा छठवीं बार कथा सुन रहा हूँ, पर ऐसा आनन्द तो पहले कभी नहीं आया।

उनके उद्‌गारोंको सुनकर मुझसे कहे बिना नहीं रहा गया। मैं बोल पड़ा — क्या आप यह नहीं जान रहे हैं कि यहाँपर श्रीमहाराजजीके पधारनेकी प्रेरणा क्या है? अन्य स्थानोंपर कथा कहनेके लिये महाराजजीको आमंत्रित करना पड़ता है और यहाँ किसी सदभिलाषाके फलस्वरूप श्रीमहाराजजी स्वयं-प्रेरणासे पधारे हैं। इसके अतिरिक्त आप यह भी तो देखें कि उनके समक्ष श्रोताके रूपमें कौन बैठा है। क्या ये सब तथ्य वक्ताके भाव-राज्यको प्रभावित नहीं करते? गोस्वामी तुलसीदासजीने स्वयं लिखा है —

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास।।

कलकत्तेके जिन सज्जनने ये उद्‌गार व्यक्त किये थे, उन्हींकी तरह अन्य कई लोगोंके मुखसे इसी प्रकारके भाव सुननेको मिले। नासिकसे पधारे हुए एक अन्तरंग भक्त यहाँतक बोल गये — मुझे तो बड़ा विस्मय होता है कि जो व्यक्ति भक्तिमें इतना डूबा हुआ हो, वह कैसे कथा कह पा रहा है? यह हमारा महान सौभाग्य है कि हमलोग ऐसे संतको अपनी आँखोंसे देख रहे हैं। कभी-कभी मुझे अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं होता।

१४ फरवरीके प्रातःकाल माँने अपने निजी परिकर कृष्णजीको पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजके पास भेजा और कहलवाया — श्रीमहाराजजीके दर्शन कथा-मण्डपमें ही केवल हो पाते हैं। कथासे तृप्ति नहीं हो पाती। क्या श्रीमहाराजजी अपनी व्यस्त दिनचर्यामेंसे कुछ क्षण निकालकर मिलनेके लिये अवसर दे सकते हैं? यदि महाराजजी आज्ञा प्रदान करें तो मैं वहाँ निवास कुटीरपर दर्शन करनेके लिये आ जाऊँ।

श्रीडोंगरेजी महाराजने कृष्णजीसे कहा — मैं स्वयं ही माँके पास आऊँगा।

कृष्णजीने निवेदन किया — आपके जानेसे तथा सीढ़ीपर चढ़नेसे आपको श्रम होगा। माँ तो कुर्सीपर बैठकर आती हैं, अतः उनके आनेमें

कोई कठिनाई नहीं होगी।

श्रीडोंगरेजी महाराजने कहा – तब तो वे कभी भी आ सकती हैं और इसके लिये पूछनेकी आवश्यकता ही क्या थी ?

इसके बाद बातचीतका क्रम चल पड़ा। कृष्णजीने बाबूजीके बारेमें, गीतावाटिकाके बारेमें तथा नव-निर्मित मन्दिरके बारेमें कुछ बातें बतलायीं। बातचीतके इसी क्रममें कृष्णजीने जिज्ञासा व्यक्त की – आपका बाबासे परिचय कब हुआ ?

श्रीडोंगरेजी महाराजने बतलाया – बाबाद्वारा रचित 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब पढ़ा, तभीसे बाबाके दर्शनकी अभिलाषा थी। इधर कथा कहनेके निमित्तसे गोरखपुर आनेकी बात चली। बात चलते-चलते एक बार टूट गयी। इससे मन उदास हो गया। हरिकी जैसी इच्छा, ऐसा मानकर मनको समझा लिया, परंतु उसी हरि-इच्छासे कथाका आयोजन निश्चित हो गया। कथाको सुनाकर साधारण स्तरकी एक सेवा ही मेरेद्वारा सम्पन्न हो रही है। श्रीभाईजीके सम्बन्धमें क्या कहूँ? वे तो भगवद्धामसे आये थे और वहीं चले गये। श्रीभाईजीके प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं हुए, परंतु उनके द्वारा लिखित साहित्य पढ़ा है। हिन्दू धर्म एवं हिन्दू जातिके लिये वे जो कर गये हैं, उसके लिये वे सदा ही स्मरण किये जायेंगे।

श्रीडोंगरेजी महाराजके पाससे वापस आकर कृष्णजीने उनकी प्रसन्न अनुमतिकी सूचना माँको दे दी। १६ फरवरीको कथा आरम्भ होनेके पहले प्रातःकाल माँ श्रीडोंगरेजी महाराजके दर्शनार्थ उनके निवास-कुटीरपर पधारीं। श्रीमहाराजजीके समीप स्वतन्त्र आसनपर विराजनेके उपरान्त माँने ज्यों ही प्रणाम किया, त्यों ही श्रीमहाराजजीने भी प्रणाम करके कहा – आप मुझे आशीर्वाद दें कि मुझे प्रभु-चरणोंकी भक्ति मिले।

श्रीडोंगरेजी महाराजके ऐसा कहते ही माँने कहा – आपने तो मेरी बात कह दी। यही प्रार्थना करने तो मैं आयी थी। आप मुझे आशीर्वाद दें कि भगवानकी भक्ति मिले, उनके चरणोंमें प्रीति हो। आपके ठाकुर श्रीबालकृष्णलालजीसे यही प्रार्थना है।

इधर तो माँ इस प्रकारसे कह रही थीं, उधर श्रीमहाराजजी असहमति व्यक्त करते हुए अपना मस्तक हिला रहे थे। माँके कह चुकनेपर श्रीमहाराजजी कहने लगे – आप ही मुझे आशीर्वाद दें। आप तो जगदम्बा

हैं, आपको ही कृपा करनी चाहिये।

उभय पक्षका अपना-अपना दैन्य और फिर परस्परके प्रति प्रार्थना, यह सारा दृश्य और यह सारा संवाद इस लोक-स्तरका था ही नहीं। अद्भुत शील, अद्भुत संकोच, अद्भुत दैन्य, अद्भुत मनोरथ, अद्भुत विनती आदिकी एक बड़ी अद्भुत झाँकी देखनेको मिल रही थी। श्रीडोंगरेजी महाराजके सेव्य भगवान श्रीबालकृष्णलालजीके लिये माँ पोशाक-इत्र-फल-फूल-पुष्पहार आदि अपने साथ ले आयी थीं। वह सब माँने श्रीमहाराजजीको दिया अर्पित करनेके लिये। इन सबको महाराज श्रीडोंगरेजीने अपने समीप रखवा लिया। ठाकुर-सेवाकी सामग्रीको रखकर माँ पुनः हाथ जोड़े-जोड़े मन्द-मन्द स्वरमें निवेदन करने लगीं – आप तो सब प्रकारसे समर्थ हैं। मैं तो अनपढ़ साधारण महिला हूँ। आप अपने बालकृष्णलालसे प्रार्थना करें कि मुझे सच्ची भक्ति मिले।

उस समय कुटीरका वातावरण जैसा भावमय हो रहा था, श्रीडोंगरेजी महाराजकी मुखाकृति जितनी भावमय हो रही थी और माँकी मुख-छवि जितनी भावमय हो रही थी, उस सबका वर्णन भला कौन कर सकता है?

'बरनै छबि अस जग कबि को है'।

कुटीरमें गहरी निश्शब्दता व्याप्त हो रही थी। दोनों ही अपने-अपने भावोंमें निमग्न थे। थोड़ी देर बाद माँने बड़े मन्द स्वरमें रुक-रुककर कहना आरम्भ किया – भागवतकी कथा सुनाकर आपने निहाल कर दिया। बस, इसी प्रकार एक बार और कभी यहाँ पधारकर आप श्रीरामायणजीकी कथा सुना दें।

श्रीडोंगरेजी महाराजने भगवान श्रीबालकृष्णलालकी ओर इंगित करके कहा – यह तो इनकी इच्छापर निर्भर है।

माँ कथाके प्रारम्भ होनेके समय गयी थीं। कथारम्भका समय समीप होनेसे माँने अधिक बैठना उचित नहीं समझा और वे श्रीडोंगरेजी महाराजको प्रणाम करके कथा-मण्डपमें चली आयीं।

देखते-देखते भागवत-कथाके दस दिन व्यतीत हो गये और १७ फरवरीकी मध्याह्न वेलामें भागवत-कथा सम्पन्न हो गयी। इसी दिन अपराह्न कालमें श्रीडोंगरेजी महाराजको वायुयानसे दिल्ली प्रस्थान करना था।

गीतावाटिकासे प्रस्थान करनेके पूर्व श्रीडोंगरेजी महाराज बाबाकी कुटियापर पधारे। श्रीडोंगरेजी महाराजके आते ही बाबाने उनको कम्बलका आसन देना चाहा। श्रीडोंगरेजी महाराजने कहा— कम्बलकी क्या आवश्यकता है? यहाँका प्रत्येक रजकण परम पवित्र है।

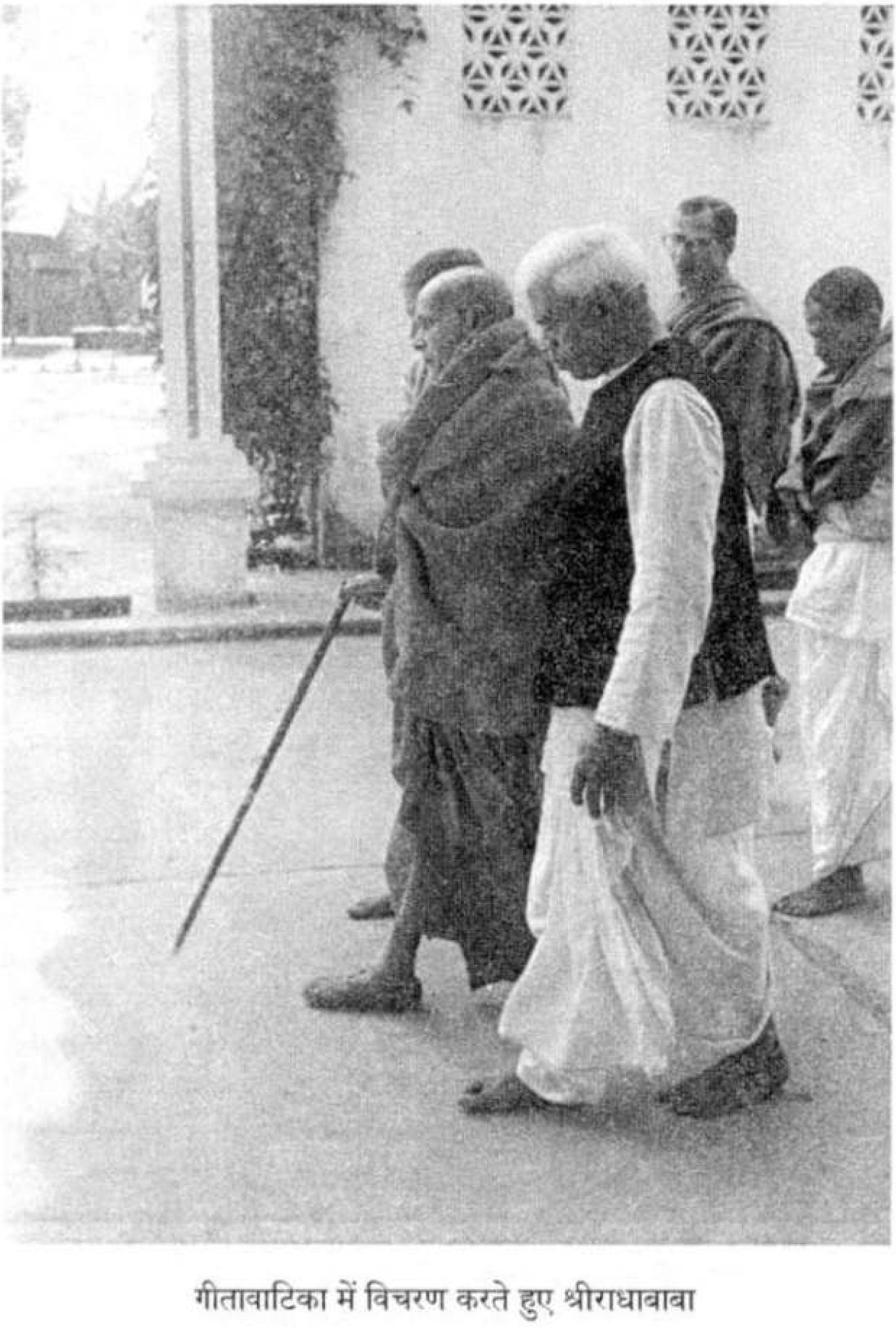
श्रीडोंगरेजी महाराज एवं बाबा भूमिपर ही बैठ गये। श्रीमहाराजजीने बाबाको भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया। बाबाने अपने कर-कमलकी भावमयी चेष्टाद्वारा पुष्पार्पण किया और फिर वे कहने लगे— आपने कथा क्या सुनायी, भगवत्कृपा और भगवद्रसकी सरिता ही प्रवाहित कर दी। आप विश्वास करें, मैंने ऐसी कथा कभी नहीं सुनी। जीवनकी साध आपने पूरी कर दी। यहाँपर अच्छे-अच्छे कथावाचकोंका शुभागमन होता ही रहता है, परंतु आपकी कथामें आपका जीवन बोलता है। आपका अभिनन्दन करनेके लिये मेरे पास वाणी नहीं है। आपने अद्भुत-से-अद्भुत कथा सुनायी। आपके द्वारा भगवद्भावका जो उन्मुक्त वितरण हुआ है, यह कार्य सर्वथा अतुलनीय है, पूर्णतः निरुपमेय है। भगवद्भावका यह दान, दान नहीं, महादान है और यह महाद्भुत है।

श्रीडोंगरेजी महाराज तो दैन्यवशात् स्वयंमें सिमटे चले जा रहे थे। इस भावार्चनको सुनकर उन्होंने विनम्र स्वरमें कहा— मैं तो किसी लायक नहीं हूँ। मैं तो आपकी शरणमें हूँ।

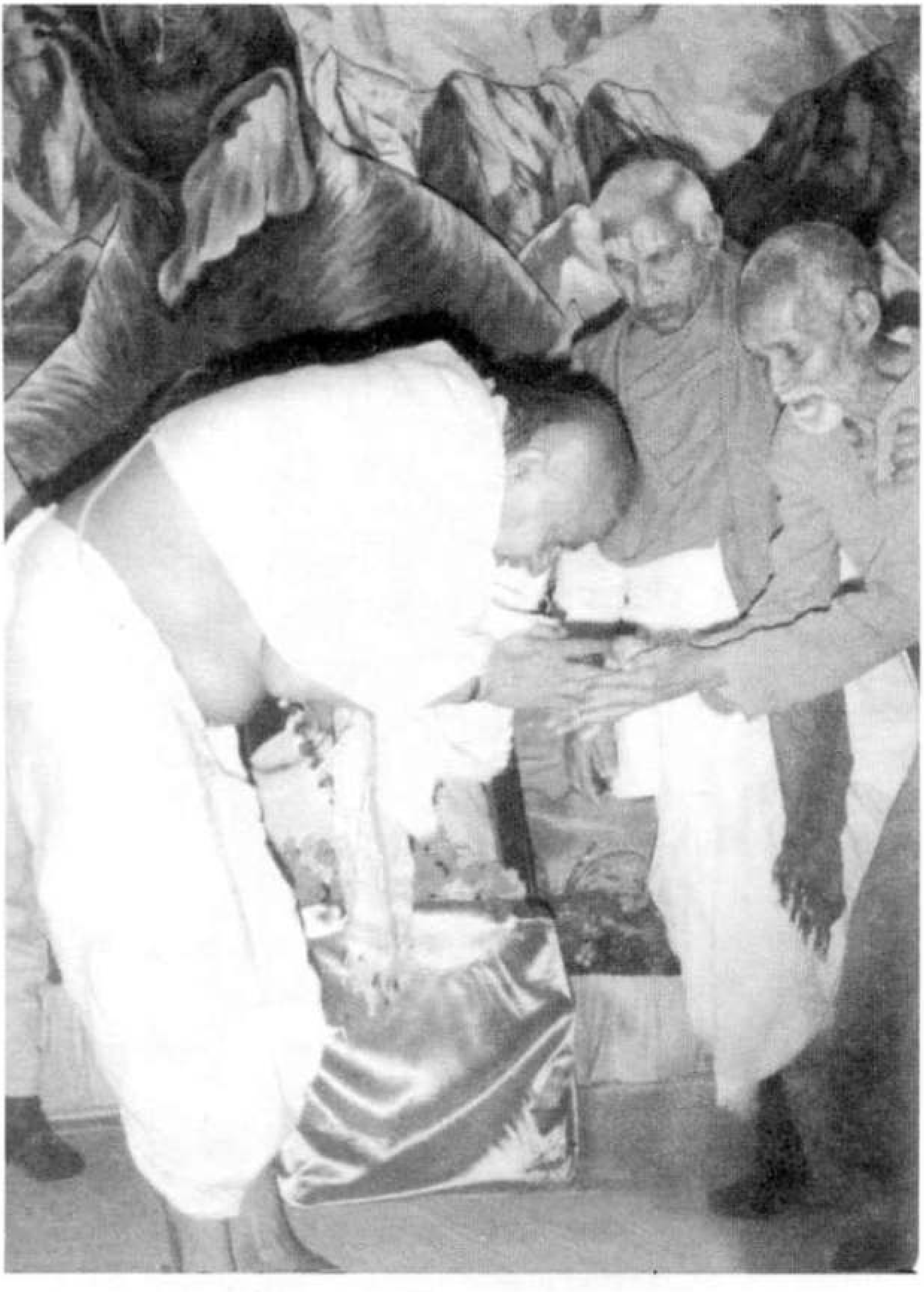
बाबाने कहा— आपका दैन्य आपके ही योग्य है, अन्यथा ऐसी योग्यता, ऐसा संतत्व और ऐसी कथाका दर्शन भला कहाँ मिल पाता है? आपके शुभागमनसे गीतावाटिका धन्य हो गयी। इस स्थानकी महिमा बढ़ गयी।

बाबा बार-बार अपने तथा गीतावाटिकाके सौभाग्यका वर्णन करते रहे। हवाई-अड्डेपर जानेका समय देखकर बाबाने पुनः कहा— अब आप सहर्ष पधारें। मैं तो आपके परम मंगलकी सतत कामना करता हूँ।

श्रीडोंगरेजी महाराज आये और चले गये। पलक मारते-मारते दस दिन निकल गये। यह पता ही नहीं चला कि किस प्रकार दस दिन बीत गये। श्रीडोंगरेजी महाराजके आगमनसे यह गीतावाटिका 'भई सकल सोभा कै खानी'। इन दस दिनोंमें गीतावाटिकाका वातावरण कुछ और ही हो गया था। सभीपर एक आध्यात्मिक नशा छाया हुआ था, जिसकी खुमारी



गीतावाटिका में विचरण करते हुए श्रीराधाबाबा



गीतावाटिका में श्रीभागवतजी के आयोजन के अवसर पर
पूज्य बाबा का अभिवादन करते हुए श्री डोंगरेजी महाराज

बहुत दिनोंतक चढ़ी रही। सभी जगते-जगते खुली आँखोंसे एक आध्यात्मिक सपना देख रहे थे। यह महदायोजन सभीके मनपर एक गहरी छाप छोड़ गया है। सभी मुक्त स्वरसे कहते थे – यह महदायोजन गीतावाटिकाकी सुख्यातिके अनुरूप ही हुआ।

* * * * *

भगन्दर रोगसे विमुक्ति

भाई श्रीसीतारामजी जालानको जिन्हें बाबा सदा पुत्रवत् प्यार करते रहे। श्रीसीतारामजीके प्रति बाबाका वात्सल्य सदा उमड़ता ही रहता था। एक बार श्रीसीतारामजी काफी अस्वस्थ हो गये। उनको दमा तो था ही, भगन्दर भी हो गया। भगन्दरको अँगरेजीमें फिस्चुला कहते हैं। यह बड़ा दुष्ट रोग है। चाँदसीके चिकित्सकोंने कहा कि इसके इलाजमें श्रीसीतारामजीको खाटपर लगभग अढ़ाई मास लेटे रहना पड़ेगा। डाक्टरोंकी राय थी कि यह रोग आपरेशन किये बिना ठीक होगा ही नहीं। घरवाले आपरेशन कराना तो चाहते थे, किन्तु दमेका रोग साथमें लगा हुआ था, अतः साहस नहीं हो पा रहा था। भगन्दर रोग भीषण रूपसे बढ़ा हुआ था। मलद्वारसे अधिक रक्त-स्राव होता था। दिन-प्रति-दिन शरीर छीज रहा था।

एक दिन श्रीसीतारामजी अपने परम प्रिय स्वजन श्रीबालाप्रसादजी तुलस्यानके साथ बाबाके पास आये। बात-ही-बातमें श्रीबालाबाबूने श्रीसीतारामजीकी भीषण रुग्णताकी बात चला दी। उस भगन्दर रोगकी भीषणता तो हमारे आपके लिये थी ही, थोड़ी देरके लिये बाबा भी चिन्तित हो उठे और चिन्ताकुल स्वरमें उन्होंने कहा – 'अच्छा त हमार छोटके बेटुआके फिस्चुला हो गइल बा'।

फिर रुककर बाबाने कहा – कोई बात नहीं। चिन्ताका प्रश्न नहीं। पहले मैं अपने डाक्टरोंको दिखवा लूँ। यदि हमारे डाक्टर भी निदान कर लेनेके बाद यही रोग बतलायेंगे तो मैं मान लूँगा। उसके बाद इस रोगकी चिकित्साके बारेमें सोचा जायेगा। पहले यह निर्णय हो कि भगन्दर है या नहीं।

उसी समय उन्होंने डा. श्रीएल. डी. सिंहजीको बुलवाया। जब डाक्टर साहब आ गये, तब बाबाने भाई श्रीसीतारामजीका छोटे पुत्रके रूपमें

परिचय देते हुए उनसे उस रोगका सही निदान करनेके लिये कहा। डाक्टर साहबके कथनानुसार श्रीसीतारामजीको अगले दिन अस्पतालमें आना आवश्यक था। इसे श्रीसीतारामजीने स्वीकार कर लिया। जब श्रीसीतारामजी श्रीबालाबाबूके साथ घर वापस लौट रहे थे तो अत्यन्त विश्वासके स्वरमें उन्होंने श्रीबालाबाबूसे कहा – कल अस्पतालमें जो विभिन्न जाँच और परीक्षण होगें, उनमें यह रोग नहीं मिलेगा। वे सारे परीक्षण सिद्ध कर ही नहीं पायेंगे कि मुझे भगन्दर रोग है।

उनकी बात सुनकर श्रीबालाबाबूको बड़ा विस्मय हो रहा था। उनकी आँखोंमें आश्चर्य भरी जिज्ञासा तैर रही थी। उन्होंने पूछ – यह तुम कैसे कह रहे हो?

श्रीसीतारामजीने कहा – इस प्रश्नका उत्तर सारे टेस्ट (अर्थात् जाँच-पड़ताल) हो जानेके बाद दूँगा।

दूसरे दिन श्रीसीतारामजीके विभिन्न टेस्ट हुए और अपनी रिपोर्टमें डाक्टर साहबने लिख दिया कि भगन्दरके कोई लक्षण नहीं हैं, हाँ बवासीरका आरम्भ है। यह रिपोर्ट बाबाको दिखलायी गयी। रिपोर्ट देखकर बाबाने कहा – तुमने तो मुझको डरा ही दिया था। तुमको भगन्दर है ही नहीं।

श्रीसीतारामजी अपने भावोंकी उर्मिलताके उभारका संवरण नहीं कर पाये और वे भरे-भरे हृदयसे कहने लगे – यह सब आपका खेल है। मैं तो उस खेलको देखकर भी नहीं देख पा रहा हूँ। आप तो भाग्यकी रेखाको बदल देनेमें भी समर्थ हैं।

बाबा प्यारमें न जाने क्या-क्या बोलते रहे और फिर कहा – जाओ। अब लाल मिर्च मत खाना।

इसके बाद श्रीसीतारामजीको कभी भगन्दर हुआ ही नहीं। श्रीबालाबाबूके मनमें जिज्ञासा अभीतक बनी हुई थी। वे भली प्रकार जानते थे कि श्रीसीतारामजी भगन्दरसे खूब पीड़ित हैं और अब यह बात कैसे बदल गयी। श्रीबालाबाबूकी जिज्ञासाका उत्तर देते हुए श्रीसीतारामजीने कहा – बाबाने कहा था कि मेरा डाक्टर निदानके बाद जो कहेगा, उसी बातको मैं मानूँगा। इन शब्दोंके कहते समय उनकी मुख-मुद्रा कुछ और ही प्रकारकी हो गयी थी। उनके मुखमण्डलपर एक अलौकिक स्तरकी कान्ति

झलक रही थी। उससे स्पष्ट लग रहा था कि जिस प्रारब्ध-भोगके फलस्वरूप यह रोग मेरे पास आया है, उस प्रारब्धको ही वे बदल देना चाहते हैं। जिस समय उनके सामने रोगकी बात चली थी, तब पूज्य बाबाको बतला दिया गया था कि सभी डाक्टरोंने एक स्वरसे इसे भगन्दर बतलाया है। सभी डाक्टरोंका अभिमत जाननेके बाद भी उनके द्वारा दृढ़ स्वरमें वैसा कहा जाना ही एक इशारा कर रहा था कि बाबा 'अपने ढंगसे सक्रिय' हो रहे हैं।

श्रीसीतारामजीके उत्तरको सुनकर श्रीबालाबाबूको बड़ा सन्तोष मिला, केवल सन्तोष ही नहीं, संताश्रय-भावनाको बड़ा बल मिला।

* * * * *

मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठा

पूज्य बाबूजीकी महाकार्य-स्थली रही है गीतावाटिका। आध्यात्मिकता और आस्तिकता, धार्मिकता और नैतिकता, वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति, सत्साहित्य और समाज-सेवा आदिके क्षेत्रमें जिस महान कार्यकी संसिद्धिके लिये उनका भूतलपर शुभागमन हुआ था, उस कार्यको उन्होंने सम्पन्न किया गीतावाटिकामें निवास करते हुए ही। उनकी महाकार्य-स्थली बननेका सौभाग्य मिला गीतावाटिकाको ही। इसी गीतावाटिकामें उन्हीं बाबूजीकी स्मृतिमें एक अति विशाल मन्दिरका निर्माण नागर शैलीके अनुसार हुआ है।

इस मन्दिरमें भगवद्विग्रहोंकी प्रतिष्ठा होनेके पूर्व भागवत-कथाका भव्य आयोजन हुआ। भागवत-कथा कहनेके लिये पधारे थे भारतके विख्यात संत पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज। गीतावाटिकामें ८ फरवरी १९८५ से १७ फरवरी १९८५ तक भागवत-कथा हुई थी। भागवत-कथाका यह विशद आयोजन प्राण-प्रतिष्ठा-समारोहका एक अंग ही था। भागवत-कथाके पूर्ण होते ही भगवद्विग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा फरवरी ८५ के अन्तमें होनेवाली थी, किंतु कतिपय बाधाओंके कारण यह कार्यक्रम बाध्य होकर स्थगित करना पड़ा। फिर यह सम्पन्न हो पाया जून मासके तृतीय सप्ताहमें।

प्राण-प्रतिष्ठाका पूजन-विधान १५ जून ८५ से आरम्भ होकर सात दिनतक चलता रहा। इसकी पूर्णाहुति हुई २१ जून ८५ को। पूजन- विधानके विस्तृत कर्म-काण्डको विधिवत् सम्पन्न करनेके लिये विभिन्न स्थानोंसे ग्यारह

निष्णात पण्डित पधारे थे। इनके साथ चार सहायक पण्डित सहयोगीके रूपमें कार्य कर रहे थे। हम सभी लोगोंकी आन्तरिक अभिलाषा थी कि सात दिनतक पूज्या माँके द्वारा सारा पूजन-कार्य हो, परंतु उनका स्वास्थ्य अत्यधिक शिथिल था। चलना-फिरना तो दूरकी बात रही, उनके लिये बैठ सकना भी सम्भव नहीं था। इस परिस्थितिमें पण्डित-मण्डलने एक मध्यम मार्गका आश्रय लिया। पण्डितोंने माँके द्वारा पूजनका संकल्प करवाया और फिर माँके प्रतिनिधिस्वरूप बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) और श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगलाने यजमानके रूपमें सात दिनतक पूजन-कार्य किया। फोगला दम्पतिको प्रतिदिन छः-सात घंटेतक अर्चकके आसनपर बैठना पड़ता था। भले माँ अर्चकके आसनपर नहीं विराजीं, परंतु वे प्रतिदिन पूजनमें अवश्य पधारती थीं। माँके पधारते ही वातावरणमें दिव्यता परिव्याप्त हो जाती थी।

प्राण-प्रतिष्ठा-समारोहके निमित्तसे वृन्दावनसे पूज्य श्रीमहाराजजी भी पधारे थे। महाराजजीके पधारते ही समारोहकी शोभा एवं गरिमा अनन्तगुनी हो गयी। महाराजजीके पधारनेपर बाबाने कहा था – आपका शुभागमन होते ही मेरे आह्लादकी सीमा नहीं रहती। मेरी दृष्टि सदा देखती रहती है आपकी नित्य प्रसन्न मुखाम्बुज-श्रीको।

इस अवसरपर वृन्दावनसे श्रीश्रीराम-श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली एक सप्ताहके लिये गीतावाटिका आयी थी। भागलपुरसे मानस-कथावाचिका आदरणीया बहिन श्रीकृष्णादेवीजी मिश्रका भी शुभागमन हुआ था। रासलीला प्रातःकाल होती थी और मानस-कथा रात्रिमें। प्रातःकाल भगवान श्रीकृष्णकी विभिन्न लीलाओंका भावपूर्ण प्रस्तुतीकरण, पूर्वाह्न कालसे अपराह्न कालतक पूजन-विधानके समय वैदिक मंत्रों तथा पौराणिक स्तुतियोंका सस्वर घोष और रात्रिमें श्रीरामचरितमानसके पुष्पवाटिका- प्रसंगकी मधुमयी कथा, इन सबसे गीतावाटिकाका वातावरण बड़ा सरस बन गया था। इस अवसरपर बाहरसे आनेवालोंकी भीड़ तो नहीं थी, किंतु वे सभी लोग गीतावाटिका आ गये थे, जिनका माँसे, बाबूजीसे तथा बाबासे आन्तरिक लगाव है।

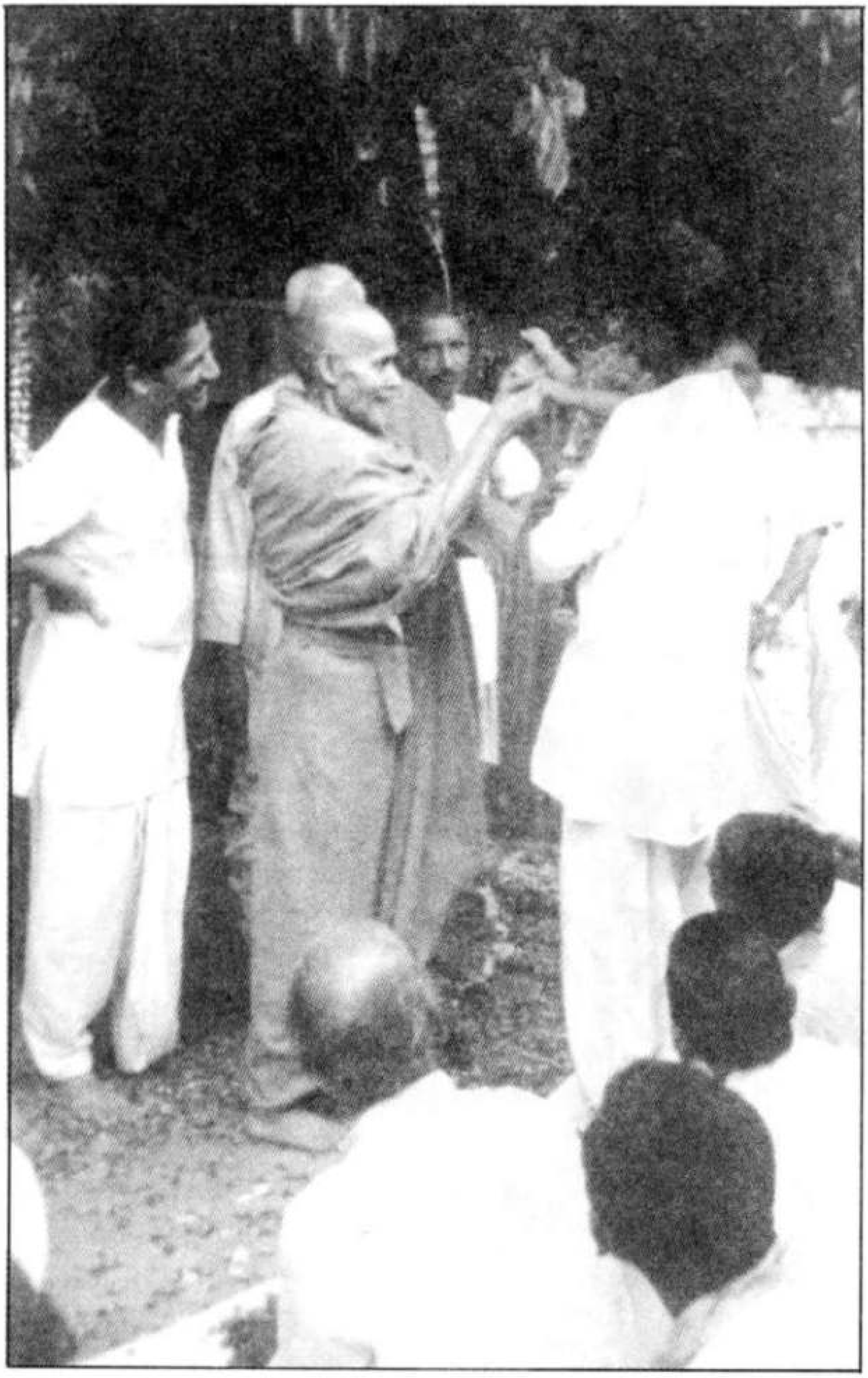
इस प्राण-प्रतिष्ठा-समारोहकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाबा लगभग सभी कार्यक्रमोंमें उपस्थित रहे। उनकी उपस्थितिसे कार्यक्रमका स्वरूप और प्रभाव कुछ और ही हो जाया करता था। कार्यक्रम ऐसे आकर्षक बन जाते थे कि उठनेवालोंको उठनेकी स्मृति नहीं रहती थी। प्रातःकाल



श्रीनिमाई -निताई के मध्य श्रीराधाबाबा (पार्श्व में श्रीराधाकृष्ण के श्रीविग्रह)



मंदिर में श्रीराधाबाबा
साथ में (बाएं से दाएं) डॉ. एल.डी. सिंह, श्रीचोपड़ाजी, श्रीबंकाजी तथा



श्रीगिरीराज-परिक्रमा स्थली में श्रीराधाबाबा

रासलीलाका दर्शन करनेके लिये एवं रात्रिमें मानस-कथाका श्रवण करनेके लिये बाबा जाते ही थे, इसके अतिरिक्त दिनमें पूजनके समय भी बाबा आवश्यकतानुसार मन्दिरमें पधारते थे। इस बार सबसे नवीन बात यह हुई कि बाबाने पण्डितोंसे तिलक करवाया और उनसे आशीर्वाद-फल स्वीकार किया। मन्दिरके ऊपर ध्वजाको चढ़ाते समय, शोभा-यात्राके समय, यज्ञमें पूर्णाहुति देते समय, भगवद्विग्रहोंके नीराजनके समय, इस प्रकार भिन्न-भिन्न मुख्य अवसरोंपर बाबा मन्दिरमें उपस्थित रहे। बाबा और महाराजजीकी उपस्थितिसे लोगोंके हृदयका उत्साह और उल्लास हिलोरें लेने लगता था। शोभा-यात्राके समय जब सभी लोग बाबा और महाराजजीके साथ-साथ मन्दिरकी परिक्रमा दे रहे थे, तब ऐसा लगता था कि मानो 'जाहिं सनेह सुरा सब छाके'।

यह उत्साह और उल्लास तो भक्तोंके हृदय-राज्यकी दृष्टिसे है। इससे अलग एक विशेष दृष्टिकोण और भी है। चाहे कितनी सतर्कता और सावधानी रखी जाये, इसके बाद भी विस्तृत पूजन-विधानमें अनजाने-अनचाहे कुछ-न-कुछ च्युतियाँ हो ही जाया करती हैं। हमलोगोंका विश्वास है कि माँ, बाबा और महाराजजीकी उपस्थितिसे प्राण-प्रतिष्ठा-अनुष्ठानकी इन सभी छोटी-बड़ी च्युतियोंका, सभी प्रकारकी न्यूनताओंका और तीनों प्रकारके दोषोंका स्वतः ही परिहार हो गया। इतना ही नहीं, इन संत-चरणोंकी उपस्थितिने प्राण-प्रतिष्ठा-अनुष्ठानको वास्तविक पूर्णता प्रदान की है। इनकी अवस्थितिने गीतावाटिकाको तीर्थत्व प्रदान किया है और प्रदान किया है इनके दर्शकत्वने श्रीविग्रहोंको वस्तुतः दिव्यत्व और देवत्व। अनेक बार संतोंके श्रीमुखसे सुना है कि भक्तके रागभरे हृदयकी सबलता और भावभरी दृष्टिकी प्रबलतासे श्रीविग्रह जाग्रत हो उठते हैं और ऐसे ही समर्थ भक्तके द्वारा भगवानकी भगवत्ता-सत्ता-महत्ताका उद्‌घाटन एवं विख्यापन होता है। इस अवसरपर जगन्नाथपुरीके कलिपावनावतार श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी, श्रीविल्लीपुत्तूरकी मधुरभावापन्ना श्रीगोदाम्बाजी, चित्तौड़की भक्तिमती श्रीमीराबाई, वृन्दावनके रसिकशेखर स्वामी श्रीहरिदासजी, कलकत्ता-दक्षिणेश्वरके परमहंस श्रीरामकृष्णजी आदि अनेक संतोंके प्रभावपूर्ण व्यक्तित्वकी स्मृति रह-रह करके उभर रही है, जिनकी अति-सबल, अति-प्रबल भक्ति-भावनाके फलस्वरूप अनेक लोकोत्तर प्रसंग सेव्य श्रीविग्रहोंके साथ जुड़ गये हैं। इसीके साथ रह-रह करके यह भी भाव मेरे मनमें उभर रहा है, मेरी इस धृष्ट मुखरताको आप सभी क्षमा प्रदान करें, मुझे

ऐसा लगता है कि उन पुरातन संतोंसे सम्बन्धित जो ऐतिहासिक लोकोत्तर प्रसंग है, उन प्रसंगोंमें परिव्याप्त मार्मिक सत्यकी पुनः आवृत्ति अब गीतावाटिकाके इस मन्दिरमें भी हो रही है।

२१ जूनको प्राण-प्रतिष्ठा-अनुष्ठानका अन्तिम अंग था भगवद्विग्रहोंका नीराजन। यह नीराजन सम्पन्न हुआ माँके कर-कमलोंसे। नीराजनके उपरान्त स्तुति-गायनके समयकी बात है। मन्दिरके मध्य गर्भ-गृहमें प्रतिष्ठित प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके श्रीविग्रहको बाबा लगभग २०-२५ मिनटतक निरन्तर देखते रहे। ऐसा नहीं कह करके, यह कहना चाहिये कि निरन्तर निहारते रहे। पलकके झपनेपर उस दिव्य छविसे अभिभूत बाबा कहने लगे — ठाकुरजी, ठाकुरजी हो गये। ये विग्रह यथार्थतः भगवद्विग्रह हैं। लावण्य-सौन्दर्य-माधुर्यसे भरपूर यह निराली छवि कितनी मनोहारिणी है!

'दाहिन दइउ होइ जब सबहीं', तभी इस प्रकारके और इस स्तरके दिव्य दृश्यको देखनेका और भावमय वचनको सुननेका सौभाग्य मिला करता है। अन्तरकी विभोरतासे बाबाका श्रीमुख भावित था। फिर हमलोगोंके अनुरोधपर बाबाने गर्भ-गृहमें प्रवेश किया और श्रीप्रिया-प्रियतमकी परिक्रमा लगाकर उनके श्रीचरणोंमें पुष्पार्चन किया एवं इत्र लगाया। बाबाके साथ महाराजजी भी थे। उन्होंने भी पुष्पार्चन किया। तदुपरान्त भगवान श्रीराम-चतुष्टय एवं भगवान श्रीपार्वती-शंकरके श्रीचरणोंका दर्शन किया। श्रीयुगल सरकारका नीराजन करके माँ गर्भ-गृहके प्रवेश-द्वारपर ही विराजी हुई थीं। अधिक देरतक खड़े रह सकना उनके लिये सम्भव नहीं था। सर्वान्तमें स्तुति एवं पुष्पाञ्जलि हो चुकनेपर मन्दिरके बाहरी द्वारपर प्रसादका वितरण होने लग गया और माँ, बाबा एवं महाराजजी विश्राम हेतु चले गये।

इस मन्दिरमें जिन भगवद्विग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई है, उनकी नामावली इस प्रकार है। (१) श्रीसिद्धिदाता गणेशजी, (२) श्रीराधा-माधव (३) श्रीराम-चतुष्टय (४) श्रीपार्वती-शंकर, (५) श्रीलक्ष्मी-नारायण, (६) महाशक्ति श्रीदुर्गा, (७) भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी, (८) भगवान श्रीसूर्यदेव और (९) संकटमोचन श्रीहनुमानजी। इनकी प्रतिष्ठा बाबूजी, माँ और बाबाकी भक्ति-भावनाके अनुरूप ही हुई है।

मन्दिरमें भगवान पार्वती-शंकरका भगवद्विग्रह प्रतिष्ठित है। भगवती पार्वतीजीने अपने वाम हस्तमें कमण्डलु धारण कर रखा है। इस कमण्डलुको देखकर बाबाके जीवनके एक प्रसंगकी स्मृति हो आती है। मैं निश्चयात्मक

रूपसे नहीं कह सकता कि यह प्रसंग किस वर्षका है।

एक बार बाबाने बतलाया था कि वाराणसीकी भूमिपर पैर रखते ही उनकी भावनाओंके स्वरूपमें विचित्र परिवर्तन तत्काल आ जाया करता था। बाबा बाहरसे दिखलायी देते थे संन्यासी-वेष-धारी पुरुष, परंतु हृदयकी भावनाके अनुसार उनका भीतरी स्वरूप सर्वथा विभिन्न होता। बाबाकी भावना यही होती थी – भगवती अन्नपूर्णा मेरी माँ हैं, भगवान विश्वनाथ मेरे पिता हैं और मैं उनकी लाडली पुत्री हूँ।

बाबाने यह भी बतलाया था कि जब-जब वे भगवान विश्वनाथके दर्शनार्थ मन्दिरमें गये हैं, तब-तब किसी विचित्र ईश्वरीय विधानसे ऐसा संयोग घटित हो जाया करता था कि कोई-न-कोई भगवान विश्वनाथका विधिवत् पूजन कर रहा है। उधर सविधि पूजन होता रहता और इधर एक कोनेमें किनारे खड़े रहकर बाबा अपनी भावमयी मानसिक अर्चना करते रहते। एक बारकी बात है। सुपुत्री-भाव-भावित बाबाने अपने पितृस्वरूप भगवान विश्वनाथको उपालम्भ देना आरम्भ कर दिया – हे पितृवर! मैं आपके यहाँ न जाने कितनी बार आयी, पर कभी भी आपने मेरा स्वागत, मेरा सम्मान नहीं किया। यदि ऐसी ही उपेक्षा आपकी ओरसे होती रही तो मैं कैसे समझूँ कि मैं अपने पिताके घर आयी हूँ।

इसी प्रकारके भाव बाबा एक किनारे खड़े-खड़े चुपचाप कहते रहे, पर कोई प्रत्यक्ष प्रतिफल सामने नहीं आया। भगवान विश्वनाथका दर्शन करके बाबा भगवती अन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें दर्शनार्थ चले गये। माँ अन्नपूर्णासे भी बाबाने उसी रीतिसे सुपुत्री-भाव-भावित होकर उपालम्भ देना आरम्भ कर दिया – माँ! तुम तो कोमल हृदया हो। तेरा हृदय तो वात्सल्यसे परिपूर्ण है। पिताजीने मेरी बात अनसुनी कर दी, पर तुम तो अपनी पुत्रीकी बात सुन लो। मैं कैसे समझूँ कि मैं वस्तुतः अपनी माँके घरपर आयी हूँ। पिताजीने मेरा कोई स्वागत-सत्कार नहीं किया, पर क्या इसी प्रकारसे खिन्न मन होकर मैं तेरे द्वारसे भी चली जाऊँ?

भगवती अन्नपूर्णाके मन्दिरमें भी कोई प्रतिफल दृष्टिगत नहीं हुआ। अन्नपूर्णाजीके मन्दिरसे एकदम सटा हुआ एक मन्दिर है, जिसके कई कक्षोंमें अलग-अलग कई भगवद्विग्रह विराजमान हैं। पहले उस मन्दिरमें जानेका मार्ग अन्नपूर्णाजीके मन्दिरमेंसे ही था, अब इस मार्गका कपाट बन्द कर दिया गया है। बाबा दर्शन तो कर रहे थे, पर मनमें उथल-पुथल भी थी। वे

मन-ही-मन ऐसा सोच रहे थे – क्या मेरी निष्ठामें कोई न्यूनता है अथवा मेरे भावमें कोई च्युति है, जो माँ अन्नपूर्णाके द्वारपर भी मेरी भावनाका समादर नहीं हुआ ?

बाबाके मनमें कुछ खिन्नता थी। मनमें खिन्नता लिये हुए बाबाने उस मन्दिरमें प्रवेश किया, जो भगवती श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरसे सटा हुआ है। उस मन्दिरमें वे खिन्न मनसे एक भगवद्विग्रहके दर्शनोपरान्त दूसरेका दर्शन करते हुए क्रमशः आगे बढ़ते जा रहे थे कि तभी उनके सामने एक महिला आयी। महिलाके मुख-मण्डलपर अत्यन्त तेज था। उनके काले-काले लम्बे-लम्बे केशोंकी राशि घुटनोंका स्पर्श कर रही थी और उनके हाथमें कमण्डलु था। उनके सामने आते ही बाबा एक किनारे हो गये, क्यों कि यदि नारी-स्पर्श हो जाता तो बाबाको एक दिनका उपवास करना पड़ता। किनारे होकर बाबाने ज्यों ही आगे बढ़नेका प्रयास किया, त्यों ही वे फिर समक्ष आ गयीं। बाबा जिस ओर हटते, उसी ओर वे बाबाके सामने आ जातीं। बाबाने दो-तीन बार बचावके लिये प्रयत्न किया। बचावका प्रयत्न करनेके बाद भी जब उनके द्वारा बार-बार सामने आनेकी चेष्टा होती रही तो बाबाकी आँखोंमें रोषकी रेखाएँ उभर आयीं। कुछ-कुछ तर्जनाके स्वरमें बाबा उनसे बोले – माताजी ! आप यह क्या कर रही हैं ? क्या आपके द्वारा ऐसी चेष्टा उचित है ? आप ही सोचें, एक संन्यासीको यति-धर्मकी रक्षामें सहयोग देना चाहिये या बाधा पहुँचानी चाहिये ? संन्यासीके लिये नारी-स्पर्श वर्जित है, यदि स्पर्श हो गया तो उपवास करना पड़ता है। क्या आप यही चाहती हैं कि मैं उपवास करूँ ?

बाबा रोषभरी दृष्टिसे उन महिलाकी ओर देखने लगे, परंतु उन महिलाके नेत्रोंमें बड़ी शान्ति थी और उनके अधरोंपर बड़ी निर्मल मुस्कान थी। बाबा एकटक उनकी ओर देखने लगे। वे पूर्ववत् सामने स्थित थीं। रहस्य कुछ भी समझमें नहीं आ रहा था। उनके मुख-मण्डलसे तेजस्विता प्रस्फुटित हो रही थी। बाबा उनके अरुण अधरोंपर फैली हुई उस विचित्र मधुर मुस्कानको, अति निर्मल मुस्कानको निहार रहे थे। निहारते-निहारते लगभग एक-दो मिनट बीते होंगे कि वे सहसा तिरोहित हो गयीं। उनके तिरोहित होते ही बाबाके ध्यानमें आया कि ये तो भगवती ब्रह्मचारिणीजी थीं, जो अपनी लाड़ली पुत्रीपर वात्सल्यकी वर्षा करने आयी थीं। उसी क्षण बाबाके नेत्रोंसे अश्रुका प्रवाह झर-झर बह चला। बाबाका हृदय रह-रह करके कह रहा

था – माँ! तुम माँ हो। तुम परम वत्सला हो। अत्यन्त कोमल हृदया हो। तुम्हें नमन, शत-शत नमन, बार-बार नमन!

अपने कपोलोंको आँसुओंसे भिगोते हुए बाबा वहीं बैठ गये और जहाँ भगवती ब्रह्मचारिणीजी खड़ी थीं, उस स्थानकी धूलिको बार-बार लेकर अपने मस्तकपर लगाने लगे।

वाराणसीमें जब भगवती ब्रह्मचारिणीजीने बाबाको दर्शन दिया था, तब उनके हाथमें कमण्डलु था। अब गीतावाटिकाके इस मन्दिरमें भगवती पार्वतीजीने अपने हाथमें जो कमण्डलु धारण कर रखा है, यह दिव्य छवि वाराणसीके उस दिव्य प्रसंगकी स्मृति दिला रही है।

यहींपर इसीसे सम्बन्धित एक विशेष तथ्यकी ओर संकेत करना आवश्यक लग रहा है। भगवद्विग्रहोंके निर्माणकर्ता मूर्तिकारको यह निर्देश दिया ही नहीं गया था कि भगवती पार्वतीके कर-पल्लवमें कमण्डलु भी होगा। उसने सहज भावसे कर-पल्लवमें कमण्डलुका निर्माण कर दिया। वह मूर्तिकार कमण्डलुके स्थानपर वाम करमें कमलकी अथवा किसी आयुधकी रचना कर सकता था, किंतु वही हुआ जो होना चाहिये था। उस मूर्तिकारने किसी अज्ञात प्रेरणासे बाबा-बाबूजीकी महाकार्य-स्थली गीतावाटिकाके लिये निर्मित होनेवाले देवी-विग्रहके कर-पल्लवमें कमण्डलुकी रचना कर दी। साधारणतः लोग यही कहेंगे कि यह तो मात्र संयोग था, परंतु अपनी आस्था तो ऐसी है कि अन्तर्जगतके सूक्ष्म और समर्थ भाव-तन्तु इस सारे निर्माण-कार्यको प्रभावित और नियन्त्रित कर रहे थे, तभी तो भगवती पार्वतीके श्रीविग्रहकी रचनामें उस प्रकारकी आकृतिका निर्माण स्वतः ही हो गया, जिसका सम्बन्ध बाबाके जीवनमें घटित प्रसंगसे है।

मन्दिरमें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजीका श्रीविग्रह प्रतिष्ठित है। ये प्रेमकी अधिष्ठातृ देवी हैं और इन्हें भगवती ललिताम्बा भी कहते हैं। इनकी प्रतिष्ठाके पीछे भी बाबाके जीवनका विस्तृत प्रसंग है। संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि भगवान श्रीकृष्णके आदेशके अनुसार बाबाने इनकी दीर्घ-काल-व्यापी अर्चनाकी थी। अर्चनाकी अवधिके पूर्ण होनेके बहुत पूर्व ही माँ ललिताम्बाने प्रसन्न होकर बाबाको अपना पावन दर्शन सन् १९५१ की अक्षय तृतीयाके दिन प्रदान किया था। अद्वैत तत्त्वके मूर्तिमानस्वरूप परमाचार्य पूज्यपाद श्रीआदि-शंकराचार्यजीने भी भगवती ललिताम्बाकी अर्चना की थी और जो सिद्धि उन्हें तब मिली, वही अब मिली बाबाको।

बाबाने तो ब्रह्मवैवर्त-पुराणोक्त विधिके अनुसार भगवान श्रीगणेशजीकी अर्चना की थी और अपने अनुभवके आधारपर बाबा कहा करते थे कि ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें श्रीगणेश-अर्चनाकी जो फल-श्रुति वर्णित है, वह सर्वथा सत्य है। बाबा तो बचपनसे ही भगवान शंकरके कृपा-पात्र रहे हैं और उनकी कृपाके अनेक चमत्कार बाबाके जीवनमें घटित हुए हैं। बाबूजीके समान ही बाबा भी पञ्चदेवोपासक थे। यही कारण है कि बाबूजीकी समाधिपर जो शिखर बना है, उसपर पञ्चदेवोंके प्रतीकोंकी प्रतिष्ठा बाबाने करवायी है और प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव तो बाबाके उज्ज्वलात्युज्ज्वल महाभावमय महारसमय जीवनके महाधार हैं ही।

मन्दिरमें जिन-जिन भगवद्विग्रहोंकी प्रतिष्ठा हुई है, उस प्रतिष्ठामें माँ, बाबूजी और बाबाकी, इन तीनों विभूतियोंकी साधना-सिद्धि- सिद्धान्तकी ही अभिव्यक्ति हुई है। यह प्रतिष्ठा इन तीनों विभूतियोंकी परमान्तरिक मान्यताओं और परमैकान्तिक उपलब्धियोंका व्यक्त रूप है। गीतावाटिकाकी महान विभूतियोंके भक्तिपूर्ण विचार और भावमय जीवनका मूर्त रूप है गीतावाटिकाका यह विशाल मन्दिर।

२१ जूनको प्राण-प्रतिष्ठाका पूजन-विधान बड़े प्रसन्न वातावरणमें सम्पन्न हो गया। २२ जूनकी रात्रिमें भगवद्विग्रहोंके समक्ष श्रीहरिनाम-संकीर्तन हुआ। इसका नेतृत्व कर रहे थे महाराजजी। माँ और बाबा भी इस संकीर्तनमें उपस्थित थे। नगरके लोग भी आ गये थे। रासमण्डलीके व्रजवासीगण थे ही। भक्तोंसे मन्दिरका प्रांगण लगभग भरा हुआ था। हरिनामके तुमुल संकीर्तनसे मन्दिरका वायुमण्डल गुंजायमान हो रहा था। बाबूजी कहा करते थे कि किसी भी अनुष्ठानके अन्तमें श्रीहरिनाम- संकीर्तन अवश्य करना चाहिये। भगवन्नाम-संकीर्तन सारे दोषोंका परिहार करके शुभकी प्रतिष्ठा तथा मंगलका विस्तार करता है। बाबूजीका वह कथन ही इस संकीर्तनके आयोजनका प्रेरक था।

* * * * *

बाबा-सन्निधि में भोजन

सन् १९८५ के वर्ष श्रीराधाष्टमी २२ सितम्बरको थी। १९ सितम्बरको पूज्य श्रीमहाराजजी मनकापुर नामक स्थानसे मोटरकार द्वारा मध्याह्नके समय चलनेवाले थे और कार्यक्रमके अनुसार उनकी कारको गीतावाटिका अपराह्न कालमें पहुँच जाना चाहिये था, परंतु कुछ कारणोंसे उन्हें मनकापुरसे चलनेमें विलम्ब हो गया। जब महाराजजीकी कार गीतावाटिका पहुँची, उस समय सूर्यास्त हो रहा था और बाबा भिक्षाके आसनपर बैठ चुके थे। महाराजजी जान-बूझकर बाबाके पास नहीं गये। यदि जाते तो बाबा भिक्षाके आसनसे उठ जाते और फिर बाबाके लिये आंशिक उपवास हो ही जाता। अतः महाराजजी सीधे अपने निवास-कुटीरपर चले गये।

जब भिक्षा समाप्त होनेवाली थी, उसी समय ठाकुरजी बाबाके पास पहुँच गये। ठाकुरजीको देखते ही बाबाने पूछा – महाराजजी कहाँ हैं?

ठाकुरजीने कहा – बाबा! कारसे लम्बी यात्रा करके आये हैं, अतः विश्राम कर रहे हैं।

इस उत्तरसे बाबाको बड़ा सन्तोष हुआ। भिक्षा कर चुकनेके बाद जब बाबाने जलसे हाथ धो लिया, तब बाबाने ठाकुरजीसे कहा – ठाकुर! तुम मेरे साथ चलो। महाराजजी यहाँ न आयें। मैं ही उनके निवास-कुटीरपर मिलनेके लिये चलूँगा।

ठाकुरजीने कहा – बाबा! रात्रिका समय है। इस समय आप कहाँ जायेंगे? आपको चलनेमें कष्ट भी होता है। महाराजजीको यहाँ आनेमें कोई परेशानी नहीं होगी।

बाबाने कहा – ठाकुर! आज तुमको मेरी बात माननी पड़ेगी। महाराजजीको यहाँ बुलाना नहीं है। मैं ही उनके पास चलूँगा।

इस प्रकार बाबा बात कर ही रहे थे कि महाराजजी बाबाके पास पहुँच गये। महाराजजीको देखकर बाबाने कहा – आज आपकी जीत हो गयी और मैं हार गया, पर कोई बात नहीं। मैं आपको निवास-कुटीरतक

तो पहुँचानेके लिये चल ही सकता हूँ।

लोगोंने बाबाको रोकना चाहा, पर बाबाको स्वीकार्य ही नहीं हो रहा था। ठाकुरजीने बाबासे कहा— बाबा! अभी महाराजजीको शौच-स्नानादिसे निवृत्त होना है। आप जायेंगे तो और विलम्ब होगा। आप यहीं विश्राम करें।

बाबाने ठाकुरजीकी बात मान ली। महाराजजी बाबाके पाससे अपने निवास-कुटीरपर चले आये। विविध कार्योंसे निवृत्त होनेमें महाराजजीको कुछ समय लग गया। अब महाराजजी भोजन करनेके लिये बैठनेवाले ही थे, तभी बाबा अपने एक-दो परिकरोंके हाथका सहारा लिये-लिये अँधेरेमें धीरे-धीरे चलते हुए महाराजजीके निवास-कुटीरपर चले आये। सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। बाबाके अकृत्रिम स्नेहको देखकर महाराजजीकी आँखें बार-बार सजल हो रही थीं।

बाबाने ठाकुरजीसे पूछा— क्यों ठाकुर! महाराजजीने भोजन कर लिया क्या?

ठाकुरजीने कहा— बाबा! अब करनेवाले हैं।

बाबाने कहा— यदि महाराजजीका नियम सर्वथा एकान्तमें भोजन करनेका हो, तब तो मुझे कुछ कहना नहीं है और यदि ऐसा नियम नहीं हो तो मेरे सामने भोजन करनेमें उन्हें कोई आपत्ति होगी क्या?

ठाकुरजीने कहा— आपत्ति क्या होगी? यह तो और भी सुन्दर बात होगी, पर एक बात है। महाराजजीको बड़ा संकोच होगा।

बाबाने कहा— जबतक महाराजजी भोजन करेंगे, मैं एक शब्द भी नहीं बोलूँगा। बस, मौन बैठा रहूँगा और चुपचाप बैठा हुआ देखता रहूँगा।

महाराजजीने बाबाकी उपस्थितिमें भोजन किया। बाबाकी उपस्थितिसे महाराजजीको संकोच तो बहुत हो रहा था, पर इसीके साथ-साथ उनके सांनिध्यका सुख भी मिल रहा था। बाबाकी उपस्थितिके सम्बन्धमें अपना अनुभव बादमें बताते हुए महाराजजीने कहा था कि ऐसा निरन्तर भान हो रहा था मानो अनन्त माताओंका वात्सल्य बाबाके नेत्रोंसे निर्झरित हो रहा हो। जबतक महाराजजी भोजन करते रहे, तबतक बाबा चुपचाप बैठे रहे। चुपचाप बैठे रहनेके बाद भी बाबा बार-बार

नेहभरी दृष्टिसे देखते रहते थे कि थालमें सामग्रियाँ भली प्रकारसे परोसी जा रही हैं अथवा नहीं। महाराजजीके भोजन कर लेनेके उपरान्त बाबाने कहा – ठाकुर! आज महाराजजीको भोजन करते देखकर मुझे जो सुख मिला, उसे बतला सकना मेरे लिये कठिन है। आज पहली बार मैंने महाराजजीको भोजन करते हुए देखा है। आज मेरे आनन्दकी सीमा नहीं।

ठाकुरजीने कहा – बाबा! महाराजजी आपके साथ दो-तीन बार भोजन कर चुके हैं। उस समय बाई परोस रही थी और आप दोनों साथ-साथ प्रसाद पा रहे थे।

बाबाने कहा – ठाकुर! तुम सर्वथा सत्य कह रहे होगे, पर मुझे तनिक भी स्मरण नहीं है। मुझे तो यही लग रहा है कि मैंने आज पहली बार महाराजजीको भोजन करते हुए देखा है। थोड़ी देर रुक करके बाबाने महाराजजीसे कहा – प्रीतिके राज्यमें इस विस्मृतिका भी एक स्वारस्य है। इस स्वारस्यके महत्त्वको केवल आप समझ सकते हैं। विस्मृतिके कारण प्रेमास्पदकी प्रत्येक दिवसकी प्रत्येक उक्ति और प्रत्येक चेष्टा पूर्णतः नवीन और पूर्णतः प्रथम प्रतीत होती है। इस सच्ची प्रतीतिके फलस्वरूप ही प्रत्येक दिवस नित्य नवीन सुखका विधायक बन जाता है।

बाबाके उद्‌गारोंको सुनकर महाराजजी अत्यन्त विभोर हो रहे थे। महाराजजीके विश्रामका समय जानकर बाबा अपनी कुटियापर चले आये।

* * * * *

आस्तिक भावका प्रभाव

आदरणीया बहिन श्रीचन्दाबाई ढाढनियाने भागलपुरसे पूज्य बाबाके पास भेंट स्वरूप कुछ चीजें भेजी और एक पत्र दिया। वस्तुओंको प्राप्त करके और पत्रको सुन करके बाबाने जो उत्तर लिखवाया, वह नीचे दिया जा रहा है। उत्तर स्वरूप भेजे गये पत्रकी पंक्तियोंको पढ़कर मनमें आस्था जमती है कि जीवनमें आस्तिक भाव होनेसे सब कुछ सम्भव है। यह पत्र १३ अप्रैल १९८७ को भेजा गया था।

।।श्रीहरिः।।

आदरणीया चन्दा बहिन,

तुम्हारा भेजा हुआ सामान चिउड़ा, फल, इलायची, फूल माला और तुम्हारा पत्र प्राप्त हो गया है, पर तुम्हारे स्वास्थ्यका समाचार सुनकर मनमें चिन्ता हो गयी। कई सौ मील दूर तुमको क्या भेज सकता हूँ? सोचनेपर मनमें यही स्फुरणा जागृत हुई कि मन-ही-मन तुम्हारा चिन्तन करके भगवानके चरणोंमें निवेदन कर दूँ कि प्रभु, चन्दा मेरी धर्मकी बहिन है, उसके कष्टके रूपमें आप ही उसकी परीक्षा ले रहे हैं, लेकिन मन घबड़ा उठना स्वाभाविक है। इसलिये मैंने यही उचित समझा कि सबसे अच्छा है भगवानके चरणोंमें तुम्हें समर्पित करके मैं उन्हींको कह दूँ कि हे प्रभो, हमारी धर्मकी चन्दा बहिनको सर्वथा सर्वांशमें निश्चिन्त बना दें। सबसे बढ़िया उपाय मेरे पास यही था। उसीका आश्रय लेकर सुन्दर-से-सुन्दर जो उपाय था, वही मैं कर गया हूँ। मन इतना शान्त हो गया है कि पत्र लिखाते समय भी याद नहीं रहता कि क्या बोल गया हूँ, क्या लिखा गया हूँ। यद्यपि मुझे किसी प्रकारका दुख नहीं है, किंतु मन सर्वथा शान्त हो जानेके कारण ऊहापोहकी गन्ध भी नहीं रह गयी है। पत्रके माध्यमसे बहिन! यही कहना है कि अनुकूल परिस्थितिका अनुभव होनेपर तो सभी आनन्दसे भर जाते हैं, पर हमारे ही कर्मफलके रूपमें जब कोई दुःख आकर पीड़ित करने लगता है, तब हाय-तौबा मचाने लगते हैं। ऐसा न होकर यदि हम भगवानके चरणोंमें कह बैठते कि हे प्रभो! आपकी मंगलमयी इच्छा पूर्ण हो तो उस समय ठीक-ठीक अनुभव भगवानकी कृपा करा देती कि भगवान जो करते हैं, मंगल ही करते हैं।

एक बारकी बात है। प्रयागके संगमपर मैं स्नान कर रहा था। अचानक धाराने मुझे गहरे पानीमें खींच लिया। मैं तैरनेमें बड़ा सुपटु हूँ, अतएव धारापर ही तैरने लगा, किन्तु धारा इतनी तेज थी कि हमें निकलने नहीं दे रही थी। लगभग आधा घंटा प्रयास करनेपर भी और अपनी सारी शक्ति लगा देनेपर भी धारासे छूट न सका। उस समय मनमें यह बात आयी कि सम्भवतः मेरे महाप्रयाणका समय हो रहा है। ऐसा विचार आते ही मैंने अपनेको धारापर छोड़ दिया, दोनों हाथ पैर

फैलाकर जैसे बिस्तरपर लेटते हैं, लेट गया और मन-ही-मन कह उठा कि हे प्राण बन्धो! आपकी मंगलमयी इच्छा पूर्ण हो। यह विचार आते ही जैसे कोई अपने दोनों हाथोंपर मुझे उठा ले, ऐसा अनुभव होकर लगभग बीस गज मेरे बायें हाथकी ओर जैसे कोई उठा लाया और कण्ठभर पानीमें मैं तैर रहा था। एक सेकेण्ड भी इसमें नहीं लगा। यही ठीक-ठीक मुझे अनुभव हुआ। जहाँ पानी बिल्कुल शान्त था, वहाँ मैं तैर रहा था। मन-ही-मन आश्चर्यमें डूब गया। आजसे लगभग बाइस वर्ष पहलेका अनुभव है। ऐसे ही न जाने कितनी बार भगवानने मुझको कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे बचाया है। यदि लिखवाने बैठ जाऊँ तो एक पोथा बन जायगा। इसलिये इस प्रसंगको यहीं छोड़कर यही कह रहा हूँ कि बिल्कुल घबड़ाना मत बहिनी! सम्पूर्ण साहसको बटोरकर हँसते-हँसते इस कष्टको सह लेना। बस, तुमको अनुभव हो जायेगा कि मेरा कहना कितना अधिक मूल्यवान है। जीवनभर मैंने यही अनुभव किया है। सदा यही अनुभव मुझे हुआ कि भगवानके मंगलमय विधानपर अपनेको छोड़ देनेके पश्चात् कुछ भी बाकी नहीं रहेगा। सब कर्तव्य पूर्ण हो जायेंगे और हँसते-खेलते मृत्युकी शान्तिमय गोदीमें चिरकालतक विश्राम करने लगोगी। हो सके तो इस ओर ही चेष्टा करना।

राधा राधा राधा राधा

* * * * *

श्रीमहाराजजी का अचानक आगमन

दिनांक २७-४-८६ को दिल्लीसे टेलीफोन आया कि आगामी प्रातःकाल श्रीमहाराजजी गोरखपुर पधार रहे हैं। इसे अचानक सूचना कहना चाहिये। इससे हम सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। विगत श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बाद जब महाराजजी वृन्दावनके लिये प्रस्थान करने लगे तो माँने उनसे शीघ्र पधारनेके लिये अनुरोध किया था। ऐसा लगता है कि माँके अनुरोधको महाराजजीने आदेशवत् शिरोधार्य कर लिया।

२८-४-८६ के प्रातःकाल महाराजजीका शुभागमन हुआ। उनके पधारनेसे बाबा तथा माँको अपार आनन्द हुआ। वस्तुतः गीतावाटिकाके वातावरणमें उल्लास परिव्याप्त हो गया। वृन्दावन धामकी, धामके

ठाकुरकी, ठाकुरके भक्तोंकी और भक्तोंकी रहनीकी सरस चर्चाने एक बार पुनः सबको संसिक्त करना प्रारम्भ कर दिया।

महाराजजीके शुभागमनका एक हेतु और भी था। माँके अनुरोधकी स्मृति तो महाराजजीको सदा बनी ही रहती थी, इसके बाद भी एक विशेष कार्य था। महाराजजी द्वारा लिखित कृतियोंका एक संग्रह उन दिनों प्रकाशित हुआ था। श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-राज्यका रस-रहस्य एवं विलास-माधुर्य ही इन कृतियोंमें शब्द-बद्ध हुआ है। इसे मधुर-रस-प्रधान ग्रन्थ कहना उपयुक्त रहेगा। महाराजजीको अपनी कृतियोंका प्रकाशन तनिक भी अभिप्रेत नहीं था, किन्तु निकटवर्ती निज जनोंके आग्रहभरे बार-बार अनुरोधको देखकर उन्हें अपनी सहमति विवशतः प्रदान करनी पड़ी। इस ग्रन्थका नाम है 'अद्भुत श्याम तमाल'। १२०० पृष्ठोंवाले इस विशाल ग्रन्थमें महाराजजीके चार लेख हैं। उनके नाम हैं – १-श्याम तमाल सुषमा कमनीय वेलि, २-सर्वस्वसार प्रिय सखी, ३-पूर्णता या पूर्णानुभव और ४-निज स्वरूप वैशिष्ट्य। सन् १९६१ से लेकर सन् १९८० तककी अवधिमें लिखित चार विस्तृत कृतियाँ इस ग्रन्थमें गुम्फित हैं। ग्रन्थके अक्षर महीन हैं, किन्तु इसकी सुसज्जा बड़ी ही आकर्षक है। ग्रन्थमें दिये गये चार चित्रोंमें से तो एक चित्र स्वयं महाराजजी द्वारा चित्रांकित है।

महाराजजीका निश्चय था कि इस ग्रन्थके प्रकाशित होते ही पहली प्रति सर्वप्रथम बाबाको भेंट करनी है और इस निश्चयको क्रियान्वित करना भी गोरखपुर-यात्राका एक हेतु था। २८-४-८६ के अपराह्न कालमें ठाकुरजीने बाबाके कर-पल्लवमें यह ग्रन्थ अर्पित किया। बाबाके नेत्र आह्लादसे परिपूर्ण हो उठे। बाबाने ग्रन्थको अपने मस्तकसे लगाया तथा इसके प्रकाशनके लिये विविध भाँतिसे साधुवाद दिया। फिर ग्रन्थका आरम्भिक अंश पढ़कर बाबाको सुनाया गया। बाबा ग्रन्थकी एवं महाराजजीकी भूरि-भूरि सराहना रह-रह करके कर रहे थे। २९-४-८६ को ग्रन्थकी दूसरी प्रति माँको भेंट-स्वरूप प्रदान की गयी। महाराजजीकी इस आत्मीयतासे माँका मुख-मण्डल मुस्कुराहटसे खिल उठा। माँने दीनता भरी वाणीमें धीरे-धीरे मन्द स्वरमें महाराजजीसे कहा – मैं भला इसे क्या समझूँगी? पर आप यहाँ पधारे, यह आपकी महान कृपा है।

पूज्य महाराजजी, ठाकुरजी आदि जब-जब गीतावाटिका आते थे, तब-तब सरसताकी वर्षा होती ही थी। इनके चरणोंमें बार-बार वन्दन! महाराजजीने यहाँसे ७-५-८६ को मध्याह्नके समय वृन्दावनके लिये प्रस्थान किया। महाराजजीके प्रस्थान कर चुकनेके बाद बाबाने कहा – महाराजजीकी उपस्थिति तो उत्सवस्वरूप ही होती है।

* * *

इसबार वाली यात्रामें ठाकुरजीके मुखसे बाबाके बारेमें कई मधुर बातें सुननेको मिलीं। ठाकुरजी बड़ी पुरानी बातें सुना रहे थे। बात सम्भवतः ३२, ३३ वर्ष पहलेकी होगी। उन दिनों बाबा कोठीके भीतर जाकर भिक्षा किया करते थे। पूजाघरके बाहरवाले बरामदेमें भिक्षा हुआ करती थी। बाबाकी पत्तलमें स्वयं माँ परोसा करती थीं।

एक दिन जब बाबा भिक्षा कर रहे थे, तब गोस्वामीजी वहीं पासमें बैठे हुए थे। भिक्षाके समय भी व्रज-भावकी रसीली सुन्दर चर्चा होती रहती थी। उस दिन भीड़ नहीं थी। गोस्वामीजी थे, ठाकुरजी थे और एक-दो व्यक्ति और रहे होंगे। वे सभी अन्तरंग जन ही थे। भिक्षा करते-करते उस रसीली चर्चाके मध्य बाबाके मनमें कोई मधुर भाव उदित हुआ। बाबाने गोस्वामीजीसे कहा – गोस्वामीपाद! वह कौन-सा पद है?

बाबाने यह कहा हाथमें कौर लिये-लिये। इस जिज्ञासाको व्यक्त करते समय बाबाके नेत्र कुछ-कुछ मुँद गये थे। उनके कौर वाला दाहिना हाथ कुछ ऊपरकी ओर उठ गया था। गोस्वामीजीको बाबाके संकेतोंकी और उनके भावकी जानकारी थी। जो रसीली चर्चा चल रही थी, उससे गोस्वामीजीको उस पदका अनुमान हो गया था। बाबाके द्वारा वैसा कहते ही गोस्वामीजीने उस अभिलषित पदका गायन आरम्भ कर दिया। जैसा भावमय पद था, वैसा ही भावपूर्ण गायन था। उस शान्त वातावरणमें पदका भाव-माधुर्य और गायनका स्वर-लालित्य लहराने लगा। बाबाकी जो आँखें कुछ-कुछ मुँदी हुई थीं, अब पूर्णतः मुँद गयीं। कौर वाला दाहिना हाथ जो ऊपर उठा हुआ था, वह धीरे-धीरे नीचे आकर स्थिर हो गया। बाबाके नेत्रोंसे अश्रु-बिन्दु टपकने लगे। अब केवल उनके कपोल ही नहीं भीग रहे थे, अपितु उनके आस-पासका सारा वातावरण भावसे भीग उठा। बाबाके दाहिने हाथसे कौर कब गिर गया, उनको पता ही नहीं चला। भिक्षा करना

स्थगित हो गया।

उस समय वहाँ जितने भी चार-पाँच लोग उपस्थित थे, सभी बाबाकी भावमयी स्थिति देखकर बड़े विभोर हो रहे थे, केवल एकको छोड़कर और वह एक थीं माँ। सभी उपस्थित जन आनन्दानुभवमें निमग्न हो रहे थे, पर माँका मन बड़ा खिन्न था कि बाबा ठीकसे भिक्षा नहीं कर पाये। बाबाकी भावविह्वल स्थितिकी स्मृतिसे ठाकुरजी बड़े ही पुलकित हो रहे थे।

मैंने ठाकुरजीसे पूछा – गोस्वामीजीने कौन-सा पद गाया था?

ठाकुरजीने कहा – इस समय तनिक भी स्मरण नहीं कि वह पद कौन-सा था, पर उस पदका प्रभाव और उस समयका सारा दृश्य मेरी आँखोंके सामने नाच रहा है।

ठाकुरजीके मुखसे इन भावपूर्ण प्रसंगोंको सुनकर हम सभी जनोंको कितना सुख मिलता था, क्या बतलायें... ...!

* * * * *

मन्दिरकी सीढ़ियोंपर

श्रीराधा कृष्ण साधना मन्दिरमें जगज्जननी भगवती श्रीसीताजीका जन्मोत्सव सोत्साह मनाया गया। अनुमानतः यह प्रसंग सन् १९८६ या १९८७ का होना चाहिये। मन्दिरके बड़े पुजारीजीने बाबासे उत्सवमें पधारनेके लिये अनुरोध किया और बाबा डा. श्री एल.डी. सिंहजीके हाथका सहारा लिये हुए मन्दिरमें आये। बाबाकी उपस्थितिसे उत्सवमें रंग आ गया। पूज्या माँ तो बाबासे पहले ही मन्दिरमें आ गयी थीं। पूज्या माँने अपने कर-कमलोंसे नीराजन किया। प्राकट्यकी आरतीके पश्चात् जब गर्भगृहमें षोडशोपचारसे सविधि पूजन-अर्चन हो रहा था, तब बाहर कीर्तन तथा पदगानका क्रम चल रहा था। श्रीजोशीजीने गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी द्वारा विरचित पद गाया 'कबहुक अंब अवसर पाइ'। इस पदको सुनकर बाबाकी भावनाएँ बड़ी उर्मिल हो उठीं। पदमें आत्म-निवेदन है ही ऐसा, जिससे भावोंको सूद्दीपन मिले। उत्सवके सम्पन्न होनेपर जब बाबा अपने आसनसे उठकर चलने लगे, उस समय भी भगवती श्रीसीताजीके कोमल

और सहज वात्सल्यकी सरस चर्चा कर रहे थे।

मातृ-हृदयका सहज वात्सल्य कैसा अद्‌भुत होता है, इसीका बखान करते-करते बाबा मन्दिरसे बाहर आ करके सीढ़ियोंसे नीचे उतर रहे थे। दोपहरके लगभग एक बज रहे थे। तीखी धूपके कारण सीढ़ियोंके पत्थर बहुत गर्म हो गये थे। पत्थरोंकी तपन पैरोंके तलवोंके लिये असह्य हो रही थी। वात्सल्यकी चर्चा करते-करते बाबाके श्रीमुखसे ऐसा निकल गया– इन गर्म पत्थरोंसे तो पैरोंमें बड़ी जलन हो रही है।

बाबाका इतना कहना था कि मैंने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया– बाबा! आपके इस कथनको सुनकर मुझे एक श्लोक याद आ रहा है।

नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं किमेतेन।
आतप-तापित-भूमौ माधव! मा धाव मा धाव॥

(ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नके समय मक्खनकी चोरी करते हुए श्रीकृष्णको गोपीने अपने घरके नवनीत-कक्षमें देख लिया। अब गोपीके द्वारा पकड़ लिये जानेके भयसे श्रीकृष्ण नंगे पैर सूर्य-तापसे तपते हुए पथपर भाग चले। पथकी तप्त धूलिसे श्रीकृष्णके कमलोपम कोमल पदोंमें भीषण जलन हो रही होगी, इस दृश्यसे संतप्त गोपी पुकार उठती है– हे माधव! यदि नवनीत ले लिया तो ले लिया, इससे क्या हुआ, परन्तु धूपसे तप्त भूमिपर तुम मत भागो, मत भागो।)

बाबाके लिये यह कोई नवीन श्लोक नहीं था। इसे बाबा कई बार सुन चुके थे तथा बोल भी चुके थे। सीढ़ियोंकी तपनसे संतप्त बाबाने ज्यों ही इस श्लोकको सुना, वे देहातीत हो गये। इसे सुनते ही बाबाने उल्लासित स्वरमें इस श्लोककी आवृत्ति की और फिर........... फिर गम्भीर मौन ——— और फिर नितान्त अन्तर्मुख। उस संतप्त हृदया गोपीके भाव-वैकल्यकी गहनताने बाबाको गहरे रूपसे अन्तर्मुख बना दिया। भाव-निमग्न बाबाको उस अत्याकुला गोपीके विकलान्तरने पूर्ण रूपसे विभावित कर लिया। बाबा डा.एल.डी.सिंहका सहारा लिये धीरे-धीरे सीढ़ियोंसे उतर रहे हैं, पर अब उन तपती सीढ़ियों की तपनसे होनेवाली जलनका भान नहीं। बाबा चुपचाप अपने 'नेह निकुञ्ज' में चले आये और लेट गये गैरिक बिस्तरपर। बहुत देरतक निस्स्पन्द पड़े रहे।

* * * * *

प्राकृतिक वातावरण में श्रीयोगिनी-लीला

प्रतिवर्षकी भाँति सन् १९८७ ई. में भी श्रीराधाष्टमी महोत्सव सोत्साह मनाया गया। महोत्सवके कई दिन पहले श्रीमहाराजजी वृन्दावनसे यहाँ गीतावाटिकामें पधार गये थे। महाराजजीका शुभागमन सदैव ही बाबाको परमाह्लाद प्रदान करता था। यह बात सत्य है कि महाराजजीकी उपस्थितिसे वाटिकामें मंगलका विस्तार होता था और वाटिकाके वातावरणमें सरसता व्याप्त हो जाती थी। जबतक महाराजजी यहाँ रहे, वे प्रतिदिन बाबाके पास प्रातःकाल जाया करते थे और लगभग एक घंटा बाबाके पास बैठा करते थे। इन क्षणोंमें बाबाके एवं महाराजजीके आह्लादकी छवि दर्शनीय हुआ करती थी।

सप्तमी तिथिको ही मध्याह्नके बाद अपराह्न कालमें श्रीयोगिनी लीला देवर्षि नारद मन्दिरके समक्ष हुई। देवर्षि नारद मन्दिर गीतावाटिकाके पिछले भागमें है। यदि वर्तमान गीतावाटिकाके सामनेवाले भागमें हनुमानप्रसाद पोद्दार-स्मारक-समितिका कार्यालय, बाबूजीका निवास-भवन, श्रीराधाकृष्ण मन्दिर, समाधि आदि हैं तो उसके पिछले भागको एक लघु वनस्थली कह सकते हैं; जिसमें पेड़-पौधों, फूलों-लताओंकी बहुलता है और साधु-संतों-साधकोंके रहनेके लिये तीन-चार एकान्त कुटीर हैं। इसी एकान्त वातावरणमें देवर्षि नारदका एक छोटा-सा मन्दिर है। यह मन्दिर उसी स्थानपर निर्मित है, जहाँ देवर्षि नारद तथा महर्षि अंगिराने आकर बाबूजीको दर्शन दिया था। इसी स्थानपर बाबूजीको देवर्षि नारदसे उस दिव्य प्रेमोपदेशकी प्राप्ति हुई थी, जिसका पल्लवित स्वरूप है 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन', 'पद-रत्नाकर' एवं अनेक ग्रन्थ।

इसी मन्दिरके सामने श्रीयोगिनी-लीला हुई। इस लीलाकी न तो घोषणा की गयी थी और न इसके लिये मंचकी तैयारी की गयी थी। एक चौकीपर एक बड़ी कुर्सी रख दी गयी। वही श्रीप्रिया-प्रियतमका सिंहासन था और चौकीके सामने एक दरी बिछा दी गयी थी। यह दरी ही लीलाकी रासस्थली थी। जो थोड़े-बहुत दर्शक थे, वे भूमिपर ही बैठे थे। अधिकांश लोग बैठे-बैठे और कुछ लोग खड़े-खड़े लीलाका दर्शन कर रहे थे। हाँ, कोई-कोई पेड़ोंपर चढ़कर और डालपर बैठकर देख रहे थे। दर्शकगणका यह

दृश्य भी अपने ही ढंगका था। अवश्य ही बाबा एवं महाराजजीके लिये एक आसन बिछा दिया गया था।

ऊँची-ऊँची हरी-हरी वृक्षावली, विविध फूलोंके सघन पौधोंकी पंक्तियाँ, वहींपर तुलसीजीका एक छोटा-सा वन, सँकरी-सँकरी यत्र-तत्र पगडंडियाँ, इस प्रकारके सुरम्य प्राकृतिक वातावरणमें यह रासलीला हुई। प्रकृतिकी मनोरम दृश्यावलीने सहज ही स्वाभाविक रंगमंच प्रस्तुत कर दिया। क्या लीलाके पात्र और क्या लीलाके दर्शक, सभीको प्राकृतिक रंगमंचने बड़ा उद्दीपन प्रदान किया। एक बात और, यदि एक ओर प्रकृतिका ऐसा सहज और शान्त वातावरण था तो दूसरी ओर प्रकृतिके धरातलसे सर्वथा उठे हुए दो संत-दर्शक, बाबा और महाराजजी वहाँ विराज रहे थे। इन सभी बातोंसे श्रीयोगिनी लीलाका रंग कुछ अनोखा ही रहा। साधारण दर्शकोंको भी भान नहीं कि गर्मीमें हम पसीनेसे भीग रहे हैं अथवा हम सब भूमिपर ही बैठे हुए हैं। सभीका मन लीलामें निमग्न था।

तभी एक आश्चर्य घटित हुआ। लीला लगभग दो-अढ़ाई घंटेतक हुई। लीलाके उत्तरार्धमें सूर्य भगवान इतना ढल आये कि वृक्षोंकी छाया हट गयी और बाबा तथा महाराजजीपर भगवान सूर्यकी किरणें सीधी पड़ रही थीं। उन तीव्र किरणोंसे बचाव करनेके लिये लीलाके मध्य न तो छाता ही लगाया जा सकता था और न स्थानान्तरण ही किया जा सकता था। भावनाएँ बड़ी विकल हो रही थीं, पर कोई उपाय भी नहीं था। तभी न जाने कहाँसे पूर्ण स्वच्छ आकाशमें बादलका एक टुकड़ा आ गया और तबतक छाता बनकर नभमें ठहरा रहा, जबतक लीला होती रही।

कहनेके लिये तो यह एक नगण्य घटना है, पर इससे विस्मय बहुत हुआ।

* * * * *

बाबूजीकी जयन्ती के अवसर पर श्रीरामकथा

सन् १९८७ के १९ सितम्बरको पूज्य बाबूजीका जन्म-दिवस था। बाबूजीकी जयन्तीके अवसरपर श्रीरामचरितमानसकी कथा कहनेके लिये चित्रकूटसे तुलसीपीठाधीश्वर प्रज्ञाचक्षु पूज्य आचार्य श्रीरामभद्रदासजी महाराज राघवीय यहाँ गीतावाटिका पधारे थे। श्रीरामचरितमानसके आधारपर श्रीलक्ष्मण-चरित्रपर आपका प्रवचन लगभग एक सप्ताह पर्यन्त प्रतिरात्रि डेढ़-दो घंटेतक होता। आपकी स्मरण शक्ति अद्‌भुत है। मानस, भागवत, उपनिषद् आदि अनेकानेक ग्रन्थ पूर्णतः कण्ठस्थ हैं। श्रीआचार्यचरणजीकी कथामें विद्वत्ता और भावुकता, दोनोंका अद्‌भुत समन्वय है। गोरखपुरके श्रोतागण आपके शास्त्र-पाण्डित्य और भाव-लालित्यसे बहुत प्रभावित रहे।

कौशल्यानन्दवर्धन दशरथकुमार श्रीरामललाजी ही आपके सेव्य हैं, जिन्हें आप मुन्ना सरकार कहते हैं। लड्डू गोपाल जैसे श्रीविग्रहकी बड़े भावसे सेवा-पूजा होती है। मुन्ना सरकारके प्रति आपका गुरुदेव वशिष्ठ भावसे अमित वात्सल्य है।

एक दिन श्रीआचार्यचरण बाबाके पास गये तो कहने लगे – बाबा! राघव पढ़ता नहीं है, आप इसे समझाइये कि पढ़ा करे।

उनके भावभरे शब्दोंको सुनकर बाबाका हृदय रीझ उठा।

* * *

एक बार बाबा श्रीआचार्यचरणके कमरेमें गये तो उन्होंने अपने मुन्ना सरकारको बाबाके युगल चरणोंमें रखते हुए श्रीरामललासे कहा – 'राघव! देखो, श्रीराधा बाबा आये हैं, इन्हें प्रणाम करो' और फिर बाबासे कहा – बाबा! आप इसे आशीर्वाद दें, जिससे इसका मन पढ़नेमें लगे।

बाबा तो इस वात्सल्य भावकी छविको देखकर अति विमुग्ध थे।

* * *

श्रीआचार्यचरण प्रायः प्रातःकाल बाबाके पास चले जाया करते थे। वहाँ एक बार उन्होंने बाबासे कहा – आपके श्रीमुखसे नित्य निकुञ्जेश्वरी भगवती श्रीराधाजीके सम्बन्धमें कुछ सुननेकी इच्छा होती है।

इस निवेदनके बाद भी बाबा कुछ अन्य ही चर्चा करते रहे, परंतु श्रीआचार्यचरण तो अपनी अभीष्ट वस्तु चाहते थे। श्रीआचार्यचरणने पुनः निवेदन किया – बाबा! विषयान्तर हो रहा है।

तब बाबाने कहा – श्रीराधा-महिमापर नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही कुछ कह सकनेमें जब स्वयंको असमर्थ पाते हैं, तब फिर भला मेरी कहाँ गिनती है? हाँ, कुछ लोग ऐसे हैं, जो विद्याकी धुरीको धारण करनेके कारण अपने आपको धुरन्धर विद्वान समझते हैं। विद्वत्ताके अहंकारमें वे विद्वान भले थोड़ी देर बोल लें, परंतु एक बात है। किसी अचिन्त्य कृपाके फलस्वरूप यदि किसी ऐसे विद्वानको श्रीराधारानीकी नख-कान्तिका किंचित् दर्शन वस्तुतः लवार्ध मात्रके लिये हो जाय तो यह सर्वथा सत्य है कि उनकी सम्पूर्ण वाचालता सर्वांशमें पूर्णतः कुण्ठित हो जायेगी।

बस, बस, यही उत्तर तो श्रीआचार्यचरण सुननेके लिये उत्सुक थे। इतना सुनते ही वे बार-बार साधु-साधु कहने लगे। उस समय श्रीआचार्यचरणका भावोल्लास दर्शनीय था।

* * *

गुरुवार १७ सितम्बरका प्रसंग तो बड़ा मधुर है। प्रातःकाल श्रीआचार्यचरण अपने दो बाल-शिष्योंके साथ बाबाके पास गये। वहाँ लगभग आधा घंटा बैठे रहे तथा विविध प्रकारकी चर्चा होती रही। जब श्रीआचार्यचरण चलने लगे तो बाबाने कहा – चलिये, कुछ दूरतक पहुँचा आऊँ।

आस-पास उपस्थित भक्तोंने यही सोचा कि बाबा अपने बाड़ेके द्वारतक जायेंगे। बाबा तथा श्रीआचार्यचरण साथ-साथ चलते रहे। बाड़ेसे बाहर आ जानेके बाद भी बाबा साथ-साथ चलते रहे। श्रीआचार्यचरणने वापस लौटनेके लिये एक-दो बार अनुरोध किया, इसके बाद भी बाबा साथ-साथ चलते रहे। कई बार अनुरोध करनेके बाद भी बाबा जब वापस नहीं लौटे तो श्रीआचार्यचरणने कहा – ऐसा लगता है कि आज राघवकी इच्छासे आप उसके पास चल रहे हैं।

मार्गमें एक स्थानपर किसीने पान खाकर थूक दिया था। उसे देखकर बाबाने कहा – किसी ताम्बूलप्रेमीने यहाँ थूककर गन्दगी फैला रखी है।

इसपर श्रीआचार्यचरणने कहा – किसी सामाजिकता-ज्ञान-शून्य असभ्यने ही ऐसा किया होगा।

बाबाने तुरंत कहा और बड़े प्रसन्न स्वरमें कहा – नहीं महाप्रभु! यह नटखट चपल चञ्चल नन्दपुत्र ही विभिन्न रूपोंमें इस प्रकारकी लीला करता रहता है।

इस उत्तरको सुनकर श्रीआचार्यचरण एकदम खिल उठे। बाबाके कथनका और उनकी भागवती दृष्टिका वे बार-बार अनुमोदन करने लगे। 'सीय राम मय सब जग जानी'के भावसे आद्यन्त एवं पूर्णतः भावित उनकी भागवती दृष्टिपर श्रीआचार्यचरण बलिहार जा रहे थे।

कमरेमें प्रवेश करते ही बाबा मुन्ना सरकार श्रीराघवकी ओर अग्रसर हुए। सिंहासनके समीप पहुँचते ही श्रीआचार्यचरणजीके शिष्य श्रीदयाशंकरजीने श्रीराघवको उठाकर बाबाके हाथमें दे दिया।

बाबाने तुरन्त अपने मस्तकपर धारण किया। जब मुन्ना सरकार श्रीराघवको बाबाके हाथमें दिया तो श्रीआचार्यचरणने कहा – बाबा! यह पढ़ता नहीं है।

तुरन्त ही बाबाने कहा – ऐसा लगता है कि यह बहुत नटखट हो गया है।

इसपर श्रीआचार्यचरण तथा उपस्थित भक्तगण खुलकर विहसने लगे। बाबाने श्रीविग्रहको सिंहासनपर पधरा देनेके लिये श्रीदयाशंकरजीको दे दिया। सिंहासनपर झुंझुनिया, घोड़ा, मोर, चिड़िया, झारी, झूला, लुटिया, इस प्रकारके अनेक खिलौने रखे हुए थे। बाबाकी रुचि देखकर श्रीदयाशंकरजी क्रमशः एक-एक खिलौना देखनेके लिये बाबाको देने लगे तथा उस-उस खिलौनेका परिचय तथा उसकी उपयोगिता बतलाने लगे। एक बार श्रीदयाशंकरजीने बाँये हाथसे एक खिलौना दे दिया तो बाबाने तुरन्त कहा – भगवानके खिलौने भगवानके पार्षद हैं। इनको दाहिने हाथसे देना और लेना चाहिये। भगवत्परिकरका पूर्ण सम्मान करना चाहिये।

श्रीदयाशंकरजीने अपनी भूल स्वीकार की और फिर वे दाहिने हाथसे देने लग गये। सच्ची बात तो यह है कि उल्लास और उत्साहके आधिक्यमें यह भूल उनसे अनजाने ही हो गयी थी। बाबा प्रत्येक खिलौनेको लेते, प्यार भरी निगाहोंसे उसे देखते और फिर अपने मस्तकसे लगाते। प्रत्येक खिलौनेका दर्शन करना, परिचय जानना और वन्दन करना, इसमें बहुत

समय लग गया। इसपर टिप्पणी करते हुए श्रीआचार्यचरणजीने कहा – बहुतसे लोग मेरे मुन्ना सरकार श्रीराघवका दर्शन करने आये, परंतु आजतक किसीने भी इस प्रकारसे दर्शन नहीं किया।

सिंहासनपर ही एक चाँदीकी डिबिया थी। उसकी ओर संकेत करके बाबाने पूछा – इसमें क्या है?

श्रीदयाशंकरजीने वह डिबिया खोलकर श्रीआचार्यचरणजीके हाथमें दे दी। उसमें मुन्ना सरकारका काजू-किशमिश प्रसाद था। श्रीआचार्यचरणजीने वह प्रसाद अपने कर-पल्लवमें लिया तथा अपने कर-पल्लवसे बाबाको खिलाया। फिर उसका अवशेष बाबाके कर-पल्लवमें देकर श्रीआचार्यचरणजीने बाबाके कर-पल्लवसे अपने मुखमें प्रसाद पाया। इस पर दोनों संत खूब हँसे। श्रीआचार्यचरणजी तो बहुत ही अधिक हँसे।

इसके बाद बाबा और श्रीआचार्यचरणजी, दोनों बिछी हुई चौकीपर एक साथ बैठ गये। उस समय बाबाको अपनी चौकीपर अपने समीप बैठे हुए देखकर बड़ी ही भाव-विह्वल वाणीमें श्रीआचार्यचरणजी बोल उठे –

'हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा।।'

अति भाव-विभोर स्वरसे इतना कहते-कहते उनके नेत्रोंमें आँसू छलक उठे। श्रीआचार्यचरणजीने अनेक बार प्रयास किया कि बाबाके श्रीचरणोंका स्पर्श प्राप्त हो, पर यह भला बाबाको कैसे स्वीकार हो पाता? प्रत्येक बार बाबाने उसका निवारण ही किया।

थोड़ी देर बाद बाबा अपनी कुटियापर वापस चले आये, परंतु बाबाके मनपर श्रीआचार्यचरणजीके कोमल वात्सल्य-भावकी अद्‌भुत छाप थी। मुन्ना सरकार श्रीराघवके प्रति उनके अनोखे वात्सल्य-भावकी बाबाने बड़ी भावभीनी भाषामें कई बार सराहना की।

* * * * *

पूज्य पंडितजी की भिक्षा

सन् १९८८ ई.की श्रीराधाजन्माष्टमीके चार-पाँच दिनों बाद बाबाकी भाव-विभोरताकी एक निराली छविके दर्शनका सौभाग्य मिला। मध्याह्न कालमें बाबा परिक्रमाके बाद माँके दर्शन करनेके लिये उनके कमरेमें गये। मैं उस कमरेमें पाँच मिनट पहले ही पहुँच गया, जिससे कि बाबाके विराजनेके लिये आसन बिछा दूँ। आसन बिछाते-बिछाते मैंने माँसे कहा – माँ! मैं परसों वृन्दावन जा रहा हूँ। कोई कार्य हो तो बतलाओ।

माँ ने कहा – वहाँ जा रहे हो तो पूज्य पण्डितजी महाराज (परम पूज्य पं. श्रीगयाप्रसादजी)के श्रीचरणोंमें मेरा प्रणाम कहना तथा मेरी ओरसे भिक्षा करवा देना।

माँके इतना कहते-कहते बाबा आ गये। बाबाने पूछा – माँ क्या कह रही है?

मैंने बाबासे कहा – माँ कह रही है कि वृन्दावन जा रहे हो तो पूज्य पण्डितजी महाराजको मेरी ओरसे भिक्षा करवा देना।

इतना सुनते ही माँसे बाबा कहने लगे – मैया! उनकी भिक्षा करा, अवश्य करवा। वे भिक्षा स्वीकार कर लेते हैं, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। उन जैसा भाव-भरित संत व्रजमण्डलमें भला कहाँ है?

मैंने बाबासे निवेदन किया – बाबा! जब-जब मैं वृन्दावन जाता हूँ, माँ भिक्षाके लिये कहा ही करती हैं और इस अनुरोधको पूज्य पण्डितजी स्वीकार कर ही लिया करते हैं।

बाबाने कहा – यह उनकी महान कृपा है।

इसके बाद मैंने बाबासे पूछा – पूज्य पण्डितजी आपके बारेमें कुछ पूछेंगे तो मैं क्या कहूँगा?

मेरा इतना कहना था कि बाबाके नेत्र गीले हो उठे। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और मुझसे कहने लगे – आप कह दीजियेगा कि बाबाने हाथ जोड़े-जोड़े कहा है कि आपके मानस पटलपर मेरी स्मृति उभर आती है, यह मेरा परम सौभाग्य है।

इतना कहते-कहते बाबाके नेत्र और अधिक भर आये। बाबा जो

बोल रहे थे, उनके अधरोंका एक-एक शब्द प्यारमें भीगा हुआ था, शब्दके एक-एक अक्षरसे प्यार चू रहा था। कुछ क्षण रुककर हाथ जोड़े-जोड़े बाबाने पुनः कहा – आज व्रजमण्डलमें उन जैसा कोई नहीं। उनकी महिमाका आदि-अन्त नहीं। उनके श्रीचरणमें बार-बार वन्दन!

फिर बाबा बोल नहीं पाये। मैं तो कुछ क्षण चुपचाप बाबाके भाव-विभोर मुखकी ओर देखता रहा। इसके थोड़ी देर बाद फिर बाबा माँसे बात करने लगे।

* * * * *

बाबा का जन्मोत्सव

१६ जनवरी १९८९ के दिन बाबाका जन्म-दिवस था। यह सर्व-प्रथम अवसर था, जब कि बाबाके जन्म-दिवसपर श्रीमहाराजजी गीतावाटिकामें विराज रहे हों। बाबा जब अत्यन्त रुग्ण हो गये थे, तब महाराजजी यहाँ पधारे थे। उन दिनों बाबाके स्वास्थ्यने भयावह मोड़ ले लिया था। सभी भयान्वित हो उठे थे। क्रमशः तबीयतमें पर्याप्त सुधार हुआ। यह तो प्रभुकी अहैतुकी कृपा एवं महाराजजीकी शुभ संनिधिका मंगलमय परिणाम था।

इस वर्ष यह एक अच्छा संयोग घटित हो गया कि बाबाके जन्म-दिवसकी जो विक्रम-तिथि तथा जो अंग्रेजी तारीख तब आविर्भावके समय थी, वही अब इस दिन भी थी। तब भी पौष शुक्ल नौमी तथा १६ जनवरी थी और इस वर्ष भी यही तिथि और यही तारीख रही। प्रातःकाल सूर्योदयसे बहुत पूर्व प्रभात-फेरी निकली और निकली श्रीराधाकृष्ण मन्दिरसे। यद्यपि घोर शीत पड़ रही थी, इसके बाद भी वाटिकाके-मोहल्लेके-नगरके अनेक भाई-बहिन मंगला-आरतीके समय मन्दिरमें स्नानादिसे निवृत्त होकर उपस्थित हो गये। प्रबल शीतके कारण बार-बार ऐसी आशंका हो रही थी कि मंगला-आरतीमें सम्भवतः बहुत कम लोग आ पायें, पर यह स्पष्ट दीख रहा था कि लोगोंके उत्साहके आधिक्यको शीतकी प्रबलता स्पर्श नहीं कर पा रही है।

मन्दिरमें मंगला-दर्शनके उपरान्त ठाकुरजीने बड़ा भाव-पूर्ण कीर्तन करवाया। जन्म-दिवसका मंगल अवसर, मन्दिरकी पावन स्थली,

प्रातःकालका शान्त वातावरण, भक्तोंकी विभोर श्रद्धा, ठाकुरजीका भावपूर्ण गायन, इन सबके कारण प्रातःकालीन पद-कीर्तन एवं नाम-कीर्तनका रंग कुछ अद्भुत ही था। उससे सभीके अन्तरमें भक्ति-भावना मधुर हिलोरे लेने लगी। उस हिलोरमें लहराते हुए श्रीराधाकृष्ण मन्दिरसे प्रभातफेरी निकली। अनेक बहिनोंके हाथोंमें फल, फूल एवं मेवोंसे भरे हुए सजे हुए थाल थाल अतीव सुशोभित हो रहे थे। प्रभात-फेरी करते-करते सभी गिरिराजजीके पास आये।

बाबा अपनी कुटियामें गैरिक आसनपर विराजे हुए श्रीमद्भगवद्गीता तथा श्रीरामचरितमानसका पाठ सुन रहे थे। बाबा नित्य प्रातःकाल इनके पावन पाठको सुना करते थे। सभीने जाकर बाबाको प्रणाम किया। फिर श्रीगिरिराज भगवानके पूजनका कार्यक्रम था। सभी भक्त वहाँ परिसरमें बैठ गये। आज प्रातःकाल श्रीगिरिराजजीका सविधि विस्तृत पूजन स्वयं महाराजजीने किया। पूजनके बाद महाराजजीने प्रसादका वितरण किया। सभीको महाराजजी अपने हाथसे फल तथा मेवे दे रहे थे। सभीका मन बड़ा भावमय हो रहा था। प्रातःकालका सभक्ति आराधन एवं सोल्लास कीर्तन सभीके भावोंको पल-प्रति-पल अधिकाधिक सत्त्व सम्पन्न बना रहा था।

अधिकांश व्यक्तियोंके दैनिक नित्य नियम अभी शेष थे। नित्यके दैनिक अर्चन-वन्दन और पूजा-पाठसे निवृत्त होकर सभी भक्तगण पुनः दस बजे श्रीराधाकृष्ण मन्दिरमें एकत्रित हुए। दस बजे मन्दिरसे श्रीप्रिया-प्रियतमके सचल भगवद्विग्रहकी शोभा-यात्रा निकली।

इस शोभा-यात्रामें मन्दिरके भगवद्विग्रहके अतिरिक्त श्रीराधाकृष्णके, श्रीशिवपञ्चायतनके, श्रीहनुमानजी महाराजके तथा श्रीलड्डूगोपालजीके नवीन श्रीविग्रह भी थे। ये सभी नवीन श्रीविग्रह प्रतिष्ठित होनेवाले हैं उस मन्दिरमें, जो बाबाके जन्मस्थानपर अभी-अभी बना है। बाबाकी जन्मभूमि कहलानेका गौरव फखरपुर ग्रामको है, जो बिहारके गया जिलेमें पड़ता है। फखरपुर ग्रामके मन्दिरमें पधरानेके पूर्व परम पूज्य बाबाकी सिद्ध दृष्टि इन श्रीविग्रहोंपर पड़ जाय, इसीलिये ये श्रीविग्रह गीतावाटिका लाये गये थे। आगामी वसंत पंचमीके दिन वहाँ उस नवनिर्मित मन्दिरमें ये श्रीविग्रह प्रतिष्ठित किये जायेंगे।

गीतावाटिकाकी परिक्रमा लगाते हुए यह शोभा यात्रा बाबूजीके

पावन-कक्षके बाहर खुली जगहमें थोड़ी देरके लिये ठहर गयी। वहाँ माँने श्रीप्रिया-प्रियतमके भगवद्‌विग्रहका तथा इन सभी नवीन श्रीविग्रहोंका बड़ी भक्ति-भावना सहित पूजन-वन्दन किया। माँको विस्तार पूर्वक इन नवीन श्रीविग्रहोंका परिचय दिया गया। फिर सभी लोग समाधि एवं श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा देते हुए बाबाके पास वहाँ आये, जहाँ वे खुले स्थानमें विराजे हुए धूप-सेवन कर रहे थे। वहीं सारे श्रीविग्रहोंको सुसज्जित सिंहासनपर पधरा दिया गया। महाराजजी भी बाबाके समीप अपने उच्चासनपर विराजित हो गये। सभी भक्त-गण बाबा और महाराजजीको घेरकर श्रीविग्रहोंके समक्ष बैठ गये।

कार्यक्रमका शुभारम्भ हुआ महाराजजीके पद-गायन द्वारा। महाराजजीने श्रीप्रबोधानन्दजी सरस्वतीद्वारा संस्कृत भाषामें विरचित एक अष्टपदीका गायन किया, जिसकी पहली पंक्ति है –

'स्मरतु मनो मम निरवधि राधाम्'॥

इस अष्टपदीकी २२ पंक्तियोंमें नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाजीके नख-शिख शोभाका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। महाराजजी अष्टपदीकी पंक्तियोंकी पद-पदपर आवृत्ति करते हुए बड़ी मस्तीके साथ गायन कर रहे थे और प्रत्येक आवृत्तिपर बाबाकी मस्ती भी मात्र अवलोकनीय ही नहीं, अपितु पल-पलपर अधिकाधिक आस्वादनीय थी। अनेक बार बाबाके श्रीमुखसे सराहनाके शब्दोच्छवास प्रस्फुटित हुए। बाबाका आनन्दोल्लास महाराजजीके मधुर भावोंको और अधिक आन्दोलित कर देता था। दो संतोंके आनन्दोल्लासका यह संगम सारे समुदायको मधुरानन्दोदधिकी लहरियोंपर बहाये ले जा रहा था। महाराजजी आनन्दातिरेकमें अपनी बाहुओंको बार-बार उठाते हुए गायन कर रहे थे। एक बार तो बड़ा विचित्र भावमय दृश्य देखनेको मिला। महाराजजीने ज्यों ही निम्नलिखित पंक्तियाँ गायीं –

रसिक सरस्वति गीत महाद्‌भुतराधारूपरहस्यम्।
वृन्दावनरसलालसमनसामिदमुपगेयमवश्यम् ॥

और फिर उन्होंने गाते-गाते 'राधारूपरहस्यम्' की आवृत्ति की, उसी समय बाबाका वाम-कर-पल्लव हृदयस्थ आह्लादकी विवशाभिव्यक्तिवशात् भावमयी-नृत्यमयी मुद्रामें लहराने लगा। बस-बस, तभी-तभी, उसी समय

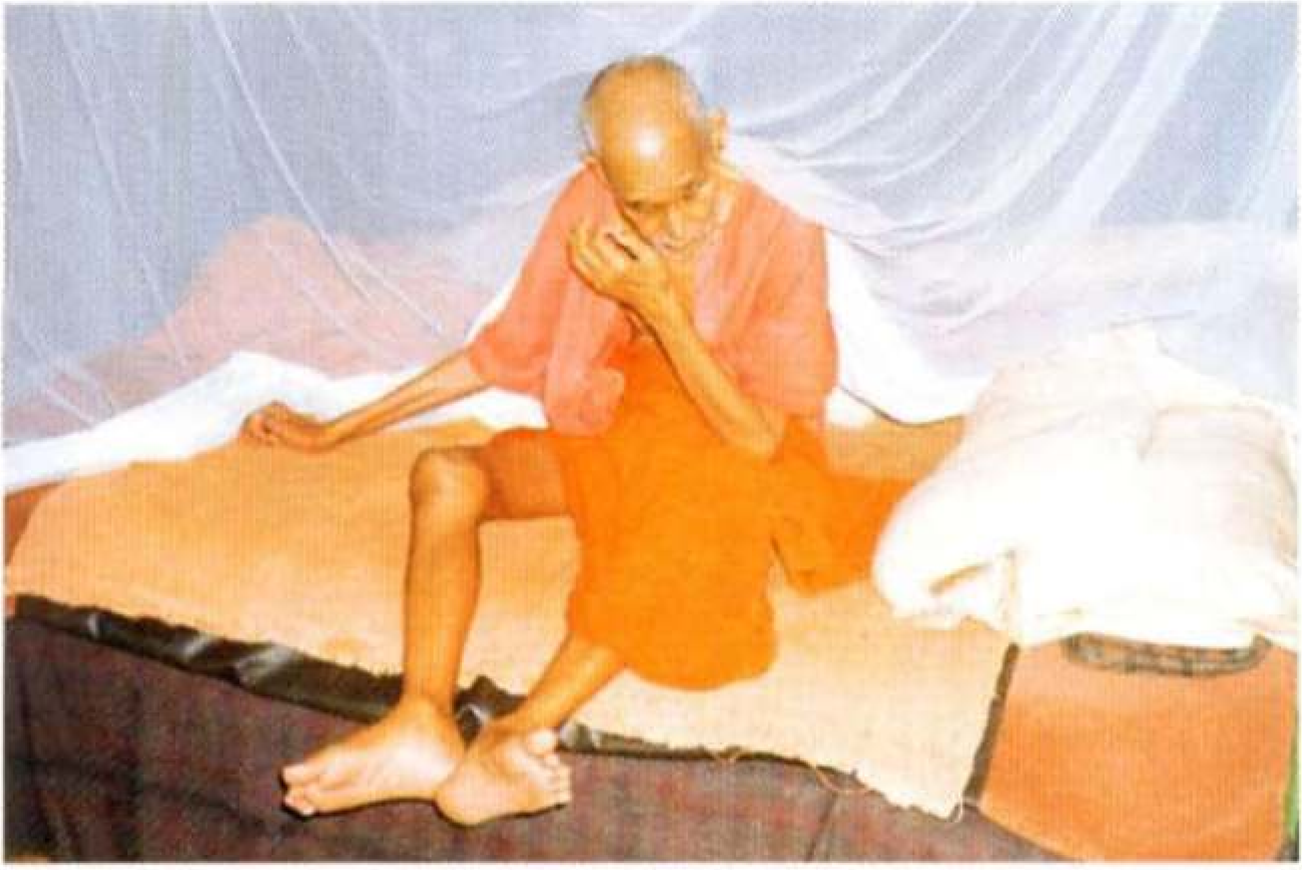
उस लहराते हुए वाम-कर-पल्लवको महाराजजीने अपने लहराते हुए दक्षिण-कर-पल्लवसे धीरेसे थाम लिया। कर-पल्लवका कर-पल्लवसे यह स्पर्श, मात्र संस्पर्श नहीं था, अपितु था रसावेशका रसाविष्टद्वारा रसावराधन-रसानुमोदन-रसाभिनन्दन। उस रसमय छविको देखकर भावुक भक्तोंके खिले हुए रसार्द्र युगल नेत्र खुले-के-खुले रह गये। उस समय इन दो संतोंके हृदयकी जो स्नेहिलता-उर्मिलता थी और भावोंकी जो मृदुलता-विपुलता थी, उसका वर्णन मैं कर नहीं पा रहा हूँ। उस प्रसंगकी कल्पनातीत सुन्दरता-मधुरता एवं प्रसंगके प्रभावकी वर्णनातीत विशदता-अतिशयता तो मात्र अनुभवगम्य है। इस अद्भुत छविका मादक प्रभाव महाद्भुत था। इसकी स्मृति मात्र आनन्द-विभोर बना रही है।

महाराजजीके गायनके उपरान्त बाईने बाबा द्वारा रचित 'जय जय प्रियतम' काव्य का वह अंश गाकर सुनाया, जिसमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके प्राकट्यका वर्णन है। यह वर्णन लगभग २४, २५ छन्दोंमें है। बाईके स्वरमें स्वर मिलाते हुए अन्य कई बहिनें साथ-साथ गायन कर रही थीं। इसके बाद ठाकुरजीने भी 'जय जय प्रियतम' काव्यका वह अंश सुनाया, जिसमें कालिन्दी-कूलपर विराजित कृष्णप्रिया श्रीराधाके चरणकमलसे चिपकी हुई तट-रेणुकाका वर्णन है। चरणार्पिता रेणुकाके समर्पण-भावकी गरिमाका, समर्पिता रेणुकाको प्रदत्त आश्वासनका और प्रियतम श्रीकृष्ण द्वारा आश्वासन-निर्वाहका यह भावपूर्ण वर्णन भी अपने ही ढंगका है।

वे छः छन्द इस प्रकार हैं –

प्रक्षालित किये तरंगोंने फिर पद हम दोनोंके, प्रियतम!
व्याकुल होकर आ चिपट गयी रेणुका किंतु अमला, प्रियतम!
'क्यों छोड़ चले तुम मुझे यहीं, दम्पति हे!' थी कहती, प्रियतम!
उज्ज्वल वितान था तान रहा ऊपर हिमकर करसे, प्रियतम।।

मनमें मैं व्यथित हुई-सी थी कह गयी – 'न छोड़ूँगी' प्रियतम!
'कोई भी हो, कैसी भी हो, जो जुड़ी तनिक-सी है', प्रियतम!
आशा उसकी मैं क्यों तोड़ूँ, साँवर तो हैं मेरे, प्रियतम!
दूँगी कह जो, कर लेंगे, फिर यह तो है पद थामें प्रियतम।।



अपने ही खयालों में



शीत-ऋतु में धूप सेवन



मधुर चर्चा



स्वजनों के मध्य

कितनी मृदुला कितनी हलकी, कितनी उजली यह है! प्रियतम!
जड़ बनी अपनपौ खोकर है मेरे ही लिये पड़ी, प्रियतम!
साँवरकी यह दासी इसकी निष्ठा कैसे भूले, प्रियतम!
'हे धूलि! परम मंगल हो, ये स्वीकार करें तुमको' प्रियतम॥

हे प्राणनाथ! हो गयी देर अब चलो कुञ्जमें हे प्रियतम!
हे श्यामचन्द्र! किरणोंका हूँ स्वागत करती कहती, प्रियतम!
देते रहना शीतलता ही अविराम यहाँ सबको, प्रियतम!
फिर रास दिखाऊँगी तुमको, कह चली, चले तुम भी प्रियतम॥

कुछ बात बताकर तुम हँसते, बन जाती 'फूल' हँसी, प्रियतम!
मेरे आगे बन जाता था सुन्दर पथ सुमनोंका, प्रियतम!
रखते पर पद तुम रजमें थे कुसुमोंको बचा-बचा प्रियतम!
था हेतु बताया – 'प्यारी! हैं प्राणोपम रजकणिका, प्रियतम॥

जब दयामयी तुमने इच्छा कर ली ये साथ चलें, प्रियतम!
त्यागूँ कैसे फिर मैं इनको, हूँ जहाँ रहेंगी ये, प्रियतम!
मेरे प्राणोंकी रानीके पदमें जो चिपक गयीं, प्रियतम!
उनको क्या दे सकता हूँ मैं, ऋणिया हूँ नित्य बना', प्रियतम॥

ठाकुरजीने इन छः छन्दोंको शिवरञ्जनी रागमें गाया था और सारा वातावरण छन्द-प्रति-छन्द गायनसे अधिकाधिक भावमय होता जा रहा था।

'जय जय प्रियतम' काव्यके इस सरस प्रसंगका एक अति विशेष महत्त्व है और इस महत्त्वकी ओर संकेत स्वयं बाबाने बहुत पहले एक बार किया था। सन् १९५६ की शरद पूर्णिमाको बाबाने काष्ठ मौन व्रत लिया था। यह ऐसा अवसर था, जब बाबा रसोदधिमें गहनावगाहन हेतु अवतरण करनेवाले थे। उस अवसरपर मौन व्रत लेनेके कुछ ही देर पूर्व कुटियाके पूर्णैकान्तमें बाबा और बाबूजीके मध्य थोड़ी देर पारस्परिक मधुर संलाप हुआ था। बाबाने यह तो बतलाया नहीं कि संलाप क्या हुआ था, पर इतना अवश्य संकेत रूपमें कहा था कि इस यमुना-तट-लीलामें जिन भावोंकी प्रधानता है, लगभग ऐसी ही भावधारा उभर-उभर करके उस एकान्त संलापके समय हम दोनोंके अन्तरको अत्यन्त विह्वल बना रही थी। इस सरस लीलाके और उस मधुर संलापके भाव-प्रवाहमें अनुमानातीत साम्य है।

अब इस प्रसंगसे यह तथ्य स्पष्ट ध्वनित होता है कि बाबासे जो-जो

व्यक्ति जुड़े हुए हैं, चाहे वे कैसे भी हों, उन-उनका पूर्ण दायित्व बाबूजीने स्वीकार कर लिया है और यह प्रसंग चरणाश्रित जनोंके लिये कितनी अधिक प्रेरणा और कितने अधिक आश्वासनकी वस्तु है। मैं औरोंकी बात तो कहता नहीं, पर मैं अपनी कह सकता हूँ कि बाबाकी इस वाणीकी स्मृति होते ही अन्तर परम धन्यता और परम सौभाग्यके भावोंसे आप्लावित हो उठता है।

ठाकुरजीके गायनके बाद हरिवल्लभजीने हरिनाम कीर्तन करवाया और उसके बाद भगवद्विग्रहोंका नीराजन एवं प्रसाद-वितरण हुआ। आज बाबा बड़ी ही प्रसन्न मुद्रामें आद्यन्त रहे।

इस कार्यक्रमके बाद श्रीराधाकृष्णके दो चित्रोंका उन्मुक्त वितरण हुआ। बाबाके हाथसे चित्र पाकर सभी बड़े आनन्दित हो रहे थे। मेरा अनुमान है कि जिन-जिनने बाबाके हाथसे चित्र प्राप्त किये हैं, वे लोग उसे अपने पूजाघरमें पधरा दिये होंगे।

अपराह्न कालमें श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा हुई। परिक्रमामें हरिवल्लभजीने गाया – 'कालिन्दी! धीरे बहो, मेरे प्रियतम उतरेंगे पार'। यह बाबाकी रचना है। कालिन्दी-कूलपर बैठी हुई कृष्णप्रिया श्रीराधाजी यमुनाजीसे अनुरोध कर रही हैं मन्द-मन्द बहनेके लिये। जब हरिवल्लभजी पीलू रागमें गा रहे थे तो एक-दो बार बाबाने आलापचारी भी की। इस आलापचारीको सुनकर सभी उत्फुल्ल हो उठे। बहुत दिनोंके बाद बाबाके मुखसे आलापचारी सुननेको मिली थी।

इसी पंक्तिके भावोंको लेकर गोरखपुर विश्वविद्यालयके प्राध्यापक श्रीविश्वम्भरशरणजी पाठकने संस्कृत भाषामें एक गीत लिखा है। वह संस्कृत गीत भी परिक्रमामें गाया गया और बाबा अर्थानुसंधानपूर्वक उस संस्कृत रचनाका आस्वादन ले रहे थे। गीतमें ज्यों ही कोमल भावोंकी ललित अभिव्यक्तिका स्थल आता था, बाबा ग्रीवा डुला-डुलाकर सराहना करते थे। परिक्रमाका वातावरण भी बड़ा आह्लादपूर्ण रहा।

सूर्यास्तके समय भगवान श्रीगिरिराजजीका पुनः विशद रूपसे पूजन हुआ। इस समय भी पूजन महाराजजीने किया। सूर्योदयके समय तो केवल फलों तथा मेवोंका नैवेद्य अर्पित किया गया था, पर इस समय अन्नकूटका निवेदन बृहद् रूपमें था। सभीको भरपूर प्रसाद मिला। बाबाकी भिक्षाके उपरान्त रात्रिमें आठ बजेसे दस बजेतक श्रीराधाकृष्ण मन्दिरमें भजन-कीर्तनका कार्यक्रम था।

यद्यपि दिनभरकी व्यस्तताके कारण महाराजजी पर्याप्त श्रमित हो गये थे, इसके बाद भी महाराजजीने मन्दिरके कार्यक्रममें पधारनेकी कृपा की। महाराजजीकी उपस्थितिसे बात कुछ और ही प्रकारकी बन गयी।

* * * * *

विभिन्न भाव दशाएँ

श्रीराधेश्यामजी मिश्र बाबाको प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले ही एक अध्याय गीता और श्रीविष्णु सहस्रनाम सुनाया करते थे। इसके अतिरिक्त श्रीचैतन्य चरितावली, भक्तमाल आदि-आदि न जाने कितने ग्रन्थ और चरित उन्होंने बाबाको सुनाये होंगे। मिश्रजीके मनमें यह भाव स्फुरित हुआ कि यदि बाबा श्रीरामचरितमानस भी प्रतिदिन सुनते तो कितना अच्छा रहता। मनमें श्रीरामचरितमानस सुनानेका चाव बहुत अधिक था, परन्तु उन्होंने कभी भी यह इच्छा व्यक्त नहीं की। थोड़े ही दिन बीते होंगे कि बाबाने कहा – हे मिसिर! गीताकी तरह रोज रामायण भी सुना दिया करो, श्रीरामचरितमानसका एक मासिक विश्राम प्रतिदिन।

यह तो मिश्रजीके मनकी चाही हुई बात थी ही। मिश्रजीका मन आनन्दसे भर गया। अब वे बाबाको श्रीरामचरितमानस प्रतिदिन प्रातःकाल सुनाने लगे। श्रीरामचरितमानसको सुनते समय बाबाकी जो भावदशा बनती, वह देखने योग्य ही होती। बाबाकी उन भावदशाओंका चित्रण सहज नहीं है। श्रीरामचरितमानसके आरम्भमें श्रीशिवचरितका वर्णन है। श्रीशिवचरितको सुनते समय बाबा भगवान शंकरके भावमें निमग्न रहते। शंकरभावमें निमग्न बाबाको ऐसा लगता कि गोस्वामीजी मेरी ही कथाका वर्णन कर रहे हैं। जब दशरथ चरित आता, तब बाबा दशरथ-भावमें निमग्न हो जाते और बाबा ऐसा अनुभव करते कि मैं अपने वत्स श्रीरामभद्रका विवाह करानेके लिये बारात लेकर अयोध्यासे जनकपुर जा रहा हूँ। जब विवाहका प्रसंग आता तो ऐसा लगता कि बाबा मिथिलाके श्रीजनकराज हैं और दूल्हा रामका पैर पूज रहे हैं। विवाह हो जानेके बाद बाबा श्रीराम भावमें प्रतिष्ठित हो जाते और कहने लगते – श्रीजनकजी मेरे श्वसुर हैं।

ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि उन-उन भाव-दशाओंमें निमग्न बाबाके श्रीमुखसे जो उद्‌गार फूट पड़ते थे, उन-उन उद्‌गारोंके व्यक्त हो जानेके बाद

उनकी भावदशा बदल जाया करती थी। कभी-कभी उसी भावमें बाबा कई घण्टेतक डूबे रहते। मिथिलामें विवाह प्रसंग चल रहा था। बाबा दूल्हा रामके भावमें निमग्न थे। बाबाकी भाव-निमग्नताको देख-देख करके मिश्रजी भी बड़े विभोर हो रहे थे। भाव विभोर मिश्रजीने बाबासे कहा – आज आपका विवाह हुआ है आप सबको मिठाई खिलाइये।

बाबा पूर्ण उल्लासके स्वरमें कहने लगे – हाँ, हाँ, सब लोग खाओ। खूब खाओ। आज विवाह हुआ है। देखो, देखो, जनकपुरमें कैसी खुशियाँ छायी हुई हैं। जीमनवारमें जो मिठाई खायी, उसका स्वाद अभीतक बना हुआ है।

अयोध्याकाण्डमें जब श्रीदशरथजीके निधनका प्रसंग आता तो बाबाके आँखोंके आँसू सूखते ही नहीं थे। क्या-क्या बतलाया और क्या-क्या लिखा जाय? श्रीरामचरितमानसके पाठके समय कथा-प्रवाहमें जब जैसा प्रसंग आता, बाबाको यह लगता कि यह मेरा ही वर्णन हो रहा है। कभी केवट-भावमें, कभी भारद्वाज-भावमें, कभी वाल्मीकि-भावमें बाबा डूबे रहते। जब श्रीसुमन्त्रजी रिक्त रथ लेकर अयोध्या लौटते तो उस समय ऐसा लगता कि बाबा ही लौट रहे हैं और श्रीसुमन्त्रजीके आ जानेके बाद श्रीराम विरहमें श्रीदशरथजी जब अपने प्राणोंका परित्याग करते और इसका करुण प्रसंग सुनते, तब बाबाकी दशा कल्पनातीत रूपसे बड़ी विचित्र हो जाती। उस समय ऐसा लगता मानो चौकीपर विराजे हुए बाबा अपने आसनपरसे नीचे भूमिपर गिर पड़ेंगे। बाबाकी जैसी दारुण दशा होती, उसको देखकर श्रीरामचरितमानसका पाठ सुना पाना बन नहीं पाता और मिश्रजीको विवश होकर पाठको वहींपर विश्राम दे देना पड़ता। यह बात केवल एक बारकी नहीं है। बाबाको मिश्रजीने श्रीरामचरितमानस आरम्भसे अन्ततक कई बार सुनाया है और जब-जब पाठके मध्य श्रीदशरथ निधनका प्रसंग आता, तब-तब भावाधिक्यके कारण बाबाकी विकल स्थिति बहुत विचित्र हो जाती। हम और आप अनुमान नहीं लगा सकते कि वह स्थिति कितनी विकट और विशिष्ट हो जाया करती थी।

श्रीभरतचरित तो बाबाका प्राण था। श्रीभरतचरितके आरम्भ होते ही वे अत्यन्त भाव विभोर हो जाते। 'पुलक सरीर बिलोचन बारी' और 'मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं' का प्रत्यक्ष उदाहरण मिश्रजीके सामने मूर्तिमान रहता। श्रीरामचरितमानसमें आया है – 'भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल अलि गति जैसी।।' और बाबाकी सहज भावदशाको देखकर कुछ-कुछ अनुमान

लगाया जा सकता है कि त्रेतायुगमें भाई भरतकी भावमयता कैसी रही होगी! मानसके अयोध्याकाण्डका पाठ होते समय कभी दशरथ-भावमें, कभी भरत-भावमें, कभी राम-भावमें, कभी जनक-भावमें उनकी लोकोत्तर दशा देखते ही बनती थी। 'बनइ न कहत प्रीति अधिकाई।'

जब अरण्यकाण्डमें श्रीसुतीक्ष्ण प्रसंग आता, तब बाबा ऐसे थिरकते रहते मानो भगवान श्रीरामके दर्शनके लिये भागे चले जा रहे हों और बार-बार कह रहे हों – 'रामचन्द्र चन्द्र तू चकोर मोहि कीजिये'। माँ शबरीका प्रसंग आते ही बाबा मिश्रजीसे पूछते –नवधा भक्तिमें पाँचवाँ भजन मन्त्र-जप बतलाया गया है। अब बतलाओ, श्रीरघुनाथजीने माँ शबरीको जप करनेके लिये कौन-सा मन्त्र बतलाया था।

मिश्रजीको ऐसे रसमय अवसरोंपर मौन रहना ही प्रिय लगता था। पूछे जानेपर मिश्रजी चुपचाप और एकटक बाबाकी ओर देखने लगते। फिर बाबा स्वयं ही बोल पड़ते – राम राम राम राम। हे मिसिर! यही मन्त्र है। इसी मन्त्रका जप करनेके लिये श्रीरघुनाथजीने कहा था।

माँ शबरीके प्रसंगके तुरन्त बाद श्रीनारद प्रसंग आता है और देवर्षि नारदने इसी वरदानकी याचना की है।

'राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका।।'

पाठके समय इस चौपाईके आते ही बाबा बोल पड़ते – देखो मिसिर! देखो, श्रीरामनाम ही महामंत्र है और इसकी पुष्टि देवर्षि नारदके इस प्रसंग द्वारा भी हो रही है।

सुन्दरकाण्डको बाबा हनुमानकाण्ड कहा करते थे। बाबाकी मान्यता सदैव यही रही है कि इस काण्डमें रामभक्त श्रीहनुमानजी महाराजके पावन और यशस्वी चरित्रका अति सुन्दर रूपमें वर्णन हुआ है और इसीलिये मानस रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजीने इसका नाम सुन्दरकाण्ड रखा है। श्रीहनुमानजी महाराज तो अत्यन्त विनम्र और निरभिमानी थे, अतः गोस्वामीजीको 'पवनसुतकाण्ड' नाम नहीं रखने दिया।

अब प्रसंगानुसार एक दृश्यकी ओर इंगित करना आवश्यक तो नहीं है, परन्तु अनावश्यक भी नहीं लग रहा है। लंका दहनके उपरान्त वहाँसे वापस आकर श्रीहनुमानजीने भगवान श्रीरामको अशोक वाटिकाकी वन्दिनी एवं विरह-व्यथासे पीड़ित भगवती सीताका संदेश दिया और प्रेमाकुल-हर्षाकुल हनुमानजी

प्रभु श्रीरामके युगल चरणकमलोंपर गिर पड़े। सलिलित नयन और पुलकित वदन श्रीहनुमानजीका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं –

बार बार प्रभु चहइ उठावा।
प्रेम मगन तेहि उठब न भावा।।
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा।।

यह प्रसंग आते ही मिश्रजी अपने मनमें स्वयं ही स्वयंसे कहते – अरे नराधम! इस समय तू बन जा थोड़ी देरके लिये हनुमान। हाँ, बनावटी हनुमान बन जा और पकड़ ले इन बाबाके समर्थ युगल चरण, जो नर रूपमें भगवान श्रीरामचन्द्रजी ही हैं।

इधर तो मिश्रजीके मनमें यह मधुर भावकुता उभरी और उधर तुरन्त उन्होंने अपना मस्तक चौकीपर बैठे हुए बाबाके श्रीचरणकमलोंपर रख दिया। मिश्रजीके सौभाग्यकी सीमा नहीं। बाबा उनके मस्तकपर अपना दक्षिण करकमल फेरने लगे। क्या ही भावपूर्ण वह दृश्य रहा होगा!

लंकाकाण्डमें जब भगवान श्रीरामचन्द्रजीने भोले बाबा भगवान श्रीरामेश्वरजीकी स्थापना की, तब ऐसा लगता मानो वह स्थापना बाबाके द्वारा हो रही है। मेघनादकी वीरघातिनी शक्तिसे आहत भाई श्रीलक्ष्मणका वर्णन आते ही बाबाको ऐसा लगता कि वह शक्ति मेरे हृदयमें शूलके समान भीषण रूपसे चुभ रही है। जब उत्तरकाण्डका पाठ चलता, तब प्रतीक्षा व्याकुल श्रीभरतजीका विगलित-विकलित अन्तर बाबाको पंक्ति-प्रति-पंक्ति गलाता-बहाता-रुलाता रहता और इस रोदनका विराम होता तब, जब श्रीराम-भरत-मिलनका प्रसंग आता। उत्तरकाण्डका उत्तरांश आते ही बाबा नितान्त गम्भीर हो जाते।

इस उत्तरांशमें भक्त शिरोमणि काकभुशुण्डिजीके श्रीमुखसे श्रीरामभक्तिकी श्रेष्ठताका जैसा प्रतिपादन हुआ है, वह वर्णन वस्तुतः बाबाकी निजी मान्यता ही है। भक्ति-ज्ञान- कर्म-त्याग-सदाचार आदि-आदिके सम्बन्धमें जिन तत्त्व-रहस्य-प्रभाव-महिमा आदि-आदिका विवेचन और उद्घाटन किया गया है, वे यथार्थतः बाबाके जीवनके निर्णीत और अनुभूत सत्य हैं। ऐसे अवसरपर बाबाका गम्भीर होकर अन्तर्मुखी हो जाना नितान्त स्वाभाविक है।

* * * * *

एक प्रेरणाप्रद पत्र

एक स्वजनने बाबाके नाम पत्र भेजा और बड़ी भावभरी रीतिसे निवेदन किया कि जीवनके निर्माणके लिये कुछ बतलानेकी कृपा करें। इसके उत्तरमें बाबाने जो लिखवाया, उसको नीचे उद्धृत किया जा रहा है –

''भगवत्कृपा प्राणी मात्रके ऊपर निरन्तर बरस रही है। जीवका इस विश्वमें एक मात्र कर्तव्य यह है कि वह उस कृपाका आदर करके अपने जीवनको इस अजस्र धारामें निमज्जित कर दे। पूर्व-जन्मके कर्मोंसे निर्मित प्रारब्ध तो संसार-चक्रको चलाता ही रहता है, भविष्यमें चलाता भी रहेगा। उसकी ओर आसक्ति तथा उसके लिये चिन्ता करना तो अपने अमूल्य जीवनको व्यर्थ करना ही है।

भगवानकी कृपासे जो मानव-जीवन मिला है, उसको व्यर्थ करनेवाला तो आत्म-हन्ता ही है। चकोरके समान प्रियका एकान्त दर्शन करना, भ्रमरके समान उनके प्रीति-रसका निरन्तर पान करना और जलसे बाहर निकली हुई मछलीके समान प्रियके वियोगमें असीम व्यथाका अनुभव करना, यह इस जीवनका परम आदर्श है।

मेरी मंगल कामना है कि आपका चित्त निरन्तर भगवानका वासस्थल बन जाय, आपकी जिह्वा सदा उनका नाम संकीर्तन करती रहे, आपके मनमें प्यारेकी छवि निरन्तर अंकित रहे और आपकी आँखोंमें सदा बसे रहें दोउ चंद।''

* * * * *

भाव-देहकी साधना

व्रजभावके कुछ पदोंका मैंने संग्रह कर रखा था। बाबा उन पदोंको आदरणीय श्रीहरिवल्लभजी कीर्तनियासे गवाया करते थे। गवा-गवा करके उनपर रागका नाम लिखवाया करते थे। जब एक राग पसन्द नहीं आती तो उसी पदको किसी अन्य रागमें गानेके लिये वे उनको कहा करते थे। हरिवल्लभजी दूसरी रागमें गाने लगते थे। फिर वह राग पसन्द आती तो

रागका नाम पदके ऊपर बाबाके निर्देशानुसार मैं लिख लिया करता था। जिज्ञासावशात् मैं बाबासे पूछ बैठा — आप यह कैसे निश्चित करते हैं कि इस पदको अमुक रागमें गाना चाहिये?

बाबाने बड़े प्यार पूर्वक समझाया — यह तो बड़ी सीधी सी बात है। जिस रागसे मनमें भाव उद्दीप्त हो उठे, वह राग उस पदके लिये उपयुक्त है। जब एक रागसे मन 'भीतर' प्रवेश नहीं करता तो मैं किसी अन्य रागमें गानेके लिये इनसे कहता हूँ। मुख्य उद्देश्य है मनका श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-सिन्धुमें निमग्न हो जाना। यही कारण है भिन्न-भिन्न कालमें और भिन्न-भिन्न भावोंके लिये शास्त्रमें भिन्न-भिन्न रागोंका विधान है।

बाबाके इस उत्तरसे बड़ा समाधान मिला। बाबाको अति प्रसन्न देखकर उनसे एक और जिज्ञासा व्यक्त करनेका साहस कर बैठा। एक ओर कुटियाका नितान्त एकान्त और दूसरी ओर उनकी परम वत्सलताने ही यह साहस प्रदान किया। मैंने बड़े विनीत भावसे पूछा — बाबा! भाव-साधना किस प्रकार की जाती है?

बाबा प्यारपूर्वक बतलाने लगे — भाव-साधना भाव-देहसे की जाती है। स्वयं यह भावना करे, कल्पनाके आधारपर यह भावना करे कि मैं चौदह-पन्द्रह वर्षकी एक किशोरी बालिका हूँ। अगोंपर सुन्दर परिधान है। आभूषण भी यथास्थान सुशोभित हैं। इस प्रकार अपने भाव-देहकी भावना करके प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी सेवामें स्वयंको नियुक्त करे। भिन्न-भिन्न समयपर विविध प्रकारकी सेवा करे, मानसिक सेवा। यह भाव-साधना सतत चलती रहे। यदि साधना निरन्तर चलती रही तो समय पाकर यह भाव-देह सिद्ध हो जाती है।

बाबाने सावधान करनेके लिये यह भी बतलाया — श्रीप्रिया-प्रियतमकी यह भावमयी लीला परम दिव्य है और सर्वथा लोकोत्तर है। यह लीला सांसारिक मानवी-मानवकी नहीं है, अपितु है साक्षात् भगवती श्रीराधा और भगवान श्रीकृष्णकी। श्रीराधामाधव समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र श्री, समग्र ज्ञान, समग्र वैराग्य एवं समग्र यशके साक्षात्स्वरूप हैं। उनका दिव्य वपु सच्चिदानन्दमय हैं। उनकी दिव्य देह नित्य रहनेवाली नित्य चेतन एवं नित्य आनन्दस्वरूप है। सघन

प्रेम-पदार्थसे निर्मित उनके सच्चिदानन्दमय देहमें देही, देहका भेद नहीं है। उनका दिव्य वपु अस्थि-चर्म, रक्त-माँस, मल-मूत्र, रज-वीर्य, प्रारब्ध-फलभोग आदि-आदिसे सर्वथा रहित है। वे सर्वत्र सर्वदा सर्वांशमें तत्सुख-सुखिता भावसे भावित रहते हैं। इसी प्रकार भगवल्लीलामें जो देश है, काल है और सखी-मञ्जरी आदि परिकर हैं, वे सभी सच्चिदानन्दमय होते हैं।

बाबाने जो बतलाया, उसीको संक्षेपमें लिखा गया हैं। यहाँ एक बातका उल्लेख करना आवश्यक लग रहा है। ये सारी बातें एक ही बार एक ही बैठकमें नहीं हुई। किसी दिन कुछ बात हुई और किसी दिन कुछ बात हुई। विषयसे सम्बन्धित होनेके कारण भिन्न-भिन्न अवसरोंपर हुई इन बातोंको अब एक साथ लिख लिया गया है। बाबाने यह सब चर्चा की, यह मुझ साधारण व्यक्तिका सौभाग्य था। फिर तो एक दिन एक सुन्दर लीला भी प्राप्त हो गयी कि किस प्रकार भाव-देहकी भावना और लीलाका चिन्तन करना चाहिये। उस लीलाका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

मैं तेरह वर्षसे कुछ बड़ी एक मंजरी हूँ। सहसा मेरी आँखें खुल गयी हैं और ऐसा अनुभव मैं कर रही हूँ कि आज ब्राह्म मुहूर्तके बाद भी मैं कुछ अधिक देरतक सो गयी थी। अतएव शीघ्र-से-शीघ्र मैं उठते ही स्नान करनेके लिये श्रीयमुना-तटपर आयी हूँ अथवा श्रीराधाकुण्डके कगारपर खड़ी हूँ। भगवती पौर्णमासी देवीने मुझे किसी दिन कहा था कि देख! तू कुछ दिनोंतक वेणीकी रचना मत करना, अतएव अधिकांश समय मैं उन्मुक्त केशी ही रहती हूँ। मैं नहीं जानती, मेरे केशोंमेंसे एक अत्यधिक अप्रतिम सौरभ क्यों निःसृत होता रहता है। मैं ऐसा कोई तेल भी नहीं लगाती, तब भी इतने सुचिक्कण मेरे केश क्यों बने रहते हैं। जो हो, मैं स्नान कर रही हूँ और मेरे केश श्रीराधाकुण्डके जलपर अथवा यमुनाके जल-प्रवाहपर संतरण कर रहे हैं और मेरे केशोंसे उस समय भी एक अद्भुत सौरभ निकल रहा है, जो कि कमलके फूले हुए सुमनोंके सौरभको फीका कर रहा है।

स्नान करके मैं ऊपर तटपर चली आयी हूँ। वहाँ एक बड़ा सुन्दर नीले रंगका घाघरा पड़ा है, उसको मैं पहन लेती हूँ, किंतु उसके पहले

ही गीले वस्त्रको छोड़कर मैं एक नीले रंगका जाँघिया (कच्छा) पहन चुकी होती हूँ। उस कच्छेमें भी किसी अनुपम इत्रका सौरभ अनुभूत हो रहा है। वक्षःस्थलकी उत्तुंगताका आरम्भ तो हो गया है, परन्तु स्पष्ट परिलक्षित सबके द्वारा वह हो ही जाय, ऐसा नहीं है, परन्तु सबके लिये समान यह नियम भी नहीं है। मैं एक अरुण वर्णकी कंचुकी धारण कर लेती हूँ। स्नान करते समयके अपने गीले वस्त्रोंको निचोड़कर, अब मैं अपने केशोंको एक कँगही लेकर केवल तीन बार केशोंपर फेरती हूँ और इतनेमें ही वे सब सुलझ जाते हैं। कस्तूरी कुंकुम एवं केशर मिश्रित विलेपनसे एक गोल विन्दुका तिलक भ्रू-मध्यमें लगा लेती हूँ। मेरे अधरोंमें अरुणिमा तो सहज व्यक्त है ही, परन्तु फिर भी अर्चनाके प्रसाद रूपमें अथवा कृपा-प्रसादके रूपमें प्राप्त ताम्बूल भी मैं प्रायः प्रतिदिन प्रातःकाल ही सेवन कर लेती हूँ।

झड़का करके नीली ओढ़नीकी सलवट दूर कर अब मैं उसे ओढ़ लेती हूँ। कलाईमें दोनों ओर दो स्वर्ण निर्मित वलय नित्य धारण किये रहती हूँ और उनके मध्यमें पतली-पतली अरुणाभ चूड़ियाँ हैं। कभी-कभी मेरी चूड़ियाँ झनक भी उठती हैं।

राधा बहिनने मुझे सुरभित विलेपन प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दी थी। अब मैं केशर कस्तूरी एवं कुंकुम इन तीनोंको चन्दनकी बटियासे एक बड़ी सिलपर, अपने शृंगार धारण करनेवाले कक्षसे बाहर आकर अलिन्दमें बैठकर पीस रही हूँ।

अचानक प्रियतम श्रीकृष्ण आ जाते हैं। उनके मुखपर उनके सिरका काला कुञ्चित केश जाल मोर मुकुटके द्वारा संयत रहनेपर भी भहरा-भहरा करके आ ही जाता है, जिसे वे गर्दन हिला-हिला करके संयतकी मुद्रा दे देते हैं। अधरोंपर मन्द मुस्कान है। कुटिल भृकुटि है। कटिमें पीत वसन है। झलमलाता हुआ पीताम्बर कंधोंपर शोभायमान है। दोनों कानोंमें कुण्डल लटक रहे हैं, उनकी आभासे गोल-गोल कपोल दमक रहे हैं। विशाल नेत्र हैं। वे तिरछी चितवनसे मेरी ओर देख रहे हैं। किशोर वय है। किशोरीकी अपेक्षा प्रियतम श्रीकृष्णकी ऊँचाई चार-छः अंगुल अधिक है। माथेपर मृगमदका तिलक है। नाकमें बुलाक पहने हैं। हाथमें मुरली है। गलेमें वनमाला सुशोभित है। दोनों कलाइयोंमें कंकण हैं।

विशाल भुजाओंमें बाजूबन्द हैं। कटिमें करधनी है। वक्षःस्थलमें कौस्तुभ मणि सुशोभित है। अधर और ओष्ठ अरुण हैं। चरणोंमें नुपूर हैं। मन्द मन्थर गतिसे चलकर आते हुए उनको देखकर मैं संयत होकर बैठ जाती हूँ। विलेपन प्रस्तुत करना भी स्थगित कर देती हूँ। वे मुस्कुरा करके पूछ रहे हैं – तुमने विलेपन पीसना क्यों छोड़ दिया?

मै केवल मुस्कुरा देती हूँ। प्रियतम श्रीकृष्ण फिर पूछते हैं – मैं घिस दूँ क्या?

मैं उत्तर देती हूँ – तुम्हारा स्वभाव बड़ा चंचल है। तुम घिस सकोगे नहीं और मुझे जल्दी-से-जल्दी घिसकर राधा बहिनके समक्ष प्रस्तुत होना है।

प्रियतम श्रीकृष्णके मेरे सामने बैठ जाते हैं और कहते हैं – इतना अधिक विलेपन क्या होगा?

मैं उत्तर देती हूँ – इसका उत्तर तो तुम्हें राधा बहिन ही देंगी।

अविलम्ब बहिन राधा किशोरी भी उसी स्थलपर उपस्थित हो जाती हैं। उसका नीला घाघरा है। उसके नीचे नीला कच्छा है। कमरसे ऊपर उदर-देशको निरावरण रखते हुए लाल रंगकी कंचुकी है, जिसमें हर समय विभिन्न रंगोंका प्रकाश होता रहता है। कहनेके लिये उसे अरुण वर्णकी कंचुकी कही जा सकती है, किन्तु वही कंचुकी लीलाके अनुरूप नारंग वर्ण, पीत वर्ण, हरित वर्ण, आसमानी वर्ण, नील वर्ण, वैगनी वर्ण, इतनी आभाएँ बदलती रहती है। गलेमें पाँच तरहके हार रहते ही हैं – सोनेका, हीरेका, नीलमका, मोतीका और सुमनका हार। नाकमें बुलाक हरदम रहती है, किसी-किसी दिन नथ भी अवश्य रहती है। नथमें एक डोरी लगी रहती है, वह नीलाभ झाँई लिये होती है और कर्ण-कुण्डलोंको छूती रहती है। कानोंमें एक विचित्र तरहका झूमका है, जो कि क्षण-क्षणमें बड़ा-छोटा होता रहता है। चंद्रिका किसी समय रहती है और किसी समय अन्तर्धान हो जाती है। हाथोंकी दसों अँगुलियोंमें अँगूठी हैं। पैरोंमें भी दसों अँगुलियोंमें बिछिया और अँगूठियाँ हैं, नूपुर भी है। स्वर्णके पीताभ वर्ण वलय दोनों हाथोंमें दो-दो रहते हैं। उनके बीचमें चूड़ियाँ हैं अरुणाभ वर्णकी। बाजूबन्द भुजाओंमें हैं। कटिदेशवाली किंकणी कंकण और नूपुर झनक रहे हैं। मधुर मुस्कान समन्वित लाल-लाल अधर और

ओष्ठ हैं। वे आते ही प्रियतम श्रीकृष्णसे कहती हैं– तुम्हारी आदत बहुत बुरी है। तुम कोई भी काम किसीको ठीकसे करने देते ही नहीं।

मैं राधा बहिनकी ओर देखकर बोल उठती हूँ– देखो बहिन! ये विलेपन नहीं दे रहे हैं। मैं क्या करूँ?

उत्तर देती हैं राधा बहिन ही – देख! ये ऐसे मानेंगे नहीं। इनके लिये कोई नैवेद्य सामग्री लेकर आ। साथ ही अन्य सहचारियोंको भी बुला ला।

क्षण बीतते-न-बीतते दस-बारह सहचरियाँ हाथोंमें विभिन्न प्रकारकी नैवेद्य सामग्री लिये हुए उपस्थित हो जाती हैं। नैवेद्य सामग्री है पायस, अत्यन्त सुरभित मोदक (लड्डू), कुछ नमकीन दाल-मोठ आदि भी हैं। गुलाबजामुन, चन्द्रकला, इमरती आदि भी हैं। सुहाली, भुजिया, दहीबड़ा, कचौड़ी आदि भी है। उसे मैं प्रत्येकसे लेकर एक बड़े सोनेके थालमें सजा देती हूँ, परन्तु विचित्र बात, जिसे स्वयं मैं भी नहीं समझ पाती हूँ कि ऐसा कैसे हो जाता है, प्रत्येक वस्तु एक साथ ही दोनोंके समक्ष आ जाती है। ग्रास लेनेके लिये वस्तुकी ओर हाथ बढ़ानेकी आवश्यकता उन्हें नहीं होती । मात्र उठाना भर ही पड़ता है। दोनों परस्पर एक दूसरेके मुखमें ग्रास दे रहे हैं और साथ ही चल रहा है पवित्र एवं मधुर विनोद। बीचमें कटोरी लेकर कभी-कभी अमृतके समान निर्मल एवं सुमिष्ट जलकी घूँट भी परस्पर पिलाते हैं।

अब बहिन राधाका संकेत पाकर मैं थाल हटा लेती हूँ और हाथ पोंछकर ताम्बूल सामने रख देती हूँ। दोनों एक-एक ताम्बूल उठाकर और दाँतोंसे तनिक-सा तोड़कर खाने लगते हैं। सहसा नित्य निकुञ्जेश्वर प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण अपने मुखका अर्ध चर्वित ताम्बूल मेरे मुखमें डाल देते हैं और किशोरीके अधरामृत-सिक्त ताम्बूलको छीनकर स्वयं खाने लगते हैं।

राधा राधा राधा राधा

* * * * *

चरण-पादुकाका वन्दन

बाबूजीका जन्म-शताब्दी उत्सव अपने देश भारतके विभिन्न भागोंमें ५ अक्टूबर १९९१ से २३ सितम्बर १९९२ तक वर्षभर मनाया गया। भारतकी विभिन्न दिशाओंमें स्थान-स्थानपर एक वर्षतक उत्सवोंकी मालाका उल्लास छाया रहा। शताब्दी उत्सवका कभी यह अथवा कभी वह कार्यक्रम होता रहा कभी इस शहरमें तो कभी उस गाँवमें। अन्यत्र किसी एक ग्राम अथवा नगरमें तो एक वर्षकी अवधिके भीतर एक या दो बार ही कोई कार्यक्रम आयोजित हुआ, परन्तु यहाँ गीतावाटिकामें उत्सवानन्दका उल्लासपूर्ण प्रवाह निरन्तर ही बहता रहा। यहाँ कोई-न-कोई आयोजन किसी-न-किसी रूपमें वर्षभर होता रहा और वर्ष पर्यन्त चलनेवाले इन विभिन्न कार्यक्रमोंका शुभारम्भ हुआ श्रीमद्भागवत महापुराणकी परम पावनी सप्ताह-कथासे। इसीके साथ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि सांवत्सरिक उत्सवका शुभारम्भ यदि श्रीमद्भागवतकी सप्ताह कथासे हुआ तो इसकी सम्पन्नता श्रीरामचरितमानसकी नवाह्न कथासे हुई।

इसमें भी एक अति महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन दोनों कथाओंके अवसरपर व्यासपीठको सुशोभित किया रामानन्दाचार्य प्रज्ञाचक्षु परम पूज्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराजने। प्रज्ञाचक्षु पूज्य श्रीमहाराजजीने एक बार कहा था – पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सम्पूर्ण शताब्दी उत्सवको श्रीकृष्ण-कथा और श्रीराम-कथाके जिस आयोजन द्वारा सम्पुटित किया गया, यह सर्वथा श्रीभाईजीके व्यक्तित्वके अनुरूप हुआ है। श्रीभाईजीके जीवनमें भगवान श्रीकृष्ण और भगवान श्रीरामका अद्भुत समन्वय है। श्रीभाईजीके विचारमें यदि भगवान श्रीकृष्णका दर्शन है तो उनके आचारमें भगवान श्रीरामका वर्तन है। भाव-समाधिकी स्थितिमें यन्त्र-यन्त्री-भावापन्न होकर स्वयंको यन्त्र मानते हुए जहाँ उन्होंने अपने आपको भगवान श्रीकृष्णके चरणोंपर अर्पित कर दिया है, वहीं उन्होंने लोक कल्याणकी भावनासे भावित होकर भगवान श्रीरामके गुणोद्घाटक श्रीरामचरितमानसकी सुन्दर टीकाके लेखन द्वारा जग-हित-निरत हृदयका परिचय दिया है। माधव और राघवके यथार्थ तत्त्वका व्यावहारिक रूप श्रीभाईजीके जीवनमें देखनेको मिलता है।

शताब्दी उत्सवके शुभारम्भके समय श्रीमद्भागवत महापुराणकी

जब कथा हुई थी, उस अवधिकी एक विशिष्ट घटनाका यहाँ उल्लेख करना है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि इस भावपूर्ण कथाको कहनेके लिये प्रज्ञाचक्षु पूज्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराजका शुभागमन हुआ था। श्रीमहाराजजीने मन-ही-मन निश्चय कर रखा था कि कथा-मण्डपमें जानेसे पूर्व मुझे श्रीराधा बाबाका दर्शन करना है। बाबाकी कुटियापर जाते समय उन्होंने पहले बाबूजीकी समाधिको प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने श्रीगिरिराजजीको प्रणाम किया। प्रणाम करके उन्होंने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगायी, जिसकी परिक्रमा बाबा नित्य लगाया करते थे।

जब महाराजजी परिक्रमा लगा रहे थे, परिक्रमा लगानेका वह दृश्य बड़ा हृदयस्पर्शी था। परिक्रमा लगाते समय श्रीमहाराजजी श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोकको गा-गा करके बोल रहे थे –

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः॥

(श्रीमद्भागवत – १०/२१/१८)

[अर्थात् अरी गोपियों! यह गिरिराज गोवर्धन तो भगवानके भक्तोंमें बहुत ही श्रेष्ठ है। धन्य हैं इसके भाग्य! देखती नहीं हो, हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण और नयनाभिराम बलरामके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके यह इतना आनन्दित रहता है! इसके भाग्यकी सराहना कौन करे! यह तो उन दोनोंका, ग्वालबालों और गौओंका बड़ा ही सत्कार करता है। स्नान-पानके लिये झरनोंका जल देता है। गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास प्रस्तुत करता है। विश्राम करनेके लिये कन्दराएँ और खानेके लिये कन्द-मूल-फल देता है। वास्तवमें यह धन्य है।]

इस भावपूर्ण श्लोकको भावपूर्ण रीतिसे गायन करते हुए श्रीमहाराजजी द्वारा परिक्रमाका लगाया जाना बड़ा ही प्रिय लग रहा था। श्लोकको सुस्वर ढंगसे गाते-गाते बीचमें ही उन्होंने बड़े उच्च स्वरसे बोलकर कहा – यह गीतावाटिका तो वस्तुतः वृन्दाकानन ही है।

श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगा करके श्रीमहाराजजी बाबाकी कुटियाकी ओर अग्रसर हुए। बाबाने देखा कि मेरी ओर श्रीमहाराजजी चले आ रहे हैं।

अपने गैरिक बिस्तरसे उठकर और करबद्ध खड़े होकर उन्होंने श्रीमहाराजजीका भावभरा स्वागत किया। दो संतोंकी पारस्परिक प्रणतिका वह सरस दृश्य अध्यात्म-राज्यका एक स्मरणीय भाव-चित्र है। आज भी उसकी स्मृतिसे भावोद्दीपन हो उठता है। बाबाको वन्दन करके महाराजजी कथा-मण्डपमें पधारे। अब तो यह नित्यका क्रम बन गया कि कथा-मण्डपमें जानेके पूर्व श्रीमहाराजजी प्रतिदिन बाबाकी कुटियापर आया करते थे और वे आया करते थे एक मात्र अपना भावभरा वन्दन निवेदित करनेके लिये। ज्यों ही श्रीमहाराजजी वन्दन करते, त्यों ही बाबाके श्रीमुखसे स्नेह-भरे सम्मान-सने भावोद्गार झरने लगते थे। श्रीमहाराजजीको वन्दन-विनीत देखकर बाबाने वन्दन करते हुए कहा – जै जै सरकारकी, जै जै कृपानिधानकी।

स्वयं श्रीराधाभावमें निमग्न रहते हुए भी बाबाने प्रति-वन्दन करते हुए एक दिन कहा कि मेरे प्राणोंके मालिककी जय हो। फिर दूसरे दिन बाबाने प्रति-वन्दन करते हुए कहा कि जै जै श्रीसीताराम। फिर अगले दिन उन्होंने कहा कि भावोंके सन्धिपर प्राणोंका अनुसरण करनेवाले महामहिमकी जय हो।

इन भावभरे उद्गारोंको सुनकर श्रीमहाराजजीका मञ्जुल-मञ्जुल हृदय सदैव और सतत मूक अभिनन्दन किया करता था। एक दिन श्रीमहाराजजीने बाबासे कहा – आज सायंकाल मेरे मुन्ना सरकार राघव आपके साथ खेलना चाहते हैं।

इस वाक्यको सुनकर बाबाके आह्लादकी सीमा नहीं थी। बाबाने विहसते-विहसते ललित और मधुर स्वरमें कहा – मैं आऊँगा, अवश्य आऊँगा। फिर क्या कहना? बस, आपकी चरण धूलि मिल जाय, फिर हमें क्या कहना है! मैं कभी न तो कुछ था और न हूँ, पर आपकी कृपासे कुछ हो जाऊँगा जरूर!

बाबाके इन भक्तिपूर्ण उद्गारोंको सुनकर श्रीमहाराजजीने कुछ अन्तरंग व्यक्तियोंके मध्य एकान्तके क्षणोंमें जो अभिमत व्यक्त किया, उसका एक विशेष महत्त्व है। आजकल होता यह था कि बातचीत करते-करते बाबा कभी-कभी ऐसा असम्बद्ध संभाषण करने लगते थे मानो पिछली बातकी अगली बातसे कोई सम्बद्धता न हो। पूर्वापर-सम्बन्ध-रहित असम्बद्ध चर्चाके आधारपर कई लोग बाबापर हल्की टिप्पणी कर दिया करते थे। ऐसे लोगोंकी आलोचना करते हुए श्रीमहाराजजीने कहा – जो लोग बाबाके असम्बद्ध संभाषणके आधारपर यह कहते हैं कि उनकी स्मृति-शक्ति क्षीण या विलुप्त हो गयी है, वे लोग अपनी

मूर्खता और अपने अज्ञानका परिचय दे रहे हैं। क्या स्मृति-विलुप्त व्यक्ति ऐसे सुन्दर और भावपूर्ण उद्‌गार व्यक्त कर सकता है? सच बात यह है कि उन्होंने अपने आपको जगतसे छिपाये रखनेके लिये स्वयंपर एक आवरण डाल रखा है। बाबा तो जगतसे उपराम हैं, जगदीशसे नहीं।

* * *

एक दिन तो विचित्र घटना घटित हो गयी। श्रीरामान्द-सम्प्रदाय-पीठाधिपति होनेके कारण पूज्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराजके साथ आद्य-सम्प्रदायाचार्य नित्य-वन्द्य श्रीरामानन्दजी महाराजकी परम पावन युगल चरण पादुका चला करती थीं। ये चरण-पादुकाएँ एक सुन्दर सिंहासनपर विराजित रहती थीं और एक भक्त उनको अपने शीशपर रखकर साथ-साथ चला करता था। जब श्रीमहाराजजी कथा-मण्डपमें आकर विराजते, तब व्यास-पीठके समक्ष इन चरण-पादुकाओंको भी विराजित कर दिया जाता था। मर्यादा यह है कि कथाके आरम्भ होनेके पूर्व जब व्यास-पूजन होता है, तभी इन चरण-पादुकाओंका भी अत्यधिक सम्मानपूर्वक पूजन होना चाहिये। गीतावाटिकामें कथारम्भके पूर्व चरण-पादुकाओंका पूजन तो होता था, पर वह साधारण स्तरका था और यह एक प्रमाद हम लोगोंके द्वारा घटित हो रहा था। प्रतिदिन जो भूल प्रमादवशात् घटित हो रही थी, वह श्रीमहाराजजीके ध्यानमें आ गयी, पर शीलवशात् उन्होंने भूलकी ओर संकेत नहीं किया और इस प्रमादके आवर्तमें तीन-चार दिन निकल गये। सम्भवतः घटना पाँचवें दिनकी है। श्रीमहाराजजी कथा-मण्डपमें पधारनेके पूर्व बाबाके समक्ष वन्दन निवेदित करनेके लिये गये तो बाबाने उनका बड़ा भावभरा स्वागत किया। श्रीमहाराजजीको आते हुए देखकर वे तुरन्त उठकर खड़े हो गये और उनके समीप आते ही बाबाने उल्लसित स्वरमें कहा – श्रीगुरुदेव भगवानकी जय हो जय हो जय हो। श्रीकरुणावरुणालयकी जय हो जय हो जय हो। आज आपका स्पर्श प्राप्त करके मैं भी पवित्र हो गया।

बाबाका वह उल्लसित स्वर सुनते ही बनता था और देखते ही बनता था उनका प्रफुल्लित मुख। सारे वातावरणमें प्रफुल्लता परिव्याप्त हो रही थी। श्रीमहाराजजीके साथ वन्दनीया बूआजी भी थीं। बूआजी श्रीमहाराजजीकी सहोदरा बहिन हैं। बूआजीने नमन करते हुए बाबासे विनयपूर्वक पूछा – बाबा! क्या मुझे श्रीराधारानीका दर्शन होगा?

बाबाने उसी प्रफुल्ल स्वरमें कहा – होगा, अवश्य होगा!

इस परम मंगलमय शुभाशीर्वादको सुनकर जब हम साधारण श्रोताओंका मन आह्लादसे भर गया, तब जिन बूआजीके प्रति यह मंगलवाणी कही गयी थी, उनके असीम आनन्दका मात्र कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार सुख-विभोर श्रीमहाराजजी बाबाके पाससे ज्यों ही जाने लगे, बाबाके दृष्टिपथपर आ गयीं वे चरण-पादुकाएँ। बाबाने देखा कि एक व्यक्तिके शीशपर एक सिंहासन है और उसमें कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु पुष्पमालाके मध्य सुशोभित है। बाबाने पूछा – उस व्यक्तिके शीशपर जो सिंहासन है, उसमें क्या है?

एक सहचरने कहा – चरण-पादुका।

बाबाने फिर पूछा – किनकी?

सहचरको उन चरण-पादुकाओंका पूर्ण परिचय नहीं था। यह संक्षिप्त बातचीत श्रीमहाराजजीके कानोंमें पड़ गयी। इस चर्चाको सुनकर श्रीमहाराजजी लौट पड़े और उन्होंने बाबाको चरण-पादुकाका परिचय दिया।

बाबाको ज्यों ही पता चला कि ये पावन-चरण-पादुकाएँ अनन्त-श्रीविभूषित आद्यसम्प्रदायाचार्य श्रीरामानन्दजी महाराजकी हैं, वे उन चरण पादुकाओंको बार-बार प्रणाम करने लगे, उनका दर्शन पाकर अपने सौभाग्यकी सराहना करने लगे और उन चरण-पादुकाओंके शुभागमनसे गीतावाटिकाकी भूमिको धन्य-धन्य कहने लगे।

बाबाके भावमय व्यक्तित्वकी यह मधुर झाँकी देखकर श्रीमहाराजजीके आश्चर्य और आनन्दकी सीमा नहीं थी। श्रीमहाराजजी मन-ही-मन कह रहे थे – अपने महज्जनकी अभ्यर्चना कैसी होनी चाहिये और उनके स्मृति-चिह्नोंका समादर कैसा होना चाहिये, इसे एक मात्र संत ही जानता है। ये सांसारिक लोग इस बातको भला क्या जानें और क्या समझें? बाबाके दैन्यको, सद्भावको, प्रणतिको, मान-दानको देख-देख करके श्रीमहाराजजी आनन्द-विभोर हो रहे थे और बार-बार बलिहार जा रहे थे।

जब श्रीमहाराजजी कथा-मण्डपमें पधारे और व्यासासनपर विराजित हुए, तब उनकी वह भावविभोरता हृदयके भीतर सीमित न रह सकी और शाब्दिक अभ्यर्चनाके रूपमें अभिनन्दन करनेके लिये अधरोंसे बह पड़ी। जिस रीतिसे बाबाने उन चरण-पादुकाओंको प्रणाम किया था, वह सारा प्रसंग

श्रीमहाराजजीने उपस्थित श्रोताओंको सुनाते हुए कहा – कथा कहनेके पूर्व आज एक विशेष बात मैं निवेदन करना चाहता हूँ। भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज भारतकी ऐसी महान विभूति हैं, जिन्होंने मानव मात्रकी हितकामनासे प्रेरित होकर भवसागर-संतरणार्थ साकेतविहारी श्रीसीतारामजीकी सर्वसुखदायिनी परम मंगलकारिणी सरल भक्ति-भावनाका प्रचार किया। ये युगल चरण-पादुकाएँ उन्हीं महान आद्य आचार्यजीकी हैं। मैं इन चरण-पादुकाओंकी प्रतिदिन षोडशोपचारसे सविधि पूजन किया करता हूँ, परन्तु इन चरण-पादुकाओंको यहाँ गीतावाटिकामें जितना सम्मान मिलना चाहिये था, वैसा नहीं देखकर मेरे मनमें अपार खिन्नता थी। मैं अपनी व्यथाको व्यक्त नहीं करता था।

अब आजका प्रसंग सुनें। यह प्रसंग अभी-अभीका है और कथा मण्डपमें आनेके पूर्वका है। मेरा यह नियम है कि कथा कहनेसे पहले मैं बाबा सरकारके दर्शनके लिये जरूर जाता हूँ। मैं कितना ही बड़ा आचार्य क्यों न होऊँ, इससे भला क्या? मैं उनके दर्शनार्थ अवश्य जाया करता हूँ। आज बाबा सरकारके दर्शनके लिये हमलोग गये थे। साथमें श्रीराम और श्रीलक्ष्मण भी थे। हमलोगोंको आते हुए देखकर वे खड़े हो गये। फिर बाबा सरकारके श्रीमुखसे मंगलाशीर्वादके रूपमें जो सुमंगलवाणी सुननेको मिली, वह आप उन कुछ लोगोंसे पूछ लीजियेगा, जो मेरे साथ थे। जब हम विदा होकर चलने लगे, तब हो यह गया कि उनकी दृष्टि इन चरण-पादुकाओंपर पड़ गयी। फिर उन्होंने इशारा किया कि पादुकाओंको इधर ले आओ। उन्होंने इन पादुकाओंको लेकर कम-से-कम तीन बार प्रणाम किया ही। बाबा सरकार जैसे मूर्धन्य विद्वान और परमहंस परिव्राजकाचार्य भी इन पादुकाओंको प्रणाम करते हैं, इस भावमयी अर्चनाको देखकर मेरे आनन्दकी सीमा नहीं थी। मेरे भीतरका सारा खेद और कष्ट दूर हो गया।

इसी घटनासे सम्बन्धित मुझे एक बात और कहनी है। इसे आपलोग मेरा एक सुखद संदेश समझें। संत लोग वस्तुतः कभी उपराम नहीं होते। हाँ, संसारवालोंको भ्रममें डाल देनेके लिये उपरामताका आवरण ओढ़ लेते हैं। संत लोग सांसारिकोंको ठगनेके लिये उपराम होते हैं। संत कभी उपराम नहीं होते और कभी अपना विवेक नहीं खोते। यदि बाबा सरकारका विवेक खो गया होता तो वे पादुकाजीको प्रणाम करनेके लिये भला क्यों बुला लेते? बाबा सरकारने

पादुकाओंकी जो समर्चना की, उसको देखकर मेरा हृदय प्रफुल्लित हो गया, आनन्दातिरेकसे भर गया। मैं तो उन पादुकाओंका आदर करता ही हूँ, पर बाबा सरकार जैसे वयोवृद्ध- ज्ञानवृद्ध-तपोवृद्ध-लीलावृद्ध संतके द्वारा इतना अधिक आदर दिया जाना, यह देखकर परम आश्चर्य हुआ।

आप जरा बाबा सरकारकी वर्तमान स्थितिपर किञ्चित् विचार करें। जिनकी अस्वस्थताको देखकर विगत दो वर्षोंमें स्नानके नामपर गीले कपड़ेसे शरीर केवल पोंछ दिया जाता है और जिनको भिक्षा करानेके लिये आहारको छोटी-छोटी गोली बनाकर चम्मचसे अधरोंके भीतर रख दिया जाता है, मानो किसी शिशुको दुलराकर खिलाया जा रहा हो, जिनका शारीरिक रंग-ढंग ऐसी दशातक बदल गया हो, उन बाबा सरकारका विवेक पूरी तरह सजग है और वे आद्य आचार्यकी पावन चरण-पादुकाओंको अत्यधिक सम्मान देते हैं। यह सब देखकर मुझे परमानन्द हुआ। मैंने उनसे कहा कि ये आद्य रामानन्दाचार्यजीकी पादुकाएँ हैं तो बाबा सरकारने कहा कि मैं किसी लायक नहीं हूँ, पर अब वन्दन करके इनको आदर करने लायक शायद बन जाऊँगा। उनका स्वयंका ऐसा अमानीपन और पादुकाओंका ऐसा समादर देखकर आज श्रीकृष्ण-कथा कहनेकी और सप्ताह-कथा सुनानेकी पूरी दक्षिणा मुझे पूर्ण रूपसे मिल गयी है। अब मुझे किसी अन्यसे सम्मानकी अपेक्षा नहीं रह गयी। आज मेरे मनमें किसी भी प्रकारकी कोई व्यथा या खिन्नता नहीं रह गयी। बाबा सरकार द्वारा की गयी मंगलमयी अर्चना देखकर मैं सदाके लिये उनका ऋणी हो गया।

सारे श्रोता श्रीमहाराजजीके भाव-प्रवाहमें बहे जा रहे थे। सब बह रहे थे, पर कुछ इने-गिने-श्रोताओंको छोड़कर। हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिके जो प्रमुख पदाधिकारी थे, उन श्रोताओंको मन-ही-मन अपने प्रमादपर बड़ा खेद हो रहा था। उन्होंने अपनी भूलके लिये श्रीमहाराजजीसे क्षमा याचना की। संत-जीवन श्रीमहाराजजी तो क्षमा स्वरूप ही हैं। उनके मनमें भूलकी स्मृति तो पानीपरकी रेखाके समान है।

अब कथारम्भके पूर्व व्यास-पूजनके साथ-साथ भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी पावन चरण-पादुकाओंका पूजन अत्यधिक आदर पूर्वक प्रतिदिन होने लगा।

* * * * *

पूज्या माँका महाप्रयाण

चिता-समाधिके अत्यन्त समीप टिनशेडके नीचे नित्य निवास करते हुए बाबा अपने महाभाव-सिन्धुकी ललित लहरोंपर कभी लहराते रहते और कभी उस सिन्धुकी गम्भीर गहराईमें निमग्न रहते। महाभावमय बाबाके जीवनमें कई बार शारीरिक कष्ट भीषण रूपमें आये और तब-तब संदेह होने लगता था कि क्या बाबा अब 'विदाई' लेनेवाले हैं?

वे भला विदाई कैसे लेते? बाबूजी अपने महाप्रयाणके पूर्व उन्हें एक कार्य सौंप गये थे और वह कार्य था पूज्या माँकी सँभालका। अपने परम प्रेमास्पद द्वारा सौंपे गये कार्यको उन्होंने हृदयसे स्वीकार किया था। माँका भी स्वास्थ्य बड़ा शिथिल चल रहा था और बार-बार आशंका होती थी कि पता नहीं कब वे अपनी आँखें सदाके लिये बन्द कर लें।

गहरा आश्चर्य होता है बाबाकी सुव्यवस्थित योजनापर और सुदूर दृष्टिपर। ५ अक्टूबर १९९१ से लेकर २३ सितम्बर १९९२ तक बाबूजीका जन्मशताब्दी उत्सव संवत्सर पर्यन्त सारे देशमें मनाया जा रहा था। इस अवधिमें माँकी रुग्णताने खतरनाक मोड़ ले लिया। बाबा सोच रहे थे कि इस संवत्सरकी अवधिमें यदि माँ 'जाती' है तो अपने परमप्रेमास्पदके शताब्दी उत्सवमें बड़ी बाधा आयेगी। १९ सितम्बर १९९२ को माँने बाबासे कहा था – इस रुग्ण शरीरमें भीषण कष्ट हो रहा है। यह कष्ट अब सहा नहीं जाता। अब कन्हैयाके पास भेज दो।

माँके इन पीड़ा-पूर्ण शब्दोंको सुनकर बाबाने सान्त्वना देते हुए उत्तर दिया – तुम चिन्ता मत करो। तुम अपने कन्हैयाके पास जावोगी और मैं तुम्हें 'भेज' करके ही 'जाऊँगा'।

बाबाने यह सान्त्वना तो दे दी, परन्तु उनके चिन्तनमें यह भी समाया हुआ था कि संवत्सर पर्यन्त चलनेवाले शताब्दी महोत्सवकी सम्पन्नता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह महोत्सव २३ सितम्बर १९९२ को सम्पन्न हुआ।

२४ सितम्बर १९९२ को माँकी तबीयतमें गम्भीर रूपसे गिरावट आयी और २६ सितम्बर १९९२ के प्रातःकाल माँ अपने जीवनसर्वस्व 'कन्हैया' के पास चली गयीं। इस करुण समाचारके फैलते ही देशके कोने-कोनेसे श्रद्धालु भक्तजन आये और २७ सितम्बर १९९२ के दिन गीतावाटिकामें बाबूजीकी समाधिके पास ही अपराह्णकालमें पूज्या माँकी चिता प्रज्वलित हुई।

* * * * *

जीवन-लीलाका संवरण

९ अक्टूबर १९९२ के दिन पूज्या माँका श्राद्ध-कार्य पूर्ण रूपसे भली प्रकार सम्पन्न हुआ। श्राद्ध-कार्यकी कर्म-काण्ड-प्रक्रियाके सम्पन्न होते ही ९ अक्टूबर १९९२ के दिन रात्रिके समय ही बाबाके स्वास्थ्यमें गिरावट आयी। स्वास्थ्यकी स्थितिके बिगड़ते ही कैंसर अस्पतालके डाक्टर सम्मान्य श्री एम.एन.शर्मा एवं डा.एल.डी.सिंह आवश्यक चिकित्सामें तुरन्त संलग्न हो गये। बाबाके यति-धर्मको ध्यानमें रखते हुए चिकित्साके रूपमें सेवा-कार्य हो रहा था। हमारी सेवा-तत्परता चाहे जितनी उत्कृष्ट हो, उसको सफलताका श्रेय तभी मिल पाता, जब बाबा उसको सफल बनाना चाहते। तत्परता पूर्वक चिकित्सा-सेवा चल रही थी और चल रही थी देवराधना भी कि बाबा शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ करें, परन्तु बाबाको तो अब कुछ अन्य ही अभीष्ट था। ज्यों-ज्यों स्वास्थ्यमें गिरावट आती चली गयी, त्यों-त्यों बात फैलती गयी और नगरके श्रद्धालु एवं स्नेहीजन अधिकाधिक संख्यामें गीतावाटिका आने लगे बाबाके स्वास्थ्यका समाचार जाननेके लिये। सभी आत्मीयजनोंकी आन्तरिक चाह थी कि बाबा शीघ्र स्वस्थ हो जायँ, परन्तु यह सारी शुभ भावना, यह सारी सेवा-चर्या और यह सारी देवाराधना तभी सफल होती, जब बाबा हमारे बीच ठहरना चाहते, परन्तु उन्होंने तो 'जाने' का संकल्प कर लिया था और हम सभी लोगोंके मध्यसे उन्होंने सदाके लिये विदाई ले ली १३ अक्टूबर १९९२ के प्रातःकाल लगभग साढ़े आठ बजे।

उनकी 'विदाई' ने सारे वातावरणको बुरी तरहसे झकझोर दिया। करुण क्रन्दनका भीषण स्वर फूट पड़ा। एक तथ्यको देखकर बार-बार आश्चर्य होता है। ९ अक्टूबरके दिन पूज्या माँके श्राद्ध-कार्यके पूर्ण होते ही इसके चार दिन बाद ही १३ अक्टूबरके प्रातःकाल साढ़े आठ बजे पूज्य बाबा सदाके लिये 'अन्तर्हित' हो

गये। पट-परिवर्तन इतना शीघ्र हो जायेगा, इसकी कल्पना किसीको नहीं थी। घटनाओंका चक्र बड़ी तेजीसे घूम रहा था। घटनाओंका विकास जिस प्रकारसे हुआ और उस विकासका जो परिणाम सामने आया, उससे एक बात भली प्रकारसे स्पष्ट हो गयी कि बाबूजीके कथनानुसार बाबाने माँकी सँभालका जो दायित्व स्वीकार किया था, उस दायित्वके निर्वाहके लिये ही वे 'ठहरे' हुए थे और उस दायित्वका पूर्ण निर्वाह होते ही उन्होंने 'चले जाने' का निर्णय कर लिया।

अपने प्रेमास्पद पूज्य बाबूजीके शताब्दी-उत्सवको भली प्रकारसे सम्पन्न होने देना, सम्पन्नता तक माँको 'रोके' रखना और माँके जाते ही स्वयं तुरन्त अन्तर्हित हो जाना, बाबाकी इस व्यवस्थित योजनाको सोच-सोच करके चिन्तन हर बार विस्मयकी गहराईमें खो जाता है और फिर विस्मयको भी विस्मय होने लगता है यह देखकर कि उन परमप्रेमी बाबाने अपने प्रेमास्पदकी चिता-स्थलीपर निवास करते हुए और नयनोंके नीरको प्रतिपल पोंछते हुए अपना सारा जीवन बिता दिया।

प्रीतिकी टेकका ऐसा उदाहरण —

भयउ न अहइ न अब होनिहारा।

प्रीतिकी रीतिका यह निर्वाह जैसा अनोखा है —

सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।।

प्रेमके राज्यमें प्रीतिकी वेदीपर ऐसी निजात्माहुतिको नित्य-निरन्तर वन्दन!

१३ अक्टूबर १९९२ के प्रातःकाल बाबाने विदाई ली। सारा वातावरण बुरी तरहसे शोकाकुल हो रहा था। कुछ बहिनें बुरी तरहसे रो ही थीं। जो सभीके दुख-दर्दको सुन लिया करते थे और सभीकी परेशानीको अपनी परेशानी मान लिया करते थे, वस्तुतः मनसे मान लिया करते थे, वे अब हमारे बीच नहीं रहे। सिद्ध संतोंसे गम्भीर सच्चर्चा करने वाले, साधकोंको उपयोगी परामर्श देने वाले, ब्राह्मणोंकी समस्याको हल कर देने वाले, जन-जनको आन्तरिक प्यारसे नहला देने वाले, बहिनों-माताओंके संतापको हर लेने वाले, गोमाताकी रक्षाके लिये विकल रहने वाले, गरीबोंकी क्षण-प्रति-क्षण सँभाल करने वाले, गुणीजनोंकी प्रतिभाको आदर देने वाले और सबसे बड़ी बात यह कि लोकोपकारके विभिन्न कार्योंको करते हुए भी लोकोत्तर दिव्य रस-सिन्धुमें सतत निमग्न रहनेके अद्वितीय आदर्शको प्रस्तुत करने वाले बाबा अब हमारे मध्य नहीं रहे।

गीतावाटिकाका सारा वातावरण विशेष रूपसे करुणाप्लावित हो उठा। समझमें नहीं आ रहा था कि सान्त्वना दी जाय या ली जाय। वाटिकाकी दिशा-दिशामें शोकका सागर उमड़ रहा था। शोक-सागरके भीषण ज्वारने सारी गीतावाटिकाको आत्मसात कर रखा था।

बाबाकी विदाईका प्रसंग तो कालका एक क्रूर प्रहार था। प्रहारसे आहत हम सभी व्याकुल थे। हम चाहे कितने ही व्याकुल क्यों न हों, परन्तु अन्तिम कई कार्योंको किसी प्रकारसे सम्पन्न करना शेष था ही। हमलोगोंको यह पता नहीं था कि संन्यासीके 'शान्त कलेवर'की अन्तिम क्रिया किस प्रकारसे पूर्ण की जाती है। गोरखपुरका गोरखनाथ मन्दिर 'नाथ पंथी' साधुओंका एक महान केन्द्र है। गोरखनाथ मंदिरके महन्त पूज्य श्रीअवेद्यनाथजी महाराजसे सम्पर्क किया गया और उन्होंने कुछ बतलाया। संयोगसे इस समय जम्मू-काश्मीरके स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज गीतावाटिकामें विद्यमान थे। गोरखनाथके पूज्य श्रीमहन्तजी एवं स्वामी श्रीकृष्णानन्दजीके परामर्शके अनुसार अन्तिम क्रियासे सम्बन्धित तैयारी होने लग गयी।

गीतावाटिकामें जहाँ श्रीगिरिराज भगवान प्रतिष्ठित हैं, वहाँ काठकी एक चौकी रखकर उसपर दूसरी चौकी रखी गयी। इस चौकी रूपी वेदीके चारों ओर गैरिक वस्त्रोंसे एक विशाल मण्डप बनाया गया। बाबाके शान्त-कलेवरको कुटियासे लाकर इस चौकी रूपी वेदीपर पद्मासनके रूपमें पधरा दिया गया, जिससे सभी भक्तजन दर्शन कर सकें। शहरसे लोग दर्शनार्थ उमड़ पड़े। बाबाके अन्तर्हित होनेका समाचार टेलीफोन द्वारा देशके कोने-कोनेमें फैलने लगा। वृन्दावन, कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, पटना, वाराणसी, बीकानेर इस प्रकार दूर-दूर स्थित अनेक स्थानोंसे फोन द्वारा यह जिज्ञासा होने लग गयी कि भूमि-समाधि कब दी जायेगी, जिससे अन्तिम दर्शनके लिये समयसे पूर्व गीतावाटिका पहुँचा जा सके।

सभीको यही बतलाया जा रहा था कि १४ अक्टूबरके दिन भूमि-समाधिकी क्रिया सम्पन्न होगी। विभिन्न स्थानोंसे लोग कोई वायुयान द्वारा, कोई ट्रेन द्वारा और कोई कार द्वारा गीतावाटिकाकी ओर चल पड़े। चल पड़े नहीं, अपितु यह कहना चाहिये कि भाग चले। गया जिलाके फखरपुर ग्रामसे बाबाके बड़े भाई पूज्य पंडित श्रीतारादत्तजी मिश्र भी आये। उनके साथ परिवारके अन्य कई लोगोंका भी गीतावाटिकामें आगमन हो गया।

गृहस्थकी शव-यात्राके लिये जो विमान बनता है, उसको अर्थी कहते हैं

और संन्यासीके लिये प्रयुक्त होनेवाले विमानको 'वैकुण्ठी' कहते हैं। स्वामी श्रीकृष्णनन्दजी महाराजके निर्देशानुसार वैकुण्ठीके निर्माण-कार्यमें बढ़ई संलग्न हो गये। प्रयास यह था कि वैकुण्ठीके आगे और पीछे दण्ड पर्याप्त लम्बे रहें, जिससे सभीको कन्धा देनेका अवसर मिल सके। यहाँ एक तथ्यकी ओर संकेत कर देना उचित रहेगा। यदि तत्परता पूर्वक कार्य किया जाता तो वैकुण्ठी १४ अक्टूबरके प्रातःकाल ही तैयार हो जाती, किन्तु जान-बूझ करके विलम्ब किया जा रहा था। बढ़ईसे कहा जा रहा था कि कार्य धीरे-धीरे करो, जिससे बम्बई आदि दूर स्थानोंसे स्वजन १४ अक्टूबरकी दोपहरतक आकर अंतिम दर्शन कर ले सकें। दोपहरके बाद निर्मित वैकुण्ठीको फूलोंसे खूब सजाया गया तथा उसे गिरिराज परिसरमें लाया गया।

बाबाके अन्तर्हित होनेका समाचार ज्यों ही वृन्दावन पहुँचा, पूज्य श्रीमहाराजजी (श्रद्धेय श्रीबालकृष्णदासजी महाराज) अत्यधिक मर्माहत हो उठे। उनको अपार व्यथा हो रही थी कि साधकोंकी, चरणाश्रित जनोंकी, समर्पित भक्तोंकी सँभाल अब कौन करेगा। अन्तर चाहे कितना ही व्यथित हो, उस व्यथासे विकलित हृदय लिये-लिये श्रीमहाराजजी वृन्दावनसे गीतावाटिका आये। आकर चौकीकी वेदीपर विराजित बाबाके गौर वपुको अपलक नयनसे बहुत देरतक एकटक निहारते रहे, निहारते रहे। निहारते हुए अपनी मूक भाषामें बाबासे उन्होंने मन-ही-मन क्या कहा, यह तो वे ही जाने, परन्तु एक अद्भुत बात घटित हो गयी। बाबाके 'शान्त कलेवर' ने अपनी पलकोंके स्पन्दनसे श्रीमहाराजजीको सान्त्वना प्रदान की।

चौकीकी वेदीके समीप मिट्टीके अनेक नये घड़ोंमें गंगाजल भरा था। जलमें केशर चन्दन आदि कई सुगन्धित वस्तुएँ सम्मिश्रित की गयी थीं। इस पावन गंगाजलसे महाराजजीने 'शान्त कलेवर'को सजल नेत्रों सहित स्नान कराया। भाव-परिवारके निज जनोंने तथा अनेक भक्तजनोंने स्नान करवाया। इसके बाद कलवेरके गैरिक वस्त्रको हटा करके नवीन गैरिक वस्त्र धारण करवाया गया। फिर कलेवरको वैकुण्ठीपर पद्मासनकी मुद्रामेंसे विराजित किया गया। चन्दन चर्चित कलेवरपर जन-जनके विकल हृदय एवं सजल नयन लटके-अटके हुए थे।

सर्व प्रथम कन्धा बड़े भाई पूज्य पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्रने दिया। साथ ही कन्धा दिया अनेक भक्तजनोंने। राधा नामकी तुमुल जय-ध्वनिके साथ कन्धेपर वैकुण्ठीको लिये-लिये अन्तिम यात्राका शुभारम्भ हुआ।

प्यार प्यार सत्य है।
राधा नाम सत्य है।।
नन्दनन्दन सत्य है।
प्यार प्यार सत्य है।।

इन चार पंक्तियोंके उच्च घोषसे सारा वातावरण प्रबल रूपसे गूँज रहा था। श्रीगिरिराज भगवानकी परिक्रमा लगा करके फिर श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिरकी परिक्रमा देते हुए वैकुण्ठीको श्रीराधाष्टमी महोत्सवके प्राचीन पण्डालमें पधराया गया। वहाँ श्रद्धा पूरित हृदयसे बाबाके प्रति रह-रह करके पुष्पाञ्जलि समर्पित की जा रही थी। इसके बाद गीतावाटिकाकी परिक्रमा लगाते हुए वैकुण्ठीको वहाँ लाया गया, जहाँ बाबाकी कुटिया थी।

बाबाने पहले ही यह कह रखा था कि मेरे शान्त कलेवरको यहीं भूमि-समाधि देनी है, जहाँ यह कुटिया है। बाबाके शान्त कलेवरको जब कुटियासे चौकीवाली वेदीपर लाया गया था, उसी समयसे कुटियाकी भूमि की खुदाईके कार्यका शुभारम्भ हो गया था। भूमिको खोदनेका कार्य मजदूरोंने नहीं, भक्तजनोंने किया। इस भूमि-गह्वरका १४ अक्टूबरके प्रातःकाल शास्त्रीय नियमानुमोदित विधिसे पूजन किया गया। १४ अक्टूबरके अपराह्नकालमें वैकुण्ठी भूमि-गहवरके पास लायी गयी।

शान्त कलवेरको भूमि-गह्वरमें पूर्ण सम्मान सहित पधरा दिया गया। फिर पूज्य श्रीमहाराजजीने तथा गोरखनाथके महन्त पूज्य श्रीअवेद्यनाथजी महाराजने अपने अञ्जलिसे शुद्ध मिट्टी अर्पित की। फिर तो सभी भक्तोंने क्रम-क्रमसे अपनी-अपनी कराञ्जलिसे मिट्टी समर्पित की। भूमि-गह्वर मिट्टीसे भर गया। १४ अक्टूबर १९९२ के दिन सूर्यास्तसे पहले-पहले बाबाके शान्त कलेवरको भूमि-समाधि प्रदान कर दी गयी। अब शोकाकुल जन-समुदाय भूमिस्थ बाबाकी पावन समाधिकी समतल भूमिको विकल नेत्रोंसे निहार रहा था।

* * * * *

वृन्दावन से श्रीमहाराजजी का पत्रात्मक उद्‌बोधन

गीतावाटिकामें कुछ दिन निवास करके श्रीमहाराजजी श्रीधाम वृन्दावन चले गये। वृन्दावनसे श्रीमहाराजजीका जो भावभरा पत्रात्मक उद्‌बोधन आया, वह मननीय है। वह आगे प्रस्तुत किया जा रहा है –

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीधाम वृन्दावन
५-११-१९९२

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम्॥

श्रीकृष्ण सहसा अन्तर्धान हो गये। उन्हें न देखकर व्रजगोपियोंकी जैसे गजराजके बिना हथनियोंकी दशा हो गयी। हृदय विरहाग्निसे जलने लगा। श्रीनन्दनन्दन मदनमोहनकी मत्त गजराजकी-सी गति, मधुर-मन्द-मादक मुसकान विलास भरी चितवन, मनोन्मादकारी प्रेमालाप, नव-नव लीलाओं एवं माधुर्य रसभरी भावमयी मुद्राओंने उनके चित्तको हरण कर लिया था। श्रीकृष्णमयी कृष्णकी अनेक चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं मतवाली गोपियाँ।

चतुर किशोरकी चाल-हास्य-विलास-चितवन-भाषण आदिमें उनके समान ही हो गईं। उनके तनुमें वही गति मानसिक स्थिति भाव भंगिमा सृष्टित हो गई। श्रीकृष्णस्वरूपा, तन्मया देहसे बेभान उन्हींकी लीलानुकरण करने लगीं।

वे सभी ऊँचे स्वरसे उनके अनन्त गुणोंका गायन करती हुई वन-वनमें सघन लताच्छन्न प्रदेशोंमें ढूँढने लगीं।

श्रीराधाबाबा अन्तर्हित हो गये, तत्क्षण आप सभी व्याकुल हो गये हैं। वे श्रीकृष्णके कमनीय भुज-दण्ड-परिमण्डित होकर मन्द गमन कर चुके।

वे चले नहीं गये (लीला संवरण नहीं किया) अन्तर्हित हुए हैं। जैसे श्रीपरीक्षितसे श्रीशुकदेवजीने कहा – श्रीकृष्ण कहीं दूर नहीं गये थे। वे तो समस्त जड चेतनमें उनके बाहर भी आकाशके समान एक रस स्थित हैं। वे वहीं थे, उन्हींमें थे, परन्तु उन्हें न पाकर गोपियाँ वनसे तरुओंसे पता पूछने लगीं।

श्रीबाबा वहींपर हैं, दूर कहीं नहीं गये, समस्त वृन्दावाटिकाके वृक्ष लता

पताओंमें एक रस स्थित हैं।

गिरिराज-प्रदक्षिणामें जैसे गमन करते हाव-भाव भंगिमामें आलापचारीमें दीखते थे, अवश्य ही दीख रहे हैं।

निरन्तर स्मरणीय विषय यह है कि सर्वदा निज स्वरूपमें राधा भावमें भावित माधुर्य रस-घन-रसिक शिरोमणि श्रीराधा बाबा अपने समीप समक्ष सतत वर्तमान हैं।

भाव नित्य, भाव भावित नित्य, भावमयी लीलायें नित्य एवं लीला स्थली नित्य। हाँ, रहेंगे, किन्तु कहेंगे नहीं 'थे'।

हृदय-मूल, भाव वर्तमान है भाव-हीनका जन्म हुआ ही नहीं। महापुरुषोंके चरित्र श्रवणसे भाव हृद्-मूलसे जागृत होता है। मधुर लीलाओंसे रसिक महानुभावोंके जीवनसे, शरीर-वाणी-मनसे पूर्णानुगत होकर ही भावानुभव कर सकते हैं।

मैंने पूछा था महापुरुष लीला संवरणके पश्चात् भी दर्शन कैसे देते हैं? मिलते क्यों?

श्रीश्रीबाबाने कहा – महाप्रलय पर्यन्त महापुरुष अपने कृपा पात्रोंको पथ-प्रदर्शन हेतु करुणया मिला करते हैं। उनका पूर्वीय स्वरूप भी नित्य है।

इस महामधुर वाक्यसे यही सुदृढ़ निश्चय विश्वास पूर्वक होता है कि श्रीश्रीबाबा व्याकुल साधकोंका पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे। अकारण करुणा करते रहेंगे। निकटतम होकर दर्शन भी देते रहेंगे।

हमें उनकी वाणीसे अभिप्रेरित होकर कथित नियमोंका पालन करते हुए अखण्डतया गीतावाटिकामें ही (अनन्यतया) निवास करना चाहिये।

शेष श्रीबाबाकी अहैतुकी कृपा।

आप सभीका शुभ चिन्तक
बालकृष्णदास
(श्रीवृन्दावन)

* * * * *

आन्तरिक निवेदन

पूज्य बाबा 'चले' गये। चले नहीं गये, अपितु उन्होंने स्वयंको छिपा लिया। उनके प्रत्यक्ष दर्शनका अभाव हो गया। उनके 'अन्तर्हित' हो जानेसे विचित्र करुणाप्लावित परिस्थितिका मेरे भीतर-बाहर उद्भव हो गया। मन बार-बार यही कहता था कि कमरेमें चुपचाप पड़े रहो। अब कहाँ जाना और कहाँ आना? न किसीसे मिलनेकी इच्छा थी और न कहीं जानेकी चाह। उनका दर्शन, उनकी संनिधि, उनसे संलाप अब भला कहाँ प्राप्य है? सजलतासे आर्द्र एक ऐसी विचलित मनस्थिति थी, जिसमें कमरेका एकान्त काटने दौड़ता था, पर बाहरका कोलाहल चुभता रहता था। विवशतामें घुटती हुई एक ऐसी विह्वलता थी, जिसमें आँखके आँसू न बाहर आ पाते थे और न भीतर छिप पाते थे। क्या सुबह, क्या शाम, उनके अविरल-निर्मल प्यारकी याद न हँसने देती थी और न रोने देती थी। इन दिनों भावनाओंके प्रवाहमें विरोधाभास कम नहीं रहा है। कभी लगता मानो उनसे सतत संयुक्त हूँ और कभी लगता कि अब नित्य वियुक्त हूँ।

कोई माने या न माने, पर यह सत्य है कि मैं व्रज-भावकी बातोंको सुननेके लिये पूर्णतः अनधिकारी था। सचमुच मैं अपात्र था, इसके बाद भी उन्होंने श्रीप्रिया-प्रियतमके परम प्रेमकी पावन चर्चा कभी-कभी छेड़ी ही है, उन पावन क्षणोंकी स्मृति क्या उठते क्या बैठते, भावनाओंको मथती रहती थीं। वे व्यथित भावनाएँ रह-रह करके उनका वन्दन करती थीं, उनका अर्चन करती थीं, उनकी 'जय-जय' कहती थीं। वह एक ऐसा संवेदनशील क्षण था, जिसमें उर्मिल मनकी भावुकता, भावकुतामें व्याप्त कोमलता उनका स्तवन करनेके लिये अकुला रही थी।

ऐसी आकुलताके चञ्चल क्षणोंमें श्रीमहाराजजीका भावभरा पत्रात्मक उद्बोधन मिला। इस पत्रात्मक उद्बोधनने आलोलित अन्तरको और अधिक आन्दोलित कर दिया। अब वृन्दावन उत्तरस्वरूप लिखकर भेजनेके लिये मेरे पास कुछ भी नहीं था। मेरे सामने प्रश्न था कि पूज्य श्रीमहाराजजीको अब क्या लिख करके भेजूँ। उन संवेदनशील करुणार्द्र क्षणोंमें विगलित अन्तरके तरलित भाव सलिलित होकर लेखनीके सहारे जिस रूपमें अवतरित हो उठे, उसी साक्षर सलिलाञ्जलिको बड़े संकोचके साथ समर्पित कर सकनेका साहस कर पाया श्रीमहाराजजीके श्रीचरणोंपर। पता नहीं, मेरी भावकुताकी कोमलताको उन्होंने

किस रूपमें स्वीकार किया।

वही सलिलाञ्जलि यहाँ भी प्रस्तुत है इस संकलनके अन्तिम निवेदनके रूपमें –

तेरे आँचलकी जय हो,

जो स्नेहके कोमल तारोंसे निर्मित है,
जो स्नेहके भव्य भावोंसे भावित है,
जो स्नेहकी ललित लीलाओंसे लसित है।

तेरे आँचलकी बार-बार जय हो,

जिसकी किनारीका किनारा नहीं,
जिसकी सुन्दरताकी सीमा नहीं,
जिसकी मधुरताका पार नहीं।

तेरे आँचलकी सतत जय-जयकार हो,

जो प्रेमका निधान है,
जो नग्नका परिधान है,
जो स्वयंमें महान है।

तेरे आँचलकी करुणा अपार है,

जो ग्लानिसे गलते हुए जनकी व्यथा हर लेती है,
जो कलुषसे कलपते हुए जनकी कालिमा पोंछ लेती है,
जो हृदयसे समर्पित हुए जनको सुषमित बना देती है।

तेरे आँचलकी महिमा शब्दातीत है,

जिसका दर्शन श्रान्त पथिकके लिये एक आन्तरिक आश्वासन है,
जिसका आश्रय क्लान्त पथिकके लिये एक लोकोत्तर अवलम्बन है,
जिसका वन्दन भ्रान्त पथिकके लिये एक आध्यात्मिक नवजीवन है।

तेरे आँचलकी निरपेक्षता अकल्पनीय है,

जो आश्रितोंसे कृतज्ञताकी अभिलाषा नहीं करती,
जो गुणज्ञोंसे आदरकी आशा नहीं करती,
जो स्वजनोंसे सराहनाकी अपेक्षा नहीं करती।

तेरे आँचलकी सदाशयता सदा प्रणम्य है,

जिसकी छायामें आलोचक-प्रशंसक समान रूपसे स्थान पाते हैं,
जिसकी छायामें परिचित-अपरिचित समान रूपसे सम्मानित होते हैं,
जिसकी छायामें साधु-असाधु समान रूपसे समादृत होते हैं।
तेरे आँचलके तन्तु-तन्तुकी बलिहारी है,
जिसके तार-तारमें प्रेमके प्रदर्शनकी भावना नहीं,
जिसके तार-तारमें प्रीतिके प्रतिदानकी कामना नहीं,
जिसके तार-तारमें प्यारके प्रचारकी कल्पना नहीं।
तेरे आँचलकी निकुञ्ज-भावना नित्य वन्दनीय है,
जिसका अवतार प्रियतमके प्यारकी जयकार है,
जिसका अभिसार प्रियतमके हृदयकी मनुहार है,
जिसका विस्तार प्रियतमके विहारकी झंकार है।
तेरे आँचलको — जी करता है — चूम लूँ,
जिसकी अरुणिमा स्नेहमें मूक बलिदानका पाठ है,
जिसकी फहरान स्नेहमें मूक उपासनाका गीत है,
जिसकी गाथा स्नेहमें मूक सेवाकी सीख है।
तेरे आँचलकी जय-जय क्यों न मनाऊँ,
जो अकल्पनीय महान है, पर जिसे अपनी महानताका अभिमान नहीं,
जो अतुलनीय सुन्दर है, पर जिसे अपनी सुन्दरताका अभिज्ञान नहीं,
जो अद्वितीय मधुर है, पर जिसे अपनी मधुरताका अनुमान नहीं।
वही आँचल मेरे लिये एक मात्र उपास्य है,
वही आँचल मेरे लिये एक मात्र वरेण्य है,
वही आँचल मेरे लिये एक मात्र आश्रय है।
वही आश्रय दे,
वही छाया दे,
वही स्नेह दे।

विनीत
राधेश्याम बंका

* * * * *

परिशिष्ट

समर्पणमूर्ति श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

पूज्य बाबूजी (रस-सिद्ध-संत परम पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के नित्य-लीलामें लीन हो जानेके बाद 'कल्याण'के सम्पादनका भार जिनके ऊपर आया, उन समर्पण-मूर्ति पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके व्यक्तित्वकी गरिमाकी झलक प्रस्तुत कर सकना मेरी क्षमताके बाहर है। गोस्वामीजीके समर्पण-भावका जैसा स्वरूप और जो स्तर था, वह जब मन और बुद्धिके लिये ही अगम्य है, तब भला वाणी उसका वर्णन कैसे कर सकती है? उनके मनको, मस्तिष्कको और जीवनको क्षुद्रता अथवा अभद्रता कभी छलसे भी स्पर्श न कर सकी। 'मति अकुंठ हरि भगति अखंडा'के साकार रूप थे गोस्वामीजी।



श्रद्धेय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एम.ए., शास्त्री, का जन्म सं.१९५७ वि. आषाढ़ कृष्ण ९ गुरुवार, २१ जून १९०० ई. को बीकानेरमें तैलंग ब्राह्मण कुलमें हुआ था। कई पीढ़ी पहले इनके पूर्वज दक्षिण भारतके तेलंगाना प्रदेशसे आकर राजस्थानके बीकानेर नगरमें बस गये थे। राजाश्रय मिलनेके कारण ही इनके पूर्वज बीकानेर आये थे। अब

तो तैलंग गोस्वामी-गणके अनेक परिवार बीकानेरमें बसे हुए हैं। भक्तिमती श्रीचन्द्रकलादेवी तथा श्रीव्रजलालजी गोस्वामीको इनके माता-पिता कहलानेका गौरव प्राप्त हुआ। सन् १९१६ में हाईस्कूलकी परीक्षा उत्तीर्ण करके आप वाराणसी चले आये और क्वीन्स कालेजमें अँगरेजी, दर्शन शास्त्र तथा संस्कृतका अध्ययन करने लगे। यहाँ पढ़ते समय महामहोपाध्याय पं.श्रीगोपीनाथजी कविराजका विशेष सामीप्य और संरक्षण मिला। क्वीन्स कालेजका अध्ययन पूर्ण करके आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे सन् १९२२ में संस्कृतकी एम.ए. परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। तदुपरान्त कुछ समयके लिये आपने महामना पं.श्रीमदनमोहनजी मालवीयके निजी सचिवके रूपमें कार्य किया। वाराणसीसे बीकानेर वापस आनेके बाद चार वर्षतक प्रधानाध्यापकके रूपमें कार्य करते रहे। फिर छः वर्षोंतक बीकानेर राज्यके राजनैतिक विभागमें कार्य किया और राज्यके प्रधान दीवान आदरणीय श्रीमन्नूभाई शाहके निजी सचिव रहे।

सन १९२८ ई. के प्रारम्भमें गोस्वामीजीकी सर्व प्रथम भेंट पूज्य बाबूजीसे हुई। बाबूजीके भक्तिपूर्ण संत जीवनका परिचय देकर उनसे गोस्वामीजीकी भेंट करानेका श्रेय आदरणीय श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीको है। भगवन्नामके प्रचार तथा सत्संगके उद्देश्यसे विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण करते हुए बाबूजी १३ जनवरी, १९२८ को बीकानेर पधारे थे। वहाँ बाबूजीके नेतृत्वमें नगर-संकीर्तनका आयोजन हुआ और उनका प्रवचन हुआ। गोस्वामीजीने यह प्रवचन सुना और उनका मन बड़ा प्रभावित हुआ। गोस्वामीजीका अध्ययन और ज्ञान विशद था। इस प्रवचनको सुनकर उन्हें लगा कि बाबूजी द्वारा जो कुछ भी कहा गया है, उसका आधार अनुभव है। मात्र पढ़ी-पढ़ायी अथवा सुनी-सुनायी बातोंके आधारपर ऐसा प्रवचन अथवा प्रतिपादन किया ही नहीं जा सकता।

इस प्रवचनको सुननेके बाद गोस्वामीजीका मन बाबूजीके प्रति आकृष्ट होने लगा। बाबूजी बीकानेरमें दो दिन तक रहे। इन दो दिनोंमें गोस्वामीजी बाबूजीके पास घंटों बैठे रहते तथा उनके साथ भगवद्विषयक चर्चा करते रहते। गोस्वामीजीके मनपर इस प्रथम समागमकी गहरी छाप पड़ी। इस छापके फलस्वरूप गोस्वामीजी लालसान्वित हो उठे कि बाबूजीके निकट सम्पर्कमें कुछ दिन रहना चाहिये। यह इच्छा बढ़ती ही चली गयी।

निकट सम्पर्ककी लालसा बहुत बढ़ जानेपर गोस्वामीजी सन् १९२९ ई. के ग्रीष्म कालमें बीकानेरसे गोरखपुर आये और बाबूजीके पास लगभग डेढ़ मास रहे। इस डेढ़ मासकी अवधिमें बाबूजीकी दिनचर्या और उनके जीवनको अति निकटसे देखनेका और उनके विचारोंको सतत सुननेका अवसर मिला। एक कहावत है— 'ज्यों-ज्यों कसे, त्यों-त्यों बसे'। गोस्वामीजी बाबूजीको जितना- जितना ही कसौटीपर कसते चले गये, उतना-उतना ही बाबूजी गोस्वामीजीके मनमें बसते चले गये। गोस्वामीजीको लगा कि बाबूजीका जीवन साधारण नहीं है। बाबूजीके भगवद्विषयक विचार, भगवत्सम्बन्धी अनुभव एवं भगवन्मय जीवन उनके असाधारण एवं लोकोत्तर व्यक्तित्वके परिचायक हैं। बाबूजीके लोकोत्तर व्यक्तित्वका प्रभाव गोस्वामीजीपर ऐसा पड़ा कि उन्होंने दस-पन्द्रह दिनके अन्दर ही एक महान् निर्णय ले लिया। वह निर्णय था सब कुछ छोड़कर बाबूजीके चरणोंके समीप रहनेका तथा शेष जीवन इन्हींकी छत्र-छायामें व्यतीत करनेका। यह जीवनका महत्त्वपूर्ण मोड़ था। अपने जीवनके सम्बन्धमें इस महत्त्वपूर्ण निर्णयको क्रियान्वित कर लेना सहज कार्य नहीं था। घरपर पूज्या माताजी और पूज्य पिताजी थे। उनकी आज्ञा अपेक्षित थी। डेढ़ मासके बाद गोस्वामीजी गोरखपुरसे बीकानेर वापस आ गये। बाबूजीके पास रहनेका जो निर्णय गोस्वामीजीने लिया था, तदनुसार कार्य करनेमें बड़ी कठिनाइयाँ आयीं, पर अध्यात्म-पथके सच्चे पथिकको भला कौन निश्चयसे विरत कर पाता है? सारी कठिनाईयोंको हल करते हुए सन् १९३३ ई. में गोस्वामीजी अपने संकल्पको पूर्ण कर पाये।

गोस्वामीजीके कोई सन्तान नहीं थी। वे अपनी धर्मपत्नीके सहित सन् १९३३ ई. में बीकानेरसे गोरखपुर चले आये स्थायी रूपसे रहनेके लिये। गोस्वामीजीका सहयोग पाकर बाबूजीको बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। समाजमें भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका प्रचार करनेके लिये तथा जन-जीवनमें आध्यात्मिकता एवं नैतिकताकी प्रतिष्ठाके लिये बाबूजी सतत प्रयत्नशील थे और इस लक्ष्यकी ओर आगे बढ़नेके लिये अन्य अनेक साधनोंके साथ-साथ सबसे सशक्त सहायिका थी 'कल्याण' मासिक पत्रिका। 'कल्याण' मासिक पत्रिका केवल हिन्दीमें निकलती थी। गोस्वामीजीके शुभागमनसे अब अँगरेजी भाषामें भी एक मासिक पत्रिका

निकलने लगी। इसका नाम था 'कल्याण-कल्पतरु'। 'कल्याण-कल्पतरु'का भी उद्देश्य वही था, जो 'कल्याण'का था, बस, अन्तर केवल भाषाका था। गोस्वामीजी हिन्दी, संस्कृत एवं अँगरेजीके प्रकाण्ड पण्डित थे। इन तीनों भाषाओंके व्याकरणपर गोस्वामीजीका असाधारण अधिकार था।

गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें 'कल्याण-कल्पतरु'के निम्नलिखित विशेषांक प्रकाशित हुए।

१- The God Number (ईश्वरांक)
२- The Gita Number (गीतांक)
३- The Vedant Number (वेदांतांक)
४- The Krishna Number (श्रीकृष्णांक)
५- The Divine Name Number (भगवन्नामांक)
६- The Dharma Tattva Number (धर्म-तत्त्वांक)
७- The Yoga Number (योगांक)
८- The Bhakta Number (भक्तांक)
९- The Krishna Leela Number (श्रीकृष्णलीलांक)
१०- The Cow Number (गो-अंक)

उपरोक्त विशेषांक तो प्रकाशित हुए ही, इनके अतिरिक्त 'कल्याण-कल्पतरु'के विशेषांकके रूपमें श्रीगीता-तत्त्व-विवेचनी, श्रीरामचरितमानस, श्रीमद्भागवतमहापुराण तथा वाल्मीकि रामायणके अँगरेजी अनुवाद क्रमशः प्रकाशित होते रहे। खेदके साथ लिखना पड़ रहा है कि वाल्मीकि रामायणका अनुवाद पूर्ण करनेके पहले ही गोस्वामीजी हमारे बीचसे चले गये। वाल्मीकि रामायणके युद्ध काण्डका अँगेरजी अनुवाद कर चुकनेके बाद उन्होंने उत्तर काण्डका अनुवाद-कार्य अपने हाथमें लिया। उत्तर काण्डके लगभग एक-तिहाई अंशका अनुवाद वे कर पाये थे कि रुग्णताने उनको घेर लिया। यह अस्वस्थता उनके जीवनके लिये विघातक सिद्ध हुई। फिर तो उत्तर काण्डके शेष भागका अनुवाद हो ही नहीं पाया।

'कल्याण-कल्पतरु'का प्रकाशन सन् १९३४ ई. से प्रारम्भ हुआ था। गोस्वामीजी 'कल्याण-कल्पतरु' के प्रधान सम्पादक तो थे ही, 'कल्याण' हिन्दी मासिक पत्रिकामें भी बाबूजीको सहयोग देने लगे और

सन् १९३९ ई. से 'कल्याण'के सहायक सम्पादकके रूपमें उनका नाम छपने लगा। बाबूजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके उपरान्त 'कल्याण'के सम्पादनका कार्य-भार गोस्वामीजीपर ही आ गया। अब 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु', दोनों पत्रिकाओंका कार्य गोस्वामीजीको सँभालना पड़ता था। गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें 'कल्याण' के तीन विशेषांक प्रकाशित हुए– श्रीरामांक, श्रीविष्णु-अंक और श्रीगणेशांक। सामग्री और सुसज्जा की दृष्टिसे ये तीनों विशेषांक ठीक वैसे ही थे, जैसे बाबूजीके सम्पादकत्वमें अनेक विशेषांक प्रकाशित होते रहे हैं। गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें भी 'कल्याण' की गौरवमयी परम्परा और आध्यात्मिक गरिमा अक्षुण्ण रही।

बाबूजीके महाप्रस्थानके उपरान्त 'कल्याण'के सम्पादनका भार सँभालनेपर उन्होंने जो निवेदन लिखा, उसमें उनके हृदयका एक अत्यन्त उज्ज्वल रूप देखनेको मिलता है। निवेदनमें उन्होंने लिखा था– ''परम भागवत श्रीपोद्दारजीके पार्थिव देह त्यागकर नित्यलीलालीन हो जानेसे 'कल्याण'के सम्पादनका भार मेरे दुर्बल कंधोंपर आ पड़ा है, जिसे वहन करनेमें मैं अपनेको सर्वथा अक्षम अनुभव करता हूँ। अबतक तो 'कल्याण' का सारा भार श्रीपोद्दारजी अकेले ही वहन करते थे। मेरा नाम तो उन्होंने शीलवश मुझे प्रोत्साहन देने और मेरी सम्मानकी वासनाको पूर्ण करनेके लिये ही अपने गौरवशाली नामके साथ जोड़ दिया था। मेरे अन्दर न तो साधनाका बल है, न आध्यात्मिक अनुभव है, न त्याग है, न तप है, न दैवी सम्पदा है, न प्रौढ़ विचार है, न वैसा शास्त्रोंका अध्ययन एवं मनन है और न मेरी लेखनीमें ही शक्ति है। ऐसी दशामें 'कल्याण' जैसे पत्रके सम्पादकमें जैसी और जितनी योग्यता होनी चाहिये, उसका मैं अपने अन्दर सर्वथा अभाव देखता हूँ। 'कल्याण'की सेवाका मैं अपनेको सर्वथा अनधिकारी मानता हूँ। पर परम श्रद्धेय श्रीभाईजी जैसे परम स्वजनके प्रति अपने कर्तव्य-निर्वाहकी भावनासे 'कल्याण'के कार्यको किसी रूपमें सँभाल रहा हूँ। वास्तवमें 'कल्याण'के कार्यको मैं श्रीभाईजी द्वारा ही किया हुआ अनुभव करता हूँ। पद-पदपर वे अपने चिन्मय रूपसे इसकी सँभाल करते हैं, अन्यथा मुझ जैसे अयोग्य, अल्पज्ञ, साधनहीन तुच्छ व्यक्तिद्वारा यह महान कार्य सम्पन्न होना सर्वथा असम्भव है। मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ कि कैसे क्या कार्य

हो जाता है। उनकी पद-पदपर सँभालको देखते हुए मनको विश्वास नहीं होता कि श्रीभाईजी 'कल्याण'से पृथक् हो गये हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि 'कल्याण' उनका है और वे 'कल्याण' के हैं, या यों कहें कि वे 'कल्याण' स्वरूप ही हो गये हैं। हमारा विश्वास ही नहीं, अनुभव है कि श्रीभाईजी परोक्ष रूपमें आज भी 'कल्याण' को सँभाल रहे हैं और इसी कारण इसका कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है।''

'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादन-कार्यको सँभालते समय भी गोस्वामीजीकी यही मान्यता थी कि पत्रिका-सम्पादनका कार्य सम्पन्न हो रहा है मेरे द्वारा नहीं, अपितु उनके (अर्थात् बाबूजीके) द्वारा, भले ही यह सम्पन्नता परोक्ष रूपसे ही रही हो। समर्पणका जैसा आदर्श गोस्वामीजी महाराजने उपस्थित किया, वह सर्वथा अनुपम है।

'कल्याण-कल्पतरु' और 'कल्याण' पत्रिकाओंके कार्यसे अलग गोस्वामीजीने भक्तकवि सूरदासजीके भ्रमर-गीतके कई सौ पदोंका हिन्दीमें अर्थ लिखा। २७० श्लोकोंवाली 'श्रीराधा-सुधा-निधि' ग्रन्थके पदच्छेद-अन्वय-अर्थसहित टीकाके सम्पादनका कार्य भी गोस्वामीजीद्वारा सम्पन्न हुआ। गीताप्रेससे संस्कृत एवं अँगरेजी भाषाका जितना साहित्य, चाहे पत्रिकाके रूपमें अथवा पुस्तकके रूपमें छपता, उसकी शुद्धि एवं प्रामाणिकताका अधिकांश श्रेय गोस्वामीजीके परिश्रमको है।

श्रीरामचरितमानसके बारेमें अब तो यह बात प्रायः कही-सुनी जाती है कि यदि इस ग्रन्थकी रचनाका श्रेय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीको है तो इस ग्रन्थको नगर-नगर, ग्राम-ग्राम पहुँचानेका श्रेय गीताप्रेसके माध्यमसे बाबूजीको है। गीताप्रेससे श्रीरामचरितमानसको प्रकाशित करनेके पहले बाबूजीने मानस पाठका संशोधन गोस्वामीजीसे करवाया। गोस्वामीजीको इस संशोधन-कार्यमें महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला हिन्दीके विद्वान श्रीनन्ददुलारेजी वाजपेयीसे। फिर स्वयं बाबूजीने मानसका हिन्दीमें अर्थ लिखा। मलिहाबाद स्थित मानसकी प्रति, राजपुर स्थित अयोध्या काण्डकी प्रति, दुलही ग्राम स्थित सुन्दर काण्डकी प्रति, श्रावण कुञ्ज (अयोध्या) स्थित बालकाण्डकी प्रति, गोलाघाट (अयोध्या) स्थित मानसकी प्रति तथा और भी कुछ प्रतियाँ, इन सभी प्रतियोंका तुलनात्मक अध्ययन करके ही गोस्वामीजीने मानसका पाठ संशुद्ध किया था। आज गीताप्रेससे मानसका जो पाठ प्रकाशित हो रहा है, उसे प्रस्तुत किया गोस्वामीजीके

अध्ययनशील व्यक्तित्वने ही।

गोस्वामीजी अनुवाद एवं सम्पादनके कार्यमें अधिक व्यस्त रहा करते थे, अतः कई-कई दिनतक वे बाबूजीसे मिल नहीं पाते थे। बाबूजीके सेवा-परायण नित्य परिकर भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालको यह प्रिय नहीं लगा। एक दिन भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने गोस्वामीजीसे कहा– आपको दिनमें कम-से-कम एक बार बाबूजीके पास जाना चाहिये। न जाने कितने लोग दूर-दूरके स्थानोंसे मिलनेके लिये आते हैं और आप यहाँ रह करके भी बाबूजीसे नहीं मिलते?

गोस्वामीजीने मधुर स्वरमें उत्तर दिया– यदि मैं मिलने जाता हूँ तो कम-से-कम आधा घंटा समय लग ही जायेगा। इस आधे घंटेका उपयोग यदि मैं उनके बतलाये हुए कार्यको करनेमें लगाऊँ तो कितना सुन्दर हो? उनके द्वारा निर्दिष्ट कार्य पहले ही पूरा नहीं हो पाता। यदि मैं प्रतिदिन उनके पास जाने लगूँ तो जानेसे उनके कार्यकी ही हानि होगी। मैं अपने मनकी बात कैसे समझाऊँ? उनका दर्शन और उनका सामीप्य कौन नहीं चाहता? उनके दर्शन और संभाषणसे मुझे बड़ा सुख मिलेगा, परंतु इस सुखसे अधिक सुखप्रद है उनकी आज्ञाका पालन। मेरी आन्तरिक चाह है कि उनका कार्य पूर्ण हो।

गोस्वामीजीके उत्तरको सुनकर भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी मौन हो गये। क्रमशः गोस्वामीजीपर कार्य-भार अधिकाधिक बढ़ता ही चला जा रहा था। उनके कार्यमें कुछ सहारा दे देनेकी भावनासे एक बार श्रीमद्भागवतमहापुराणके कुछ अध्यायोंका अँगरेजीमें अनुवाद एक विख्यात विद्वानसे करवाया गया। उस अँगरेजी अनुवादमें गोस्वामीजीको कई न्यूनताएँ दिखलायी दीं। श्लोकके मध्यमें जहाँ 'च', 'तत्', 'ह', 'हि', 'एव', 'वा', 'बत', 'अपि', 'इव', 'अथ', 'इति' आदि शब्द आते हैं, इन शब्दोंके प्रयोगके बारेमें अच्छे-अच्छे विद्वानोंकी कुछ-कुछ ऐसी धारणा है कि कई बार तो इन शब्दोंको काव्य-रचना पूर्ण करनेके लिये श्लोकोंमें भर दिया गया है। गोस्वामीजीकी अति सुदृढ़ मान्यता यह थी कि इन शब्दोंको पाद-पूरणार्थ-प्रयोगके रूपमें सोचना अपनी अल्पज्ञताका परिचय देना है। इतना ही नहीं, इससे

यह भी ध्वनित होता है कि ऐसे टिप्पणीकर्ता विद्वान्, जो इन शब्दोंका प्रयोग पाद-पूर्तिके रूपमें देखते हैं, वे पुराणों-जैसे विशाल वाङ्मयके रचयिता वेदव्यासजीको ऋषि-दृष्टि-सम्पन्न द्रष्टा-कवि नहीं मानकर मात्र एक श्रेष्ठ कवि मानते हैं। वास्तविकता यह है कि श्रीमद्भागवतमहापुराणके एक-एक शब्दमें अर्थ-गाम्भीर्य है और उस अर्थ-गाम्भीर्यकी गहराईतक पहुँच न होनेके कारण ही इस प्रकारके हलके अभिमत भागवतकारके प्रति व्यक्त कर दिये जाते हैं। ऐसी भ्रान्त धारणाओंके फलस्वरूप जो अर्थ-दोष उस अनुवादमें थे, उन सबको गोस्वामीजीने बाबाको दिखलाया। बाबाका भी मत वही था, जो गोस्वामीजीका था। बाबा तो श्रीमद्भागवतमहापुराणके एक-एक शब्दको महत्त्वपूर्ण मानते हैं और उन्हें देर नहीं लगी गोस्वामीजीके कथनको समझनेमें। उस अँगरेजी अनुवादमें व्याप्त अर्थ-दोषवाली बात बाबाके भी ध्यानमें भली प्रकारसे आ गयी। फिर उन विख्यात विद्वान द्वारा कृत अँगरेजी अनुवादको आलमारीमें सुरक्षित रख देनेके लिये कहकर बाबाने गोस्वामीजीसे निवेदन किया— गोस्वामीपाद! आपपर कार्य-भार अवश्य ही अधिक है, किंतु जगतके समक्ष प्रामाणिक अनुवाद रखनेके लिये यह अनुवाद-कार्य आप ही पूर्ण करें।

और यह अनुवाद-कार्य गोस्वामीजीद्वारा सम्पन्न हुआ। बाबा गौरवमयी वाणीमें कई बार कहा करते हैं कि अपने आर्ष ग्रन्थोंका ऐसा प्रामाणिक और आधिकारिक अँगरेजी अनुवाद अभीतक मेरे देखनेमें नहीं आया। गोस्वामीजीके अनुवाद-कौशलकी गरिमाको देश-विदेशके अच्छे-अच्छे विद्वानोंने उन्मुक्त मनसे स्वीकार किया है।

प्राच्य पुरातन विद्या विशारद डा. श्रीविश्वम्भरशणजी पाठकके विचारानुसार गोस्वामीजीने भारतीय धर्म-ग्रन्थोंके अँगरेजी अनुवादके कार्यमें महान आदर्शकी प्रतिष्ठा की है। हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंका अँगरेजीमें अनुवाद करनेवाले आजतक जितने भी विद्वान हुए हैं, चाहे वे किसी काल अथवा देशके हों, उन सबको गोस्वामीजीने पीछे छोड़ दिया है। वेदोंके महापण्डित कहलानेवाले श्रीमैक्समूलर महोदय, इसी प्रकार अनुवाद-कार्यके क्षेत्रमें अमेरिकी विद्वान मारिस ब्लूमफील्ड, जर्मन विद्वान गेल्डनर, भारतीय विद्वान आनन्दकुमार स्वामी, कोई भी गोस्वामीजीकी गरिमाका स्पर्श करनेमें वस्तुतः समर्थ नहीं है।

गोस्वामीजीकी मान्यता रही है कि साहित्य-क्षेत्रके काव्यों और धर्म-क्षेत्रके काव्योंके अनुवादकी शैलीमें अन्तर होना चाहिये और इस अन्तरका हेतु यही है कि धर्म-काव्योंमें प्रत्येक शब्दकी प्रयोग-पद्धति और प्रत्येक वाक्यकी रचना-शैलीके पीछे एक विशेष प्रयोजन है। अध्यात्म-साधना और शब्द-साधना, इन दोनों साधनाओंसे गोस्वामीजीका जीवन परिपूर्ण था, इसीके फलस्वरूप उन्हें इस विशेष प्रयोजनकी जानकारी हो सकी। हिन्दू धर्मके आर्ष वाङ्मयका अँगरेजी भाषामें प्रामाणिक अनुवाद किस पद्धतिसे होना चाहिये, इसपर गोस्वामीजीने गम्भीरतापूर्वक विचार किया और उस चिन्तन-नवनीतको उन्होंने कार्य-रूपमें प्रतिफलित भी कर दिखलाया।

एक बार बाबाने बाबूजीकी एक कृतिका एक श्रेष्ठ विद्वानसे संस्कृतमें अनुवाद करवाया। वह अनुवाद ठीक लगनेके बाद भी बाबाने उस संस्कृत अनुवादको देखनेके लिये गोस्वामीजीके पास भेज दिया। उस संस्कृत अनुवादमें एक प्रयोगके सामने प्रश्नवाचक चिह्न लगाकर गोस्वामीजी बाबाके पास आये। गोस्वामीजीने वह प्रयोग दिखलाते हुए बाबासे कहा— मेरी अल्प समझके अनुसार यह प्रयोग सही नहीं लग रहा है।

बाबाको वह प्रयोग सही लग रहा था। बाबा द्वारा पूछे जानेपर गोस्वामीजीने अपने पक्षमें कुछ कारण बतलाये। जब कुछ निर्णीत नहीं हो सका तो यह तय हुआ कि किन्हीं प्रौढ संस्कृत वैयाकरणको बुलाकर इस प्रयोगके विषयमें निर्णय लिया जाये। गोरखपुरकी एक संस्कृत पाठशालाके व्याकरणाचार्यको बुलवाया गया। उनको सब बात समझानेमें ही आधा घंटा लग गया। सब समझ करके भी वे अपना निर्णय नहीं दे पाये। फिर गीताप्रेसमें कार्य करनेवाले एक पण्डितजीको बुलवाया गया, जो व्याकरणके विशेषज्ञ माने जाते थे। वे व्याकरण- विशेषज्ञ दोनों पक्षोंकी बातको सुनकर भी कोई समाधान नहीं दे पाये। फिर यह सोचा गया कि वाराणसीसे किसी व्याकरण-मर्मज्ञको बुलवाकर निर्णय करवाया जाये। जब बात बढ़ते-बढ़ते यहाँतक आ गयी तो गोस्वामीजीने कहा— क्यों किसीको बुलवाया जाये ? हमलोग परस्परमें विचार करके स्वयं निर्णय कर लें।

बाबा और गोस्वामीजीके मध्य यह विचार-विनिमय तीन दिनतक चलता रहा। यह एक प्रकारका मधुर शास्त्रार्थ था। दोनों पक्ष उस प्रयोगके औचित्य-अनौचित्यपर अपने-अपने तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। फिर यह तय हुआ कि श्रीभट्टोजी दीक्षित द्वारा प्रणीत व्याकरण-ग्रन्थको देखना चाहिये। उस

व्याकरण-ग्रन्थमें दोनों ही बातें दी गयी थीं और दोनों प्रकारके प्रयोगोंको सही ठहराया गया था। अब तो कोई प्रश्न ही शेष नहीं था। इस व्याकरणग्रन्थने दोनों पक्षोंको पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया। दोनों पक्षोंका समाधान होते ही बाबाने तत्काल गोस्वामीजीकी मान्यताको आदर दिया और उस संस्कृत अनुवादमें गोस्वामीजीके कथनानुसार प्रयोगको ठीक कर दिया।

इस प्रसंगको सुना करके बाबा कई बार गोस्वामीजीके बारेमें कहा करते हैं कि व्याकरणकी गहराईमें उनकी पैठ और स्व-पक्षको प्रतिपादित करनेकी उनकी योग्यता अनोखी थी। इधर तो बाबा इस प्रकार कहा करते थे और उधर यदि कोई शब्द-प्रयोग गोस्वामीजीके लिये कदाचित् विचारणीय बन जाता था तो वे उस सम्बन्धमें विचार एवं विवेचन करनेके लिये बाबाके पास आया करते थे।

इतने महान विद्वान होकर भी गोस्वामीजी स्वयं अमानी रहकर दूसरोंको सम्मान देनेमें सदैव तत्पर रहा करते थे। एक बार इसका बड़ा सुन्दर प्रसंग देखनेको मिला। घटना सम्भवतः सन् १९६३ ई. की है। बर्तन माँजनेवाले, फूल- पौधोंकी सँभाल करनेवाले, इस स्तरके जितने भी सेवक गीतावाटिकामें थे, उन सभीके भोजनका विशद आयोजन बाबाकी प्रेरणासे हुआ। सेवकोंमें बाबाका भगवद्भाव था और इसी भावसे यह कार्यक्रम आयोजित हुआ था। सभी सेवकोंको पहननेके लिये नवीन वस्त्र दिया गया और सभीको वाटिकाके बड़े-बड़े लोगोंने परोस-परोस करके भोजन करवाया। सेवकोंके भोजन कर लेनेके बाद ही घरवालोंने प्रसाद-भावसे भोजन किया। इस कार्यक्रममें बाबाने यह निर्धारित किया था कि सभी सेवकोंके चरण भोजनके पूर्व धोये जायँ और पाद-प्रक्षालनका यह कार्य गोस्वामीजीके द्वारा सम्पन्न हो। ज्यों ही यह बात बाबाने गोस्वामीजीसे कही, त्यों ही गोस्वामीजीने इसे अपना परम सौभाग्य माना। यह भावना उनके मनमें स्फुरित ही नहीं हुई कि मैं विद्वान सम्पादक हूँ, अथवा मैं आचार-निष्ठ भक्त हूँ, अथवा मैं गोस्वामि-कुलोद्भूत ब्राह्मण हूँ, अथवा मैं एक प्रौढ़ व्यक्ति हूँ, अपितु पाद-प्रक्षालनके कार्यके लिये स्वयंका चयन होना बाबाके अमाप्य प्यारका परिचायक माना। जब सेवकोंका यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने बाबासे प्रार्थना की– बाबा! ऐसा कार्य नहीं होना चाहिये, जो हमलोगोंको बहुत भारी पड़े। गोस्वामीजी महाराज हमलोगोंके लिये पूज्य हैं और प्रणम्य हैं, फिर क्या हमलोगोंके लिये सह्य होगा कि वे हमारे पैरोंका स्पर्श करें?

सभी सेवकोंद्वारा ऐसा कहे जानेपर पाद-प्रक्षालनका कार्य

गोस्वामीजीद्वारा नहीं हो पाया, परंतु वे तो पूर्णरूपेण प्रसन्न मनसे प्रस्तुत थे।

सन् १९५९ ई. के आस-पास एकबार बाबाने गोस्वामीजीके पास एक संदेश भिजवाया। इस संदेशको सूचना कहना चाहिये। सूचना यह थी कि बीकानेरनरेश महाराजाा श्रीगंगासिंहजीका लीला-प्रवेश हो गया है। जब गोस्वामीजी बीकानेरके प्रशासन-विभागमें कार्य करते थे तो उनका महाराजा श्रीगंगासिंहजीसे निकट सम्पर्क रह चुका था। इस सूचनाको पाकर गोस्वामीजीको आनन्द हुआ, परंतु आनन्दसे अधिक आश्चर्य हुआ। आश्चर्य हुआ यह सोचकर कि उनका निधन तो कई वर्ष पहले हो चुका था और श्रीराधाकृष्णके लीला-राज्यमें उनका प्रवेश अब हुआ और यह हुआ तो किस पुण्य अथवा साधना अथवा कृपाके फलस्वरूप हुआ? गोस्वामीजीको ज्ञात था कि महाराजा श्रीगंगासिंहजी तो राजसी ठाट-बाटके मध्य जीवन व्यतीत करनेवाले मात्र एक श्रेष्ठ हिन्दू नरेश थे। गोस्वामीजीने अपने आश्चर्यको व्यक्त किया तो बाबाने बतलाया कि महाराजा श्रीगंगासिंहजीको अपनी किसी साधनाके फलस्वरूप यह स्थिति प्राप्त नहीं हुई, अपितु यह तो वस्तुतःश्रीपोद्दार महाराजसे होनेवाले सम्पर्क एवं सम्बन्धका सुन्दर परिणाम था। इस तथ्यको सुनकर गोस्वामीजीकी बाबूजीके प्रति आन्तरिक श्रद्धा-भावना कितनी पुष्ट और प्रफुल्ल हुई होगी, यह कल्पनासे परेकी बात है।

गोस्वामीजी गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाले 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु'के सम्पादकीय विभागमें कार्य करते थे केवल सेवा-भावसे भावित होकर। द्रव्यार्जनका उद्देश्य तो रंचमात्र भी नहीं था। इसके बाद भी गीताप्रेसकी ओरसे जीवन-निर्वाहके लिये यत्किंचित् मिलता ही था। जो मिलता था, वह वस्तुतः यत्किंचित् ही था और इससे पूज्या चाचीजी (पूज्य गोस्वामीजी धर्मपत्नी) को गृहस्थ-जीवनकी व्यवस्थामें कठिनाई झेलनी पड़ती थी। चाचीजीके स्वभावमें व्यावहारिकता अधिक थी और वैसा माधुर्य नहीं था, जैसा गोस्वामीजीके व्यक्तित्वमें था। चाचीजीके रूक्ष व्यवहारसे गोस्वामीजीका मन कभी-कभी खिन्न हो जाया करता था। बाबा चाचीजीको अपनी माँके समान आदर एवं स्थान दिया करते थे। एक बार बाबाने गोस्वामीजीसे कहा—गोस्वामीपाद! आपसे एक निवेदन है। आपकी धर्मपत्नीके प्रति मेरे मनमें मातृ-भाव है। वह बाबाकी माँ है, ऐसा मानकर उसपर शासन नहीं करना चाहिये। उसकी कोई चेष्टा आपको अप्रिय लगती हो तो उसे सहन कर लेना

चाहिये।

बाबाद्वारा ऐसा कह दिये जानेके बाद गोस्वामीजीने फिर कभी चाचीजीपर शासन किया ही नहीं। सचमुच, गोस्वामीजी जैसा समर्पण-भाव होना कठिन ही है।

गोस्वामीजीका आचार-विचारपर बड़ा ध्यान रहा करता था। एक बार गोस्वामीजी गीताप्रेस गये। गीताप्रेसके मैनेजर श्रीदुर्गाप्रसादजी गुप्त अपने कार्यालयमें कुर्सीपर बैठ हुए थे। श्रीदुर्गा बाबूसे गोस्वामीजीको मिलना था। कमरेमें प्रवेश करनेके पूर्व गोस्वामीजी अपने पैरोंमेंसे कपड़ेवाला जूता निकालने लगे। श्रीदुर्गा बाबूने कहा– आप जूता क्यों निकाल रहे हैं? मेरे इस कमरेमें तो सभी लोग जूता पहने हुए ही आते हैं।

गोस्वामीजीने कहा– मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि जहाँ लिखने-पढ़ानेका सात्त्विक कार्य हो रहा हो, वहाँ जूता पहने रहा जाये अथवा जूता पहने हुए ही उस कमरेमें प्रवेश किया जाये। भले ही लोग जूता पहने हुए आपके कमरेमें जाते हों, परंतु मुझे यह रुचिकर नहीं।

श्रीदुर्गा बाबूके द्वारा निवारण किये जानेके बाद भी गोस्वामीजी जूता निकाल कर ही उनके कमरेमें गये।

वंशानुवंश-परम्परासे गोस्वामीजीके परिवारमें श्रीवल्लभ-सम्प्रदायका ही आनुगत्य रहा है। वल्लभ-कुलीय होनेके कारण गोस्वामीजीके जीवनमें शौचाचार एवं स्पर्शास्पर्शका बड़ा स्थान था। गोस्वामीजी सदा अपने घरपर ही भोजन किया करते थे। कहीं अन्यत्र भोजन करनेका प्रश्न ही नहीं था। बस, एक अपवाद था। वह था बाबूजीके घरका प्रसाद। बाबूजीके घरकी प्रत्येक वस्तु गोस्वामीजीको ग्राह्य थी। शौचाचारसे सम्बन्धित एक सरस प्रसंग उस समयका है, जब तीर्थ-यात्रा-ट्रेन मथुरा स्टेशनपर ठहरी हुई थी। बाबाके निर्देशके अनुसार ठाकुर श्रीघनश्यामजी बरसानेके एक प्रच्छन्न प्रेमी भक्तके घरसे भिक्षा-प्रसाद ले आये और बाबाको दे दिया। बाबाने कण-मात्र स्वीकार करके वह भिक्षा-प्रसाद पा लेनेके लिये गोस्वामीजीको दे दिया। गोस्वामीजीका नित्य-नियम अभी सम्पन्न नहीं हुआ था और इतना ही नहीं, स्पर्शास्पर्श-निष्ठाकी प्रबलताके कारण हर वस्तु ग्राह्य भी नहीं थी। इन दोनों बातोंके होते हुए भी गोस्वामीजीने बिना विचार किये हुए भिक्षा- प्रसादको पा लिया, केवल इसीलिये कि बाबाने पा लेनेके लिये कह दिया है। ऐसा

समर्पण-भाव था गोस्वामीजीका बाबा तथा बाबूजीके प्रति।

अपने समर्पित जीवनके कारण गोस्वामीजी बाबूजीके परिवारके एक ऐसे अभिन्न अंग बन गये थे कि परमादरणीया बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) उनको चाचाजी कहती थी और बाईकी चारों सन्तानें उनको नानाजी कहती थीं। बाईके प्रति तथा बाईके बालकोंके प्रति गोस्वामीजीके मनमें अत्यधिक दुलार था। बाबूजीके चले जानेके बाद गोस्वामीजीका वात्सल्य इन बालकोंके प्रति और भी अधिक उमड़ पड़ा था।

ग्रीष्मकालमें बाबा तथा बाबूजी स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) जाया ही करते थे। उस समय गोस्वामीजी गीतावाटिकामें रहा करते थे। पीछे एक वरिष्ठ व्यक्तिको रहना ही चाहिये गीतावाटिकाकी सँभालके लिये। केवल सँभाल ही नहीं, 'कल्याण-कल्पतरु' के सम्पादन-कार्यको पूरा करनेके लिये। बस, गोस्वामीजीको गीतावाटिकाका दायित्व सँभलाकर बाबूजी बाबाके साथ स्वर्गाश्रम चले जाया करते थे। एक बार कोई ऐसा आवश्यक कार्य आ गया कि गोस्वामीजीको स्वर्गाश्रम जाना पड़ गया। गोस्वामीजी प्रातःकाल आठ-नौ बजे बाबूजीके पास डालमिया कोठी पहुँचे। पहुँचनेपर शौच-स्नानके उपरान्त बाबूजीसे आवश्यक बातचीत हुई। इसके बाद बाबूजीने कहा— आप आज ही अपराह्नकालमें गोरखपुर वापस चले जायें।

भोजनके बाद गोस्वामीजी गोरखपुर वापस जानेकी तैयारीमें लग गये। ज्यों ही बाईको पता चला कि चाचाजी तो वापसी यात्राकी तैयारीमें लगे हैं, उसे बड़ा बुरा लगा। कितने वर्षोंके बाद तो गोस्वामीजीका आना हुआ और न जाने कितने मिलनेवाले, दर्शन करनेवाले लोग होंगे? फिर यह भाग-दौड़ भी क्या कोई भली बात है कि आये और तुरंत चल दिये? बेटी होनेके नाते पिताजीसे हठ करनेका अधिकार बाईको सदा था, सदा है और यह प्रीति-कलह भी कैसा मधुर है कि बेटीके बाल-हठके सामने बाबूजीको झुकना पड़ा। बाबूजीने गोस्वामीजीको रोक लिया। फिर गोस्वामीजी कई दिन स्वर्गाश्रममें रहे, पर अपनी ओरसे कोई इच्छा नहीं। बाबूजीने वापस जानेके लिये कहा तो मनसे पूर्णतः तैयार और ठहर जानेके लिये कहा तो उसके लिये भी भीतरसे वैसी ही तैयारी। गोस्वामीजीका न चले जानेसे प्रयोजन था और न ठहर जानेसे प्रयोजन। बस, प्रयोजन है तो इतना ही है कि तुम संचालन करो और तुम्हारे संकेतपर यह जीवन परिचालित रहे। गोस्वामीजीका जीवन-सूत्र था— ''वंशीवत् जीवनको खाली कर देना ही समर्पणकी सीमा है। अपना स्वर

अपने राग अपनी चाह कुछ नहीं, प्यारेकी जैसी इच्छा''।

गोस्वामीजीका कण्ठ बड़ा सुरीला था। वृद्धावस्थामें भी उनके गायनका लालित्य बना रहा। गीतावाटिकामें प्रायः प्रतिदिन ही बाबूजीका प्रवचन एक घंटे प्रातःकाल हुआ करता था। बादके वर्षोंमें तो गोस्वामीजीको समय कम मिला करता था, परंतु गीतावाटिकाके आरम्भिक वर्षोंमें इस प्रवचनके पूर्व गोस्वामीजी एक भक्ति-पदका गायन किया करते थे। जब तीर्थ-यात्रा-ट्रेन गयी थी, तब उस ट्रेनमें बाबूजीके साथ गोस्वामीजी भी गये थे। जहाँ-जहाँ ट्रेन पहुँचती थी, वहाँ- वहाँ बाबूजीका स्वागत होता था और उपस्थित भक्तोंके मध्य बाबूजीको प्रवचन भी देना पड़ता था। वहाँ भी गोस्वामीजी प्रवचनके पूर्व पद गाया करते थे।

एकान्तवास और स्वास्थ्य-लाभकी दृष्टिसे बाबूजी सन् १९३९ से १९४५ तक रतनगढ़में रहे थे। वहींपर 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' का सम्पादकीय विभाग भी था। बाबा भी बाबूजीके साथ थे और उनका मौन व्रत चल रहा था। इन्हीं दिनोंकी बात है। बाबा तथा बाबूजी और कुछ निकटवर्ती जन बैठे हुए थे। उसी समय गोस्वामीजीने अपने सुललित कण्ठसे श्रीरासपञ्चाध्यायीका गोपीगीत 'जयति तेऽधिकम्' गाया। गायनका माधुर्य अपनी सीमापर था। सम्पादकीय विभागके एक सदस्य आदरणीय श्रीमधुरजी साथ-साथ वीणा बजा रहे थे। उनकी मयूर वीणाकी झंकृतिने उस माधुर्यको महामाधुर्यमय बना दिया। उस माधुर्यका बाबूजी और बाबापर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दोनों अत्यधिक विभोर हो उठे। बाबूजीकी विभोरता गम्भीर थी और वे बहुत अधिक अन्तर्मुख हो गये। बाबाकी विभोरता उच्छलित थी और वे भाव-विभोर होकर व्यथापूर्ण हृदयसे सकरुण वाणीमें 'राधा-राधा' बोलने लगे, अपितु पुकारने लगे। एक विचित्र प्रकारके भावसे पूर्ण हो उठा था उस स्थानका वातावरण। रतनगढ़के वे लोग सौभाग्यशाली थे, जो उस अवसरपर उपस्थित थे और इस प्रकार सौभाग्यशाली बननेका अवसर अन्तरंग जनोंको कई बार मिल जाया करता था। बाबाकी रुचि देखकर इस प्रकारके एकान्त गायनका आयोजन रतनगढ़की हवेलीके एकान्त क्षणोंमें कई बार हुआ है।

बाबाने सन् १९५६ ई. में कठोर मौन व्रत लिया था। मौन लेनेके पहले बाबाने गोस्वामीजीसे कहा था— रात्रिमें जब भी आपको अवकाश मिले, आप मुझे व्रज भावके पद सुना दिया करें। भले आप एक ही पद

सुनायें, पर प्रति-रात्रि मेरी कुटियाकी दक्षिण दिशामें स्थित पगडंडीपर टहलते हुए सुनाया करें।

गोस्वामीजी द्वारा पद सुनानेका क्रम अखण्ड रूपसे चलता रहा। इसमें विराम आया तब, जब सवा मास बाद बाबा-बाबूजी गोरखपुरसे रतनगढ़ चले गये।

सम्भवतः सन् १९५९ ई. की बात होगी। गीतावाटिकामें बाबूजीका प्रवचन नित्यप्रतिके नियमके अनुसार प्रातःकाल होनेवाला था। उस दिन गोस्वामीजी भी प्रवचनमें आये थे। इन दिनों गोस्वामीजी प्रायः प्रवचन- कार्यक्रममें नहीं आ पाते थे। कार्यकी अधिकताके कारण अवकाश कम मिल पाता था, परंतु कभी-कभी तो आते ही थे। ज्यों ही बाबूजीने श्रोताओंके सामने आसन ग्रहण किया, गोस्वामीजीसे पद गानेके लिये अनुरोध किया गया। गोस्वामीजीने बाबूजी द्वारा रचित पद गाना आरम्भ किया।

मेरी इस विनीत विनतीको सुन लो, हे व्रजराजकुमार!
युग-युग, जन्म-जन्ममें मेरे तुम ही बनो जीवनाधार॥
पद-पंकज-परागकी मैं नित अलिनी बनी रहूँ, नँदलाल!
लिपटी रहूँ सदा तुमसे मैं, कनकलता ज्यों तरुण तमाल॥
दासी मैं हो चुकी सदाको, अर्पणकर चरणोंमें प्राण।

इस पाँचवी पंक्तिको गाते-गाते गोस्वामीजीकी स्थिति कुछ दूसरी ही हो गयी। अन्तरकी विह्वलताने कण्ठको अवरुद्ध कर दिया। स्वर-भंगको सँभालनेकी चेष्टा उन्होंने की, पर वह असफल प्रयास था। अश्रु-प्रवाहने पूर्ण स्वरावरोध उत्पन्न कर दिया था। क्या बाबूजी और क्या श्रोतागण, सभी उपस्थित लोग गोस्वामीजीकी उस विह्वलताके प्रवाहमें डूब-उतरा रहे थे। वह पद क्या था, उस पदमें गोस्वामाजीके समर्पित जीवनकी भावनाएँ मुखरित थीं। बाबूजी मौन, श्रोतागण मौन और गोस्वामीजी भी मौन; सारे वातावरणमें मौन परिव्याप्त हो रहा था। उस नीरवताको अपने गायनसे पुनः गुञ्जित करनेका एक अल्प प्रयास किया गोस्वामीजीने। उन्होंने गानेके लिये वह पाँचवीं पंक्ति पुनः उठायी, पर पुनः वे गा न सके। पुनः वातावरणमें नीरवता परिव्याप्त हो गयी। चौदह पंक्तिवाले इस पदकी केवल चार पंक्तियाँ ही गायी जा सकीं, शेष अन-गायी ही रह गयीं। तब बाबूजीने अपना प्रवचन आरम्भ किया और आज उस प्रवचनका विषय था— वृषभानुनन्दिनी कृष्णप्रिया श्रीराधाका मूक समर्पण।

गोस्वामीजीकी भाव-विभोरताका एक और उल्लेखनीय सरस प्रसंग

स्मृति- पथपर उभर रहा है। 'कल्याण'के भावी विशेषांक श्रीरामांकके लिये आये हुए लेखोंका सम्पादन-कार्य चल रहा था। एक लेख भगवती श्रीसीतापर था। वह लेख पढ़कर गोस्वामीजीको सुनाया जा रहा था। लेखको सुनते-सुनते गोस्वामीजी इतने अधिक भाव-भरित हो उठे कि उनके नेत्रोंके अश्रु झर-झर करके कपोलोंपर प्रवाहित होने लग गये। उन्हें विस्मृत हो गया कि मैं सम्पादकीय-विभागके कमरेमें बैठा हुआ हूँ। तुरंत लेखका सुनाना बन्द कर दिया गया और उन्हें कमरेके एकान्तमें छोड़कर धीरेसे दोनों कपाट सटा दिये गये।

सन् १९६१ ई. के ग्रीष्म ऋतुकी बात होगी। बाबूजी रातको गोस्वामीजीसेश्रीराधाकृष्णकी लीलाके पद सुना करते थे। अधिकांश बार ये पद बाबूजीके स्वरचित हुआ करते थे। इन पद-गोष्ठियोंमें कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजी और ठाकुर श्रीघनश्यामजी, यदि वे लोग गीतावाटिकामें हैं तो अवश्य उपस्थित रहा करते थे। इन पद-गोष्ठियोंमें केवल अन्तरंग व्यक्ति ही रहा करते थे। यह पूर्णतः अन्तरंग कार्यक्रम प्रायः रातके नौ-साढे-नौ बजे आरम्भ होता था और लगभग एक-दो घंटे चला करता था। यदि कभी रंग गहरा हो जाता था तो यह कार्यक्रम रातके एक-दो बजेतक भी चलता रहता था। एक बार ऐसा हुआ कि अर्ध रात्रितक जागरण करनेका क्रम कई दिनतक चलता रहा। इससे चाचीजी (गोस्वामीजीकी धर्मपत्नी) को बड़ी चिन्ता हुई। गोस्वामीजी ब्राह्म मुहूर्तमें उठ जाया करते थे तथा नित्यके दैनन्दिन पूजन-अर्चनसे निवृत्त होकर दिन भर सम्पादन-कार्यमें जुटे रहते थे। इस जागरणसे तो गोस्वामीजीका स्वास्थ्य गिर जायेगा, बस, यही चिन्ता चाचीजीको पीड़ा पहुँचा रही थी। उन्होंने एक-दो बार गोस्वामीजीसे अनुरोध भी किया कि आपको रातमें इतनी देरतक नहीं जगना चाहिये। गोस्वामीजीने चाचीजीको कोई उत्तर नहीं दिया। समर्पित-जीवन गोस्वामीजीकी आन्तरिक भावना यही थी कि यदि बाबूजी मुझको जगाना चाहते हैं तो वैसा ही हो। इसके अतिरिक्त यह ऐकान्तिक कार्यक्रम ही तो जीवनको वास्तविक जीवन प्रदान किया करता था। पद-गानके निमित्तसे जो रस-धारा बहने लगती थी, उसीसे जीवनको वास्तविक तुष्टि और पुष्टि प्राप्त होती थी। अस्तु, गोस्वामीजीके प्रति किया गया अनुरोध जब सफल नहीं हुआ तो चाचीजीने अपना संदेश और अपनी चिन्ता बाबूजीके पास कहला भिजवाया। उस

संदेश-वाहकके द्वारा प्रत्युत्तरस्वरूप बाबूजीने कहलावया– उनका कहना सही है कि रातको जागरण करनेसे स्वास्थ्यपर कुप्रभाव पड़ता है, पर यह कुप्रभाव पड़ता है तब, जब लौकिक कार्योंके लिये जगना पड़े अथवा पारमार्थिक कार्योंमेंभी उत्साह-शून्य और भाव-शून्य होकर जगना पड़े। पद-गान तो स्फूर्ति, दिव्यता, प्रेरणा आदि ही प्रदान करता है।

बाबूजीके उत्तरसे चाचीजीका समाधान हो गया।

एक बार चाचीजी बीकानेर गयी हुई थीं। दुर्भाग्यसे वहाँ उनके पैरकी हड्डी टूट गयी। यह कष्टपूर्ण समाचार बीकानेरसे गोरखपुर आया, पर गोस्वामीजीने किसीके भी सामने यह बात उठायी ही नहीं कि मुझे बीकानेर जाना है। पहले अपने मनके भीतर बात उठे, तब न दूसरे लोगोंके बीच बात चलायी-उठायी जाये! उनके मनमें किसी प्रकारके संकल्प-विकल्पका उद्भव हुआ ही नहीं। इस समाचारको सुन करके भी वे ऐसे निर्लिप्त रहे, मानो यह समाचार बीकानेरसे आया ही नहीं। सच पूछा जाये तो उनके परिवारवाले अब कहने मात्रके लिये पारिवारिक रह गये थे। अब उनकी समस्त ममताके केन्द्र थे बाबूजी और बाबूजी ही थे उनकी पारिवारिकताकी परिधि।

तन-धन-जन का बन्धन टूटा, छूटा भोग-मोक्ष का रोग।
धन्य हुई मैं प्रियतम! पाकर, एक तुम्हारा प्रिय संयोग।।

ये पंक्तियाँ गोस्वामीजीके जीवनमें मूर्तिमान थीं। वस्तुतः गोस्वामीजीकी 'प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी'। गोस्वामीजीके इस समर्पण-भावपर बाबा मुग्ध हो गये। गोस्वामीजी तो बीकानेर गये नहीं। फिर बाबूजीने ही अपने व्यक्तियोंद्वारा उनकी चिकित्सा तथा प्लास्टरकी व्यवस्था करवायी।

गोस्वामीजीके भावमय जीवनके अनेक मधुर प्रसंग हैं। सन् १९४९ ई. में वृन्दावनसे गोरखपुर शहरमें रासमण्डली आयी। तब उस रासमण्डलीमें श्रीघनश्यामजी ठाकुरस्वरूप धारण किया करते थे। बाबाके साथ गोस्वामीजी रासलीला देखनेके लिये गये। लीला बड़ी सुन्दर हुई। लीलाका रंग गोस्वामीजीके मनपर चढ़ा हुआ था। लीला-दर्शनके एक-दो दिन बादकी बात है। गोस्वामीजी अपने घरके कमरेमें भूमिपर लेटे हुए थे। कमरेके एकान्तमें उनका मन उस दृष्ट लीलाके भाव-प्रवाहमें बहा जा रहा

था। उस प्रवाहकी छलक कभी-कभी नेत्रोंके कगारोंको छू लेती थी। तब वे उन भाव-विन्दुओंको धीरेसे पोंछ लेते थे। गोस्वामीजी चाहते तो यह थे कि कभी मेरे घर श्रीठाकुरस्वरूपजी पधारें, परंतु अपने संकोची स्वभावके कारण श्रीठाकुरजीको कहें तो कैसे कहें? इसी प्रकारके भावोंमें चुपचाप लेटे हुए गोस्वामीजीका मन निमग्न था कि तभी किसीने चरणोंका स्पर्श किया। नेत्र खोलकर देखा तो ठाकुरस्वरूप श्रीघनश्यामजी ही प्रणाम कर रहे हैं। अनेक सूत्रोंसे गोस्वामीजीकी गुण-गाथाको सुन करके उनके प्रति ठाकुरस्वरूप श्रीघनश्यामजीका पितृ-भाव हो गया था। उन्हें प्रणाम करते देखकर गोस्वामीजी विस्मय-पूरित हो गये। मन अनेक प्रकारके भावोंसे भर गया। ''यह असम्भव आज कैसे सम्भव हो गया? आज यह अकल्पनीय कृपा कैसे हो गयी? आज यह घर किस पुण्यके फलस्वरूप पवित्र हो गया?'' इन सब भावोंका वेग इतना प्रबल था कि गोस्वामीजी बहुत देरतक जडवत् पड़े रहे। अपनी जड़िमा स्थितिके कारण गोस्वामीजी ठाकुर श्रीघनश्यामजीका पर्याप्त समयतक प्राथमिक स्वागतोपचार नहीं कर पाये। ठाकुर श्रीघनश्यामजीको किसी प्रकारके स्वागत- सत्कारकी अपेक्षा नहीं थी, फिर भी उन्हें यह बड़ा अटपटा लगा कि गोस्वामीजी कुछ बोल क्यों नहीं रहे हैं। भावके शमित होनेमें कुछ समय तो लग ही गया। जब गोस्वामीजी कुछ प्रकृतिस्थ हुए, तब तो गोस्वामी दम्पतिने उनका जो स्वागत किया, जो लाड-चाव किया, उसकी कोई सीमा नहीं थी। गोस्वामीजीके उस स्वागतोल्लासको स्मरण करके ठाकुर श्रीघनश्यामजी आज भी पुलकित हो उठते हैं। तबसे यह एक परम्परा-सी ही बन गयी कि जब भी ठाकुर श्रीघनश्यामजी गोरखपुर आयें, उनको गोस्वामीजीके यहाँ एक बार भोजन करना ही है। यह क्रम गोस्वामीजीके जीवन भर अखण्ड रूपसे चला।

गोस्वामीजीके सामने प्रलोभन कम नहीं आये। सबसे बड़ा प्रलोभन था शंकराचार्य-पदका। श्रीजगन्नाथपुरी स्थित श्रीगोवर्धनपीठके पीठाधिपति अनन्त श्रीविभूषित शंकराचार्य पूज्य स्वामी श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराजने गोस्वामीजीकी साधुता और विद्वत्तासे प्रभावित होकर उन्हें अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करनेकी अभिलाषा व्यक्त की। परम पूज्य शंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न उद्भट विद्वान थे। जब आप सोलह वर्षके किशोर थे, उस समय आपकी

धारावाहिक एवं श्रेष्ठ संस्कृत बोलनेकी क्षमताको देखकर दक्षिण भारतकी पण्डित सभाने आपको 'सरस्वती पुत्र' की उपाधिसे विभूषित किया था। सन् १९०४ ई. में आपने बीस वर्षकी आयुमें बम्बईमें एक ही वर्षमें एक साथ सात विषयों (संस्कृत, अँग्रेजी, दर्शन, गणित, इतिहास, विज्ञान तथा एक और विषय) में एम.ए. की परीक्षा दी और आप सातों विषयोंमें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। केवल भारत ही नहीं, विश्वके किसी भी देशका कोई भी युवक इस प्रकारकी योग्यताका उदाहरण आजतक प्रस्तुत नहीं कर पाया है। जिस प्रकार पाणिनी व्याकरणके चौदह माहेश्वर सूत्रोंके आधारपर सारी संस्कृत व्याकरण पढ़ायी जाती है, उसी प्रकार आपने वेदोंका मन्थन करके ऐसे सोलह सूत्र छाँटकर निकाले हैं, जिनकेआधार पर आधुनिक कालकी गणितकी ऊँची-से-ऊँची शिक्षा दी जा सकती है। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजद्वारा आविष्कृत ये सोलह वैदिक सूत्र और आपके द्वारा अँग्रेजीमें लिखित 'वैदिक मैथेमेटिक्स' आज देश और विदेशके गणितज्ञोंके लिये आश्चर्य और आकर्षणके विषय बने हुए हैं। सन् १९६० ई. में पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज ब्रह्मलीन हुए थे। अपने महाप्रयाणके पूर्व उन प्रखर प्रतिभाशाली महापण्डित विश्व-विश्रुत पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजने गोस्वामीजीको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था।

शंकराचार्य-पदका प्रस्ताव ज्यों ही सामने आया, त्यों ही गोस्वामीजीके अन्तरमें धर्म-संकटकी विषम स्थिति उत्पन्न हो गयी। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी अपने धर्माचार्य हैं, वे नित्य परम वन्दनीय हैं, ऐसे गौरवपूर्ण शंकराचार्य-पदके लिये चयन उनका कृपा-प्रसाद ही है, उनका संकेत मात्र ही आदेशके समकक्ष है और उनकी रुचि देखकर इस प्रस्तावको तुरंत स्वीकार कर लेना चाहिये था, परंतु गोस्वामीजीका हृदय बाबूजीसे विलग होनेके लिये प्रस्तुत नहीं था। फिर बड़े विनम्र शब्दोंमें अत्यधिक संकोचके साथ गोस्वामीजीने इस प्रस्तावको स्वीकार करनेमें अपनी विवशता व्यक्त कर दी।

गोस्वामीजीने शंकराचार्य-पदके प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, अस्वीकृतिके हेतुको समझनेके लिये गोस्वामीजीकी मान्यताओंके सम्बन्धमें कुछ उल्लेख करना आवश्यक-सा प्रतीत हो रहा है। गोस्वामीजीकी सुदृढ़ धारणा थी कि शंकराचार्य- पदके मूलमें जो आदि-विभूति हैं, उन आदि-शंकराचार्यजी द्वारा धर्म-संस्थापनका जो महान कार्य उस समय हुआ था, वही महान कार्य इस समय अब बाबूजीके द्वारा हो रहा है। धर्मकी ग्लानिको दूर करनेके लिये एवं

सामाजिक प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेके लिये जैसा पावन कार्य बाबूजी द्वारा हो रहा है; इतना ही नहीं उनके द्वारा जैसे विशाल श्रेष्ठ साहित्यकी सृष्टि हुई है तथा उनकी जैसी महाभावमयी भागवती स्थिति है, उन सबको देखकर यही लगता है कि शंकराचार्य-रामानुजाचार्य जैसे धर्म-संस्थापक आचार्योंकी, मनु-याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकार मुनियोंकी, तुलसीदास-सूरदास जैसे महाभक्त कवियोंकी एवं चैतन्यमहाप्रभु-वल्लभाचार्य जैसे रसज्ञ महान विभूतियोंकी परम्परामें बाबूजी भी परिगण्य हैं।

गोस्वामीजी भली भाँति जानते थे कि विशाल सत्साहित्यकी रचनाके द्वारा, शास्त्रीय ग्रन्थों एवं पत्रिकाके प्रकाशनके द्वारा, वैयक्तिक पत्र एवं ऐकान्तिक परामर्शके द्वारा, विभिन्न स्थानों एवं पवित्र तीर्थोंकी यात्राके द्वारा, सत्संग-सत्र एवं उत्सवोंके आयोजनके द्वारा और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात, अपनी करनी एवं रहनीके द्वारा बाबूजी समाजमें आध्यात्मिकता-धार्मिकता-आस्तिकता-नैतिकता- सात्त्विकताके संस्थापनका ही कार्य कर रहे हैं। बाबूजीद्वारा यदि एक ओर धर्म-संस्थापन एवं समाजोन्नयनका कार्य हो रहा है तो दूसरी ओर सरल भाषामें भक्ति-राज्यके रस-सिद्धान्तोंका निरूपण भी हो रहा है। और केवल निरुपण ही नहीं, उनका जीवन उस रस-सिन्धुमें सर्वथा आशिख निमग्न है। गोस्वामीजीने स्वयं देखा है कि उस निमग्नतामें प्रगाढता आनेपर बाबूजीको अपने शरीरका भान नहीं रहता था। इस प्रकारकी नितान्त शरीर-भान-रहित भाव-समाधिकी स्थितिमें उनके कई-कई घंटे निकल जाया करते थे। इसके अतिरिक्त, जब शरीरका भान रहता था, उस समय भी उनका मानस, भावके बहुत ऊँचे स्तरपर प्रतिष्ठित रहा करता था। सच्ची बात यह है कि बाबूजीके व्यक्तित्वका सम्पूर्ण अस्तित्व भक्ति-रसमें सर्वथा निमग्न है और इसीके फलस्वरूप उनके द्वारा धर्म-संस्थापन एवं समाजोन्नयनका अद्‌भुत महान् कार्य हो पा रहा है। ऐसा व्यक्तित्व भला कहाँ देखने-सुननेको मिलता है? गोस्वामीजीकी परम सुदृढ़ आस्था थी कि बाबूजी इस युगकी महान् विभूति हैं। भारतीय संत-परम्परामें उनका स्थान बहुत ऊँचा है। वे 'ज्ञानोत्तर भाव-राज्य'में नित्य प्रतिष्ठित हैं। जिस 'पराभक्ति' की प्राप्ति श्रीगीताजीमें ब्रह्मभूत होनेके बाद बतलायी गयी है और जिस भक्तिके द्वारा मनुष्य भगवानको जानकर उसमें प्रविष्ट हो जाता है, उनके साथ घुल-मिलकर उनकी लीलाका एक अंग हो जाता है, उनका प्रतिरूप बन जाता है, वह तथ्य बाबूजीके व्यक्तित्वके अन्दर अक्षरशः मूर्त है। यही नहीं, श्रीकृष्ण-प्रेमकी उच्चतम भूमिकामें वे स्थित हैं।

उनकी मन-बुद्धि-वाणी सब कुछ श्रीकृष्णमय हो गये हैं। विशुद्ध प्रेमभक्तिका आदर्श एवं भगवन्नामकी महिमाको प्रतिष्ठित करनेके लिये ही जगतमें बाबूजीका आविर्भाव हुआ है। 'महिमा जासु जाइ नहिं बरनी' ऐसे बाबूजीके आन्तरिक और वास्तविक रूपको मनकी आँखोंसे देख-देख करके गोस्वामीजीके हृदयमें 'नित नव चरन उपज अनुरागा'। बाबूजीद्वारा जो महान कार्य हो रहा है तथा बाबूजीका जैसा अनुपम व्यक्तित्व है, उसके सम्बन्धमें गोस्वामीजीको कोई भ्रान्ति नहीं थी। बाबूजीके प्रति इस प्रकारकी निर्भ्रान्त आस्था इतनी अधिक सुदृढ़ थी और बाबूजीके पास रहनेकी भावना इतनी अधिक प्रबल थी कि शंकराचार्य-पदका सामाजिक सम्मान एवं आध्यात्मिक गौरव गोस्वामीजीको अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। बाबूजीकी संनिधिसे दूर जाना उनको अभीष्ट था ही नहीं। गोस्वामीजी नित्य बाबूजीके सांनिध्यमें रहे और जीवनके अन्तिम क्षण तक गीतावाटिकामें उनका निवास रहा। गोस्वामीजीकी निष्ठा सदा ही बाबाकी वाणी द्वारा चर्चा एवं सराहनाका विषय बनी रही।

बाबा गोस्वामीजीकी आस्थाओंकी बड़ी सराहना किया करते थे, इस सम्बन्धमें एक बड़ा सरस प्रसंग षोडश गीतको लेकर है। षोडशगीतके दसवें पदकी छठवीं पंक्तिमें नित्य-निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकी उक्ति है—

आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान।

बाबाके मनमें ऐसा भाव स्फुरित हुआ कि इस पंक्तिमें 'भगवान' शब्दके स्थानपर कोई अन्य शब्द अर्थात् ऐश्वर्य-भावसे रहित प्रेमिल शब्द होता तो पदकी भावमयता और भी सरसीली हो जाती। बाबाकी तथा बाबूजी, दोनोंकी ही स्पष्ट मान्यता है कि नित्य-निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा एवं नित्य-निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण साक्षात् भगवती-भगवान हैं, परंतु परम प्रेमके मधुर राज्यमें उनकी यह भगवत्ता प्रसुप्त रहती है। इन परस्पर नित्य परम प्रेमी-प्रेमास्पद युगलका जो परम मधुर प्रेम-सिन्धु है, उस सिन्धुके अतल-तलमें उनकी भगवत्ता छिपी रहती है। उस भगवत्ताकी अभिव्यक्ति क्वचित् ही होती है और होती है तभी, जब कभी किसी लीलाको सम्पन्न करा देनेमें उस भगवत्ताकी आवश्यकता हो। कभी-कभी लीलाको सम्पन्न करा देनेके लिये ही उस ऐश्वर्य शक्ति भगवत्ताको किंचित् सेवा करनेका अवसर मिल जाता है, अन्यथा वह भगवत्ता सर्वथा-सर्वथा प्रसुप्त-प्रच्छन्न रहती है। षोडश गीत सच्चिन्मय प्रेम-राज्यकी परम सरस वस्तु है, अतः बाबाने अपनी भावनाको समझाते हुए बाबूजीसे कहा— इस पंक्तिमें 'भगवान' शब्दके स्थानपर यदि कोई अन्य सरस शब्द प्रयुक्त हो तो इस पदकी सरसता और भी अधिक

समृद्ध हो जायेगी।

बाबूजीने कहा– आप जैसा कहें, जो भी कहें, मैं वैसा ही कर दूँगा।

बाबाके मनमें उस समय जो पंक्ति स्फुरित हुई, वही पंक्ति बाबाने बाबूजीको बता दी– 'आठों पहर सरसते रहते तुम मन सरवरमें रसवान'।

बाबूजीने बाबाके सुझावकी बड़ी सराहना की और यह पंक्ति ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर ली। पदमें पुरानी पंक्तिके स्थानपर इस नवीन पंक्तिको रख दिया। बाबूजी इस परिवर्तनसे प्रसन्न थे।

फिर यह बात बाबाने गोस्वामीजीको बतलायी। गोस्वामीजीने विनम्र शब्दोंमें कहा– बाबा! क्या यह परिवर्तन आवश्यक है?

बाबाने गोस्वामीजीको अपनी भावना बतलायी, जिस प्रकार उन्होंने बाबूजीको बतलाया था। यह बात नहीं कि गोस्वामीजी इस भाव-गरिमाको समझ नहीं रहे हों। ऐसी समझ होनेके बाद भी अत्यधिक दैन्यके साथ गोस्वामीजी अपने मनकी बात कहने लगे– बाबा! मैं आपकी मान्यताको सर्वांशमें स्वीकार करता हूँ, पर मेरे मनमें भी एक छोटी-सी बात है। अपनी आस्थाके अनुसार मैं षोडश गीतको और उसकी शब्दावलीको साधारण स्तरकी वस्तु नहीं समझता। ये पद मात्र काव्य-रचना नहीं है। श्रीभाईजीको भाव-समाधिकी स्थितिमें जैसी लीला और जैसे उद्गार उनके दृष्टि-पथपर एवं श्रुति-पथपर आविर्भूत हुए, वे ही किसी अचिन्त्य कृपासे इन पदोंकी शब्दावलीकी सीमामें सिमट आये हैं। षोडश गीतका सम्बन्ध उस भाव-समाधिकी स्थितिसे होनेके कारण इनमें किसी प्रकारका संशोधन-परिवर्तन मुझे जँच नहीं रहा है। मेरे विचारसे मूल पंक्तिको ज्यों-का-त्यों रहने देना चाहिये।

बाबाको गोस्वामीजीके विचार बड़े प्रिय लगे और इन विचारोंको बाबाने हृदयसे सम्मान दिया। तदुपरान्त उस दसवें पदमें किसी भी प्रकारके परिवर्तनकी बात समाप्त हो गयी। हाँ, बाबूजीने इतना अवश्य कर दिया कि बाबाद्वारा बतलायी गयी पंक्तिको 'एक दूसरा पाठ' के रूपमें स्वीकार कर लिया। यह दूसरा पाठ भी षोडश गीतके दसवें पदके अन्तमें छपा रहता है।

जिस तरह वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा और नन्दनन्दन श्रीकृष्ण दिखलायी देनेमें दो हैं, इसके बाद भी दोनों वस्तुतः एक ही हैं, ठीक उसी स्तरकी मान्यता थी गोस्वामीजीकी बाबा और बाबूजीकी प्रति। 'एक तत्त्व दो तनु धरैं' बाबा और बाबूजीमें उन्होंने कभी भेद माना ही नहीं। इसका प्रमाण है गोस्वामीजीका

पादुका-पूजन। 'प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।' बाबाकी कुटियाका अति एकान्त स्थल, उस स्थलके किन्हीं परम पुण्यमय पावन क्षणोंमें बाबासे उनकी चरण-पादुका गोस्वामीजीको प्राप्त हुई और गोस्वामीजीने उनको अपने मस्तकपर धारण कर लिया। बाबाकी उस चरण-पादुकाकी अर्चना गोस्वामीजी आजीवन करते रहे और अब उन्हीं चरण-पादुकाकी अर्चना किसी अचिन्त्य सौभाग्यसे बहिन विमलाको प्राप्त है। बाबाकी यह चरण-पादुका आज भी बहिन विमलाके पूजाघरमें विराज रही है, जहाँ उनकी नित्य अर्चना होती है।

अपने जीवनकी अन्तिम अवधिमें गोस्वामीजी सात-आठ मास बहुत अधिक अस्वस्थ रहे। गीतावाटिकाके अति समीप एक मकानमें गोस्वामीजी रहा करते थे। उनकी व्याधि और पीड़ाको देखकर बाबा उन्हें गीतावाटिका ले आये। गीतावाटिकाके जिस भवनमें बाबूजी रहा करते थे, उसी भवनके एक कमरेमें गोस्वामीजीको रखा गया। गोस्वामीजीकी चिकित्सा एवं सँभाल पूर्ण तत्परताके साथ होने लग गयी। रुग्ण शय्यापर पड़े हुए गोस्वामीजीका शरीर अत्यधिक कष्टसे पीड़ित था। रुग्ण गोस्वामीजीकी चिकित्सा और परिचर्यामें जितना समय और जैसा ध्यान बाबाने दिया, उसको देखकर विस्मय होता है। इस कष्टकी स्थितिमें भी गोस्वामीजीके अधरोंपर एक ही वाक्य था– नाथ! तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो।

गोस्वामीजीकी भीषण रुग्णताको देखकर बाबाने कहना आरम्भ कर दिया था कि अब चलाचलीका मेला है और गोस्वामीजी अधिक नहीं रह पायेंगे। एक बार परिचर्या-रत व्यक्तियोंको ऐसा लगा कि गोस्वामीजी सम्भवतः करवट बदलना चाहते हैं अथवा बोलकर कुछ कहना चाहते हैं। उन व्यक्तियोंने पूछा– आप क्या चाहते हैं?

उनसे गोस्वामीजीने कहा– मैं कुछ नहीं चाहूँ, बस, यही चाहता हूँ।

असह्य वेदनाके होते हुए भी गोस्वामीजीने यह नहीं कहा कि उन्हें औषधि अथवा उपचारकी आवश्यकता है। कष्टकी अधिकताको देखकर यदि कोई सहानुभूति दिखलाता तो गोस्वामीजी यही कहा करते थे– प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय है। इस रुग्णतामें भी प्रभुका मंगल स्पर्श क्रियाशील है और उसीका अनुभव होता रहता है।

इस कष्टकी स्थितिमें भी गोरखपुर विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागके

प्राध्यापक आदरणीय श्रीहेमचन्द्रजी जोशी जब गोस्वामीजीको भावपूर्ण पद सुनाया करते थे अथवा जब कभी गीतावाटिकाकी श्रद्धाभिभूत बहिनें लीला-पद सुनाया करती थीं तो गोस्वामीजीके कपोल अश्रु-सिक्त हो उठते थे। शरीर भोग रहा था कष्ट, पर मन डूब रहा था भाव-सिन्धुमें।

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्' सूत्रके द्वारा देवर्षि नारदने यह प्रतिपादित किया है कि भगवान और भक्तमें भेदका अभाव है। पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ने लिखा है कि 'भगवानके भक्त भगवत्स्वरूप होते हैं। भगवानकी तरह महापुरुषोंके ध्यानसे भी कल्याण हो सकता है।' बाबूजीने लिखा है कि 'जो भक्तोंका सेवन करते हैं, वे भगवानका ही सेवन करते हैं।' ये सब सिद्धान्त-वाक्य हैं, जो किसी व्यक्ति-विशेषको लक्ष्य करके नहीं लिखे गये। सिद्धान्तका विवेचन और निरूपण करते-करते इन महाभागवतोंके द्वारा यह सनातन सत्य स्वतः अभिव्यक्त हो उठा और इस महान सत्यके साकार स्वरूप थे गोस्वामीजी। ऐसा लगता है कि श्रीरामचरितमानसकी अर्धाली 'राम ते अधिक राम कर दासा' को ही गोस्वामीजीने अपने जीवनका आधार बना लिया हो। जीवनका अवसान समीप देखकर एक स्वजनने बाबूजीका चित्र गोस्वामीजीके सामने दीवालपर लगा दिया, जिसे वे देखते रह सकें। इसके कुछ दिन बाद एक अन्य स्वजनने गोस्वामीजीसे पूछा— यदि आप आज्ञा दें तो आपके सामने दीवालपर श्रीराधाकृष्णका चित्र लगा दूँ।

गोस्वामीजीने प्यारभरे स्वरमें कहा— मेरे लिये श्रीभाईजीमें और श्रीराधाकृष्णमें कोई अन्तर नहीं है।

फिर बाबूजीका चित्र ही सदा गोस्वामीजीके समक्ष विराजित रहा।

गोस्वामीजीने एक स्थानपर स्वयं लिखा है— मेरा श्रीभाईजीके साथ चालीस वर्षसे ऊपरका सम्पर्क मेरे जीवनकी एक अमूल्य निधि है, जो मुझे अपने जन्मार्जित सुकृतोंके फलस्वरूप उन्हींकी अहैतुकी कृपासे अनायास प्राप्त हुई थी। इस अवधिमें उन्होंने जैसा अद्‌भुत स्नेह दिया और जिस प्रकार मेरा लाड रखा, उसे शब्दोंद्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके इस ऋणसे मैं जन्म-जन्मान्तरमें भी उऋण नहीं हो सकता और न होना ही चाहता हूँ। भव-सरिताकी प्रबल धारामें बहते हुए मुझ पामरको उन्होंने अपनी सहज कृपासे उबार लिया और भगवत्कृपाका अधिकारी बना दिया। मेरी त्रुटियोंकी ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया और मेरे द्वारा उन्हींकी प्रेरणासे हुए तनिक-से भी

अनुकूल आचरणकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे मेरे बड़े भाई, सखा एवं स्वामी ही नहीं, मेरे पथ-प्रदर्शक जीवन-सर्वस्व थे और हैं। उनकी स्मृति मात्रसे हृदय भर आता है। बस, शेष जीवन श्रीभाईजी और उनके अपने श्रीराधामाधवकी स्मृतिमें बीत जायँ, यही अभिलाषा है।

गोस्वामीजी रुग्ण शय्यापर पड़े-पड़े ही कमरेकी खिड़कीसे जब-तब बाबूजीकी पावन समाधिका दर्शन कर लिया करते थे। यह समाधि इत्र-मिश्रित-पीत-मिट्टीसे पुती रहती है। महाप्रस्थान करनेके कुछ दिनों पूर्व गोस्वामीजीने समीपस्थ स्वजनोंके समक्ष अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्ति करते हुए कहा– मेरे जीवनधन श्रीभाईजीकी पावन समाधिपर जो पीली मिट्टी पुती हुई है, वह मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके पीत दुकूलका प्रतीक है तथा मेरे प्राणवल्लभकी पावन स्मृतिको सतत सजीव बनाये रहती है। मेरे शवका अन्तिम स्नान उस पवित्र मिट्टीको धोकर एकत्रित किये गये जलसे ही करवाया जाये।

परम्परा ऐसी है कि शवका अन्तिम स्नान गंगा-जलसे करवाया जाना चाहिये, परतु इन अनोखे समर्पितात्माकी अभिलाषा थी कि गंगा-जलसे स्नान कराये जानेके उपरान्त भी एक और स्नान अपने जीवनधनकी पावन समाधिके प्रसादी जलसे करवाया जाये। गोस्वामीजीने सारे जीवन वैष्णव सदाचार, धर्म- मर्यादा, साम्प्रदायिक नैष्ठिकता, कुल-परम्पराको महत्त्व प्रदान किया था, परंतु आज वे सब एक किनारे हो गये और सर्वोपरि स्थान मिला प्रीतिकी निराली रीतिको।

विदाईको समीप देखकर गोस्वामीजीने जाने-अनजाने हुई भूलोंके लिये और इच्छा-अनिच्छापूर्वक किये गये कटु व्यवहारोंके लिये सभीसे क्षमा याचना की। जिन स्वजनोंने अन्तिम रुग्णावस्थाके समय परिचर्या की थी, उनकी सेवा-भावनाको देखकर गोस्वामीजीका हृदय भर-भर आ रहा था। उन्होंने सजल नेत्रोंसे और उन्मुक्त हृदयसे सभीको आशीर्वाद दिया तथा कहा– मैं तो सर्वथा अकिञ्चन हूँ। मेरे पास इस सेवाके बदलेमें दे सकने योग्य कुछ भी नहीं है, परंतु मेरे आराध्य इस एक-एक सेवाका अनन्त गुणा पुरस्कार तुम सबको अवश्य देंगे, यह मेरे अन्तरकी अन्तिम आशीष है।

बाबा और बाबूजीमें सर्वथा अभेद माननेके कारण गोस्वामीजीने बाबाके समक्ष एक बार अपनी एक अन्तरंग अभिलाषा व्यक्त की–

जीवनके अन्तिम श्वासके समय यह शरीर आपसे संपृक्त रहे।

इस अभिलाषाको सुनकर बाबाने एक मधुर मुस्कान बिखेर दी। बाबाने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, परंतु गोस्वामीजीके इस मनोरथको अपने हृदयके कोनेमें छिपाकर रख लिया। हृदयकी गुहामें छिपाकर रखे गये इस तथ्यकी जानकारी भला किसी अन्यको कैसे हो सकती थी? अत्यधिक रुग्ण गोस्वामीजीकी स्थिति ज्यों ही गम्भीर होने लगी और ऐसा लगने लगा कि गोस्वामीजी अब जानेवाले हैं, त्यों ही दौड़कर बाबाको सूचना दी गयी। बाबा तुरंत आये। गोस्वामीजीको भूमिपर नीचे उतार लिया गया। अब कुछ ही श्वास शेष थे।

बाबाने अपने दाहिने चरणके अंगुष्ठको गोस्वामीजीके पैरोंके तलवेके निम्न भागमें एड़ीके पास भली प्रकार सटा दिया और बाबासे संपृक्तावस्थामें ही गोस्वामीजीने अन्तिम श्वास ली। भावातिरेककी गम्भीर दशामें बाबाके नयन भी अपने आप मुँद गये।

सं. २०३१ वि. वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी नृसिंह चतुर्दशी तिथि (५ मई १९७४) के दिन गोस्वामीजीके जीवनका पटाक्षेप हो गया। गोस्वामीजी इस भूतलपर लगभग ७४ वर्ष रहे। गोस्वामीजीने जो अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्त की थी, उसको पूर्ण करनेके लिये बाबूजीकी पावन समाधिको प्रक्षालित करके प्रसादी जलसे उनके शवको स्नान कराकर वह स्मरणीय-वन्दनीय पाञ्चभौतिक कलेवर चिताकी पावन अग्निको अर्पित कर दिया गया।

महाप्रस्थानके कुछ समय बाद गोस्वामीजी अपने दिव्य स्वरूपसे बाबाको दिखलायी दिये थे। बाबा बतला रहे थे कि उनके उस दिव्य देहकी कान्ति अनुपम थी और उनके नेत्रोंमें अतीव प्रसन्नता नृत्य कर रही थी। गोस्वामीजीके दिव्य स्वरूपको देखकर बाबाको बड़ा आह्लाद हुआ। बाबाने एक और अन्तरंग बात बतलायी। निकुञ्जलीलामें नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीप्रियाजीकी रसमयी सेवामें श्यामला मञ्जरी सतत संलग्न रहती हैं और गोस्वामीजीकी अन्तिम परिणति उन श्यामला मञ्जरीके रूपमें ही हुई है। इस रहस्योद्‌घाटनने सभी स्वजनोंको परम मोद प्रदान किया। श्रीप्रिया-प्रियतमकी निकुञ्ज-लीलामें लीन पूज्य श्रीगोस्वामीजीकी जय, बार-बार जय।

* * * * *

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न श्रीराधा बाबा की जीवन-झाँकी

१. १६ जनवरी १९१३ (वि.सं. १९६९ पौष शु.९)	आविर्भाव
२. सन् १९२८-३१	राजनैतिक जीवन एवं जेल यात्रा
३. सन् १९३२	कलकत्तेमें विद्यालयी शिक्षाका पुनः शुभारम्भ
४. १-१-१९३४ से १४-१०-१९३५	भगवानके नाम पत्र लिखना
५. १२ अक्टूबर १९३५ (वि.सं. १९९२ आश्विनी पूर्णिमा)	संन्यास-ग्रहण
६. अप्रैल १९३६	संन्यासी वेषमें इण्टरमीडिएटकी परीक्षा देकर विद्यालयी शिक्षासे विमुखता
७. १९३६ अप्रैल से सितम्बर तक	अज्ञात वास, घोर एकान्त साधना एवं अद्वैत तत्त्वकी दृष्टिसे परम सिद्धि, कोढ़ियोंके मध्य बैठना, स्वामी श्रीरामसुखदासजी से मिलन एवं सत्संग
८. अक्टूबर १९३६	श्रीसेठजीसे मिलन तथा उनके द्वारा बाबूजीसे मिलनेकी प्रेरणा
९. २७ अक्टूबर १९३६ (वि.सं.१९९३ आश्विन शु.१२)	गीतावाटिकामें सर्वप्रथम आगमन तथा बाबूजीसे प्रथम मिलन, बाबूजी द्वारा चरण-स्पर्श एवं चरण-स्पर्शके माध्यमसे साकारोपासनाका बीजारोपण

१०. ३० अक्टूबर १९३६; (वि. सं. १९९३ आश्विनी पूर्णिमा)	गीतावाटिकामें इमली वृक्षके नीचे दिव्यानुभूति
११. नवम्बर १९३६; (वि. सं. १९९३ कार्तिक मास)	गोरखपुरमें राप्ती नदीके किनारे श्रीहनुमानगढ़ीमें वास करते हुए भगवान श्रीकृष्णके दर्शन
१२. नवम्बर या दिसम्बर १९३६	श्रीसेठजीके साथ रहना तथा लगभग अढ़ाई वर्षोंतक निरन्तर साथ रहकर श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकाके लेखन-कार्यमें सहयोग देना
१३. सन् १९३७	गीताप्रेसके कमरेमें गोपी-वपुका अवतरण एवं तिरोभाव
१४. २६ या २७ या २८ अप्रैल १९३९, (वि. सं. १९९६ वैशाख मास)	बाँकुड़ानगरमें क्षेत्र संन्यासका संकल्प एवं भगवान श्रीकृष्ण द्वारा क्षेत्र-संन्यासका नवीन अर्थ बतलाया जाना, फिर पूज्य बाबूजीके वपुको सचल वृन्दावन बतलाना
१५. मई १९३९	फखरपुर ग्राममें श्रीमातृ-चरणके अन्तिम दर्शन
१६. ११ मई १९३९; (वि. सं. १९९६)	बाबूजीके साथ नित्य रहनेका संकल्प
१७. जून या जुलाई या अगस्त १९३९	पूज्य बाबूजीका सूक्ष्म देहसे पधारकर बाबाको 'दीक्षा' देना
१८. सन् १९३९ या ४० में	श्रीमञ्जुलीला-भावकी 'भाव-दीक्षा' (यह प्रथम भाव दीक्षा)

१९. २३ अगस्त १९४१, (वि. सं. १९९८ भाद्र शुक्ल ८)	दिल्लीमें प्रथम बार श्रीराधाष्टमी पर्व अति सूक्ष्म रूपसे मनाना
२०. सम्भवतः सन् १९४१-४२ में	पूज्य बाबूजीके संकेतपर प्रवचनका विसर्जन और वाणीका मौन
२१. सन् १९४२-४३	'केलिकुञ्ज' की लीलाओंका तथा 'प्रेम-सत्संग सुधा माला' का लेखन
२२. सन् १९४३-४४ में	श्रीमञ्जुश्यामा भावकी 'भाव दीक्षा' (यह द्वितीय भाव दीक्षा)
२३. सन् १९४४-४५ में	'राधा' नामके जपसे लगाव
२४. १९ सितम्बर १९४५, (वि. सं. २००२ भाद्र शु. ८)	गीतावाटिकामें प्रथम श्रीराधाष्टमी उत्सव; श्रीराधाष्टमीके दिन 'श्रीकाम-गायत्री मंत्र'से अर्चना
२५. सन् १९४६ से कई वर्षोंतक	'श्रीकृष्णलीला चिन्तन' 'जगज्जननी श्रीराधा' आदि-आदि अनेक भावपूर्ण कृतियोंका प्रणयन
२६. सन् १९४९-५०	पूज्य बाबूजीकी आयु-वृद्धिके लिये देवाराधन
२७. २६ सितम्बर १९५० (शरद् पूर्णिमा)	'देवर्षि पर श्रीवृषभानुनन्दिनीकी कृपा' नामक नाटिकाका अभिनय
२८. सम्भवतः सन् १९५० में	भगवान श्रीकृष्ण द्वारा भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीकी अर्चना करनेके लिये निर्देश
२९. २० जनवरी १९५१	गलेकी हड्डी टूटनेसे भगवतीकी अर्चनामें विघ्न
३०. ९ मई १९५१; (वि. सं. २००८ वैशाख शु. ३) (अक्षय तृतीया)	भगवती त्रिपुरसुन्दरी द्वारा निज मंत्रका दान, (यह तीसरी भाव दीक्षा)
३१. सन् १९५१-५४	अठारह पुराणोंका श्रवण

३२. २७ जनवरी १९५६ से २६ अप्रैल १९५६ तक	तीर्थयात्रा ट्रेन द्वारा तीन धामोंकी पावन यात्रा
३३. १९ अक्टूबर १९५६, (वि. सं. २०१३ शरद् पूर्णिमा)	गीतावाटिकामें प्रथम काष्ठमौनव्रत
३४. ८-९ अप्रैल १९५७, (वि. सं. २०१४ चैत्र शुक्ल अष्टमी नवमीकी संधि वेला)	'राधा भाव' में प्रतिष्ठा, (यह चौथी भावदीक्षा)
३५. १ सितम्बर १९५७; (वि. सं. २०१४ भाद्र शु. ८ रविवार)	रतनगढ़में विशिष्ट श्रीराधाष्टमी, त्रिमासीय रविवार, 'रसोपासना'के दिव्य मंत्रोंका अलौकिक रीतिसे अवतरण
३६. जनवरी १९५८	मथुरा स्थित बिड़ला धर्मशालामें 'जय जय प्रियतम' काव्यके लेखनकी प्रेरणा तथा काष्ठ मौनावधिमें प्रणयन
३७. सन् १९६३-६४ में	रासलीला द्वारा 'षोडश गीत'में प्राण प्रतिष्ठा
३८. १९ जनवरी १९६४ (वसन्त पंचमी)	भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका जन्मोत्सव मनाना
३९. २२ सितम्बर १९६५	गीतावाटिकामें स्थापित श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाका शुभारम्भ
४०. ७ अप्रैल १९६७	द्वितीय काष्ठमौन व्रत
४१. २२ मार्च १९७१	पूज्य बाबूजीका महाप्रयाण तथा पुरानी कुटियाका परित्याग
४२. १६ फरवरी १९७५	बाबाकी प्रेरणासे कैंसर अस्पतालकी स्थापनाका संकल्प
४३. २६ अगस्त १९७६, (वि. सं. २०३३ भाद्र शुक्ल १)	बाबूजीकी समाधिपर बन रहे स्मारकके निर्माण कार्यकी पूर्णतापर हर्षोल्लास

४४.	२० अगस्त १९७७	लकवाका झटका
४५.	७ दिसम्बर १९७८	तृतीय काष्ठ मौन व्रत
४६.	सन् १९८२ एवं ८४	दो अष्टयाम लीलाओंका आयोजन
४७.	८ फरवरी १९८५ से १७ फरवरी १९८५ तक	पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी श्रीमद्भागवत कथाका श्रवण
४८.	२१ जून १९८५	श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिरमें प्राण-प्रतिष्ठाका विशद आयोजन
४९.	५ अक्टूबर १९९१ से २३ सितम्बर १९९२ तक	पूज्य बाबूजीका जन्म शताब्दी उत्सव सारे देशमें वर्षभर यत्र-तत्र मनाया जाना
५०.	२६ सितम्बर १९९२	पूज्या मैयाका महाप्रयाण
५१.	१३ अक्टूबर १९९२	पूज्या मैयाके महाप्रयाणके उपरान्त श्राद्ध-कर्मकाण्डकी प्रक्रियाके सम्पन्न होते ही पूज्य बाबाकी महाप्रयाण लीला

* * * * *

पुस्तक प्राप्ति स्थान

: गोरखपुर :
साहित्य मन्दिर
श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति,
पो. गीतावाटिका,
गोरखपुर - २७३००६.

मनमोहन जाजोदिया
अजय सलेक्शन, बैंक रोड,
गोरखपुर - २७३ ००१

:वाराणसी:
श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति सेवा ट्रस्ट,
दुर्गाकुण्ड रोड,
वाराणसी

:उदयपुर:
दिनेश कुमार अग्रवाल
आर ५/३१, जयश्री कालोनी,
तिलक स्कूल रोड, धूलकोट,
उदयपुर - ३१३ ००१

: मुम्बई :
भारतीय ग्रामोद्योग वस्त्र भण्डार
सिंहानिया वाडी,
१८७, दादी सेठ अग्यारी लेन,
मुम्बई - ४०००० २

:वृन्दावन:
खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्बा बाजार,
वृन्दावन - २८११२१

:जयपूर:
धार्मिक साहित्य सदन
बुलियन बिल्डींग के अन्दर,
हल्दियोंका रास्ता,
जौहरी बाजार,
जयपुर (राज.) ३०२००३

: स्वर्गाश्रम:
विष्णु पुस्तक भण्डार
पो. स्वर्गाश्रम,
(ऋषिकेश) - २४९३०४,
जि. पौढ़ी गढ़वाल

: अयोध्या:
श्रीस्वामीशरण उपाध्याय
श्रीसीताराम भवन,
गोलाघाट चौराह,
अयोध्या (उ.प्र.)

: पटना:
श्रीनागा बाबा
ठाकुरवाडी,
मथुरा प्रसाद सिन्हा रोड,
कदम कुँआ, पटना (बिहार)

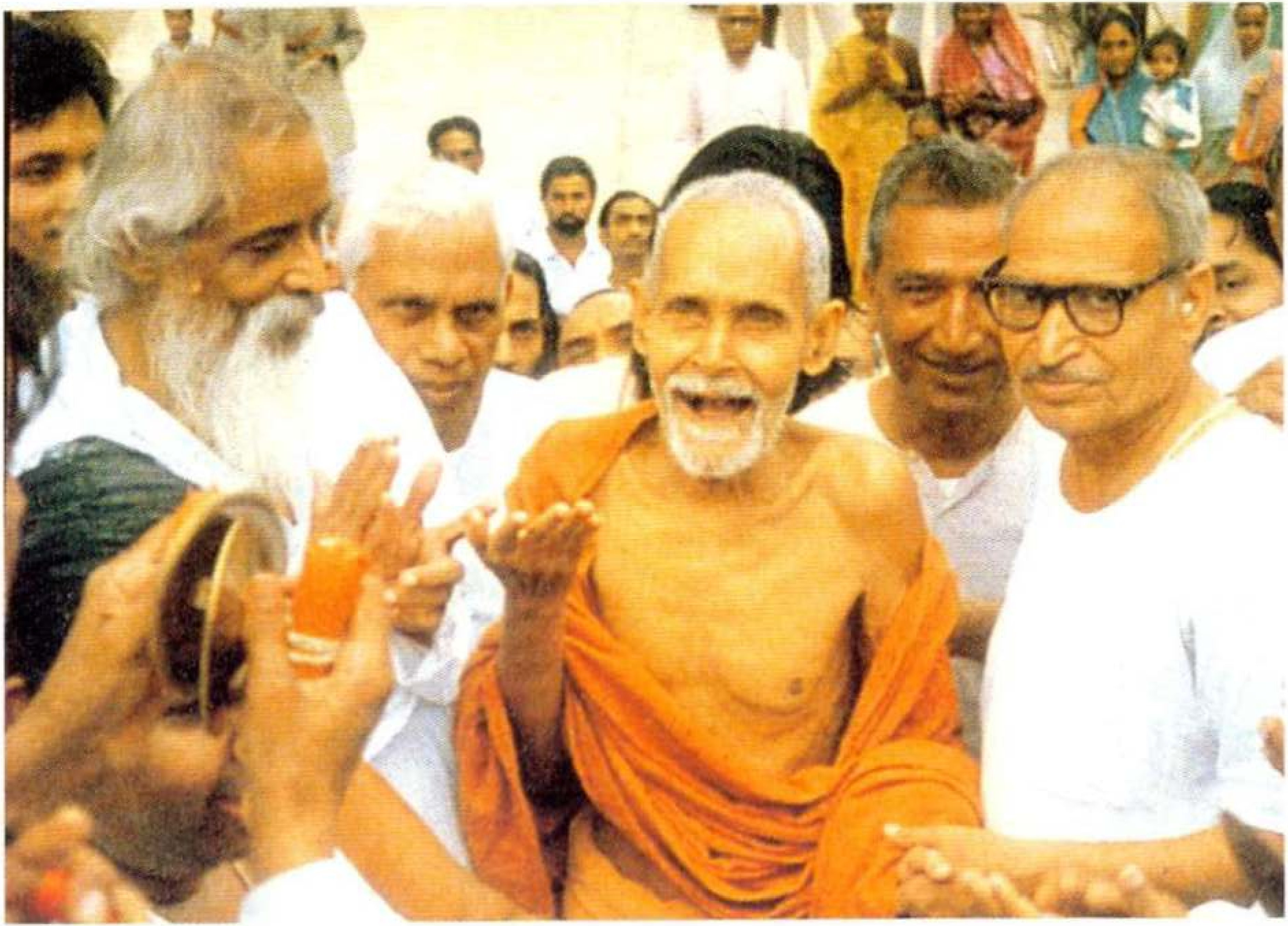
॥ श्रीहरिः ॥

गीतावाटिका प्रकाशन

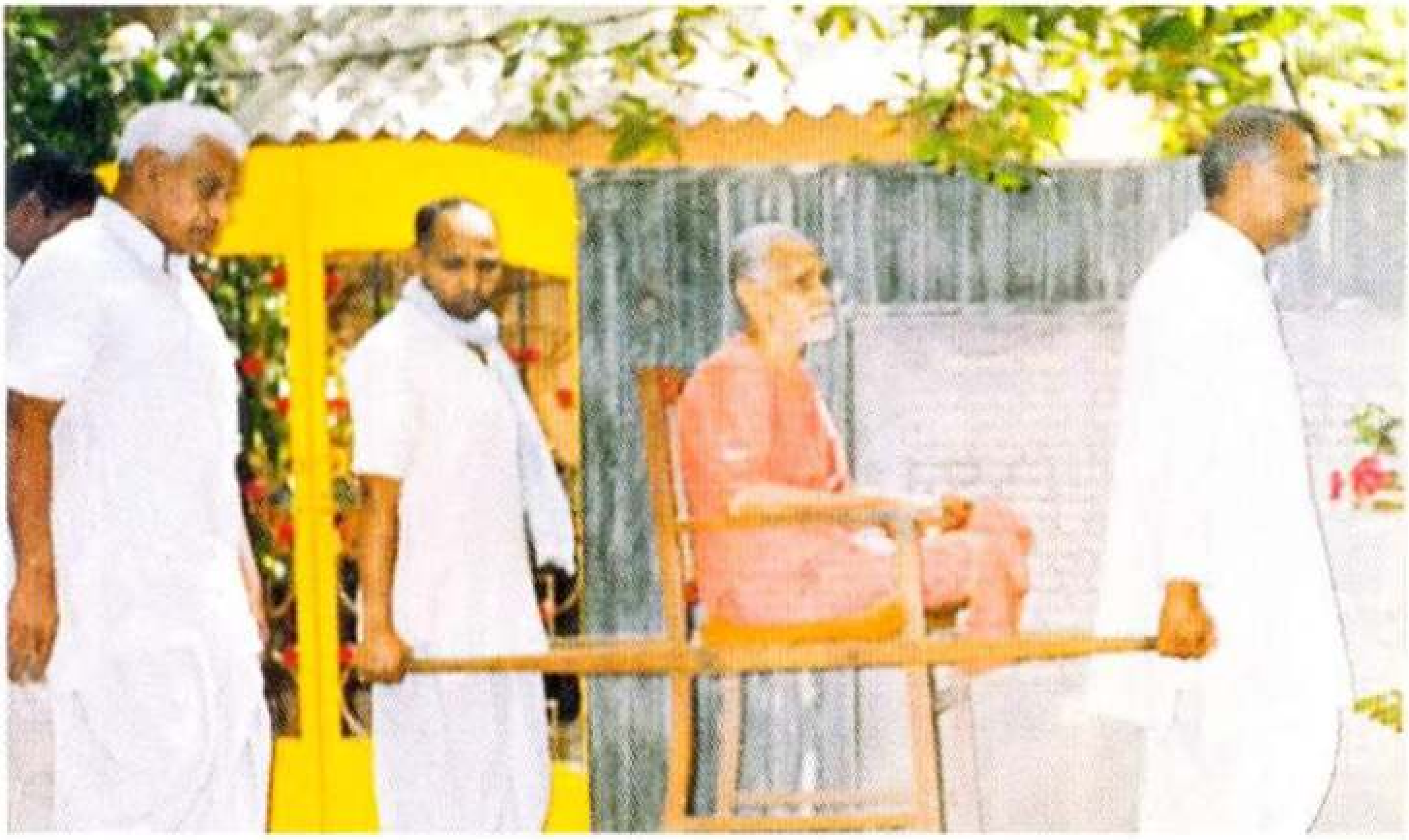
पो. - गीतावाटिका, गोरखपुर - २७३ ००६

द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

1.	श्रीभाईजी - एक अलौकिक विभूति	श्रीभाईजी एवं श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी	60.00
2.	भाईजी चरितामृत	भाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रसंग	50.00
3.	सरस पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
4.	व्रजभावकी उपासना	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
5.	परमार्थकी पगडंडियाँ	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
6.	सत्संगवाटिकाके बिखरे सुमन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
7.	वेणुगीत	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
8.	समाज किस ओर जा रहा है	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
9.	प्रभुको आत्मसमर्पण	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
10.	भगवत्कृपा	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	5.00
11.	श्रीराधाष्टमी जन्म-व्रत महोत्सव	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	5.00
12.	शान्तिकी सरिता	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	20.00
13.	रासपञ्चाध्यायी	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
14.	पारमार्थिक और लौकिक सफलताके सरल उपाय	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
15.	क्या, क्यों और कैसे ?	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
16.	साधकोंके पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
17.	रोगोंके सरल उपचार	सम्पादक : भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
18.	भगवन्नाम और प्रार्थनाके चमत्कार	सम्पादक : भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
19.	मेरी अतुल सम्पति	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	10.00
20.	श्रीशिव - चिन्तन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
21.	अन्तरंग वार्तालाप	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
22.	आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ	श्रीराधा बाबा	35.00
23.	महाभागा व्रजदेवियाँ	श्रीराधा बाबा	30.00
24.	केलि - कुञ्ज	श्रीराधा बाबा	70.00
25.	परमार्थके सरगम	श्रीराधा बाबा	30.00
26.	पद-रत्नाकर - एक अध्ययन	श्रीश्यामसुन्दर दुजारी	30.00
27.	दिव्य हस्तलिखित संकेत		50.00



नाम-संकीर्तन की मस्ती में : श्रीबाबा एवं श्रीमहाराजजी



श्रीगिरीराजजी की परिक्रमा



परिक्रमा के मध्य रस का ज्वार

महज्जनों के भावोद्‌गार

श्रीराधा बाबा मणि हैं, प्रकाश हैं, शोभा हैं। श्रीराधा बाबा मेरी आत्मा हैं।

श्रीश्रीयोगीराज ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा

राधा बाबा को अगर कोई एक-एक लक्षणपर परखे तो उनको सौ टंच खरा पाएगा। मुझे अगर एक विशेषणसे ही राधा बाबा को परिभाषित करना हो तो मैं उनको कहूँगा- 'विशुद्ध संत'। तुलसीदासने भी संतके लिये यह विशिष्ट विशेषण शायद एक ही बार प्रयुक्त किया है-

संत विशुद्ध मिलहिं परि तेहि।
राम कृपा करि चितवहिं जेहि।।

राम ने अगर कृपाकर मेरी ओर देखा तो उसका एक मात्र सबूत मेरे लिये यही है कि राधा बाबा मुझे मिले।

कविवर डा. हरिवंश राय 'बच्चन'